ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

शल्यपर्व

प्रथमोऽध्यायः

संजयके मुखसे शल्य और दुर्योधनके वधका वृत्तान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्रका मूर्च्छित होना और सचेत होनेपर उन्हें विदुरका आश्वासन देना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

जनमेजय उवाच

एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना।
अल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! जब इस प्रकार समराङ्गणमें सव्यसाची अर्जुनने कर्णको मार गिराया, तब थोड़े-से बचे हुए कौरवसैनिकोंने क्या किया? ॥ १ ॥

उदीर्यमाणं च बलं दृष्ट्वा राजा सुयोधनः।
पाण्डवैः प्राप्तकालं च किं प्रापद्यत कौरवः॥ २ ॥

पाण्डवोंका बल बढ़ता देखकर कुरुवंशी राजा दुर्योधनने उनके साथ कौन-सा समयोचित बर्ताव करनेका निश्चय किया?॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत्॥ ३ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! मैं यह सब सुनना चाहता हूँ। मुझे अपने पूर्वजोंका महान् चरित्र सुनते-सुनते तृप्ति नहीं हो रही है, अतः आप इसका वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः कर्णे हते राजन् धार्तराष्ट्रः सुयोधनः।
भृशं शोकार्णवे मग्नो निराशः सर्वतोऽभवत्॥ ४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! कर्णके मारे जानेपर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन शोकके समुद्रमें डूब गया और सब ओरसे निराश हो गया ॥ ४ ॥

हा कर्ण हा कर्ण इति शोचमानः पुनः पुनः।
कृच्छ्रात् स्वशिबिरं प्राप्तो हतशेषैर्नृपैः सह॥ ५ ॥

'हा कर्ण! हा कर्ण!' ऐसा कहकर बारंबार शोकग्रस्त हो मरनेसे बचे हुए नरेशोंके साथ वह बड़ी कठिनाईसे अपने शिबिरमें आया ॥ ५ ॥

स समाश्वास्यमानोऽपि हेतुभिः शास्त्रनिश्चितैः।
राजभिर्नालभच्छर्म सूतपुत्रवधं स्मरन्॥ ६ ॥

राजाओंने शास्त्रनिश्चित युक्तियोंद्वारा उसे बहुत समझाया-बुझाया तो भी सूतपुत्रके वधका स्मरण करके उसे शान्ति नहीं मिली ॥ ६ ॥

स दैवं बलवन्मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः।
संग्रामे निश्चयं कृत्वा पुनर्युद्धाय निर्ययौ॥ ७ ॥

उस राजा दुर्योधनने दैव और भवितव्यताको प्रबल मानकर संग्राम जारी रखनेका ही दृढ़ निश्चय करके पुनः युद्धके लिये प्रस्थान किया ॥ ७ ॥

शल्यं सेनापतिं कृत्वा विधिवद् राजपुङ्गवः।
रणाय निर्ययौ राजा हतशेषैर्नृपैः सह॥ ८ ॥

नृपश्रेष्ठ राजा दुर्योधन शल्यको विधिपूर्वक सेनापति बनाकर मरनेसे बचे हुए राजाओंके साथ युद्धके लिये निकला॥

ततः सुतुमुलं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः।
बभूव भरतश्रेष्ठ देवासुररणोपमम्॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर कौरव-पाण्डव सेनाओंमें घोर युद्ध हुआ, जो देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था ॥ ९ ॥

ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे।
ससैन्योऽथ स मध्याह्ने धर्मराजेन घातितः॥ १० ॥

महाराज! तत्पश्चात् सेनासहित शल्य युद्धमें बड़ा भारी संहार मचाकर मध्याह्नकालमें धर्मराज युधिष्ठिरके हाथसे मारे गये ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा हतबन्धू रणाजिरात्।
अपसृत्य ह्रदं घोरं विवेश रिपुजाद् भयात्॥ ११ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधन अपने भाइयोंके मारे जानेपर समराङ्गणसे दूर जाकर शत्रुके भयसे भयंकर तालाबमें घुस गया ॥ ११ ॥

अथापराह्ने तस्याह्नः परिवार्य सुयोधनः ।
ह्रदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः ॥ १२ ॥

इसके बाद उसी दिन अपराह्नकालमें दुर्योधनपर घेरा डालकर उसे युद्धके लिये तालाबसे बुलाकर भीमसेनने मार गिराया ॥ १२ ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे हतशिष्टास्त्रयो रथाः ।
संरम्भान्निशि राजेन्द्र जघ्नुः पाञ्चालसोमकान् ॥ १३॥

राजेन्द्र ! उस महाधनुर्धर दुर्योधनके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए तीन रथी—कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामाने रातमें सोते समय पाञ्चालों और सोमकोंको रोषपूर्वक मार डाला ॥ १३ ॥

ततः पूर्वाह्णसमये शिबिरादेत्य संजयः ।
प्रविवेश पुरीं दीनो दुःखशोकसमन्वितः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् पूर्वाह्णकालमें दुःख और शोकमें डूबे हुए संजयने शिविरसे आकर दीनभावसे हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ॥

स प्रविश्य पुरीं सूतो भुजावुच्छ्रित्य दुःखितः ।
वेपमानस्ततो राज्ञः प्रविवेश निकेतनम् ॥ १५ ॥

पुरीमें प्रवेश करके दोनों बाँहें ऊपर उठाकर दुःख-मग्न हो काँपते हुए संजय राजभवनके भीतर गये ॥ १५ ॥

रुरोद च नरव्याघ्र हा राजन्निति दुःखितः ।
अहो बत विनष्टाः स्म निधनेन महात्मनः ॥ १६ ॥

और रोते हुए दुखी होकर बोले— 'हा नरव्याघ्र नरेश ! हा राजन् ! बड़े शोककी बात है ! महामनस्वी कुरुराजके निधनसे हम सर्वथा नष्टप्राय हो गये ! ॥ १६ ॥

विधिश्च बलवानत्र पौरुषं तु निरर्थकम् ।
शक्रतुल्यबलाः सर्वे यथावध्यन्त पाण्डवैः ॥ १७ ॥

'इस जगत्में भाग्य ही बलवान् है । पुरुषार्थ तो निरर्थक है, क्योंकि आपके सभी पुत्र इन्द्रके तुल्य बलवान् होनेपर भी पाण्डवोंके हाथसे मारे गये !' ॥ १७ ॥

दृष्ट्वैव च पुरे राजञ्जनः सर्वः स संजयम् ।
क्लेशेन महता युक्तं सर्वतो राजसत्तम ॥ १८ ॥
रुरोद च भृशोद्विग्नो हा राजन्निति विस्वरम् ।
आकुमारं नरव्याघ्र तत्र तत्र समन्ततः ॥ १९ ॥
आर्तनादं ततश्चक्रे श्रुत्वा विनिहतं नृपम् ।

राजन् ! नृपश्रेष्ठ ! हस्तिनापुरके सभी लोग संजयको सर्वथा महान् क्लेशसे युक्त देखकर अत्यन्त उद्विग्न हो 'हा राजन् !' ऐसा कहते हुए फूट-फूटकर रोने लगे । नरव्याघ्र ! वहाँ चारों ओर बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक सब लोग राजाको मारा गया सुन आर्तनाद करने लगे ॥ १८-१९½ ॥

धावतश्चाप्यपश्यामस्तत्र तान् पुरुषर्षभान् ॥ २० ॥
नष्टचित्तानिवोन्मत्ताञ्शोकेन भृशपीडितान् ।

हमलोगोंने देखा कि वे नगरके श्रेष्ठ पुरुष अचेत और उन्मत्त-से होकर शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो वहाँ दौड़ रहे हैं॥

तथा स विह्वलः सूतः प्रविश्य नृपतिक्षयम् ॥ २१ ॥
ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।

इस प्रकार व्याकुल हुए संजयने राजभवनमें प्रवेश करके अपने स्वामी प्रज्ञाचक्षु नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्रका दर्शन किया ॥

तथा चासीनमनघं समन्तात् परिवारितम् ॥ २२ ॥
स्नुषाभिर्भरतश्रेष्ठ गान्धार्या विदुरेण च ।
तथान्यैश्च सुहृद्भिश्च ज्ञातिभिश्च हितैषिभिः ॥ २३ ॥
तमेव चार्थं ध्यायन्तं कर्णस्य निधनं प्रति ।

भरतश्रेष्ठ ! वे निष्पाप नरेश अपनी पुत्रवधुओं, गान्धारी, विदुर तथा अन्य हितैषी सुहृदों एवं बन्धु-बान्धवोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए बैठे थे और कर्णके मारे जानेसे होनेवाले परिणामका चिन्तन कर रहे थे ॥ २२-२३½ ॥

रुदन्नेवाब्रवीद् वाक्यं राजानं जनमेजय ॥ २४ ॥
नातिहृष्टमनाः सूतो वाक्यसंदिग्धया गिरा ।
संजयोऽहं नरव्याघ्र नमस्ते भरतर्षभ ॥ २५ ॥

जनमेजय ! उस समय संजयने खिन्नचित्त होकर रोते हुए ही संदिग्ध वाणीमें कहा—'नरव्याघ्र ! भरतश्रेष्ठ ! मैं संजय हूँ । आपको नमस्कार है ॥ २४-२५ ॥

मद्राधिपो हतः शल्यः शकुनिः सौबलस्तथा ।
उलूकः पुरुषव्याघ्र कैतव्यो दृढविक्रमः ॥ २६ ॥

'पुरुषसिंह ! मद्रराज शल्य, सुबलपुत्र शकुनि तथा जुआरीका पुत्र सुदृढ़पराक्रमी, उलूक—ये सब-के-सब मारे गये ॥ २६ ॥

संशप्तका हताः सर्वे काम्बोजाश्च शकैः सह ।
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च यवना विनिपातिताः ॥ २७ ॥

'समस्त संशप्तक वीर, काम्बोज, शक, म्लेच्छ, पर्वतीय योद्धा और यवनसैनिक मार गिराये गये ॥ २७ ॥

प्राच्या हता महाराज दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
उदीच्याश्च हताः सर्वे प्रतीच्याश्च नरोत्तमाः ॥ २८ ॥

'महाराज ! पूर्वदेशके योद्धा मारे गये, समस्त दाक्षिणात्योंका संहार हो गया तथा उत्तर और पश्चिमके सभी श्रेष्ठ मनुष्य मार डाले गये ॥ २८ ॥

राजानो राजपुत्राश्च सर्वे ते निहता नृप ।
दुर्योधनो हतो राजा यथोक्तं पाण्डवेन ह ॥ २९ ॥
भग्नसक्थो महाराज शेते पांसुषु रूषितः ।

'नरेश्वर ! समस्त राजा और राजकुमार कालके गालमें चले गये । महाराज ! जैसा पाण्डुपुत्र भीमसेनने कहा था, उसके अनुसार राजा दुर्योधन भी मारा गया । उसकी जाँघ टूट गयी और वह धूल-धूसर होकर पृथ्वीपर पड़ा है ॥२९½॥

धृष्टद्युम्नो महाराज शिखण्डी चापराजितः ॥ ३० ॥
उत्तमौजा युधामन्युस्तथा राजन् प्रभद्रकाः ।
पञ्चालाश्च नरव्याघ्र चेदयश्च निषूदिताः ॥ ३१ ॥

'महाराज ! नरव्याघ्र नरेश ! धृष्टद्युम्न, अपराजित वीर

शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, प्रभद्रकगण, पाञ्चाल और चेदिदेशीय योद्धाओंका भी संहार हो गया ॥ ३०-३१ ॥

तव पुत्रा हताः सर्वे द्रौपदेयाश्च भारत।
कर्णपुत्रो हतः शूरो वृषसेनः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

'भारत ! आपके तथा द्रौपदीके भी सभी पुत्र मारे गये । कर्णका प्रतापी एवं शूरवीर पुत्र वृषसेन भी नष्ट हो गया ॥ ३२ ॥

नरा विनिहताः सर्वे गजाश्च विनिपातिताः।
रथिनश्च नरव्याघ्र हयाश्च निहता युधि ॥ ३३ ॥

'नरव्याघ्र ! युद्धस्थलमें समस्त पैदल मनुष्य, हाथीसवार, रथी और घुड़सवार भी मार गिराये गये ॥ ३३ ॥

किञ्चिच्छेषं च शिबिरं तावकानां कृतं प्रभो।
पाण्डवानां कुरूणां च समासाद्य परस्परम् ॥ ३४ ॥

'प्रभो ! पाण्डवों तथा कौरवोंमें परस्पर संघर्ष होकर आपके पुत्रों तथा पाण्डवके शिबिरमें किंचिन्मात्र ही शेष रह गया है॥

प्रायः स्त्रीशेषमभवज्जगत् कालेन मोहितम्।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो रथाः ॥ ३५ ॥

'प्रायः कालसे मोहित हुए सारे जगत्में स्त्रियाँ ही शेष रह गयी हैं। पाण्डवपक्षमें सात और आपके पक्षमें तीन रथी मरनेसे बचे हैं ॥ ३५ ॥

ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्च जयतां वरः ॥ ३६ ॥

'उधर पाँचों भाई पाण्डव, वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और सात्यकि शेष हैं तथा इधर कृपाचार्य, कृतवर्मा और विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा जीवित हैं ॥ ३६ ॥

तथाप्येते महाराज रथिनो नृपसत्तम।
अक्षौहिणीनां सर्वासां समेतानां जनेश्वर ॥ ३७ ॥
एते शेषा महाराज सर्वेऽन्ये निधनं गताः।

'नृपश्रेष्ठ ! जनेश्वर ! महाराज ! उभय पक्षमें जो समस्त अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई थीं, उनमेंसे ये ही रथी शेष रह गये हैं, अन्य सब लोग कालके गालमें चले गये ॥३७½॥

कालेन निहतं सर्वं जगद् वै भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
दुर्योधनं वै पुरतः कृत्वा वैरं च भारत।

'भरतश्रेष्ठ ! भरतनन्दन ! कालने दुर्योधन और उसके वैरको आगे करके सम्पूर्ण जगत्को नष्ट कर दिया' ॥ ३८½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ॥ ३९ ॥
निपपात स राजेन्द्रो गतसत्त्वो महीतले।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यह क्रूर वचन सुनकर राजाधिराज जनेश्वर धृतराष्ट्र प्राणहीन-से होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३९½ ॥

तस्मिन् निपतिते भूमौ विदुरोऽपि महायशाः ॥ ४० ॥
निपपात महाराज शोकव्यसनकर्षितः।

महाराज ! उनके गिरते ही महायशस्वी विदुरजी भी शोकसंतापसे दुर्बल हो धड़ामसे गिर पड़े ॥ ४०½ ॥

गान्धारी च नृपश्रेष्ठ सर्वाश्च कुरुयोषितः ॥ ४१ ॥
पतिताः सहसा भूमौ श्रुत्वा क्रूरं वचस्तदा।
निःसंज्ञं पतितं भूमौ तदासीद् राजमण्डलम् ॥ ४२ ॥
प्रलापयुक्तं महति चित्रन्यस्तं पटे यथा।

नृपश्रेष्ठ ! उस समय वह क्रूरतापूर्ण वचन सुनकर कुरुकुलकी समस्त स्त्रियाँ और गान्धारी देवी सहसा पृथ्वीपर गिर गयीं, राजपरिवारके सभी लोग अपनी सुध-बुध खोकर धरतीपर गिर पड़े और प्रलाप करने लगे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो विशाल पटपर अङ्कित किये गये चित्र हों ॥ ४१-४२½ ॥

कृच्छ्रेण तु ततो राजा धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ ४३ ॥
शनैरलभत प्राणान् पुत्रव्यसनकर्शितः।

तत्पश्चात् पुत्रशोकसे पीड़ित हुए पृथ्वीपति राजा धृतराष्ट्रमें बड़ी कठिनाईसे धीरे-धीरे प्राणोंका संचार हुआ ॥

लब्ध्वा तु स नृपः संज्ञां वेपमानः सुदुःखितः॥ ४४ ॥
उदीक्ष्य च दिशः सर्वाः क्षत्तारं वाक्यमब्रवीत्।
विद्वन् क्षत्तर्महाप्राज्ञ त्वं गतिर्भरतर्षभ ॥ ४५ ॥
ममानाथस्य सुभृशं पुत्रैर्हीनस्य सर्वशः।
एवमुक्त्वा ततो भूयो विसंज्ञो निपपात ह ॥ ४६ ॥

चेतना पाकर राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त दुखी हो थर-थर काँपने लगे और सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखकर विदुरसे इस प्रकार बोले—'विद्वन् ! महाज्ञानी विदुर ! भरतभूषण ! अब तुम्हीं मुझ पुत्रहीन और अनाथके सर्वथा आश्रय हो'। इतना कहकर वे पुनः अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥४४-४६॥

तं तथा पतितं दृष्ट्वा बान्धवा येऽस्य केचन।
शीतैस्ते सिषिचुस्तोयैर्विव्यजुर्व्यजनैरपि ॥ ४७ ॥

उन्हें इस प्रकार गिरा हुआ देख उनके जो कोई बन्धु-बान्धव वहाँ मौजूद थे, उन्होंने राजाके शरीरपर ठंडे जलके छींटे दिये और व्यजन डुलाये ॥ ४७ ॥

स तु दीर्घेण कालेन प्रत्याश्वस्तो नराधिपः।
तूष्णीं दध्यौ महीपालः पुत्रव्यसनकर्शितः ॥ ४८ ॥

फिर बहुत देरके बाद जब राजा धृतराष्ट्रको होश हुआ, तब वे पुत्रशोकसे पीड़ित हो चिन्तामग्न हो गये ॥ ४८ ॥

निःश्वसञ्जिह्मग इव कुम्भक्षिप्तो विशाम्पते।
संजयोऽप्यरुदत् तत्र दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥ ४९ ॥

प्रजानाथ ! उस समय वे घड़ेमें रक्खे हुए सर्पके समान लंबी साँस खींचने लगे। राजाको इस प्रकार आतुर देखकर संजय भी वहाँ रोने लगे ॥ ४९ ॥

तथा सर्वाः स्त्रियश्चैव गान्धारी च यशस्विनी।
ततो दीर्घेण कालेन विदुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५० ॥
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठ मुह्यमानो मुहुर्मुहुः।

गच्छन्तु योषितः सर्वा गान्धारी च यशस्विनी ॥ ५१ ॥
तथेमे सुहृदः सर्वे भ्राम्यते मे मनो भृशम् ।

फिर सारी स्त्रियाँ और यशस्विनी गान्धारी देवी भी फूट-फूटकर रोने लगीं । नरश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् बहुत देरके बाद बारंबार मोहित होते हुए धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा—'ये सारी स्त्रियाँ और यशस्विनी गान्धारी देवी भी यहाँसे चली जायँ । ये समस्त सुहृद् भी अब यहाँसे पधारें; क्योंकि मेरा चित्त अत्यन्त भ्रान्त हो रहा है' ॥ ५०-५१½ ॥

एवमुक्तस्ततः क्षत्ता ताः स्त्रियो भरतर्षभ ॥ ५२ ॥
विसर्जयामास शनैर्वेपमानः पुनः पुनः ।

भरतश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर बारंबार काँपते हुए विदुरजीने उन सब स्त्रियोंको धीरे-धीरे बिदा कर दिया ॥

निश्चक्रमुस्ततः सर्वाः स्त्रियो भरतसत्तम ॥ ५३ ॥
सुहृदश्च तथा सर्वे दृष्ट्वा राजानमातुरम् ।

भरतभूषण ! फिर वे सारी स्त्रियाँ और समस्त सुहृद्गण राजाको आतुर देखकर वहाँसे चले गये ॥ ५३½ ॥

ततो नरपतिं तत्र लब्धसंज्ञं परंतप ॥ ५४ ॥
अवैक्षत् संजयो दीनं रोदमानं भृशातुरम् ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! तदनन्तर होशमें आकर अत्यन्त आतुर हो दीनभावसे विलाप करते हुए राजा धृतराष्ट्रकी ओर संजयने देखा ॥ ५४½ ॥

प्राञ्जलिर्निःश्वसन्तं च तं नरेन्द्रं मुहुर्मुहुः ।
समाश्वासयत क्षत्ता वचसा मधुरेण च ॥ ५५ ॥

उस समय बारंबार लंबी साँस खींचते हुए राजा धृतराष्ट्रको विदुरजीने हाथ जोड़कर अपनी मधुर वाणीद्वारा आश्वासन दिया ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि धृतराष्ट्रप्रमोहे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें धृतराष्ट्रका मोहविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

राजा धृतराष्ट्रका विलाप करना और संजयसे युद्धका वृत्तान्त पूछना

वैशम्पायन उवाच

विसृष्टास्वथ नारीषु धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
विललाप महाराज दुःखाद् दुःखान्तरं गतः ॥ १ ॥
सधूममिव निःश्वस्य करौ धुन्वन् पुनः पुनः ।
विचिन्त्य च महाराज वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! स्त्रियोंके बिदा हो जानेपर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र एक दुःखसे दूसरे दुःखमें पड़कर गरम-गरम उच्छ्वास लेते और बारंबार दोनों हाथ हिलाते हुए विलाप करने लगे और बड़ी देरतक चिन्तामग्न रहकर इस प्रकार बोले ॥ १-२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अहो बत महद् दुःखं यदहं पाण्डवान् रणे ।
क्षेमिणश्चाव्ययांश्चैव त्वत्तः सूत शृणोमि वै ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—सूत ! मेरे लिये महान् दुःखकी बात है कि मैं तुम्हारे मुखसे रणभूमिमें पाण्डवोंको सकुशल और विनाशरहित सुन रहा हूँ ॥ ३ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा निहतान् पुत्रान् दीर्यते न सहस्रधा ॥ ४ ॥

निश्चय ही मेरा यह सुदृढ़ हृदय वज्रके सारतत्त्वका बना हुआ है; क्योंकि अपने पुत्रोंको मारा गया सुनकर भी इसके सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाते हैं ॥ ४ ॥

चिन्तयित्वा वयस्तेषां बालक्रीडां च संजय ।
हतान् पुत्रानशेषेण दीर्यते मे भृशं मनः ॥ ५ ॥

संजय ! मैं उनकी अवस्था और बाल-क्रीडाका चिन्तन करके जब उन सबके मारे जानेकी बात सोचता हूँ, तब मेरा हृदय अत्यन्त विदीर्ण होने लगता है ॥ ५ ॥

अनेत्रत्वाद् यदेतेषां न मे रूपनिदर्शनम् ।
पुत्रस्नेहकृता प्रीतिर्नित्यमेतेषु धारिता ॥ ६ ॥

यद्यपि नेत्रहीन होनेके कारण मैंने उनका रूप कभी नहीं देखा था, तथापि इन सबके प्रति पुत्रस्नेह-जनित प्रेमका भाव सदा ही रक्खा है ॥ ६ ॥

बालभावमतिक्रम्य यौवनस्थांश्च तानहम् ।
मध्यप्राप्तांस्तथा श्रुत्वा हृष्ट आसं तदानघ ॥ ७ ॥

निष्पाप संजय ! जब मैं यह सुनता था कि मेरे बच्चे बाल्यावस्थाको लाँघकर युवावस्थामें प्रविष्ट हुए हैं और धीरे-धीरे मध्य अवस्थातक पहुँच गये हैं, तब हर्षसे फूल उठता था ॥ ७ ॥

तानद्य निहताञ्छ्रुत्वा हतैश्वर्यान् हतौजसः ।
न लभेयं क्वचिच्छान्तिं पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ८ ॥

आज उन्हीं पुत्रोंको ऐश्वर्य और बलसे हीन एवं मारा गया सुनकर उनकी चिन्तासे व्यथित हो कहीं भी शान्ति नहीं पा रहा हूँ ॥ ८ ॥

एह्येहि पुत्र राजेन्द्र ममानाथस्य साम्प्रतम् ।
त्वया हीनो महाबाहो कां नु यास्याम्यहं गतिम् ॥ ९ ॥

(इतना कहकर राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार विलाप करने लगे—) बेटा ! राजाधिराज ! इस समय मुझ अनाथके पास आओ, आओ । महाबाहो ! तुम्हारे बिना न जाने मैं किस दशाको पहुँच जाऊँगा ? ॥ ९ ॥

कथं त्वं पृथिवीपालांस्त्यक्त्वा तात समागतान् ।
शेषे विनिहतो भूमौ प्राकृतः कुनृपो यथा ॥ १० ॥

तात ! तुम यहाँ पधारे हुए समस्त भूमिपालोंको छोड़कर

किसी नीच और दुष्ट राजाके समान मारे जाकर पृथ्वीपर कैसे सो रहे हो ? ॥ १० ॥

गतिर्भूत्वा महाराज ज्ञातीनां सुहृदां तथा ।
अन्धं वृद्धं च मां वीर विहाय क्व नु यास्यसि ॥ ११ ॥

वीर महाराज ! तुम भाई-बन्धुओं और सुहृदोंके आश्रय होकर भी मुझ अंधे और बूढ़ेको छोड़कर कहाँ चले जा रहे हो ? ॥ ११ ॥

सा कृपा सा च ते प्रीतिः क्व सा राजन् सुमानिता ।
कथं विनिहतः पार्थैः संयुगेष्वपराजितः ॥ १२ ॥

राजन् ! तुम्हारी वह कृपा, वह प्रीति और दूसरोंको सम्मान देनेकी वह वृत्ति कहाँ चली गयी ? तुम तो किसीसे परास्त होनेवाले नहीं थे; फिर कुन्तीके पुत्रोंके द्वारा युद्धमें कैसे मारे गये ? ॥ १२ ॥

को नु मामुत्थितं वीर तात तातेति वक्ष्यति ।
महाराजेति सततं लोकनाथेति चासकृत् ॥ १३ ॥

वीर ! अब मेरे उठनेपर मुझे सदा तात, महाराज और लोकनाथ आदि बारंबार कहकर कौन पुकारेगा ? ॥ १३ ॥

परिष्वज्य च मां कण्ठे स्नेहेन क्लिन्नलोचनः ।
अनुशाधीति कौरव्य तत् साधु वद मे वचः ॥ १४ ॥

कुरुनन्दन ! तुम पहले स्नेहसे नेत्रोंमें आँसू भरकर मेरे गलेसे लग जाते और कहते 'पिताजी ! मुझे कर्तव्यका उपदेश दीजिये,' वही सुन्दर बात फिर मुझसे कहो ॥ १४ ॥

ननु नामाहमश्रौषं वचनं तव पुत्रक ।
भूयसी मम पृथ्वीयं यथा पार्थस्य नो तथा ॥ १५ ॥

बेटा ! मैंने तुम्हारे मुँहसे यह बात सुनी थी कि 'मेरे अधिकारमें बहुत बड़ी पृथ्वी है । इतना विशाल भूभाग कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके अधिकारमें कभी नहीं रहा ॥ १५ ॥

भगदत्तः कृपः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः सोमदत्तो महाराजश्च बाह्लिकः ॥ १६ ॥
अश्वत्थामा च भोजश्च मागधश्च महाबलः ।
बृहद्बलश्च क्राथश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १७ ॥
म्लेच्छाश्च शतसाहस्राः शकाश्च यवनैः सह ।
सुदक्षिणश्च काम्बोजस्त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ॥ १८ ॥
भीष्मः पितामहश्चैव भारद्वाजोऽथ गौतमः ।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च शतायुश्चापि वीर्यवान् ॥ १९ ॥
जलसन्धोऽथार्ष्यशृङ्गी राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
अलम्बुषो महाबाहुः सुबाहुश्च महारथः ॥ २० ॥
एते चान्ये च बहवो राजानो राजसत्तम ।
मदर्थमुद्यताः सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ २१ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, अवन्तीके राजकुमार, जयद्रथ, भूरिश्रवा, सोमदत्त, महाराज बाह्लिक, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, महाबली मगधनरेश बृहद्बल, क्राथ, सुबलपुत्र शकुनि, लाखों म्लेच्छ, यवन एवं शक, काम्बोजराज सुदक्षिण, त्रिगर्तराज सुशर्मा, पितामह भीष्म, भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य, गौतमगोत्रीय कृपाचार्य, श्रुतायु, अयुतायु, पराक्रमी शतायु, जलसन्ध, ऋष्यशृङ्गपुत्र राक्षस अलायुध, महाबाहु अलम्बुष और महारथी सुबाहु—ये तथा और भी बहुत-से नरेश मेरे लिये प्राणों और धनका मोह छोड़कर सब-के-सब युद्धके लिये उद्यत हैं ॥ १६—२१ ॥

तेषां मध्ये स्थितो युद्धे भ्रातृभिः परिवारितः ।
योधयिष्याम्यहं पार्थान् पञ्चालांश्चैव सर्वशः ॥ २२ ॥

'इन सबके बीचमें रहकर भाइयोंसे घिरा हुआ मैं रणभूमिमें पाण्डवों और पाञ्चालोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ २२ ॥

चेदींश्च नृपशार्दूल द्रौपदेयांश्च संयुगे ।
सात्यकिं कुन्तिभोजं च राक्षसं च घटोत्कचम् ॥ २३ ॥

'राजसिंह ! मैं युद्धस्थलमें चेदियों, द्रौपदीकुमारों, सात्यकि, कुन्तिभोज तथा राक्षस घटोत्कचका भी सामना करूँगा ॥ २३ ॥

एकोऽप्येषां महाराज समर्थः संनिवारणे ।
समरे पाण्डवेयानां संक्रुद्धो ह्यभिधावताम् ॥ २४ ॥
किं पुनः सहिता वीराः कृतवैराश्च पाण्डवैः ।

'महाराज ! मेरे इन सहयोगियोंमेंसे एक-एक वीर भी समराङ्गणमें कुपित होकर मुझपर आक्रमण करनेवाले समस्त पाण्डवोंको रोकनेमें समर्थ हैं । फिर यदि पाण्डवोंके साथ वैर रखनेवाले ये सारे वीर एक साथ होकर युद्ध करें तब क्या नहीं कर सकते ॥ २४½ ॥

अथवा सर्व एवैते पाण्डवस्यानुयायिभिः ॥ २५ ॥
योत्स्यन्ते सह राजेन्द्र हनिष्यन्ति च तान् मृधे ।

'राजेन्द्र ! अथवा ये सभी योद्धा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके अनुयायियोंके साथ युद्ध करेंगे और उन सबको रणभूमिमें मार गिरायेंगे ॥ २५½ ॥

कर्ण एको मया सार्धं निहनिष्यति पाण्डवान् ॥ २६ ॥
ततो नृपतयो वीराः स्थास्यन्ति मम शासने ।

'अकेला कर्ण ही मेरे साथ रहकर समस्त पाण्डवोंको मार डालेगा । फिर सारे वीर नरेश मेरी आज्ञाके अधीन हो जायँगे ॥ २६½ ॥

यश्च तेषां प्रणेता वै वासुदेवो महाबलः ॥ २७ ॥
न स संनह्यते राजन्निति मामब्रवीद् वचः ।

'राजन् ! पाण्डवोंके जो नेता हैं, वे महाबली वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण युद्धके लिये कवच नहीं धारण करेंगे' । ऐसी बात दुर्योधन मुझसे कहता था ॥ २७½ ॥

तस्याथ वदतः सूत बहुशो मम संनिधौ ॥ २८ ॥
शक्तितो ह्यनुपश्यामि निहतान् पाण्डवान् रणे ।

सूत ! मेरे निकट दुर्योधन जब इस तरहकी बहुत-सी बातें कहने लगा तो मैं यह समझ बैठा कि 'हमारी शक्तिसे समस्त पाण्डव रणभूमिमें मारे जायँगे' ॥ २८½ ॥

तेषां मध्ये स्थिता यत्र हन्यन्ते मम पुत्रकाः ॥ २९ ॥
व्यायच्छमानाः समरे किमन्यद् भागधेयतः ।

जब ऐसे वीरोंके बीचमें रहकर भी प्रयत्नपूर्वक लड़नेवाले मेरे पुत्र समराङ्गणमें मार डाले गये, तब इसे भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ २९½ ॥

भीष्मश्च निहतो यत्र लोकनाथः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
शिखण्डिनं समासाद्य मृगेन्द्र इव जम्बुकम् ।
द्रोणश्च ब्राह्मणो यत्र सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ ३१ ॥
निहतः पाण्डवैः संख्ये किमन्यद् भागधेयतः ।

जैसे सिंह सियारसे लड़कर मारा जाय, उसी प्रकार जहाँ लोकरक्षक प्रतापी वीर भीष्म शिखण्डीसे भिड़कर वधको प्राप्त हुए, जहाँ सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंकी विद्याके पारंगत विद्वान् ब्राह्मण द्रोणाचार्य पाण्डवोंद्वारा युद्धस्थलमें मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥

कर्णश्च निहतः संख्ये दिव्यास्त्रज्ञो महाबलः ॥ ३२ ॥
भूरिश्रवा हतो यत्र सोमदत्तश्च संयुगे ।
बाह्लिकश्च महाराजः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३३ ॥

जहाँ दिव्यास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाला महाबली कर्ण युद्धमें मारा गया, जहाँ समराङ्गणमें भूरिश्रवा, सोमदत्त तथा महाराज बाह्लिकका संहार हो गया, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण बताया जा सकता है ? ॥ ३२-३३ ॥

भगदत्तो हतो यत्र गजयुद्धविशारदः ।
जयद्रथश्च निहतः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३४ ॥

जहाँ गजयुद्धविशारद राजा भगदत्त मारे गये और सिंधुराज जयद्रथका वध हो गया, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३४ ॥

सुदक्षिणो हतो यत्र जलसन्धश्च पौरवः ।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३५ ॥

जहाँ काम्बोजराज सुदक्षिण, पौरव जलसन्ध, श्रुतायु और अयुतायु मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३५ ॥

महाबलस्तथा पाण्ड्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
निहतः पाण्डवैः संख्ये किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३६ ॥

जहाँ सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबली पाण्ड्यनरेश युद्धमें पाण्डवोंके हाथसे मारे गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कारण है ? ॥ ३६ ॥

बृहद्बलो हतो यत्र मागधश्च महाबलः ।
उग्रायुधश्च विक्रान्तः प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥ ३७ ॥
आवन्त्यो निहतो यत्र त्रैगर्तश्च जनाधिपः ।
संशप्तकाश्च निहताः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३८ ॥

जहाँ बृहद्बल, महाबली मगधनरेश, धनुर्धरोंके आदर्श एवं पराक्रमी उग्रायुध, अवन्तीके राजकुमार, त्रिगर्तनरेश सुशर्मा तथा सम्पूर्ण संशप्तक योद्धा मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३७-३८ ॥

अलम्बुषो महाशूरो राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
आर्ष्यशृङ्गिश्च निहतः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३९ ॥

जहाँ शूरवीर अलम्बुष और ऋष्यशृङ्गपुत्र राक्षस अलायुध मारे गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कारण बताया जा सकता है ? ॥ ३९ ॥

नारायणा हता यत्र गोपाला युद्धदुर्मदाः ।
म्लेच्छाश्च बहुसाहस्राः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ४० ॥

जहाँ नारायण नामवाले रणदुर्मद ग्वाले और कई हजार म्लेच्छ योद्धा मौतके घाट उतार दिये गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ ४० ॥

शकुनिः सौबलो यत्र कैतव्यश्च महाबलः ।
निहतः सबलो वीरः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ४१ ॥

जहाँ सुबलपुत्र महाबली शकुनि और उस जुआरीका पुत्र वीर उलूक दोनों ही सेनासहित मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ४१ ॥

एते चान्ये च बहवः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ॥ ४२ ॥
निहता बहवो यत्र किमन्यद् भागधेयतः ।

ये तथा और भी बहुत-से अस्त्रवेत्ता, रणदुर्मद, शूरवीर और परिघ-जैसी भुजाओंवाले राजा एवं राजकुमार अधिक संख्यामें मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कारण बताया जाय ? ॥ ४२½ ॥

यत्र शूरा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ४३ ॥
बहवो निहताः सूत महेन्द्रसमविक्रमाः ।
नानादेशसमावृत्ताः क्षत्रिया यत्र संजय ॥ ४४ ॥
निहताः समरे सर्वे किमन्यद् भागधेयतः ।

सूत संजय ! जहाँ समरभूमिमें नाना देशोंसे आये हुए देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी बहुत-से शूरवीर महाधनुर्धर, अस्त्रवेत्ता एवं युद्धदुर्मद क्षत्रिय सारे-के-सारे मार डाले गये, वहाँ भाग्यके अतिरिक्त दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥

पुत्राश्च मे विनिहताः पौत्राश्चैव महाबलाः ॥ ४५ ॥
वयस्या भ्रातरश्चैव किमन्यद् भागधेयतः ।

हाय ! मेरे महाबली पुत्र, पौत्र, मित्र और भाई-बन्धु सभी मार डाले गये, इसे दुर्भाग्यके सिवा और क्या कहूँ ? ॥

भागधेयसमायुक्तो ध्रुवमुत्पद्यते नरः ॥ ४६ ॥
यस्तु भाग्यसमायुक्तः स शुभं प्राप्नुयान्नरः ।

निश्चय ही मनुष्य अपना-अपना भाग्य लेकर उत्पन्न होता है, जो सौभाग्यसे सम्पन्न होता है, उसे ही शुभ फलकी प्राप्ति होती है ॥ ४६½ ॥

अहं वियुक्तस्तैर्भाग्यैः पुत्रैश्चैवेह संजय ॥ ४७ ॥
कथमद्य भविष्यामि वृद्धः शत्रुवशं गतः ।

संजय ! मैं उन शुभकारक भाग्योंसे वञ्चित हूँ और पुत्रोंसे भी हीन हूँ । आज इस वृद्धावस्थामें शत्रुके वशमें पड़कर न जाने मेरी कैसी दशा होगी ? ॥ ४७½ ॥

नान्यदत्र परं मन्ये वनवासादृते प्रभो ॥ ४८ ॥
सोऽहं वनं गमिष्यामि निर्बन्धुर्ज्ञातिसंक्षये ।
न हि मेऽन्यद् भवेच्छ्रेयो वनाभ्युपगमादृते ॥ ४९ ॥
इमामवस्थां प्राप्तस्य लूनपक्षस्य संजय ।

सामर्थ्यशाली संजय ! मेरे लिये वनवासके सिवा और कोई कार्य श्रेष्ठ नहीं जान पड़ता । अब कुटुम्बीजनोंका विनाश हो जानेपर बन्धु-बान्धवोंसे रहित हो मैं वनमें ही चला जाऊँगा । संजय ! पंख कटे हुए पक्षीकी भाँति इस अवस्थाको पहुँचे हुए मेरे लिये वनवास स्वीकार करनेके सिवा दूसरा कोई श्रेयस्कर कार्य नहीं है ॥ ४८-४९½ ॥

दुर्योधनो हतो यत्र शल्यश्च निहतो युधि ॥ ५० ॥
दुःशासनो विविंशश्च विकर्णश्च महाबलः ।
कथं हि भीमसेनस्य श्रोष्येऽहं शब्दमुत्तमम् ॥ ५१ ॥
एकेन समरे येन हतं पुत्रशतं मम ।

जब दुर्योधन मारा गया, शल्यका युद्धमें संहार हो गया तथा दुःशासन, विविंशति और महाबली विकर्ण भी मार डाले गये, तब मैं उस भीमसेनका उच्चस्वरसे कहा गया वचन कैसे सुनूँगा, जिसने अकेले ही समराङ्गणमें मेरे सौ पुत्रोंका वध कर डाला है ॥ ५०-५१½ ॥

असकृद्वदतस्तस्य दुर्योधनवधेन च ॥ ५२ ॥
दुःखशोकाभिसंतप्तो न श्रोष्ये परुषा गिरः ।

दुर्योधनके वधसे दुःख और शोकसे संतप्त हुआ मैं बारंबार बोलनेवाले भीमसेनकी कठोर बातें नहीं सुन सकूँगा॥

वैशम्पायन उवाच

एवं वृद्धश्च संतप्तः पार्थिवो हतबान्धवः ॥ ५३ ॥
मुहुर्मुहुर्मुह्यमानः पुत्राधिभिरभिप्लुतः ।
विलप्य सुचिरं कालं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ५४ ॥
दीर्घमुष्णं स निःश्वस्य चिन्तयित्वा पराभवम् ।
दुःखेन महता राजन् संतप्तो भरतर्षभः ॥ ५५ ॥
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद् यथातथम् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार पुत्रोंकी चिन्तामें डूबकर बारंबार मूर्छित होनेवाले, संतप्त एवं बूढ़े भरतश्रेष्ठ राजा अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र, जिनके बन्धु-बान्धव मार डाले गये थे, दीर्घकालतक विलाप करके गरम साँस खींचते और अपने पराभवकी बात सोचते हुए महान् दुःखसे संतप्त हो उठे तथा गवल्गणपुत्र संजयसे पुनः युद्धका यथावत् समाचार पूछने लगे ॥ ५३—५५½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा सूतपुत्रं च घातितम् ॥ ५६ ॥
सेनापतिं प्रणेतारं किमकुर्वत मामकाः ।

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! भीष्म और द्रोणाचार्यके वधका तथा युद्ध-संचालक सेनापति सूतपुत्र कर्णके विनाशका समाचार सुनकर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ ५६½ ॥

यं यं सेनाप्रणेतारं युधि कुर्वन्ति मामकाः ॥ ५७ ॥
अचिरेणैव कालेन तं तं निघ्नन्ति पाण्डवाः ।

मेरे पुत्र युद्धस्थलमें जिस-जिस वीरको अपना सेनापति बनाते थे, पाण्डव उस-उसको थोड़े ही समयमें मार गिराते थे॥

रणमूर्ध्नि हतो भीष्मः पश्यतां वः किरीटिना ॥ ५८ ॥
एवमेव हतो द्रोणः सर्वेषामेव पश्यताम् ।

युद्धके मुहानेपर तुमलोगोंके देखते-देखते भीष्मजी किरीटधारी अर्जुनके हाथसे मारे गये । इसी प्रकार द्रोणाचार्यका भी तुम सब लोगोंके सामने ही संहार हो गया ॥ ५८½ ॥

एवमेव हतः कर्णः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ५९ ॥
स राजकानां सर्वेषां पश्यतां वः किरीटिना ।

इसी तरह प्रतापी सूतपुत्र कर्ण भी राजाओंसहित तुम सब लोगोंके देखते-देखते किरीटधारी अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ ५९½ ॥

पूर्वमेवाहमुक्तो वै विदुरेण महात्मना ॥ ६० ॥
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं विनशिष्यति ।

महात्मा विदुरने मुझसे पहले ही कहा था कि 'दुर्योधनके अपराधसे इस प्रजाका विनाश हो जायगा' ॥ ६०½ ॥

केचिन्न सम्यक् पश्यन्ति मूढाः सम्यगवेक्ष्य च ।
तदिदं मम मूढस्य तथाभूतं वचः स्म तत् ॥ ६१ ॥

संसारमें कुछ मूढ़ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो अच्छी तरह देखकर भी नहीं देख पाते । मैं भी वैसा ही मूढ़ हूँ । मेरे लिये वह वचन वैसा ही हुआ (मैं उसे सुनकर भी न सुन सका) ॥ ६१ ॥

यदब्रवीत् स धर्मात्मा विदुरो दीर्घदर्शिवान् ।
तत्तथा समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ ६२ ॥

दूरदर्शी धर्मात्मा विदुरने पहले जो कुछ कहा था, वह सब उसी रूपमें सामने आया है । सत्यवादी महात्माका वचन सत्य होकर ही रहा ॥ ६२ ॥

दैवोपहतचित्तेन यन्मया न कृतं पुरा ।
अनयस्य फलं तस्य ब्रूहि गावल्गणे पुनः ॥ ६३ ॥

संजय ! पहले दैवसे मेरी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये मैंने जो विदुरजीकी बात नहीं मानी, मेरे उस अन्यायका फल जैसे-जैसे प्रकट हुआ है, उसका वर्णन करो ॥ ६३ ॥

को वा मुखमनीकानामासीत् कर्णे निपातिते ।
अर्जुनं वासुदेवं च को वा प्रत्युद्ययौ रथी ॥ ६४ ॥

कर्णके मारे जानेपर सेनाके मुखस्थानपर खड़ा होनेवाला कौन था ? कौन रथी अर्जुन और श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ? ॥ ६४ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं मद्रराजस्य संयुगे ।
वामं च योद्धुकामस्य के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥ ६५ ॥

युद्धस्थलमें जूझनेकी इच्छावाले मद्रराज शल्यके दाहिने या बायें पहियेकी रक्षा किन लोगोंने की ? अथवा उस वीर सेनापतिके पृष्ठ-रक्षक कौन थे ? ॥ ६५ ॥

कथं च वः समेतानां मद्रराजो महारथः ।

निहतः पाण्डवैः संख्ये पुत्रो वा मम संजय ॥ ६६ ॥

संजय ! तुम सब लोगोंके एक साथ रहते हुए भी महारथी मद्रराज शल्य अथवा मेरा पुत्र दुर्योधन दोनों ही तुम्हारे सामने पाण्डवोंके हाथसे कैसे मारे गये ? ॥ ६६ ॥

ब्रूहि सर्वं यथातत्त्वं भरतानां महाक्षयम् ।
यथा च निहतः संख्ये पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ६७ ॥

तुम भरतवंशियोंके इस महान् विनाशका सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे बताओ । साथ ही यह भी कहो कि युद्धस्थलमें मेरा पुत्र दुर्योधन किस प्रकार मारा गया ? ॥ ६७ ॥

पञ्चालाश्च यथा सर्वे निहताः सपदानुगाः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ॥ ६८ ॥

समस्त पाञ्चाल-सैनिक अपने सेवकोंसहित कैसे मारे गये ? धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंका वध किस प्रकार हुआ ? ॥ ६८ ॥

पाण्डवाश्च यथा मुक्तास्तथोभौ माधवौ युधि ।
कृपश्च कृतवर्मा च भारद्वाजस्य चात्मजः ॥ ६९ ॥

पाँचों पाण्डव, दोनों मधुवंशी वीर श्रीकृष्ण और सात्यकि, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—ये युद्धस्थलसे किस प्रकार जीवित बच गये ? ॥ ६९ ॥

यद् यथा यादृशं चैव युद्धं वृत्तं च साम्प्रतम् ।
अखिलं श्रोतुमिच्छामि कुशलो ह्यसि संजय ॥ ७० ॥

संजय ! जो युद्धका वृत्तान्त जिस प्रकार और जैसे संघटित हुआ हो, वह सब इस समय मैं सुनना चाहता हूँ । तुम वह सब बतानेमें कुशल हो ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें धृतराष्ट्रका विलापविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

कर्णके मारे जानेपर पाण्डवोंके भयसे कौरवसेनाका पलायन, सामना करनेवाले पचीस हजार पैदलोंका भीमसेनद्वारा वध तथा दुर्योधनका अपने सैनिकोंको समझा-बुझाकर पुनः पाण्डवोंके साथ युद्धमें लगाना

संजय उवाच

शृणु राजन्नवहितो यथावृत्तो महान् क्षयः ।
कुरूणां पाण्डवानां च समासाद्य परस्परम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कौरवों और पाण्डवोंके आपसमें भिड़नेसे जिस प्रकार महान् जनसंहार हुआ है, वह सब सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥

निहते सूतपुत्रे तु पाण्डवेन महात्मना ।
विद्रुतेषु च सैन्येषु समानीतेषु चासकृत् ॥ २ ॥
घोरे मनुष्यदेहानामाजौ नरवर क्षये ।
यत्तत् कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत् ॥ ३ ॥
तदा तव सुतान् राजन् प्राविशत् सुमहद् भयम् ।

नरश्रेष्ठ ! महात्मा पाण्डुकुमार अर्जुनके द्वारा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर जब आपकी सेनाएँ बार-बार भागने और लौटायी जाने लगीं एवं रणभूमिमें मानवशरीरोंका भयानक संहार होने लगा, उस समय कर्णवधके पश्चात् कुन्तीकुमार अर्जुनने बड़े जोरसे सिंहनाद किया । राजन् ! उसे सुनकर आपके पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ २-३½ ॥

न संधातुमनीकानि न चैवाथ पराक्रमे ॥ ४ ॥
आसीद् बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कस्यचित् ।

कर्णके मारे जानेपर आपके किसी भी योद्धाके मनमें न तो सेनाओंको एकत्र संगठित रखनेका उत्साह रह गया और न पराक्रममें ही वे मन लगा सके ॥ ४½ ॥

वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवा इव ॥ ५ ॥
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ।
सूतपुत्रे हते राजन् वित्रस्ताः शरविक्षताः ॥ ६ ॥

राजन् ! जैसे अगाध महासागरमें नाव फट जानेपर नौका-रहित व्यापारी उस अपार समुद्रसे पार जानेकी इच्छा रखते हुए घबरा उठते हैं, उसी प्रकार किरीटधारी अर्जुनके द्वारा द्वीपस्वरूप सूतपुत्रके मारे जानेपर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो हम सब लोग भयभीत हो गये थे ॥ ५-६ ॥

अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव ।
भग्नशृङ्गा इव वृषाः शीर्णदंष्ट्रा इवोरगाः ॥ ७ ॥

हम अनाथ होकर कोई रक्षक चाहते थे । हमारी दशा सिंहके सताये हुए मृगों, टूटे सींगवाले बैलों तथा जिनके दाँत तोड़ लिये गये हों उन सर्पोंकी तरह हो रही थी ॥ ७ ॥

प्रत्युपायाम सायाह्ने निर्जिताः सव्यसाचिना ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः ॥ ८ ॥

सायंकालमें सव्यसाची अर्जुनसे परास्त होकर हम सब लोग शिबिरकी ओर लौटे । हमारी सेनाके प्रमुख वीर मारे गये थे । हम सब लोग पैने बाणोंसे घायल होकर विध्वंसके निकट पहुँच गये थे ॥ ८ ॥

सूतपुत्रे हते राजन् पुत्रास्ते प्राद्रवंस्ततः ।
विध्वस्तकवचाः सर्वे कांदिशीका विचेतसः ॥ ९ ॥

राजन् ! सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके सब पुत्र अचेत हो वहाँसे भागने लगे । उन सबके कवच नष्ट हो गये थे । उन्हें इतनी भी सुध नहीं रह गयी थी कि हम कहाँ और किस दिशामें जायँ ॥ ९ ॥

अन्योन्यमभिनिघ्नन्तो वीक्षमाणा भयाद् दिशः ।
मामेव नूनं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः ॥ १० ॥
अभियातीति मन्वानाः पेतुर्मम्लुश्च भारत ।

वे सब लोग एक दूसरेपर चोट करते और भयसे सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए ऐसा समझते थे कि अर्जुन और भीमसेन मेरे ही पीछे लगे हुए हैं। भारत! ऐसा सोचकर वे हर्ष और उत्साह खो बैठते तथा लड़खड़ाकर गिर पड़ते थे॥

अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः॥ ११॥
आरुह्य जवसम्पन्नाः पादातान् प्रजहुर्भयात्।

कुछ महारथी भयके मारे घोड़ोंपर, दूसरे लोग हाथियोंपर और कुछ लोग रथोंपर आरूढ़ हो पैदलोंको वहीं छोड़ बड़े वेगसे भागे॥ ११½॥

कुञ्जरैः स्यन्दना भग्नाः सादिनश्च महारथैः॥ १२॥
पदातिसंघाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भृशं हताः।

भागते हुए हाथियोंने बहुत-से रथ तोड़ डाले, बड़े-बड़े रथोंने घुड़सवारोंको कुचल दिया और दौड़ते हुए अश्व-समूहोंने पैदल सैनिकोंको अत्यन्त घायल कर दिया॥ १२½॥

व्यालतस्करसंकीर्णे सार्थहीना यथा वने॥ १३॥
तथा त्वदीया निहते सूतपुत्रे तदाभवन्।

जैसे सर्पों और लुटेरोंसे भरे हुए जंगलमें अपने साथियोंसे बिछुड़े हुए लोग अनाथके समान भटकते हैं, वही दशा उस समय सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके सैनिकोंकी हुई॥ १३½॥

हतारोहास्तथा नागाश्छिन्नहस्तास्तथापरे॥ १४॥
सर्वं पार्थमयं लोकमपश्यन् वै भयार्दिताः।

कितने ही हाथियोंके सवार मारे गये, बहुत-से गजराजोंकी सूँड़ें काट डाली गयीं, सब लोग भयसे पीड़ित होकर सम्पूर्ण जगत्‌को अर्जुनमय देख रहे थे॥ १४½॥

तान् प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान्॥ १५॥
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हा हा कृत्वैवमब्रवीत्।

भीमसेनके भयसे पीड़ित हुए समस्त सैनिकोंको भागते देख दुर्योधनने 'हाय-हाय!' करके अपने सारथिसे इस प्रकार कहा—॥ १५½॥

नातिक्रमिष्यते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम्॥ १६॥
जघने युद्ध्यमानं मां तूर्णमश्वान् प्रचोदय।

'जब मैं सेनाके पिछले भागमें खड़ा हो हाथमें धनुष ले युद्ध करूँगा, उस समय कुन्तीकुमार अर्जुन मुझे लाँघकर आगे नहीं बढ़ सकेंगे; अतः तुम घोड़ोंको आगे बढ़ाओ॥

समरे युद्ध्यमानं हि कौन्तेयो मां धनंजयः॥ १७॥
नोत्सहेताप्यतिक्रान्तुं वेलामिव महार्णवः।

'जैसे महासागर तटको नहीं लाँघ सकता, उसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुन समराङ्गणमें युद्ध करते हुए मुझ दुर्योधनको लाँघकर आगे जानेकी हिम्मत नहीं कर सकते॥ १७½॥

अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम्॥ १८॥
निहत्य शिष्टाञ्शत्रूंश्च कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम्।

'आज मैं श्रीकृष्ण, अर्जुन, मानी भीमसेन तथा शेष बचे हुए अन्य शत्रुओंका संहार करके कर्णके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा'॥ १८½॥

तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः॥ १९॥
सूतो हेमपरिच्छन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत्।

कुरुराज दुर्योधनके इस श्रेष्ठ वीरोचित वचनको सुनकर सारथिने सोनेके साज-बाजसे ढके हुए अश्वोंको धीरेसे आगे बढ़ाया॥ १९½॥

गजाश्वरथहीनास्तु पादाताश्चैव मारिष॥ २०॥
पञ्चविंशतिसाहस्राः प्राद्रवञ्शनकैरिव।

माननीय नरेश! उस समय हाथी, घोड़े और रथोंसे रहित पचीस हजार पैदल सैनिक धीरे-ही-धीरे पाण्डवोंपर चढ़ाई करने लगे॥ २०½॥

तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ २१॥
बलेन चतुरङ्गेण परिक्षिप्याहनच्छरैः।

तब क्रोधमें भरे हुए भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने अपनी चतुरङ्गिणी सेनाके द्वारा उन्हें तितर-बितर करके बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल कर दिया॥ २१½॥

प्रत्ययुध्यंस्तु ते सर्वे भीमसेनं सपार्षतम्॥ २२॥
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी।

वे समस्त सैनिक भी भीमसेन और धृष्टद्युम्नका डटकर सामना करने लगे। दूसरे बहुत-से योद्धा वहाँ उन दोनोंके नाम ले-लेकर ललकारने लगे॥ २२½॥

अक्रुद्ध्यत रणे भीमस्तैर्मृधे प्रत्यवस्थितैः॥ २३॥
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत।

युद्धस्थलमें सामने खड़े हुए उन योद्धाओंके साथ जूझते समय भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। वे तुरंत ही रथसे उतरकर हाथमें गदा ले उन सबके साथ युद्ध करने लगे॥२३½॥

न तान् रथस्थो भूमिष्ठान् धर्मापेक्षी वृकोदरः॥ २४॥
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यमुपाश्रितः।

युद्धधर्मके पालनकी इच्छा रखनेवाले कुन्तीकुमार भीमसेनने स्वयं रथपर बैठकर भूमिपर खड़े हुए पैदल सैनिकोंके साथ युद्ध करना उचित नहीं समझा। वे अपने बाहुबलका भरोसा करके उन सबके साथ पैदल ही जूझने लगे॥

जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ २५॥
न्यवधीत् तावकान् सर्वान् दण्डपाणिरिवान्तकः।

उन्होंने दण्डपाणि यमराजके समान सुवर्णपत्रसे जटित विशाल गदा लेकर उसके द्वारा आपके समस्त सैनिकोंका संहार आरम्भ किया॥ २५½॥

पदातयो हि संरब्धास्त्यक्तजीवितबान्धवाः॥ २६॥
भीममभ्यद्रवन् संख्ये पतङ्गा इव पावकम्।

उस समय अपने प्राणों और बन्धु-बान्धवोंका मोह छोड़कर रोष और आवेशमें भरे हुए पैदल सैनिक युद्धस्थलमें भीमसेनकी ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे पतङ्ग जलती हुई आगपर टूट पड़ते हैं॥ २६½॥

आसाद्य भीमसेनं ते संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥ २७ ॥
विनेदुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ।

क्रोधमें भरे हुए वे रणदुर्मद योद्धा भीमसेनसे भिड़कर सहसा उसी प्रकार आर्तनाद करने लगे, जैसे प्राणियोंके समुदाय यमराजको देखकर चीख उठते हैं ॥ २७½ ॥

श्येनवद् व्यचरद् भीमः खड्गेन गदया तथा ॥ २८ ॥
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकानां व्यपोथयत् ।

उस समय भीमसेन रणभूमिमें बाजकी तरह विचर रहे थे । उन्होंने तलवार और गदाके द्वारा आपके उन पचीस हजार योद्धाओंको मार गिराया ॥ २८½ ॥

हत्वा तत् पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य पुनस्तस्थौ महाबलः ।

सत्यपराक्रमी महाबली भीमसेन उस पैदल-सेनाका संहार करके धृष्टद्युम्नको आगे किये पुनः युद्धके लिये डट गये ॥

धनंजयो रथानीकमन्वपद्यत वीर्यवान् ॥ ३० ॥
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः ।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम् ॥ ३१ ॥

दूसरी ओर पराक्रमी अर्जुनने रथसेनापर आक्रमण किया । माद्रीकुमार नकुल-सहदेव तथा महाबली सात्यकि दुर्योधनकी सेनाका विनाश करते हुए बड़े वेगसे शकुनिपर टूट पड़े ॥

तस्याश्ववाहान् सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः ।
तमन्वधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमवर्तत ॥ ३२ ॥

उन सबने शकुनिके बहुत-से घुड़सवारोंको अपने पैने बाणोंसे मारकर बड़ी उतावलीके साथ वहाँ शकुनिपर धावा किया । फिर तो उनमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ ३२ ॥

ततो धनंजयो राजन् रथानीकमगाहत ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं व्याक्षिपन् धनुः॥ ३३ ॥

राजन् ! तदनन्तर अर्जुनने अपने त्रिभुवनविख्यात गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए आपके रथियोंकी सेनामें प्रवेश किया ॥ ३३ ॥

कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ।
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं, उस श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए रथको और रथी योद्धा अर्जुनको आते देखकर आपके सारे रथी भयसे भाग चले ॥ ३४ ॥

विप्रहीनरथाश्वाश्च शरैश्च परिवारिताः ।
पञ्चविंशतिसाहस्राः पार्थमार्च्छन् पदातयः ॥ ३५ ॥

तब रथों और घोड़ोंसे रहित तथा बाणोंसे आच्छादित हुए पचीस हजार पैदल योद्धाओंने कुन्तीकुमार अर्जुनपर चढ़ाई की ॥ ३५ ॥

हत्वा तत् पुरुषानीकं पञ्चालानां महारथः ।
भीमसेनं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत ॥ ३६ ॥

उस पैदल सेनाका वध करके पाञ्चाल महारथी धृष्टद्युम्न भीमसेनको आगे किये शीघ्र ही वहाँ दृष्टिगोचर हुए ॥३६॥

महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणमर्दनः ।
पुत्रः पञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महायशाः ॥ ३७ ॥

पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्न महाधनुर्धर, महायशस्वी, तेजस्वी तथा शत्रुसमूहका संहार करनेमें समर्थ थे ॥ ३७ ॥

पारावतसवर्णाश्वं कोविदारवरध्वजम् ।
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ३८ ॥

जिनके रथमें कबूतरके समान रंगवाले घोड़े जुते हुए थे तथा रथकी श्रेष्ठ ध्वजापर कचनारवृक्षका चिह्न बना हुआ था, उन धृष्टद्युम्नको रणभूमिमें उपस्थित देख आपके सैनिक भयसे भाग खड़े हुए ॥ ३८ ॥

गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ।
अचिरात् प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी ॥ ३९ ॥

सात्यकिसहित यशस्वी माद्रीकुमार नकुल और सहदेव शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले गान्धारराज शकुनिका तुरंत पीछा करते हुए दिखायी दिये ॥ ३९ ॥

चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष ।
हत्वा त्वदीयं सुमहत् सैन्यं शङ्खानथाधमन् ॥ ४० ॥

माननीय नरेश ! चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदीके पाँचों पुत्र—आपकी विशाल सेनाका संहार करके शङ्ख बजाने लगे ॥ ४० ॥

ते सर्वे तावकान् प्रेक्ष्य द्रवतो वै पराङ्मुखान् ।
अभ्यधावन्त निघ्नन्तो वृषाञ्जित्वा वृषा इव ॥ ४१ ॥

जैसे साँड़ साँड़ोंको परास्त करके उन्हें बहुत दूरतक खदेड़ते रहते हैं, उसी प्रकार उन सब पाण्डववीरोंने आपके समस्त सैनिकोंको युद्धसे विमुख होकर भागते देख बाणोंका प्रहार करते हुए दूरतक उनका पीछा किया ॥ ४१ ॥

सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव पुत्रस्य पाण्डवः ।
अवस्थितं सव्यसाची चुक्रोध बलवन्नृप ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! पाण्डुकुमार सव्यसाची अर्जुन आपके पुत्रकी सेनाके उस एक भागको अवशिष्ट एवं सामने उपस्थित देख अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ४२ ॥

तत एनं शरै राजन् सहसा समवाकिरत् ।
रजसा चोद्गतेनाथ न स्म किंचन दृश्यते ॥ ४३ ॥

राजन् ! तदनन्तर उन्होंने सहसा बाणोंद्वारा उस सेनाको आच्छादित कर दिया । उस समय इतनी धूल ऊपर उठी कि कुछ भी दिखायी नहीं देता था ॥ ४३ ॥

अन्धकारीकृते लोके शरीभूते महीतले ।
दिशः सर्वा महाराज तावकाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ४४ ॥

महाराज ! जब जगत्में उस धूलसे अन्धकार छा गया और पृथ्वीपर बाण-ही-बाण बिछ गया, उस समय आपके सैनिक भयके मारे सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ४४ ॥

भज्यमानेषु सर्वेषु कुरुराजो विशाम्पते ।
परेषामात्मनश्चैव सैन्ये ते समुपाद्रवत् ॥ ४५ ॥

प्रजानाथ ! उन सबके भाग जानेपर कुरुराज दुर्योधनने शत्रुपक्षकी और अपनी दोनों ही सेनाओंपर आक्रमण किया ॥

ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान् ।
युद्धाय भरतश्रेष्ठ देवानिव पुरा बलिः ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे पूर्वकालमें राजा बलिने देवताओंको युद्धके लिये ललकारा था, उसी प्रकार दुर्योधनने समस्त पाण्डवोंका आह्वान किया ॥ ४६ ॥

त एनमभिगर्जन्तं सहिताः समुपाद्रवन् ।
नानाशस्त्रसृजः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥

तब वे पाण्डवयोद्धा अत्यन्त कुपित हो गर्जना करनेवाले दुर्योधनको बारंबार फटकारते और क्रोधपूर्वक नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए एक साथ ही उसपर टूट पड़े ॥

दुर्योधनोऽप्यसम्भ्रान्तस्तानरीन् व्यधमच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ॥ ४८ ॥
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरतिवर्तितुम् ।

दुर्योधन भी बिना किसी घबराहटके अपने बाणोंद्वारा उन शत्रुओंको छिन्न-भिन्न करने लगा । वहाँ हमलोगोंने आपके पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि समस्त पाण्डव मिलकर भी उसे लाँघकर आगे न बढ़ सके ॥ ४८½ ॥

नातिदूरापयातं च कृतबुद्धिः पलायने ॥ ४९ ॥
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमपश्यद् भृशविक्षतम् ।

दुर्योधनने देखा कि मेरी सेना अत्यन्त घायल हो रणभूमिसे पलायन करनेका विचार रखकर भाग रही है, परंतु अधिक दूर नहीं गयी है ॥ ४९½ ॥

ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः ॥ ५० ॥
हर्षयन्निव तान् योधांस्ततो वचनमब्रवीत् ।

राजेन्द्र ! तब युद्धका ही दृढ़ निश्चय रखनेवाले आपके पुत्रने उन समस्त सैनिकोंको खड़ा करके उनका हर्ष बढ़ाते हुए कहा—॥ ५०½ ॥

न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च ॥ ५१ ॥
यत्र यातान्न वो हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः ।

'वीरो ! मैं भूतलपर और पर्वतोंमें भी कोई ऐसा स्थान नहीं देखता, जहाँ चले जानेपर तुमलोगोंको पाण्डव मार न सकें; फिर तुम्हारे भागनेसे क्या लाभ है ? ॥ ५१½ ॥

स्वल्पं चैव बलं तेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥ ५२ ॥
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ।

'पाण्डवोंके पास थोड़ी-सी ही सेना शेष रह गयी है और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भी बहुत घायल हो चुके हैं । यदि हम सब लोग यहाँ डटे रहें तो निश्चय ही हमारी विजय होगी ॥ ५२½ ॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतकिल्बिषान् ॥ ५३ ॥
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयो नः समरे वधः ।

'यदि तुमलोग पृथक्-पृथक् होकर भागोगे तो पाण्डव तुम सभी अपराधियोंका पीछा करके तुम्हें मार डालेंगे, अतः युद्धमें ही मारा जाना हमारे लिये श्रेयस्कर होगा ॥ ५३½ ॥

सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥ ५४ ॥
मृतो दुःखं न जानीते प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।

'क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करनेवाले वीरोंके लिये संग्रामभूमिमें होनेवाली मृत्यु ही सुखद है; क्योंकि वहाँ मरा हुआ मनुष्य मृत्युके दुःखको नहीं जानता और मृत्युके पश्चात् अक्षय सुखका भागी होता है ॥ ५४½ ॥

शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥ ५५ ॥
द्विषतो भीमसेनस्य वशमेष्यथ विद्रुताः ।

'जितने क्षत्रिय यहाँ आये हैं वे सब सुनें—'तुमलोग भागनेपर अपने शत्रु भीमसेनके अधीन हो जाओगे ॥ ५५½ ॥

पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥ ५६ ॥
नान्यत् कर्मास्ति पापीयः क्षत्रियस्य पलायनात् ।

'इसलिये अपने बाप-दादोंके द्वारा आचरणमें लाये हुए धर्मका परित्याग न करो । क्षत्रियके लिये युद्ध छोड़कर भागनेसे बढ़कर दूसरा कोई अत्यन्त पापपूर्ण कर्म नहीं है ॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान् हि पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ॥ ५७ ॥
सुचिरेणार्जिताँल्लोकान् सद्यो युद्धात् समश्नुते ।

'कौरवो ! युद्धधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई स्वर्गका श्रेष्ठ मार्ग नहीं है । दीर्घकालतक पुण्यकर्म करनेसे प्राप्त होनेवाले पुण्य-लोकोंको वीर क्षत्रिय युद्धसे तत्काल प्राप्त कर लेता है' ॥

तस्य तद् वचनं राज्ञः पूजयित्वा महारथाः ॥ ५८ ॥
पुनरेवाभ्यवर्तन्त क्षत्रियाः पाण्डवान् प्रति ।
पराजयममृष्यन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ॥ ५९ ॥

राजा दुर्योधनकी उस बातका आदर करके वे महारथी क्षत्रिय पुनः युद्ध करनेके लिये पाण्डवोंके सामने आये । उन्हें पराजय असह्य हो उठी थी; इसलिये उन्होंने पराक्रम करनेमें ही मन लगाया था ॥ ५८-५९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव सुदारुणम् ।
तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ॥ ६० ॥

तदनन्तर आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें पुनः देवासुर-संग्रामके समान अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ६० ॥

युधिष्ठिरपुरोगांश्च सर्वसैन्येन पाण्डवान् ।
अन्वधावन्महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ६१ ॥

महाराज ! उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने अपनी सारी सेनाके साथ युधिष्ठिर आदि सभी पाण्डवोंपर धावा किया था ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि कौरवसैन्यापयाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें कौरवसेनाका पलायनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

कृपाचार्यका दुर्योधनको संधिके लिये समझाना

संजय उवाच

पतितान् रथनीडांश्च रथांश्चापि महात्मनाम्।
रणे च निहतान् नागान् दृष्ट्वा पत्तींश्च मारिष ॥ १ ॥
आयोधनं चातिघोरं रुद्रस्याक्रीड संनिभम्।
अप्रख्यातिं गतानां तु राज्ञां शतसहस्रशः ॥ २ ॥
विमुखे तव पुत्रे तु शोकोपहतचेतसि।
भृशोद्विग्नेषु सैन्येषु दृष्ट्वा पार्थस्य विक्रमम् ॥ ३ ॥
ध्यायमानेषु सैन्येषु दुःखं प्राप्तेषु भारत।
बलानां मथ्यमानानां श्रुत्वा निनदमुत्तमम् ॥ ४ ॥
अभिज्ञानं नरेन्द्राणां विक्षतं प्रेक्ष्य संयुगे।
कृपाविष्टः कृपो राजन् वयःशीलसमन्वितः ॥ ५ ॥
अब्रवीत् तत्र तेजस्वी सोऽभिसृत्य जनाधिपम्।
दुर्योधनं मन्युवशाद् वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ६ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश ! उस समय रणभूमिमें महामनस्वी वीरोंके रथ और उनकी बैठकें टूटी पड़ी थीं। सवारोंसहित हाथी और पैदल सैनिक मार डाले गये थे। वह युद्धस्थल रुद्रदेवकी क्रीडाभूमि श्मशानके समान अत्यन्त भयानक जान पड़ता था और वहाँ लाखों नरेशोंका नामोनिशान मिट गया था। यह सब देखकर जब आपके पुत्र दुर्योधनका मन शोकमें डूब गया और उसने युद्धसे मुँह मोड़ लिया, कुन्तीपुत्र अर्जुनका पराक्रम देखकर समस्त सेनाएँ जब भयसे अत्यन्त व्याकुल हो उठीं और भारी दुःखमें पड़कर चिन्तामग्न हो गयीं, उस समय मथे जाते हुए सैनिकोंका जोर-जोरसे आर्तनाद सुनकर तथा राजाओंके चिह्नस्वरूप ध्वज आदिको युद्धस्थलमें क्षत-विक्षत हुआ देखकर प्रौढ़ अवस्था और उत्तम स्वभावसे युक्त तेजस्वी कृपाचार्यके मनमें बड़ी दया आयी। भरतवंशी नरेश ! वे बातचीत करनेमें अत्यन्त कुशल थे। उन्होंने राजा दुर्योधनके निकट जाकर उसकी दीनता देखकर इस प्रकार कहा—॥ १–६ ॥

दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि कौरव।
श्रुत्वा कुरु महाराज यदि ते रोचतेऽनघ ॥ ७ ॥

'कुरुवंशी महाराज दुर्योधन ! मैं इस समय तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। अनघ ! मेरी बात सुनकर यदि तुम्हें रुचे तो उसके अनुसार कार्य करो ॥ ७ ॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान् वै पन्था राजेन्द्र विद्यते।
यं समाश्रित्य युद्ध्यन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ८ ॥

'राजेन्द्र ! क्षत्रियशिरोमणे ! युद्धधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है, जिसका आश्रय लेकर क्षत्रिय लोग युद्धमें तत्पर रहते हैं ॥ ८ ॥

पुत्रो भ्राता पिता चैव स्वस्रीयो मातुलस्तथा।
सम्बन्धिबान्धवाश्चैव योद्धव्या वै क्षत्रजीविना ॥ ९ ॥

'क्षत्रिय-धर्मसे जीवन-निर्वाह करनेवाले पुरुषके लिये पुत्र, भ्राता, पिता, भानजा, मामा, सम्बन्धी तथा बन्धु बान्धव—इन सबके साथ युद्ध करना कर्तव्य है ॥ ९ ॥

वधे चैव परो धर्मस्तथाधर्मः पलायने।
ते स्म घोरां समापन्ना जीविकां जीवितार्थिनः ॥ १० ॥

'युद्धमें शत्रुको मारना या उसके हाथसे मारा जाना दोनों ही उत्तम धर्म है और युद्धसे भागनेपर महान् पाप होता है। सभी क्षत्रिय जीवन-निर्वाहकी इच्छा रखते हुए उसी घोर जीविकाका आश्रय लेते हैं ॥ १० ॥

तदत्र प्रतिवक्ष्यामि किंचिदेव हितं वचः।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णे चैव महारथे ॥ ११ ॥
जयद्रथे च निहते तव भ्रातृषु चानघ।
लक्ष्मणे तव पुत्रे च किं शेषं पर्युपास्महे ॥ १२ ॥

'ऐसी दशामें मैं यहाँ तुम्हारे लिये कुछ हितकी बात बताऊँगा। अनघ ! पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, महारथी कर्ण, जयद्रथ तथा तुम्हारे सभी भाई मारे जा चुके हैं। तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण भी जीवित नहीं है। अब दूसरा कौन बच गया है, जिसका हमलोग आश्रय ग्रहण करें ॥ ११-१२ ॥

येषु भारं समासाद्य राज्ये मतिमकुर्महि।
ते संत्यज्य तनूर्याताः शूरा ब्रह्मविदां गतिम् ॥ १३ ॥

'जिनपर युद्धका भार रखकर हम राज्य पानेकी आशा करते थे, वे शूरवीर तो शरीर छोड़कर ब्रह्मवेत्ताओंकी गतिको प्राप्त हो गये ॥ १३ ॥

वयं त्विह विना भूता गुणवद्भिर्महारथैः।
कृपणं वर्तयिष्याम पातयित्वा नृपान् बहून् ॥ १४ ॥

'इस समय हमलोग यहाँ भीष्म आदि गुणवान् महारथियोंके सहयोगसे वञ्चित हो गये हैं और बहुत-से नरेशोंको मरवाकर दयनीय स्थितिमें आ गये हैं ॥ १४ ॥

सर्वैरपि च जीवद्भिर्बीभत्सुरपराजितः।
कृष्णनेत्रो महाबाहुर्देवैरपि दुरासदः ॥ १५ ॥

'जब सब लोग जीवित थे, तब भी अर्जुन किसीके द्वारा पराजित नहीं हुए। श्रीकृष्ण-जैसे नेताके रहते हुए महाबाहु अर्जुन देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं ॥ १५ ॥

इन्द्रकार्मुकतुल्याभमिन्द्रकेतुमिवोच्छ्रितम्।
वानरं केतुमासाद्य संचचाल महाचमूः ॥ १६ ॥

'उनका वानरध्वज इन्द्रधनुषके तुल्य बहुरंगा और इन्द्रध्वजके समान अत्यन्त ऊँचा है। उसके पास पहुँचकर हमारी विशाल सेना भयसे विचलित हो उठती है ॥ १६ ॥

सिंहनादाच्च भीमस्य पाञ्चजन्यस्वनेन च।
गाण्डीवस्य च निर्घोषात् सम्मुह्यन्ते मनांसि नः ॥ १७ ॥

'भीमसेनके सिंहनाद, पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि और

गाण्डीव धनुषकी टङ्कारसे हमारा दिल दहल उठता है ॥१७॥

चरन्तीव महाविद्युन्मुष्णन्ती नयनप्रभाम्।
अलातमिव चाविद्धं गाण्डीवं समदृश्यत ॥ १८ ॥

'जैसे चमकती हुई महाविद्युत् नेत्रोंकी प्रभाको छीनती-सी दिखायी देती है तथा जैसे अलातचक्र घूमता देखा जाता है, उसी प्रकार अर्जुनके हाथमें गाण्डीव धनुष भी दृष्टिगोचर होता है ॥ १८ ॥

जाम्बूनदविचित्रं च धूयमानं महद् धनुः।
दृश्यते दिक्षु सर्वासु विद्युदभ्रघनेष्विव ॥ १९ ॥

'अर्जुनके हाथमें डोलता हुआ उनका सुवर्णजटित महान् धनुष सम्पूर्ण दिशाओंमें वैसा ही दिखायी देता है, जैसे मेघोंकी घटामें बिजली ॥ १९ ॥

श्वेताश्च वेगसम्पन्नाः शशिकाशसमप्रभाः।
पिबन्त इव चाकाशं रथे युक्तास्तु वाजिनः ॥ २० ॥

'उनके रथमें जुते हुए घोड़े श्वेत वर्णवाले, वेगशाली तथा चन्द्रमा और कासके समान उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित हैं। वे ऐसी तीव्र गतिसे चलते हैं, मानो आकाशको पी जायँगे ॥ २० ॥

उह्यमानांश्च कृष्णेन वायुनेव बलाहकाः।
जाम्बूनदविचित्राङ्गा वहन्ते चार्जुनं रणे ॥ २१ ॥

'जैसे वायुकी प्रेरणासे बादल उड़ते फिरते हैं, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णद्वारा हाँके जाते हुए घोड़े, जो सुनहरे साजोंसे सजे होनेके कारण अङ्गोंमें विचित्र शोभा धारण करते हैं, रणभूमिमें अर्जुनकी सवारी ढोते हैं ॥ २१ ॥

तावकं तद् बलं राजन्नर्जुनोऽस्त्रविशारदः।
गहनं शिशिरापाये ददाहाग्निरिवोल्बणः ॥ २२ ॥

'राजन्! अर्जुन अस्त्रविद्यामें कुशल हैं, उन्होंने तुम्हारी सेनाको उसी प्रकार भस्म किया है, जैसे भयंकर आग ग्रीष्म ऋतुमें बहुत बड़े जंगलको जला डालती है ॥ २२ ॥

गाहमानमनीकानि महेन्द्रसदृशप्रभम्।
धनंजयमपश्याम चतुर्दंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २३ ॥

'देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी अर्जुनको हम चार दाँत-वाले गजराजके समान अपनी सेनामें प्रवेश करते देखते हैं ॥

विक्षोभयन्तं सेनां ते त्रासयन्तं च पार्थिवान्।
धनंजयमपश्याम नलिनीमिव कुञ्जरम् ॥ २४ ॥

'जैसे मतवाला हाथी तालाबमें घुसकर उसे मथ डालता है, उसी प्रकार हमने अर्जुनको तुम्हारी सेनाको मथते और राजाओंको भयभीत करते देखा है ॥ २४ ॥

त्रासयन्तं तथा योधान् धनुर्घोषेण पाण्डवम्।
भूय एनमपश्याम सिंहं मृगगणानिव ॥ २५ ॥

'जैसे सिंह मृगोंके झुंडको भयभीत कर देता है, उसी प्रकार पाण्डुकुमार अर्जुन अपने धनुषकी टङ्कारसे तुम्हारे समस्त योद्धाओंको बारंबार भयभीत करते दिखायी दिये हैं ॥

सर्वलोकमहेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम्।
आमुक्तकवचौ कृष्णौ लोकमध्ये विचेरतुः ॥ २६ ॥

'अपने अङ्गोंमें कवच धारण किये श्रीकृष्ण और अर्जुन, जो सम्पूर्ण विश्वके महाधनुर्धर और सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ हैं, योद्धाओंके समूहमें निर्भय विचरते हैं ॥ २६ ॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत।
संग्रामस्यातिघोरस्य वध्यतां चाभितो युधि ॥ २७ ॥

'भारत! परस्पर मार-काट मचाते हुए दोनों ओरसे योद्धाओंके इस अत्यन्त भयंकर संग्रामको आरम्भ हुए आज सत्रह दिन हो गये ॥ २७ ॥

वायुनेव विधूतानि तव सैन्यानि सर्वतः।
शरदम्भोदजालानि व्यशीर्यन्त समन्ततः ॥ २८ ॥

'जैसे हवा शरद् ऋतुके बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनकी मारसे तुम्हारी सेनाएँ सब ओर तितर-बितर हो गयी हैं ॥ २८ ॥

तां नावमिव पर्यस्तां वातधूतां महार्णवे।
तव सेनां महाराज सव्यसाची व्यकम्पयत् ॥ २९ ॥

'महाराज! जैसे महासागरमें हवाके थपेड़े खाकर नाव डगमगाने लगती है, उसी प्रकार सव्यसाची अर्जुनने तुम्हारी सेनाको कँपा डाला है ॥ २९ ॥

क्व नु ते सूतपुत्रोऽभूत् क्व नु द्रोणः सहानुगः।
अहं क्व च क्व चात्मा ते हार्दिक्यश्च तथा क्व नु ॥ ३० ॥
दुःशासनश्च ते भ्राता भ्रातृभिः सहितः क्व नु।
बाणगोचरसम्प्राप्तं प्रेक्ष्य चैव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥

'उस दिन जयद्रथको अर्जुनके बाणोंका निशाना बनते देखकर भी तुम्हारा कर्ण कहाँ चला गया था? अपने अनु-यायियोंके साथ आचार्य द्रोण कहाँ थे? मैं कहाँ था? तुम कहाँ थे? कृतवर्मा कहाँ चले गये थे और भाइयोंसहित तुम्हारा भ्राता दुःशासन भी कहाँ था? ॥ ३०-३१ ॥

सम्बन्धिनस्ते भ्रातॄंश्च सहायान् मातुलांस्तथा।
सर्वान् विक्रम्य मिषतो लोकमाक्रम्य मूर्धनि ॥ ३२ ॥
जयद्रथो हतो राजन् किं नु शेषमुपास्महे।
को हीह स पुमानस्ति यो विजेष्यति पाण्डवम् ॥ ३३ ॥

'राजन्! तुम्हारे सम्बन्धी, भाई, सहायक और मामा सब-के-सब देख रहे थे तो भी अर्जुनने उन सबको अपने पराक्रमद्वारा परास्त करके सब लोगोंके मस्तकपर पैर रखकर जयद्रथको मार डाला। अब और कौन बचा है जिसका हम भरोसा करें? यहाँ कौन ऐसा पुरुष है जो पाण्डुपुत्र अर्जुनपर विजय पायेगा? ॥ ३२-३३ ॥

तस्य चास्त्राणि दिव्यानि विविधानि महात्मनः।
गाण्डीवस्य च निर्घोषो धैर्याणि हरते हि नः ॥ ३४ ॥

'महात्मा अर्जुनके पास नाना प्रकारके दिव्यास्त्र हैं। उनके गाण्डीव धनुषका गम्भीर घोष हमारा धैर्य छीन लेता है ॥

नष्टचन्द्रा यथा रात्रिः सेनेयं हतनायका ।
नागभग्नद्रुमा शुष्का नदीवाकुलतां गता ॥ ३५ ॥

'जैसे चन्द्रमाके उदित न होनेपर रात्रि अन्धकारमयी दिखायी देती है, उसी प्रकार हमारी यह सेना सेनापतिके मारे जानेसे श्रीहीन हो रही है । हाथीने जिसके किनारेके वृक्षोंको तोड़ डाला हो, उस सूखी नदीके समान यह व्याकुल हो उठी है ॥ ३५ ॥

ध्वजिन्यां हतनेत्रायां यथेष्टं श्वेतवाहनः ।
चरिष्यति महाबाहुः कक्षेष्वग्निरिव ज्वलन् ॥ ३६ ॥

'हमारी इस विशाल वाहिनीका नेता नष्ट हो गया है । ऐसी दशामें घास-फूसके ढेरमें प्रज्वलित होनेवाली आगके समान श्वेत घोड़ोंवाले महाबाहु अर्जुन इस सेनाके भीतर इच्छानुसार विचरेंगे ॥ ३६ ॥

सात्यकेश्चैव यो वेगो भीमसेनस्य चोभयोः ।
दारयेच्च गिरीन् सर्वाञ्शोषयेच्चैव सागरान् ॥३७॥

'उधर सात्यकि और भीमसेन दोनों वीरोंका जो वेग है, वह सारे पर्वतोंको विदीर्ण कर सकता है । समुद्रोंको भी सुखा सकता है ॥ ३७ ॥

उवाच वाक्यं यद् भीमः सभामध्ये विशाम्पते ।
कृतं तत् सफलं तेन भूयश्चैव करिष्यति ॥ ३८ ॥

'प्रजानाथ ! द्यूतसभामें भीमसेनने जो बात कही थी, उसे उन्होंने सत्य कर दिखाया और जो शेष है, उसे भी वे अवश्य ही पूर्ण करेंगे ॥ ३८ ॥

प्रमुखस्थे तदा कर्णे बलं पाण्डवरक्षितम् ।
दुरासदं तदा गुप्तं व्यूढं गाण्डीवधन्वना ॥ ३९ ॥

'जब कर्णके साथ युद्ध चल रहा था, उस समय कर्ण सामने ही था तो भी पाण्डवोंद्वारा रक्षित सेना उसके लिये दुर्जय हो गयी; क्योंकि गाण्डीवधारी अर्जुन व्यूहरचनापूर्वक उसकी रक्षा कर रहे थे ॥ ३९ ॥

युष्माभिस्तानि चीर्णानि यान्यसाधूनि साधुषु ।
अकारणकृतान्येव तेषां वः फलमागतम् ॥ ४० ॥

'पाण्डव साधुपुरुष हैं तो भी तुमलोगोंने अकारण ही उनके साथ जो बहुत-से अनुचित बर्ताव किये हैं, उन्हींका यह फल तुम्हें मिला है ॥ ४० ॥

आत्मनोऽर्थे त्वया लोको यत्नतः सर्व आहृतः ।
स ते संशायितस्तात आत्मा वै भरतर्षभ ॥ ४१॥

'भरतश्रेष्ठ ! तुमने अपनी रक्षाके लिये ही प्रयत्नपूर्वक सारे जगत्के लोगोंको एकत्र किया था, किंतु तुम्हारा ही जीवन संशयमें पड़ गया है ॥ ४१ ॥

रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम् ।
भिन्ने हि भाजने तात दिशो गच्छति तद्गतम् ॥ ४२॥

'दुर्योधन ! अब तुम अपने शरीरकी रक्षा करो; क्योंकि आत्मा (शरीर) ही समस्त सुखोंका भाजन है । जैसे पात्रके फूट जानेपर उसमें रक्खा हुआ जल चारों ओर बह जाता है, उसी प्रकार शरीरके नष्ट होनेसे उसपर अवलम्बित सुखोंका भी अन्त हो जाता है ॥ ४२ ॥

हीयमानेन वै सन्धिः पर्येष्टव्यः समेन वा ।
विग्रहो वर्धमानेन मतिरेषा बृहस्पतेः ॥ ४३ ॥

'बृहस्पतिकी यह नीति है कि जब अपना बल कम या बराबर जान पड़े तो शत्रुके साथ संधि कर लेनी चाहिये । लड़ाई तो उसी वक्त छेड़नी चाहिये, जब अपनी शक्ति शत्रुसे बढ़ी-चढ़ी हो ॥ ४३ ॥

ते वयं पाण्डुपुत्रेभ्यो हीना स्म बलशक्तितः ।
तदत्र पाण्डवैः सार्धं सन्धिं मन्ये क्षमं प्रभो ॥ ४४ ॥

'हमलोग बल और शक्तिमें पाण्डवोंसे हीन हो गये हैं । अतः प्रभो ! इस अवस्थामें मैं पाण्डवोंके साथ संधि कर लेना ही उचित समझता हूँ ॥ ४४ ॥

न जानीते हि यः श्रेयः श्रेयसश्चावमन्यते ।
स क्षिप्रं भ्रश्यते राज्यान्न च श्रेयोऽनुविन्दते ॥ ४५ ॥

'जो राजा अपनी भलाईकी बात नहीं समझता और श्रेष्ठ पुरुषोंका अपमान करता है, वह शीघ्र ही राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है । उसे कभी कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ४५ ॥

प्रणिपत्य हि राजानं राज्यं यदि लभेमहि ।
श्रेयः स्यान्न तु मौढ्येन राजन् गन्तुः पराभवम् ॥ ४६ ॥

'राजन् ! यदि राजा युधिष्ठिरके सामने नतमस्तक होकर हम अपना राज्य प्राप्त कर लें तो यही श्रेयस्कर होगा । मूर्खतावश पराजय स्वीकार करनेवालेका कभी भला नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥

वैचित्रवीर्यवचनात् कृपाशीलो युधिष्ठिरः ।
विनियुञ्जीत राज्ये त्वां गोविन्दवचनेन च ॥ ४७ ॥

'युधिष्ठिर दयालु हैं । वे राजा धृतराष्ट्र और भगवान् श्रीकृष्णके कहनेसे तुम्हें राज्यपर प्रतिष्ठित कर सकते हैं ॥ ४७ ॥

यद् ब्रूयाद्धि हृषीकेशो राजानमपराजितम् ।
अर्जुनं भीमसेनं च सर्वे कुर्युरसंशयम् ॥ ४८ ॥

'भगवान् श्रीकृष्ण किसीसे पराजित न होनेवाले राजा युधिष्ठिर, अर्जुन और भीमसेनसे जो कुछ भी कहेंगे, वे सब लोग उसे निःसंदेह स्वीकार कर लेंगे ॥ ४८ ॥

नातिक्रमिष्यते कृष्णो वचनं कौरवस्य तु ।
धृतराष्ट्रस्य मन्येऽहं नापि कृष्णस्य पाण्डवः ॥ ४९ ॥

'कुरुराज धृतराष्ट्रकी बात श्रीकृष्ण नहीं टालेंगे और श्रीकृष्णकी आज्ञाका उल्लङ्घन युधिष्ठिर नहीं कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ४९ ॥

एतत् क्षेममहं मन्ये न च पार्थैश्च विग्रहम् ।
न त्वां ब्रवीमि कार्पण्यान्न प्राणपरिरक्षणात् ॥ ५० ॥
पथ्यं राजन् ब्रवीमि त्वां तत्परासुः स्मरिष्यसि ।

'राजन् ! मैं इस संधिको ही तुम्हारे लिये कल्याणकारी मानता हूँ । पाण्डवोंके साथ किये जानेवाले युद्धको नहीं । मैं

कायरता या प्राण-रक्षाकी भावनासे यह सब नहीं कहता हूँ। तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूँ। तुम मरणासन्न अवस्थामें मेरी यह बात याद करोगे ॥ ५०½ ॥

इति वृद्धो विलप्यैतत् कृपः शारद्वतो वचः।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शुशोच च मुमोह च ॥ ५१ ॥

शरद्वान्‌के पुत्र वृद्ध कृपाचार्य इस प्रकार विलाप करके गरम-गरम लंबी साँस खींचते हुए शोक और मोहके वशीभूत हो गये ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि कृपवाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें कृपाचार्यका वचनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

दुर्योधनका कृपाचार्यको उत्तर देते हुए सन्धि स्वीकार न करके युद्धका ही निश्चय करना

संजय उवाच

एवमुक्तस्ततो राजा गौतमेन तपस्विना।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च तूष्णीमासीद् विशाम्पते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! तपस्वी कृपाचार्यके ऐसा कहनेपर दुर्योधन जोर-जोरसे गरम साँस खींचता हुआ कुछ देरतक चुपचाप बैठा रहा ॥ १ ॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा धार्तराष्ट्रो महामनाः।
कृपं शारद्वतं वाक्यमित्युवाच परंतपः ॥ २ ॥

दो घड़ीतक सोच-विचार करनेके पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले आपके उस महामनस्वी पुत्रने शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २ ॥

यत् किञ्चित् सुहृदा वाच्यं तत् सर्वं श्रावितो ह्यहम्।
कृतं च भवता सर्वं प्राणान् संत्यज्य युध्यता ॥ ३ ॥

'विप्रवर ! एक हितैषी सुहृद्‌को जो कुछ कहना चाहिये, वह सब आपने कह सुनाया। इतना ही नहीं, आपने प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते हुए मेरी भलाईके लिये सब कुछ किया है ॥ ३ ॥

गाहमानमनीकानि युध्यमानं महारथैः।
पाण्डवैरतितेजोभिर्लोकस्त्वामनुदृष्टवान् ॥ ४ ॥

'सब लोगोंने आपको शत्रुओंकी सेनाओंमें घुसते और अत्यन्त तेजस्वी महारथी पाण्डवोंके साथ युद्ध करते हुए बारंबार देखा है ॥ ४ ॥

सुहृदा यदिदं वाक्यं भवता श्रावितो ह्यहम्।
न मां प्रीणाति तत् सर्वं मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥ ५ ॥

'आप मेरे हितचिन्तक सुहृद् हैं तो भी आपने मुझे जो बात सुनायी है, वह सब मेरे मनको उसी तरह पसंद नहीं आती, जैसे मरणासन्न रोगीको दवा अच्छी नहीं लगती है ॥

हेतुकारणसंयुक्तं हितं वचनमुत्तमम्।
उच्यमानं महाबाहो न मे विप्राग्र्य रोचते ॥ ६ ॥

'महाबाहो ! विप्रवर ! आपने युक्ति और कारणोंसे सुसङ्गत, हितकारक एवं उत्तम बात कही है तो भी वह मुझे अच्छी नहीं लग रही है ॥ ६ ॥

राज्याद् विनिकृतोऽस्माभिः कथं सोऽस्मासु विश्वसेत्।
अक्षद्यूते च नृपतिर्जितोऽस्माभिर्महाधनः ॥ ७ ॥
स कथं मम वाक्यानि श्रद्दध्याद् भूय एव तु।

'हमलोगोंने राजा युधिष्ठिरके साथ छल किया है। वे महाधनी थे, हमने उन्हें जूएमें जीतकर निर्धन बना दिया। ऐसी दशामें वे हमलोगोंपर विश्वास कैसे कर सकते हैं ? हमारी बातोंपर उन्हें फिर श्रद्धा कैसे हो सकती है ? ॥ ७½ ॥

तथा दौत्येन सम्प्राप्तः कृष्णः पार्थहिते रतः ॥ ८ ॥
प्रलब्धश्च हृषीकेशस्तच्च कर्माविचारितम्।
स च मे वचनं ब्रह्मन् कथमेवाभिमन्यते ॥ ९ ॥

'ब्रह्मन् ! पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले श्रीकृष्ण मेरे यहाँ दूत बनकर आये थे, किंतु मैंने उन हृषीकेशके साथ धोखा किया। मेरा वह कर्म अविचारपूर्ण था। भला, अब वे मेरी बात कैसे मानेंगे ? ॥ ८-९ ॥

विललाप च यत् कृष्णा सभामध्ये समेयुषी।
न तन्मर्षयते कृष्णो न राज्यहरणं तथा ॥ १० ॥

'सभामें बलात्कारपूर्वक लायी हुई द्रौपदीने जो विलाप किया था तथा पाण्डवोंका जो राज्य छीन लिया गया था, वह बर्ताव श्रीकृष्ण सहन नहीं कर सकते ॥ १० ॥

एकप्राणावुभौ कृष्णावन्योन्यमभिसंश्रितौ।
पुरा यच्छ्रुतमेवासीदद्य पश्यामि तत् प्रभो ॥ ११ ॥

'प्रभो ! श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों दो शरीर और एक प्राण हैं। वे दोनों एक दूसरेके आश्रित हैं। पहले जो बात मैंने केवल सुन रक्खी थी, उसे अब प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ॥

स्वस्रीयं निहतं श्रुत्वा दुःखं स्वपिति केशवः।
कृतागसो वयं तस्य स मदर्थं कथं क्षमेत् ॥ १२ ॥

'अपने भानजे अभिमन्युके मारे जानेका समाचार सुनकर श्रीकृष्ण सुखकी नींद नहीं सोते हैं। हम सब लोग उनके अपराधी हैं, फिर वे हमें कैसे क्षमा कर सकते हैं ? ॥ १२ ॥

अभिमन्योर्विनाशेन न शर्म लभतेऽर्जुनः।
स कथं मद्धिते यत्नं प्रकरिष्यति याचितः ॥ १३ ॥

'अभिमन्युके मारे जानेसे अर्जुनको भी चैन नहीं है, फिर वे प्रार्थना करनेपर भी मेरे हितके लिये कैसे यत्न करेंगे ? ॥ १३ ॥

मध्यमः पाण्डवस्तीक्ष्णो भीमसेनो महाबलः।
प्रतिज्ञातं च तेनोग्रं भज्येतापि न संनमेत् ॥ १४ ॥

'मझले पाण्डव महाबली भीमसेनका स्वभाव बड़ा ही कठोर है। उन्होंने बड़ी भयंकर प्रतिज्ञा की है। सूखे काठकी तरह वे टूट भले ही जायँ, झुक नहीं सकते ॥ १४ ॥

उभौ तौ बद्धनिस्त्रिंशावुभौ चाबद्धकङ्कटौ।
कृतवैरावुभौ वीरौ यमावपि यमोपमौ ॥ १५ ॥

'दोनों भाई नकुल और सहदेव तलवार बाँधे और कवच धारण किये हुए यमराजके समान भयंकर जान पड़ते हैं। वे दोनों वीर मुझसे वैर मानते हैं ॥ १५ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च कृतवैरौ मया सह।
तौ कथं मद्धिते यत्नं कुर्यातां द्विजसत्तम ॥ १६ ॥

'द्विजश्रेष्ठ! धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने भी मेरे साथ वैर बाँध रक्खा है, फिर वे दोनों मेरे हितके लिये कैसे यत्न कर सकते हैं? ॥ १६ ॥

दुःशासनेन यत् कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला।
परिक्लिष्टा सभामध्ये सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ १७ ॥
तथा विवसनां दीनां स्मरन्त्यद्यापि पाण्डवाः।

'द्रौपदी एक वस्त्र पहने हुए थी, रजस्वला थी। उस अवस्थामें जो वह भरी सभामें लायी गयी और दुःशासनने सब लोगोंके सामने जो उसे महान् क्लेश पहुँचाया, उसका जो वस्त्र उतारा गया और उसे जो दयनीय दशाको पहुँचा दिया गया, उन सब बातोंको पाण्डव आज भी याद रखते हैं ॥

न निवारयितुं शक्याः संग्रामात्ते परंतपाः ॥ १८ ॥
यदा च द्रौपदी क्लिष्टा मद्विनाशाय दुःखिता।
स्थण्डिले नित्यदा शेते यावद् वैरस्य यातनम् ॥ १९ ॥

'इसलिये अब उन शत्रुसंतापी वीरोंको युद्धसे रोका नहीं जा सकता। जबसे द्रौपदीको क्लेश दिया गया, तबसे वह दुखी हो मेरे विनाशका संकल्प लेकर प्रतिदिन मिट्टीकी वेदीपर सोया करती है। जबतक वैरका पूरा बदला न चुका लिया जाय, तबतकके लिये उसने यह व्रत ले रखा है ॥ १८-१९ ॥

उग्रं तेपे तपः कृष्णा भर्तृणामर्थसिद्धये।
निक्षिप्य मानं दर्पं च वासुदेवसहोदरा ॥ २० ॥
कृष्णायाः प्रेष्यवद् भूत्वा शुश्रूषां कुरुते सदा।
इति सर्वं समुन्नद्धं न निर्वाति कथञ्चन ॥ २१ ॥

'द्रौपदी अपने पतियोंके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये बड़ी कठोर तपस्या करती है और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी सगी बहन सुभद्रा मान और अभिमानको दूर फेंककर सदा दासीकी भाँति द्रौपदीकी सेवा करती है। इस प्रकार इन सारे कार्योंके रूपमें वैरकी आग प्रज्वलित हो उठी है, जो किसी प्रकार बुझ नहीं सकती ॥ २०-२१ ॥

अभिमन्योर्विनाशेन स संधेयः कथं मया।
कथं च राजा भुक्त्वेमां पृथिवीं सागराम्बराम् ॥ २२ ॥
पाण्डवानां प्रसादेन भोक्ष्ये राज्यमहं कथम्।

'अभिमन्युके विनाशसे जिनके हृदयमें गहरी चोट पहुँची है, उस अर्जुनके साथ मेरी सन्धि कैसे हो सकती है? जब मैं समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वीका एकच्छत्र राजाकी हैसियतसे उपभोग कर चुका हूँ, तब इस समय पाण्डवोंकी कृपाका पात्र बनकर कैसे राज्य भोगूँगा? ॥ २२½ ॥

उपर्युपरि राज्ञां वै ज्वलित्वा भास्करो यथा ॥ २३ ॥
युधिष्ठिरं कथं पश्चादनुयास्यामि दासवत्।

'समस्त राजाओंके ऊपर सूर्यके समान प्रकाशित होकर अब दासकी भाँति युधिष्ठिरके पीछे-पीछे कैसे चलूँगा? ॥ २३½ ॥

कथं भुक्त्वा स्वयं भोगान् दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् ॥
कृपणं वर्तयिष्यामि कृपणैः सह जीविकाम्।

'स्वयं बहुत-से भोग भोगकर और प्रचुर धन दान करके अब दीन पुरुषोंके साथ दीनतापूर्ण जीविकाका आश्रय ले किस प्रकार निर्वाह कर सकूँगा? ॥ २४½ ॥

नाभ्यसूयामि ते वाक्यमुक्तं स्निग्धं हितं त्वया ॥ २५ ॥
न तु सन्धिमहं मन्ये प्राप्तकालं कथञ्चन।

'आपने स्नेहवश हितकी ही बात कही है। आपकी इस बातमें मैं दोष नहीं निकालता और न इसकी निन्दा ही करता हूँ। मेरा कथन तो इतना ही है कि अब किसी प्रकार सन्धिका अवसर नहीं रह गया है। मेरी ऐसी ही मान्यता है ॥ २५½ ॥

सुनीतमनुपश्यामि सुयुद्धेन परंतप ॥ २६ ॥
नायं क्लीबयितुं कालः संयोद्धुं काल एव नः।

'शत्रुओंको तपानेवाले वीर! अब मैं अच्छी तरह युद्ध करनेमें ही उत्तम नीतिका पालन समझ रहा हूँ। हमारा यह समय कायरता दिखानेका नहीं, उत्साहपूर्वक युद्ध करनेका ही है ॥ २६½ ॥

इष्टं मे बहुभिर्यज्ञैर्दत्ता विप्रेषु दक्षिणाः ॥ २७ ॥
प्राप्ताः कामाः श्रुता वेदाः शत्रूणां मूर्ध्नि च स्थितम्।
भृत्या मे सुभृतास्तात दीनश्चाभ्युद्धृतो जनः ॥ २८ ॥
नोत्सहेऽद्य द्विजश्रेष्ठ पाण्डवान् वक्तुमीदृशम्।

'तात! मैंने बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया। ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणाएँ दे दीं। सारी कामनाएँ पूर्ण कर लीं। वेदोंका श्रवण कर लिया। शत्रुओंके माथेपर पैर रक्खा और भरण-पोषणके योग्य व्यक्तियोंके पालन-पोषणकी अच्छी व्यवस्था कर दी। इतना ही नहीं, मैंने दीनोंका उद्धारकार्य भी सम्पन्न कर दिया है। अतः द्विजश्रेष्ठ! अब मैं पाण्डवोंसे इस प्रकार सन्धिके लिये याचना नहीं कर सकता ॥ २७-२८½ ॥

जितानि परराष्ट्राणि स्वराष्ट्रमनुपालितम् ॥ २९ ॥
भुक्ताश्च विविधा भोगास्त्रिवर्गः सेवितो मया।
पितॄणां गतमानृण्यं क्षत्रधर्मस्य चोभयोः ॥ ३० ॥

'मैंने दूसरोंके राज्य जीते, अपने राष्ट्रका निरन्तर पालन किया, नाना प्रकारके भोग भोगे; धर्म, अर्थ और कामका सेवन किया और पितरों तथा क्षत्रियधर्म—दोनोंके ऋणसे उऋण हो गया ॥ २९-३० ॥

न ध्रुवं सुखमस्तीति कुतो राष्ट्रं कुतो यशः ।
इह कीर्तिर्विधातव्या सा च युद्धेन नान्यथा ॥ ३१ ॥

'संसारमें कोई भी सुख सदा रहनेवाला नहीं है । फिर राष्ट्र और यश भी कैसे स्थिर रह सकते हैं ? यहाँ तो कीर्तिका ही उपार्जन करना चाहिये और कीर्ति युद्धके सिवा किसी दूसरे उपायसे नहीं मिल सकती ॥ ३१ ॥

गृहे यत् क्षत्रियस्यापि निधनं तद् विगर्हितम् ।
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे ॥ ३२ ॥

'क्षत्रियकी भी यदि घरमें मृत्यु हो जाय तो उसे निन्दित माना गया है । घरमें खाटपर सोकर मरना यह क्षत्रियके लिये महान् पाप है ॥ ३२ ॥

अरण्ये यो विमुच्येत संग्रामे वा तनुं नरः ।
क्रतूनाहृत्य महतो महिमानं स गच्छति ॥ ३३ ॥

'जो बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करके वनमें या संग्राममें शरीरका त्याग करता है, वही क्षत्रिय महत्त्वको प्राप्त होता है ॥

कृपणं विलपन्नार्तो जरयाभिपरिप्लुतः ।
म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पूरुषः ॥ ३४ ॥

'जिसका शरीर बुढ़ापेसे जर्जर हो गया हो, जो रोगसे पीड़ित हो, परिवारके लोग जिसके आसपास बैठकर रो रहे हों और उन रोते हुए स्वजनोंके बीचमें जो करुण विलाप करते-करते अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह पुरुष कहलानेयोग्य नहीं है ॥ ३४ ॥

त्यक्त्वा तु विविधान् भोगान् प्राप्तानां परमां गतिम् ।
अपीदानीं सुयुद्धेन गच्छेयं यत्सलोकताम् ॥ ३५ ॥

'अतः जिन्होंने नाना प्रकारके भोगोंका परित्याग करके उत्तम गति प्राप्त कर ली है, इस समय युद्धके द्वारा मैं उन्हींके लोकोंमें जाऊँगा ॥ ३५ ॥

शूराणामार्यवृत्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
धीमतां सत्यसंधानां सर्वेषां क्रतुयाजिनाम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रावभृथपूतानां ध्रुवं वासस्त्रिविष्टपे ।

'जिनके आचरण श्रेष्ठ हैं, जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते, अपनी प्रतिज्ञाको सत्य कर दिखाते और यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले हैं तथा जिन्होंने शस्त्रकी धारामें अवभृथस्नान किया है, उन समस्त बुद्धिमान् पुरुषोंका निश्चय ही स्वर्गमें निवास होता है ॥ ३६½ ॥

मुदा नूनं प्रपश्यन्ति युद्धे ह्यप्सरसां गणाः ॥ ३७ ॥
पश्यन्ति नूनं पितरः पूजितान् सुरसंसदि ।
अप्सरोभिः परिवृतान् मोदमानांस्त्रिविष्टपे ॥ ३८ ॥

'निश्चय ही युद्धमें प्राण देनेवालोंकी ओर अप्सराएँ बड़ी प्रसन्नतासे निहारा करती हैं । पितृगण उन्हें अवश्य ही देवताओंकी सभामें सम्मानित होते देखते हैं । वे स्वर्गमें अप्सराओंसे घिरकर आनन्दित होते देखे जाते हैं ॥३७-३८॥

पन्थानममरैर्यान्तं शूरैश्चैवानिवर्तिभिः ।
अपि तत्संगतं मार्गं वयमप्यारुहेमहि ॥ ३९ ॥
पितामहेन वृद्धेन तथाऽऽचार्येण धीमता ।
जयद्रथेन कर्णेन तथा दुःशासनेन च ॥ ४० ॥

'देवता तथा युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शूरवीर जिस मार्गसे जाते हैं, क्या उसी मार्गपर अब हमलोग भी वृद्ध पितामह, बुद्धिमान् आचार्य द्रोण, जयद्रथ, कर्ण तथा दुःशासनके साथ आरूढ़ होंगे ? ॥ ३९-४० ॥

घटमाना मदर्थेऽस्मिन् हताः शूरा जनाधिपाः ।
शेरते लोहिताक्ताङ्गाः संग्रामे शरविक्षताः ॥ ४१ ॥

'कितने ही वीर नरेश मेरी विजयके लिये यथाशक्ति चेष्टा करते हुए बाणोंसे क्षत-विक्षत हो मारे जाकर रक्तरञ्जित शरीरसे संग्रामभूमिमें सो रहे हैं ॥ ४१ ॥

उत्तमास्त्रविदः शूरा यथोक्तक्रतुयाजिनः ।
त्यक्त्वा प्राणान् यथान्यायमिन्द्रसद्मस्वधिष्ठिताः ॥४२॥

'उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता और शास्त्रोक्त विधिसे यज्ञ करनेवाले अन्य शूरवीर यथोचित रीतिसे युद्धमें प्राणोंका परित्याग करके इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित हो रहे हैं ॥ ४२ ॥

तैः स्वयं रचितो मार्गो दुर्गमो हि पुनर्भवेत् ।
सम्पतद्भिर्महावेगैर्यास्यद्भिरिह सद्गतिम् ॥ ४३ ॥

'उन वीरोंने स्वयं ही जिस मार्गका निर्माण किया है, वह पुनः बड़े वेगसे सद्गतिको जानेवाले बहुसंख्यक वीरोंद्वारा दुर्गम हो जाय (अर्थात् इतने अधिक वीर उस मार्गसे यात्रा करें कि भीड़के मारे उसपर चलना कठिन हो जाय) ॥४३॥

ये मदर्थे हताः शूरास्तेषां कृतमनुस्मरन् ।
ऋणं तत् प्रतियुञ्जानो न राज्ये मन आदधे ॥ ४४ ॥

'जो शूरवीर मेरे लिये मारे गये हैं, उनके उस उपकारका निरन्तर स्मरण करता हुआ उस ऋणको उतारनेकी चेष्टामें संलग्न होकर मैं राज्यमें मन नहीं लगा सकता ॥ ४४ ॥

घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितामहान् ।
जीवितं यदि रक्षेयं लोको मां गर्हयेद् ध्रुवम् ॥ ४५ ॥

'मित्रों, भाइयों और पितामहोंको मरवाकर यदि मैं अपने प्राणोंकी रक्षा करूँ तो सारा संसार निश्चय ही मेरी निन्दा करेगा ॥ ४५ ॥

कीदृशं च भवेद् राज्यं मम हीनस्य बन्धुभिः ।
सखिभिश्च विशेषेण प्रणिपत्य च पाण्डवम् ॥ ४६ ॥

'बन्धु-बान्धवों और मित्रोंसे हीन हो युधिष्ठिरके पैरोंमें पड़नेपर मुझे जो राज्य मिलेगा, वह कैसा होगा ? ॥ ४६ ॥

सोऽहमेतादृशं कृत्वा जगतोऽस्य पराभवम् ।
सुयुद्धेन ततः स्वर्गं प्राप्स्यामि न तदन्यथा ॥ ४७ ॥

'इसलिये मैं जगत्का ऐसा विनाश करके अब उत्तम युद्धके द्वारा ही स्वर्गलोक प्राप्त करूँगा । मेरी सद्गतिके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है' ॥ ४७ ॥

एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे सम्पूज्य तद्वचः ।
साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः सम्बभाषिरे ॥ ४८ ॥

इस प्रकार राजा दुर्योधनकी कही हुई यह बात सुनकर सब क्षत्रियोंने 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर उसका आदर किया और उसे भी धन्यवाद दिया ॥ ४८ ॥

पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ।
सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुदग्रमनसोऽभवन् ॥ ४९ ॥

सबने अपनी पराजयका शोक छोड़कर मन-ही-मन पराक्रम करनेका निश्चय किया । युद्ध करनेके विषयमें सबका पक्का विचार हो गया और सबके हृदयमें उत्साह भर गया ॥

ततो वाहान् समाश्वस्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् सब योद्धाओंने अपने-अपने वाहनोंको विश्राम दे युद्धका अभिनन्दन किया और आठ कोससे कुछ कम दूरीपर जाकर डेरा डाला ॥ ५० ॥

आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे ।
अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च ते जलम् ॥ ५१ ॥

आकाशके नीचे हिमालयके शिखरकी सुन्दर, पवित्र एवं वृक्षरहित चौरस भूमिपर अरुणसलिला सरस्वतीके निकट जाकर उन सबने स्नान और जलपान किया ॥ ५१ ॥

तव पुत्रकृतोत्साहाः पर्यवर्तन्त ते ततः ।
पर्यवस्थाप्य चात्मानमन्योन्येन पुनस्तदा ।
सर्वे राजन् न्यवर्तन्त क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ ५२ ॥

राजन् ! वे कालप्रेरित समस्त क्षत्रिय आपके पुत्रद्वारा उत्साह देनेपर एक दूसरेके द्वारा मनको स्थिर करके पुनः रणभूमिकी ओर लौटे ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि दुर्योधनवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें दुर्योधनका वाक्यविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

दुर्योधनके पूछनेपर अश्वत्थामाका शल्यको सेनापति बनानेके लिये प्रस्ताव, दुर्योधनका शल्यसे अनुरोध और शल्यद्वारा उसकी स्वीकृति

संजय उवाच

अथ हैमवते प्रस्थे स्थित्वा युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्व एव महायोधास्तत्र तत्र समागताः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर हिमालयके ऊपरकी चौरस भूमिमें डेरा डालकर युद्धका अभिनन्दन करनेवाले सभी महान् योद्धा वहाँ एकत्र हुए ॥ १ ॥

शल्यश्च चित्रसेनश्च शकुनिश्च महारथः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २ ॥
सुषेणोऽरिष्टसेनश्च धृतसेनश्च वीर्यवान् ।
जयत्सेनश्च राजानस्ते रात्रिमुषितास्ततः ॥ ३ ॥

शल्य, चित्रसेन, महारथी शकुनि, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, सात्वतवंशी कृतवर्मा, सुषेण, अरिष्टसेन, पराक्रमी धृतसेन और जयत्सेन आदि राजाओंने वहीं रात बितायी ॥ २-३ ॥

रणे कर्णे हते वीरे त्रासिता जितकाशिभिः ।
नालभञ्शर्म ते पुत्रा हिमवन्तमृते गिरिम् ॥ ४ ॥

रणभूमिमें वीर कर्णके मारे जानेपर विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंद्वारा डराये हुए आपके पुत्र हिमालय पर्वतके सिवा और कहीं शान्ति न पा सके ॥ ४ ॥

तेऽब्रुवन् सहितास्तत्र राजानं शल्यसंनिधौ ।
कृतयत्ना रणे राजन् सम्पूज्य विधिवत्तदा ॥ ५ ॥

राजन् ! संग्रामभूमिमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन सब योद्धाओंने वहाँ एक साथ होकर शल्यके समीप राजा दुर्योधनका विधिपूर्वक सम्मान करके उससे इस प्रकार कहा—॥

कृत्वा सेनाप्रणेतारं परांस्त्वं योद्धुमर्हसि ।
येनाभिगुप्ताः संग्रामे जयेमासुहृदो वयम् ॥ ६ ॥

'नरेश्वर ! तुम किसीको सेनापति बनाकर शत्रुओंके साथ युद्ध करो, जिससे सुरक्षित होकर हमलोग विपक्षियोंपर विजय प्राप्त करें' ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः स्थित्वा रथे रथवरोत्तमम् ।
सर्वयुद्धविभावज्ञमन्तकप्रतिमं युधि ॥ ७ ॥
स्वङ्गं प्रच्छन्नशिरसं कम्बुग्रीवं प्रियंवदम् ।
व्याकोशपद्मपत्राक्षं व्याघ्रास्यं मेरुगौरवम् ॥ ८ ॥
स्थाणोर्वृषस्य सदृशं स्कन्धनेत्रगतिस्वरैः ।
पुष्टश्लिष्टायतभुजं सुविस्तीर्णवरोरसम् ॥ ९ ॥
बले जवे च सदृशमरुणानुजवातयोः ।
आदित्यस्यार्चिषा तुल्यं बुद्ध्या चोशनसा समम् १०
कान्तिरूपमुखैश्वर्यैस्त्रिभिश्चन्द्रमसा समम् ।
काञ्चनोपलसंघातैः सदृशं श्लिष्टसंधिकम् ॥ ११ ॥
सुवृत्तोरुकटीजङ्घं सुपादं स्वङ्गुलीनखम् ।
स्मृत्वा स्मृत्वैव तु गुणान् धात्रा यत्नाद् विनिर्मितम् १२
सर्वलक्षणसम्पन्नं निपुणं श्रुतिसागरम् ।
जेतारं तरसारीणामजेयमरिभिर्बलात् ॥ १३ ॥
दशाङ्गं यश्चतुष्पादमिष्वस्त्रं वेद तत्त्वतः ।
साङ्गांस्तु चतुरो वेदान् सम्यगाख्यानपञ्चमान् ॥१४॥
आराध्य त्र्यम्बकं यत्नाद् व्रतैरुग्रैर्महातपाः ।
अयोनिजायामुत्पन्नो द्रोणेनायोनिजेन यः ॥ १५ ॥
तमप्रतिमकर्माणं रूपेणाप्रतिमं भुवि ।
पारगं सर्वविद्यानां गुणार्णवमनिन्दितम् ॥ १६ ॥

तमभ्येत्यात्मजस्तुभ्यमश्वत्थामानमब्रवीत् ।

राजन् ! तब आपका पुत्र दुर्योधन रथपर बैठकर अश्वत्थामाके निकट गया । अश्वत्थामा महारथियोंमें श्रेष्ठ, युद्धविषयक सभी विभिन्न भावोंका ज्ञाता और युद्धमें यमराजके समान भयंकर है । उसके अङ्ग सुन्दर हैं, मस्तक केशोंसे आच्छादित है और कण्ठ शङ्खके समान सुशोभित होता है । वह प्रिय वचन बोलनेवाला है । उसके नेत्र विकसित कमलदलके समान सुन्दर और मुख व्याघ्रके समान भयंकर है । उसमें मेरुपर्वतकी-सी गुरुता है । स्कन्ध, नेत्र, गति और स्वरमें वह भगवान् शङ्करके वाहन वृषभके समान है । उसकी भुजाएँ पुष्ट, सुगठित एवं विशाल हैं । वक्षःस्थलका उत्तमभाग भी सुविस्तृत है । वह बल और वेगमें गरुड़ एवं वायुकी बराबरी करनेवाला है । तेजमें सूर्य और बुद्धिमें शुक्राचार्यके समान है । कान्ति, रूप तथा मुखकी शोभा—इन तीन गुणोंमें वह चन्द्रमाके तुल्य है । उसका शरीर सुवर्णमय प्रस्तरसमूहके समान सुशोभित होता है । अङ्गोंका जोड़ या संधिस्थान भी सुगठित है । ऊरु, कटिप्रदेश और पिण्डलियाँ—ये सुन्दर और गोल हैं । उसके दोनों चरण मनोहर हैं । अङ्गुलियाँ और नख भी सुन्दर हैं, मानो विधाताने उत्तम गुणोंका बारंबार स्मरण करके बड़े यत्नसे उसके अङ्गोंका निर्माण किया हो । वह समस्त शुभलक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त कार्योंमें कुशल और वेदविद्याका समुद्र है । अश्वत्थामा शत्रुओंपर वेगपूर्वक विजय पानेमें समर्थ है । परंतु शत्रुओंके लिये बलपूर्वक उसके ऊपर विजय पाना असम्भव है । वह दसों[1] अङ्गोंसे युक्त चारों[2] चरणोंवाले धनुर्वेदको ठीक-ठीक जानता है । छहों अङ्गोंसहित चार वेदों और इतिहास-पुराणस्वरूप पञ्चम वेदका भी अच्छा ज्ञाता है । महातपस्वी अश्वत्थामाको उसके पिता अयोनिज द्रोणाचार्यने बड़े यत्नसे कठोर व्रतोंद्वारा तीन नेत्रोंवाले भगवान् शङ्करकी आराधना करके अयोनिजा कृपीके गर्भसे उत्पन्न किया था । उसके कर्मोंकी कहीं तुलना नहीं है । इस भूतलपर वह अनुपम रूप-सौन्दर्यसे युक्त है । सम्पूर्ण विद्याओंका पारङ्गत विद्वान् और गुणोंका महासागर है । उस अनिन्दित अश्वत्थामाके निकट जाकर आपके पुत्र दुर्योधनने इस प्रकार कहा—॥ ७–१६½ ॥

यं पुरस्कृत्य सहिता युधि जेष्याम पाण्डवान् ॥ १७ ॥
गुरुपुत्रोऽद्य सर्वेषामस्माकं परमा गतिः ।
भवांस्तस्मान्नियोगात्ते कोऽस्तु सेनापतिर्मम ॥ १८ ॥

'ब्रह्मन् ! तुम हमारे गुरुपुत्र हो और इस समय तुम्हीं हमारे सबसे बड़े सहारे हो । अतः मैं तुम्हारी आज्ञासे सेनापतिका निर्वाचन करना चाहता हूँ । बताओ, अब कौन मेरा सेनापति हो, जिसे आगे रखकर हम सब लोग एक साथ हो युद्धमें पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करें ?' ॥ १७-१८ ॥

द्रौणिरुवाच

अयं कुलेन रूपेण तेजसा यशसा श्रिया ।
सर्वैर्गुणैः समुदितः शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः ॥ १९ ॥

अश्वत्थामाने कहा—ये राजा शल्य उत्तम कुल, सुन्दर रूप, तेज, यश, श्री एवं समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं, अतः ये ही हमारे सेनापति हों ॥ १९ ॥

भागिनेयान् निजांस्त्यक्त्वा कृतज्ञोऽस्मानुपागतः।
महासेनो महाबाहुर्महासेन इवापरः ॥ २० ॥

ये ऐसे कृतज्ञ हैं कि अपने सगे भानजोंको भी छोड़कर हमारे पक्षमें आ गये हैं । ये महाबाहु शल्य दूसरे महासेन (कार्तिकेय) के समान महती सेनासे सम्पन्न हैं ॥ २० ॥

एनं सेनापतिं कृत्वा नृपतिं नृपसत्तम ।
शक्यः प्राप्तुं जयोऽस्माभिर्देवैः स्कन्दमिवाजितम् २१

नृपश्रेष्ठ ! जैसे देवताओंने किसीसे पराजित न होनेवाले स्कन्दको सेनापति बनाकर असुरोंपर विजय प्राप्त की थी, उसी प्रकार हमलोग भी इन राजा शल्यको सेनापति बनाकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥ २१ ॥

तथोक्ते द्रोणपुत्रेण सर्व एव नराधिपाः ।
परिवार्य स्थिताः शल्यं जयशब्दांश्च चक्रिरे ॥ २२ ॥
युद्धाय च मतिं चक्रुरावेशं च परं ययुः ।

द्रोणपुत्रके ऐसा कहनेपर सभी नरेश राजा शल्यको घेरकर खड़े हो गये और उनकी जय-जयकार करने लगे । उन्होंने युद्धके लिये पूर्ण निश्चय कर लिया और वे अत्यन्त आवेशमें भर गये ॥ २२½ ॥

ततो दुर्योधनो भूमौ स्थित्वा रथवरे स्थितम् ॥ २३ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा द्रोणभीष्मसमं रणे ।
अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ॥ २४ ॥
यत्र मित्रममित्रं वा परीक्षन्ते बुधा जनाः ।

तदनन्तर राजा दुर्योधनने भूमिपर खड़ा हो रथपर बैठे हुए रणभूमिमें द्रोण और भीष्मके समान पराक्रमी राजा शल्यसे हाथ जोड़कर कहा—'मित्रवत्सल ! आज आपके मित्रोंके सामने वह समय आ गया है जब कि विद्वान् पुरुष शत्रु या मित्रकी परीक्षा करते हैं ॥ २३-२४½ ॥

स भवानस्तु नः शूरः प्रणेता वाहिनीमुखे ॥ २५ ॥
रणं याते च भवति पाण्डवा मन्दचेतसः ।
भविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाश्च निरुद्यमाः ॥ २६ ॥

'आप हमारे शूरवीर सेनापति होकर सेनाके मुहानेपर खड़े हों । रणभूमिमें आपके जाते ही मन्दबुद्धि पाण्डव और पाञ्चाल अपने मन्त्रियोंसहित उद्योगशून्य हो जायँगे' ॥ २५-२६ ॥

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यो मद्राधिपस्तदा ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो राजानं राजसंनिधौ ॥ २७ ॥

---

१. धनुर्वेदके दस अङ्ग इस प्रकार हैं—व्रत, प्राप्ति, धृति, पुष्टि, स्मृति, क्षेप, शत्रुभेदन, चिकित्सा, उद्दीपन और कृष्टि ।

२. दीक्षा, शिक्षा, आत्मरक्षा और इसका साधन—ये धनुर्वेदके चार चरण कहे गये हैं ।

उस समय वचनके रहस्यको जाननेवाले मद्रदेशके स्वामी राजा शल्य दुर्योधनके वचन सुनकर समस्त राजाओंके सम्मुख राजा दुर्योधनसे यह वचन बोले ॥ २७ ॥

शल्य उवाच

यत्तु मां मन्यसे राजन् कुरुराज करोमि तत्।
त्वत्प्रियार्थं हि मे सर्वं प्राणा राज्यं धनानि च ॥ २८ ॥

शल्य बोले—राजन् ! कुरुराज ! तुम मुझसे जो कुछ चाहते हो, मैं उसे पूर्ण करूँगा; क्योंकि मेरे प्राण, राज्य और धन सब तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ही हैं ॥ २८ ॥

दुर्योधन उवाच

सैनापत्येन वरये त्वामहं मातुलातुलम्।
सोऽस्मान् पाहि युधां श्रेष्ठ स्कन्दो देवानिवाहवे ॥ २९ ॥

दुर्योधनने कहा—योद्धाओंमें श्रेष्ठ मामाजी ! आप अनुपम वीर हैं। अतः मैं सेनापति-पद ग्रहण करनेके लिये आपका वरण करता हूँ। जैसे स्कन्दने युद्धस्थलमें देवताओंकी रक्षा की थी, उसी प्रकार आप हमलोगोंका पालन कीजिये ॥

अभिषिच्यस्व राजेन्द्र देवानामिव पावकिः।
जहि शत्रून् रणे वीर महेन्द्रो दानवानिव ॥ ३० ॥

राजाधिराज ! वीर ! जैसे स्कन्दने देवताओंका सेनापतित्व स्वीकार किया था, उसी प्रकार आप भी हमारे सेनापतिके पदपर अपना अभिषेक कराइये तथा दानवोंका वध करनेवाले देवराज इन्द्रके समान रणभूमिमें हमारे शत्रुओंका संहार कीजिये ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यदुर्योधनसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्य और दुर्योधनका संवादविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

राजा शल्यके वीरोचित उद्गार तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको शल्यवधके लिये उत्साहित करना

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञो मद्रराजः प्रतापवान्।
दुर्योधनं तदा राजन् वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! राजा दुर्योधनकी यह बात सुनकर प्रतापी मद्रराज शल्यने उससे इस प्रकार कहा—॥

दुर्योधन महाबाहो शृणु वाक्यविदां वर।
यावेतौ मन्यसे कृष्णौ रथस्थौ रथिनां वरौ ॥ २ ॥
न मे तुल्यावुभावेतौ बाहुवीर्ये कथंचन।

'वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाबाहु दुर्योधन ! तुम रथपर बैठे हुए जिन दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुनको रथियोंमें श्रेष्ठ समझते हो, ये दोनों बाहुबलमें किसी प्रकार मेरे समान नहीं हैं ॥ २½ ॥

उद्यतां पृथिवीं सर्वां ससुरासुरमानवाम् ॥ ३ ॥
योधयेयं रणमुखे संक्रुद्धः किमु पाण्डवान्।

'मैं युद्धके मुहानेपर कुपित हो अपने सामने युद्धके लिये आये हुए देवताओं, असुरों और मनुष्योंसहित सारे भूमण्डलके साथ युद्ध कर सकता हूँ। फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३½ ॥

विजेष्यामि रणे पार्थान् सोमकांश्च समागतान् ॥ ४ ॥
अहं सेनाप्रणेता ते भविष्यामि न संशयः।
तं च व्यूहं विधास्यामि न तरिष्यन्ति यं परे ॥ ५ ॥
इति सत्यं ब्रवीम्येष दुर्योधन न संशयः।

'मैं रणभूमिमें कुन्तीके सभी पुत्रों और सामने आये हुए सोमकोंपर भी विजय प्राप्त कर लूँगा। इसमें भी संदेह नहीं कि मैं तुम्हारा सेनापति होऊँगा और ऐसे व्यूहका निर्माण करूँगा, जिसे शत्रु लाँघ नहीं सकेंगे। दुर्योधन ! यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है' ॥ ४-५½ ॥

एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमञ्जसा ॥ ६ ॥
अभ्यषिञ्चत सेनाया मध्ये भरतसत्तम।
विधिना शास्त्रदृष्टेन क्लिष्टरूपो विशाम्पते ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! प्रजानाथ ! उनके ऐसा कहनेपर क्लेशसे दबे हुए राजा दुर्योधनने शास्त्रीय विधिके अनुसार सेनाके मध्यभागमें मद्रराज शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक कर दिया ॥ ६-७ ॥

अभिषिक्ते ततस्तस्मिन् सिंहनादो महानभूत्।
तव सैन्येऽभ्यवाद्यन्त वादित्राणि च भारत ॥ ८ ॥

भारत ! उनका अभिषेक हो जानेपर आपकी सेनामें बड़े जोरसे सिंहनाद होने लगा और भाँति-भाँतिके बाजे बज उठे ॥

हृष्टाश्चासंस्तथा योधा मद्रकाश्च महारथाः।
तुष्टुवुश्चैव राजानं शल्यमाहवशोभिनम् ॥ ९ ॥

मद्रदेशके महारथी योद्धा हर्षमें भर गये और संग्राममें शोभा पानेवाले राजा शल्यकी स्तुति करने लगे—॥ ९ ॥

जय राजंश्चिरञ्जीव जहि शत्रून् समागतान्।
तव बाहुबलं प्राप्य धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ १० ॥
निखिलाः पृथिवीं सर्वां प्रशासन्तु हतद्विषः।

'राजन्! आप चिरंजीवी हों। सामने आये हुए शत्रुओंका संहार कर डालें। आपके बाहुबलको पाकर धृतराष्ट्रके सभी महाबली पुत्र शत्रुओंका नाश करके सारी पृथ्वीका शासन करें ॥ १०½ ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं ससुरासुरमानवान् ॥ ११ ॥
मर्त्यधर्माण इह तु किमु सृञ्जयसोमकान्।

'आप रणभूमिमें सम्पूर्ण देवताओं, असुरों और मनुष्योंको जीत सकते हैं। फिर यहाँ मरणधर्मा सृंजयों और सोमकोंपर विजय पाना कौन बड़ी बात है?' ॥ ११½ ॥



शल्यका कौरवोंके सेनापति-पदपर अभिषेक

एवं सम्पूज्यमानस्तु मद्राणामधिपो बली ॥ १२ ॥
हर्षं प्राप तदा वीरो दुरापमकृतात्मभिः ।

उनके द्वारा इस प्रकार प्रशंसित होनेपर बलवान् वीर मद्रराज शल्यको वह हर्ष प्राप्त हुआ, जो अकृतात्मा (युद्धकी शिक्षासे रहित) पुरुषोंके लिये दुर्लभ है ॥ १२½ ॥

शल्य उवाच

अद्य चाहं रणे सर्वान् पञ्चालान् सह पाण्डवैः ॥१३॥
निहनिष्यामि वा राजन् स्वर्गं यास्यामि वा हतः ।

शल्यने कहा—राजन् ! आज मैं रणभूमिमें पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चालोंको मार डालूँगा या स्वयं ही मारा जाकर स्वर्गलोकमें जा पहुँचूँगा ॥ १३½ ॥

अद्य पश्यन्तु मां लोका विचरन्तमभीतवत् ॥ १४ ॥
अद्य पाण्डुसुताः सर्वे वासुदेवः ससात्यकिः ।
पञ्चालाश्चेदयश्चैव द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ १५ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सर्वे चापि प्रभद्रकाः ।
विक्रमं मम पश्यन्तु धनुषश्च महद् बलम् ॥ १६ ॥

आज सब लोग मुझे रणभूमिमें निर्भय विचरते देखें, आज समस्त पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, पाञ्चाल और चेदिदेशके योद्धा, द्रौपदीके सभी पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा समस्त प्रभद्रकगण मेरा पराक्रम तथा मेरे धनुषका महान् बल अपनी आँखों देख लें ॥ १४–१६ ॥

लाघवं चास्त्रवीर्यं च भुजयोश्च बलं युधि ।
अद्य पश्यन्तु मे पार्थाः सिद्धाश्च सह चारणैः ॥ १७ ॥
यादृशं मे बलं बाह्वोः सम्पदस्त्रेषु या च मे ।
अद्य मे विक्रमं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ १८ ॥
प्रतीकारपरा भूत्वा चेष्टन्तां विविधाः क्रियाः ।

आज कुन्तीके सभी पुत्र तथा चारणोंसहित सिद्धगण भी युद्धमें मेरी फुर्ती, अस्त्र-बल और बाहुबलको देखें । मेरी दोनों भुजाओंमें जैसा बल है तथा अस्त्रोंका मुझे जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार आज मेरा पराक्रम देखकर पाण्डव महारथी उसके प्रतीकारमें तत्पर हो नाना प्रकारके कार्योंके लिये सचेष्ट हों ॥ १७-१८½ ॥

अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः ॥ १९ ॥
द्रोणभीष्मावति विभो सूतपुत्रं च संयुगे ।
विचरिष्ये रणे युध्यन् प्रियार्थं तव कौरव ॥ २० ॥

कुरुनन्दन ! आज मैं पाण्डवोंकी सेनाओंको चारों ओर भगा दूँगा । प्रभो ! युद्धस्थलमें तुम्हारा प्रिय करनेके लिये आज मैं द्रोणाचार्य, भीष्म तथा सूतपुत्र कर्णसे भी बढ़कर पराक्रम दिखाता और जूझता हुआ रणभूमिमें सब ओर विचरण करूँगा ॥ १९-२० ॥

संजय उवाच

अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद ।
न कर्णव्यसनं किंचिन्मेनिरे तत्र भारत ॥ २१ ॥

संजय कहते हैं—मानद ! भरतनन्दन ! इस प्रकार आपकी सेनाओंमें राजा शल्यका अभिषेक होनेपर समस्त योद्धाओंको कर्णके मारे जानेका थोड़ा-सा भी दुःख नहीं रह गया ॥ २१ ॥

हृष्टाः सुमनसश्चैव बभूवुस्तत्र सैनिकाः ।
मेनिरे निहतान् पार्थान् मद्रराजवशं गतान् ॥ २२ ॥

वे सब-के-सब प्रसन्नचित्त होकर हर्षसे भर गये और यह मानने लगे कि कुन्तीके पुत्र मद्रराज शल्यके वशमें पड़कर अवश्य ही मारे जायँगे ॥ २२ ॥

प्रहर्षं प्राप्य सेना तु तावकी भरतर्षभ ।
तां रात्रिमुषिता सुप्ता हर्षचित्ता च साभवत् ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! आपकी सेना महान् हर्ष पाकर उस रातमें वहीं रही और सो गयी । उसके मनमें बड़ा उत्साह था ॥ २३ ॥

सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ।
वार्ष्णेयमब्रवीद् वाक्यं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ २४ ॥

उस समय आपकी सेनाका वह महान् हर्षनाद सुनकर राजा युधिष्ठिरने समस्त क्षत्रियोंके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ २४ ॥

मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव ।
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥ २५ ॥

'माधव ! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने समस्त सेनाओंद्वारा सम्मानित महाधनुर्धर मद्रराज शल्यको सेनापति बनाया है ॥

एतज्ज्ञात्वा यथाभूतं कुरु माधव यत्क्षमम् ।
भवान् नेता च गोप्ता च विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ २६ ॥

'माधव ! यह यथार्थ रूपसे जानकर आप जो उचित हो वैसा करें; क्योंकि आप ही हमारे नेता और संरक्षक हैं । इसलिये अब जो कार्य आवश्यक हो, उसका सम्पादन कीजिये'॥

तमब्रवीन्महाराज वासुदेवो जनाधिपम् ।
आर्तायनिमहं जाने यथातत्त्वेन भारत ॥ २७ ॥

महाराज ! तब भगवान् श्रीकृष्णने राजासे कहा—'भारत ! मैं ऋतायनकुमार राजा शल्यको अच्छी तरह जानता हूँ ॥ २७ ॥

वीर्यवांश्च महातेजा महात्मा च विशेषतः ।
कृती च चित्रयोधी च संयुक्तो लाघवेन च ॥ २८ ॥

'वे बलशाली, महातेजस्वी, महामनस्वी, विद्वान्, विचित्र युद्ध करनेवाले और शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले हैं ॥ २८ ॥

यादृग् भीष्मस्तथा द्रोणो यादृक् कर्णश्च संयुगे ।
तादृशस्तद्विशिष्टो वा मद्रराजो मतो मम ॥ २९ ॥

'भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण–ये सब लोग युद्धमें जैसे पराक्रमी थे, वैसे ही या उनसे भी बढ़कर पराक्रमी मैं मद्रराज शल्यको मानता हूँ ॥ २९ ॥

युद्ध्यमानस्य तस्याहं चिन्तयानश्च भारत ।
योद्धारं नाधिगच्छामि तुल्यरूपं जनाधिप ॥ ३० ॥

'भारत ! नरेश्वर ! मैं बहुत सोचनेपर भी युद्धपरायण शल्यके अनुरूप दूसरे किसी योद्धाको नहीं पा रहा हूँ ॥३०॥

शिखण्ड्यर्जुनभीमानां सात्वतस्य च भारत ।

धृष्टद्युम्नस्य च तथा बलेनाभ्यधिको रणे ॥ ३१ ॥

'भरतनन्दन ! शिखण्डी, अर्जुन, भीम, सात्यकि और धृष्टद्युम्नसे भी वे रणभूमिमें अधिक बलशाली हैं ॥ ३१ ॥

मद्रराजो महाराज सिंहद्विरदविक्रमः ।
विचरिष्यत्यभीः काले कालः क्रुद्धः प्रजास्विव ॥ ३२ ॥

'महाराज ! सिंह और हाथीके समान पराक्रमी मद्रराज शल्य प्रलयकालमें प्रजापर कुपित हुए कालके समान निर्भय होकर रणभूमिमें विचरेंगे ॥ ३२ ॥

तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम् ॥ ३३ ॥

'पुरुषसिंह ! आपका पराक्रम सिंहके समान है । आज आपके सिवा युद्धस्थलमें दूसरेको ऐसा नहीं देखता, जो शल्यके सम्मुख होकर युद्ध कर सके ॥ ३३ ॥

सदेवलोके कृत्स्नेऽस्मिन् नान्यस्त्वत्तः पुमान् भवेत् ।
मद्रराजं रणे क्रुद्धं यो हन्यात् कुरुनन्दन ॥ ३४ ॥

'कुरुनन्दन ! देवताओंसहित इस सम्पूर्ण जगत्में आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो रणमें कुपित हुए मद्रराज शल्यको मार सके ॥ ३४ ॥

अहन्यहनि युध्यन्तं क्षोभयन्तं बलं तव ।
तस्माज्जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम् ॥ ३५ ॥

'इसलिये प्रतिदिन समराङ्गणमें जूझते और आपकी सेनाको विक्षुब्ध करते हुए राजा शल्यको युद्धमें आप उसी प्रकार मार डालिये, जैसे इन्द्रने शम्बरासुरका वध किया था ॥३५॥

अजेयश्चाप्यसौ वीरो धार्तराष्ट्रेण सत्कृतः ।
तवैव हि जयो नूनं हते मद्रेश्वरे युधि ॥ ३६ ॥

'वीर शल्य अजेय हैं । दुर्योधनने उनका बड़ा सम्मान किया है । युद्धमें मद्रराजके मारे जानेपर निश्चय आपकी ही जीत होगी ॥ ३६ ॥

तस्मिन् हते हतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज वचनं मम साम्प्रतम् ॥ ३७ ॥
प्रत्युद्याहि रणे पार्थ मद्रराजं महारथम् ।
जहि चैनं महाबाहो वासवो नमुचिं यथा ॥ ३८ ॥

'महाराज ! कुन्तीकुमार ! उनके मारे जानेपर आप समझ लें कि दुर्योधनकी सारी विशाल सेना ही मार डाली गयी । इस समय मेरी इस बातको सुनकर महारथी मद्रराजपर चढ़ाई कीजिये और महाबाहो ! जैसे इन्द्रने नमुचिका वध किया था, उसी प्रकार आप भी उन्हें मार डालिये ॥३७-३८॥

न चैवात्र दया कार्या मातुलोऽयं ममेति वै ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य जहि मद्रजनेश्वरम् ॥ ३९ ॥

'ये मेरे मामा हैं' ऐसा समझकर आपको उनपर दया नहीं करनी चाहिये । आप क्षत्रियधर्मको सामने रखते हुए मद्रराज शल्यको मार डालें ॥ ३९ ॥

द्रोणभीष्मार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसम्भवम् ।
मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम् ॥ ४० ॥

'भीष्म, द्रोण और कर्णरूपी महासागरको पार करके आप अपने सेवकोंसहित शल्यरूपी गायकी खुरीमें न डूब जाइये ॥४०॥

यच्च ते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव ।
तद् दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम् ॥ ४१ ॥

'राजन् ! आपका जो तपोबल और क्षात्रबल है, वह सब रणभूमिमें दिखाइये और इन महारथी शल्यको मार डालिये'॥

एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा ।
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः ॥ ४२ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण यह बात कहकर सायंकाल पाण्डवोंसे सम्मानित हो अपने शिबिरमें चले गये ॥ ४२ ॥

केशवे तु तदा याते धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
विसृज्य सर्वान् भ्रातॄंश्च पञ्चालानथ सोमकान् ॥ ४३ ॥
सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुञ्जरः ।

श्रीकृष्णके चले जानेपर उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिरने अपने सब भाइयों तथा पाञ्चालों और सोमकोंको भी विदा करके रातमें अङ्कुशरहित हाथीके समान शयन किया॥ ४३½ ॥

ते च सर्वे महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवास्तथा ॥ ४४ ॥
कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा ।

वे सभी महाधनुर्धर पाञ्चाल और पाण्डव-योद्धा कर्णके मारे जानेसे हर्षमें भरकर रात्रिमें सुखकी नींद सोये ॥४४½॥

गतज्वरं महेष्वासं तीर्णपारं महारथम् ॥ ४५ ॥
बभूव पाण्डवेयानां सैन्यं च मुदितं नृप ।
सूतपुत्रस्य निधने जयं लब्ध्वा च मारिष ॥ ४६ ॥

माननीय नरेश ! सूतपुत्र कर्णके मारे जानेसे विजय पाकर महान् धनुष एवं विशाल रथोंसे सुशोभित पाण्डव-सेना बहुत प्रसन्न हुई थी, मानो वह युद्धसे पार होकर निश्चिन्त हो गयी हो ॥ ४५-४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यसैनापत्याभिषेके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेकविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

उभय पक्षकी सेनाओंका समराङ्गणमें उपस्थित होना एवं बची हुई दोनों सेनाओंकी संख्याका वर्णन

संजय उवाच

व्यतीतायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा ।
अब्रवीत् तावकान् सर्वान् संनह्यन्तां महारथाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—जब रात व्यतीत हो गयी, तब राजा दुर्योधनने आपके समस्त सैनिकोंसे कहा—'महारथीगण कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो जायँ' ॥ १ ॥

राज्ञश्च मतमाज्ञाय समनह्यत सा चमूः ।
अयोजयन् रथांस्तूर्णं पर्यधावंस्तथा परे ॥ २ ॥
अकल्प्यन्त च मातङ्गाः समनह्यन्त पत्तयः ।
रथानास्तरणोपेतांश्चक्रुरन्ये सहस्रशः ॥ ३ ॥

राजाका यह अभिप्राय जानकर सारी सेना युद्धके लिये सुसज्जित होने लगी । कुछ लोगोंने तुरंत ही रथ जोत दिये । दूसरे चारों ओर दौड़ने लगे । हाथी सुसज्जित किये जाने लगे । पैदल सैनिक कवच बाँधने लगे तथा अन्य सहस्रों सैनिकोंने रथोंपर आवरण डाल दिये ॥ २-३ ॥

वादित्राणां च निनदः प्रादुरासीद् विशाम्पते ।
आयोधनार्थं योधानां बलानां चाप्युदीर्यताम् ॥ ४ ॥

प्रजानाथ ! उस समय सब ओरसे भाँति-भाँतिके बाद्योंकी गम्भीर ध्वनि प्रकट होने लगी । युद्धके लिये उद्यत योद्धाओं और आगे बढ़ती हुई सेनाओंका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ ४ ॥

ततो बलानि सर्वाणि हतशिष्टानि भारत ।
प्रस्थितानि व्यदृश्यन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ५ ॥

भारत ! तत्पश्चात् मरनेसे बची हुई सारी सेनाएँ मृत्युको ही युद्धसे लौटनेका निमित्त बनाकर प्रस्थान करती दिखायी दीं ॥ ५ ॥

शल्यं सेनापतिं कृत्वा मद्रराजं महारथाः ।
प्रविभज्य बलं सर्वमनीकेषु व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥

समस्त महारथी मद्रराज शल्यको सेनापति बनाकर और सारी सेनाको अनेक भागोंमें विभक्त करके भिन्न-भिन्न दलोंमें खड़े हुए ॥ ६ ॥

ततः सर्वे समागम्य पुत्रेण तव सैनिकाः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिः शल्योऽथ सौबलः ॥ ७ ॥
अन्ये च पार्थिवाः शेषाः समयं चक्रुराद‍ृताः ।

तदनन्तर आपके सम्पूर्ण सैनिक कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य, शकुनि तथा बचे हुए अन्य नरेशोंने राजा दुर्योधनसे मिलकर आदरपूर्वक यह नियम बनाया—॥ ७½ ॥

न न एकेन योद्धव्यं कथञ्चिदपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥
यो ह्येकः पाण्डवैर्युध्येद् यो वा युध्यन्तमुत्सृजेत् ।
स पञ्चभिर्भवेद् युक्तः पातकैश्चोपपातकैः ॥ ९ ॥

'हमलोगोंमेंसे कोई एक योद्धा अकेला रहकर किसी तरह भी पाण्डवोंके साथ युद्ध न करे । जो अकेला ही पाण्डवोंके साथ युद्ध करेगा अथवा जो पाण्डवोंके साथ जूझते हुए वीरको अकेला छोड़ देगा, वह पाँच पातकों और उपपातकोंसे युक्त होगा ॥ ८-९ ॥

(अद्याचार्यसुतो द्रौणिर्नैको युध्येत शत्रुभिः ।)
अन्योन्यं परिरक्षद्भिर्योद्धव्यं सहितैश्च ह ।
एवं ते समयं कृत्वा सर्वे तत्र महारथाः ॥ १० ॥
मद्रराजं पुरस्कृत्य तूर्णमभ्यद्रवन् परान् ।

'आज आचार्यपुत्र अश्वत्थामा शत्रुओंके साथ अकेले युद्ध न करें । हम सब लोगोंको एक साथ होकर एक दूसरेकी रक्षा करते हुए युद्ध करना चाहिये । ऐसा नियम बनाकर वे सब महारथी मद्रराज शल्यको आगे करके तुरंत ही शत्रुओंपर टूट पड़े ॥ १०½ ॥

तथैव पाण्डवा राजन् व्यूह्य सैन्यं महारणे ॥ ११ ॥
अभ्ययुः कौरवान् राजन् योत्स्यमानाः समन्ततः ।

राजन् ! इसी प्रकार उस महासमरमें पाण्डव भी अपनी सेनाका व्यूह बनाकर सब ओरसे युद्धके लिये उद्यत हो कौरवोंपर चढ़ आये ॥ ११½ ॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ क्षुब्धार्णवसमस्वनम् ॥ १२ ॥
समुद्धतार्णवाकारमुद्धूतरथकुञ्जरम् ।

भरतश्रेष्ठ ! वह सेना विक्षुब्ध महासागरके समान कोलाहल कर रही थी । उसके रथ और हाथी बड़े वेगसे आगे बढ़ रहे थे, मानो किसी महासमुद्रमें ज्वार उठ रहा हो । १२½ ।

धृतराष्ट्र उवाच

द्रोणस्य चैव भीष्मस्य राधेयस्य च मे श्रुतम् ॥ १३ ॥
पातनं शंस मे भूयः शल्यस्याथ सुतस्य मे ।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मैंने द्रोणाचार्य, भीष्म तथा राधापुत्र कर्णके वधका सारा वृत्तान्त सुन लिया है । अब पुनः मुझे शल्य तथा मेरे पुत्र दुर्योधनके मारे जानेका सारा समाचार कह सुनाओ ॥ १३½ ॥

कथं रणे हतः शल्यो धर्मराजेन संजय ॥ १४ ॥
भीमेन च महाबाहुः पुत्रो दुर्योधनो मम ।

संजय ! रणभूमिमें राजा शल्य धर्मराजके द्वारा कैसे मारे गये तथा भीमसेनने मेरे महाबाहु पुत्र दुर्योधनका वध कैसे किया ? ॥ १४½ ॥

संजय उवाच

क्षयं मनुष्यदेहानां तथा नागाश्वसंक्षयम् ॥ १५ ॥
श‍ृणु राजन् स्थिरो भूत्वा संग्रामं शंसतो मम ।

संजयने कहा—राजन् ! जहाँ हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंका महान् संहार हुआ था, उस संग्रामका मैं वर्णन करता हूँ; आप सुस्थिर होकर सुनिये ॥ १५½ ॥

आशा बलवती राजन् पुत्राणां तेऽभवत्तदा ॥ १६ ॥
हते द्रोणे च भीष्मे च सूतपुत्रे च पातिते ।
शल्यः पार्थान् रणे सर्वान् निहनिष्यति मारिष ॥ १७ ॥

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्य, भीष्म तथा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके पुत्रोंके मनमें यह प्रबल आशा हो गयी कि शल्य रणभूमिमें सम्पूर्ण कुन्तीकुमारोंका वध कर डालेंगे ॥ १६-१७ ॥

तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ।
मद्रराजं च समरे समाश्रित्य महारथम् ॥ १८ ॥
नाथवन्तं तदाऽऽत्मानममन्यन्त सुतास्तव ।

भारत ! उसी आशाको हृदयमें रखकर आपके पुत्रोंको कुछ आश्वासन मिला और वे समराङ्गणमें महारथी मद्रराज शल्यका आश्रय ले अपने-आपको सनाथ मानने लगे ॥ १८½ ॥

यदा कर्णे हते पार्थाः सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ १९ ॥

तदा तु तावकान् राजन्नाविवेश महद् भयम् ।

राजन् ! कर्णके मारे जानेसे प्रसन्न हुए कुन्तीके पुत्र जब सिंहनाद करने लगे, उस समय आपके पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ १९½ ॥

तान् समाश्वास्य योधांस्तु मद्रराजः प्रतापवान् ॥ २० ॥
व्यूह्य व्यूहं महाराज सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ।
प्रत्युद्ययौ रणे पार्थान् मद्रराजः प्रतापवान् ॥ २१ ॥
विधुन्वन् कार्मुकं चित्रं भारघ्नं वेगवत्तरम् ।
रथप्रवरमास्थाय सैन्धवाश्वं महारथः ॥ २२ ॥

महाराज ! तब प्रतापी महारथी मद्रराज शल्यने उन योद्धाओंको आश्वासन दे समृद्धिशाली सर्वतोभद्रनामक व्यूह बनाकर भारनाशक, अत्यन्त वेगशाली और विचित्र धनुषको कँपाते हुए सिंधी घोड़ोंसे युक्त श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो पाण्डवोंपर आक्रमण किया ॥ २०–२२ ॥

तस्य सूतो महाराज रथस्थोऽशोभयद् रथम् ।
स तेन संवृतो वीरो रथेनामित्रकर्षणः ॥ २३ ॥
तस्थौ शूरो महाराज पुत्राणां ते भयप्रणुत् ।

राजाधिराज ! शल्यके रथपर बैठा हुआ उनका सारथि उस रथकी शोभा बढ़ा रहा था। उस रथसे घिरे हुए शत्रुसूदन शूरवीर राजा शल्य आपके पुत्रोंका भय दूर करते हुए युद्धके लिये खड़े हो गये ॥ २३½ ॥

प्रयाणे मद्रराजोऽभून्मुखं व्यूहस्य दंशितः ॥ २४ ॥
मद्रकैः सहितो वीरैः कर्णपुत्रैश्च दुर्जयैः ।

प्रस्थानकालमें कवचधारी मद्रराज शल्य उस सैन्यव्यूहके मुखस्थानमें थे। उनके साथ मद्रदेशीय वीर तथा कर्णके दुर्जय पुत्र भी थे ॥ २४½ ॥

सव्येऽभूत् कृतवर्मा च त्रिगर्तैः परिवारितः ॥ २५ ॥
गौतमो दक्षिणे पार्श्वे शकैश्च यवनैः सह ।
अश्वत्थामा पृष्ठतोऽभूत् काम्बोजैः परिवारितः ॥ २६ ॥

व्यूहके वामभागमें त्रिगर्तोंसे घिरा हुआ कृतवर्मा खड़ा था। दक्षिण पार्श्वमें शकों और यवनोंकी सेनाके साथ कृपाचार्य थे और पृष्ठभागमें काम्बोजोंसे घिरकर अश्वत्थामा खड़ा था ॥ २५-२६ ॥

दुर्योधनोऽभवन्मध्ये रक्षितः कुरुपुङ्गवैः ।
हयानीकेन महता सौबलश्चापि संवृतः ॥ २७ ॥
प्रययौ सर्वसैन्येन कैतव्यश्च महारथः ।

मध्यभागमें कुरुकुलके प्रमुख वीरोंद्वारा सुरक्षित दुर्योधन और घुड़सवारोंकी विशाल सेनासे घिरा हुआ शकुनि भी था। उसके साथ महारथी उलूक भी सम्पूर्ण सेनासहित युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था ॥ २७½ ॥

पाण्डवाश्च महेष्वासा व्यूह्य सैन्यमरिंदमाः ॥ २८ ॥
त्रिधा भूता महाराज तव सैन्यमुपाद्रवन् ।

महाराज ! शत्रुओंका दमन करनेवाले महाधनुर्धर पाण्डव भी सेनाका व्यूह बनाकर तीन भागोंमें विभक्त हो आपकी सेनापर चढ़ आये ॥ २८½ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ॥ २९ ॥
शल्यस्य वाहिनीं हन्तुमभिदुद्रुवुराहवे ।

(उन तीनोंके अध्यक्ष थे—) धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और महारथी सात्यकि। इन लोगोंने युद्धस्थलमें शल्यकी सेनाका वध करनेके लिये उसपर धावा बोल दिया ॥ २९½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वेनानीकेन संवृतः ॥ ३० ॥
शल्यमेवाभिदुद्राव जिघांसुर्भरतर्षभः ।

अपनी सेनासे घिरे हुए भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने शल्यको मार डालनेकी इच्छासे उनपर ही आक्रमण किया॥३०½॥

हार्दिक्यं च महेष्वासमर्जुनः शत्रुसैन्यहा ॥ ३१ ॥
संशप्तकगणांश्चैव वेगितोऽभिविदुद्रुवे ।

शत्रुसेनाका संहार करनेवाले अर्जुनने महाधनुर्धर कृतवर्मा तथा संशप्तकगणोंपर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥

गौतमं भीमसेनो वै सोमकाश्च महारथाः ॥ ३२ ॥
अभ्यद्रवन्त राजेन्द्र जिघांसन्तः परान् युधि ।

राजेन्द्र ! भीमसेन और महारथी सोमकगणोंने युद्धमें शत्रुओंका संहार करनेकी इच्छासे कृपाचार्यपर धावा बोल दिया॥

माद्रीपुत्रौ तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ॥ ३३ ॥
ससैन्यौ सहसैन्यौ तावुपतस्थतुराहवे ।

सेनासहित माद्रीकुमार नकुल और सहदेव युद्धस्थलमें अपनी सेनाके साथ खड़े हुए महारथी शकुनि और उलूकका सामना करनेके लिये उपस्थित थे ॥ ३३½ ॥

तथैवायुतशो योधास्तावकाः पाण्डवान् रणे ॥ ३४ ॥
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।

इसी प्रकार रणभूमिमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये क्रोधमें भरे हुए आपके पक्षके दस हजार योद्धा पाण्डवोंका सामना करने लगे ॥ ३४½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

हते भीष्मे महेष्वासे द्रोणे कर्णे महारथे ॥ ३५ ॥
कुरुष्वल्पावशिष्टेषु पाण्डवेषु च संयुगे ।
सुसंरब्धेषु पार्थेषु पराक्रान्तेषु संजय ॥ ३६ ॥
मामकानां परेषां च किं शिष्टमभवद् बलम् ।

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! महाधनुर्धर भीष्म, द्रोण तथा महारथी कर्णके मारे जानेपर जब युद्धस्थलमें कौरव और पाण्डवयोद्धा थोड़े-से ही बच गये थे और कुन्तीके पुत्र अत्यन्त कुपित होकर पराक्रम दिखाने लगे थे, उस समय मेरे और शत्रुओंके पक्षमें कितनी सेना शेष रह गयी थी ? ॥

संजय उवाच

यथा वयं परे राजन् युद्धाय समुपस्थिताः ॥ ३७ ॥
यावच्चासीद् बलं शिष्टं संग्रामे तन्निबोध मे ।

संजयने कहा—राजन् ! हम और हमारे शत्रु जिस प्रकार युद्धके लिये उपस्थित हुए और उस समय संग्राममें हमलोगोंके पास जितनी सेना शेष रह गयी थी, वह सब बताता हूँ, सुनिये ॥ ३७½ ॥

एकादश सहस्राणि रथानां भरतर्षभ ॥ ३८ ॥

दश दन्तिसहस्राणि सप्त चैव शतानि च ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे हयानां तत्र भारत ॥ ३९ ॥
पत्तिकोट्यस्तथा तिस्रो बलमेतत्तवाभवत् ।

भरतश्रेष्ठ ! आपके पक्षमें ग्यारह हजार रथ, दस हजार सात सौ हाथी, दो लाख घोड़े तथा तीन करोड़ पैदल—इतनी सेना शेष रह गयी थी ॥ ३८-३९½ ॥

रथानां षट्सहस्राणि षट्सहस्राश्च कुञ्जराः ॥ ४० ॥
दश चाश्वसहस्राणि पत्तिकोटी च भारत ।
एतद् बलं पाण्डवानामभवच्छेषमाहवे ॥ ४१ ॥

भारत ! उस युद्धमें पाण्डवोंके पास छः हजार रथ, छः हजार हाथी, दस हजार घोड़े और दो करोड़ पैदल—इतनी सेना शेष थी ॥ ४०-४१ ॥

एत एव समाजग्मुर्युद्धाय भरतर्षभ ।
एवं विभज्य राजेन्द्र मद्रराजवशे स्थिताः ॥ ४२ ॥
पाण्डवान् प्रत्युदीयुस्ते जयगृद्धाः प्रमन्यवः ।

भरतश्रेष्ठ ! ये ही सैनिक युद्धके लिये उपस्थित हुए थे । राजेन्द्र ! इस प्रकार सेनाका विभाग करके विजयकी अभिलाषासे क्रोधमें भरे हुए आपके सैनिक मद्रराज शल्यके अधीन हो पाण्डवोंपर चढ़ आये ॥ ४२½ ॥

तथैव पाण्डवाः शूराः समरे जितकाशिनः ॥ ४३ ॥
उपयाता नरव्याघ्राः पञ्चालाश्च यशस्विनः ।

इसी प्रकार समराङ्गणमें विजयसे सुशोभित होनेवाले शूरवीर पुरुषसिंह पाण्डव और यशस्वी पाञ्चाल वीर आपकी सेनाके समीप आ पहुँचे ॥ ४३½ ॥

इमे ते च बलौघेन परस्परवधैषिणः ॥ ४४ ॥
उपयाता नरव्याघ्राः पूर्वां संध्यां प्रति प्रभो ।

प्रभो ! इस प्रकार परस्पर वधकी इच्छावाले ये और वे पुरुषसिंह योद्धा प्रातःकाल एक दूसरेके निकट आये ॥४४½॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४५ ॥

फिर तो परस्पर प्रहार करते हुए आपके और शत्रु-पक्षके सैनिकोंमें अत्यन्त भयानक घोर युद्ध छिड़ गया ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि व्यूहनिर्माणेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें व्यूह-निर्माणविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४५½ श्लोक हैं)

नवमोऽध्यायः

उभय पक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध और कौरव-सेनाका पलायन

संजय उवाच

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां भयवर्धनम् ।
सृंजयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजेन्द्र ! तदनन्तर कौरवोंका सृंजयोंके साथ घोर युद्ध आरम्भ हो गया, जो देवासुर-संग्रामके समान भय बढ़ानेवाला था ॥ १ ॥

नरा रथा गजौघाश्च सादिनश्च सहस्रशः ।
वाजिनश्च पराक्रान्ताः समाजग्मुः परस्परम् ॥ २ ॥

पैदल, रथी, हाथीसवार तथा सहस्रों घुड़सवार पराक्रम दिखाते हुए एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २ ॥

गजानां भीमरूपाणां द्रवतां निःस्वनो महान् ।
अश्रूयत यथा काले जलदानां नभस्तले ॥ ३ ॥

जैसे वर्षाकालके आकाशमें मेघोंकी गम्भीर गर्जना होती रहती है, उसी प्रकार रणभूमिमें दौड़ लगाते हुए भीमकाय गजराजोंका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ ३ ॥

नागैरभ्याहताः केचित् सरथा रथिनोऽपतन् ।
व्यद्रवन्त रणे वीरा द्राव्यमाणा मदोत्कटैः ॥ ४ ॥

मदोन्मत्त हाथियोंके आघातसे कितने ही रथी रथसहित धरतीपर लोट गये । बहुत-से वीर उनसे खदेड़े जाकर इधर-उधर भागने लगे ॥ ४ ॥

हयौघान् पादरक्षांश्च रथिनस्तत्र शिक्षिताः ।
शरैः सम्प्रेषयामासुः परलोकाय भारत ॥ ५ ॥

भारत ! उस युद्धस्थलमें शिक्षाप्राप्त रथियोंने घुड़सवारों तथा पादरक्षकोंको अपने बाणोंसे मारकर यमलोक भेज दिया॥

सादिनः शिक्षिता राजन् परिवार्य महारथान् ।
विचरन्तो रणेऽभ्यघ्नन् प्रासशक्त्यृष्टिभिस्तथा ॥ ६ ॥

राजन् ! रणभूमिमें विचरते हुए बहुत-से सुशिक्षित घुड़सवार बड़े-बड़े रथोंको घेरकर उनपर प्रास, शक्ति तथा ऋष्टियोंका प्रहार करने लगे ॥ ६ ॥

धन्विनः पुरुषाः केचित् परिवार्य महारथान् ।
एकं बहव आसाद्य प्रययुर्यमसादनम् ॥ ७ ॥

कितने ही धनुर्धर पुरुष महारथियोंको घेर लेते और एक-एकपर बहुत-से योद्धा आक्रमण करके उसे यमलोक पहुँचा देते थे ॥ ७ ॥

नागान् रथवरांश्चान्ये परिवार्य महारथाः ।
सान्तरायोधिनं जघ्नुर्द्रवमाणं महारथम् ॥ ८ ॥

अन्य महारथी कितने ही हाथियों और श्रेष्ठ रथियोंको घेर लेते और किसीकी ओटमें युद्ध करनेवाले भागते हुए महारथीको मार डालते थे ॥ ८ ॥

तथा च रथिनं क्रुद्धं विकिरन्तं शरान् बहून् ।
नागा जघ्नुर्महाराज परिवार्य समन्ततः ॥ ९ ॥

महाराज ! कई हाथियोंने क्रोधपूर्वक बहुत-से बाणोंकी वर्षा करनेवाले किसी रथीको सब ओरसे घेरकर मार डाला॥

नागो नागमभिद्रुत्य रथी च रथिनं रणे ।
शक्तितोमरनाराचैर्निजघ्ने तत्र भारत ॥ १० ॥

भारत ! वहाँ रणभूमिमें एक हाथीसवार दूसरे हाथी-

सवारपर और एक रथी दूसरे रथीपर आक्रमण करके शक्ति, तोमर और नाराचोंकी मारसे उसे यमलोक पहुँचा देता था ॥

पादातानवमृद्नन्तो रथवारणवाजिनः ।
रणमध्ये व्यदृश्यन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ११ ॥

समराङ्गणके बीच बहुत-से रथ, हाथी और घोड़े पैदल योद्धाओंको कुचलते तथा सबको अत्यन्त व्याकुल करते हुए दृष्टिगोचर होते थे ॥ ११ ॥

हयाश्च पर्यधावन्त चामरैरुपशोभिताः ।
हंसा हिमवतः प्रस्थे पिबन्त इव मेदिनीम् ॥ १२ ॥

जैसे हिमालयके शिखरकी चौरस भूमिपर रहनेवाले हंस नीचे पृथ्वीपर जल पीनेके लिये तीव्र गतिसे उड़ते हुए जाते हैं, उसी प्रकार चामरशोभित अश्व वहाँ सब ओर बड़े वेगसे दौड़ लगा रहे थे ॥ १२ ॥

तेषां तु वाजिनां भूमिः खुरैश्चित्रा विशाम्पते ।
अशोभत यथा नारी करजैः क्षतविक्षता ॥ १३ ॥

प्रजानाथ ! उन घोड़ोंकी टापोंसे खुदी हुई भूमि प्रियतमके नखोंसे क्षत-विक्षत हुई नारीके समान विचित्र शोभा धारण करती थी ॥ १३ ॥

वाजिनां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
पत्तीनां चापि शब्देन नागानां बृंहितेन च ॥ १४ ॥
वादित्राणां च घोषेण शङ्खानां निनदेन च ।
अभवन्नादिता भूमिर्निर्घातैरिव भारत ॥ १५ ॥

भारत! घोड़ोंकी टापोंके शब्द, रथके पहियोंकी घर्घराहट, पैदल योद्धाओंके कोलाहल, हाथियोंकी गर्जना तथा वाद्योंके गम्भीर घोष और शङ्खोंकी ध्वनिसे प्रतिध्वनित हुई यह पृथ्वी वज्रपातकी आवाजसे गूँजती हुई-सी प्रतीत होती थी ॥

धनुषां कूजमानानां शस्त्रौघानां च दीप्यताम् ।
कवचानां प्रभाभिश्च न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १६ ॥

टंकारते हुए धनुष, दमकते हुए अस्त्र-शस्त्रोंके समुदाय तथा कवचोंकी प्रभासे चकाचौंधके कारण कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ १६ ॥

बहवो बाहवश्छिन्ना नागराजकरोपमाः ।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते वेगं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १७ ॥

हाथीकी सूँड़के समान बहुत-सी भुजाएँ कटकर धरतीपर उछलती, लोटती और भयंकर वेग प्रकट करती थीं ॥१७॥

शिरसां च महाराज पततां धरणीतले ।
च्युतानामिव तालेभ्यस्तालानां श्रूयते स्वनः ॥ १८ ॥

महाराज ! पृथ्वीपर गिरते हुए मस्तकोंका शब्द, ताड़के वृक्षोंसे चूकर गिरे हुए फलोंके धमाकेकी आवाजके समान सुनायी देता था ॥ १८ ॥

शिरोभिः पतितैर्भाति रुधिरार्द्रैर्वसुन्धरा ।
तपनीयनिभैः काले नलिनैरिव भारत ॥ १९ ॥

भारत ! गिरे हुए रक्तरञ्जित मस्तकोंसे इस पृथ्वीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो वहाँ सुवर्णमय कमल बिछाये गये हों ॥ १९॥

उद्वृत्तनयनैस्तैस्तु गतसत्त्वैः सुविक्षतैः ।
व्यभ्राजत मही राजन् पुण्डरीकैरिवावृता ॥ २० ॥

राजन् ! खुले नेत्रोंवाले प्राणशून्य घायल मस्तकोंसे ढकी हुई पृथ्वी लाल कमलोंसे आच्छादित हुई-सी शोभा पाती थी ॥ २० ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः सकेयूरैर्महाधनैः ।
पतितैर्भाति राजेन्द्र महाशक्रध्वजैरिव ॥ २१ ॥

राजेन्द्र ! बाजूबंद तथा दूसरे बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित, चन्दनचर्चित भुजाएँ कटकर पृथ्वीपर गिरी थीं, जो महान् इन्द्रध्वजके समान जान पड़ती थीं । उनके द्वारा रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ २१ ॥

ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां विनिकृत्तैर्महाहवे ।
हस्तिहस्तोपमैरन्यैः संवृतं तद् रणाङ्गणम् ॥ २२ ॥

उस महासमरमें कटी हुई नरेशोंकी जाँघें हाथीकी सूँड़ोंके समान प्रतीत होती थी । उनके द्वारा वह सारा समराङ्गण पट गया था ॥ २२ ॥

कबन्धशतसंकीर्णं छत्रचामरसंकुलम् ।
सेनावनं तच्छुशुभे वनं पुष्पाचितं यथा ॥ २३ ॥

वहाँ सैकड़ों कबन्ध सब ओर बिखरे पड़े थे । छत्र और चँवर भरे हुए थे । उन सबसे वह सेनारूपी वन फूलोंसे व्याप्त हुए विशाल विपिनके समान सुशोभित होता था ॥२३॥

तत्र योधा महाराज विचरन्तो ह्यभीतवत् ।
दृश्यन्ते रुधिराक्ताङ्गाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ २४ ॥

महाराज ! वहाँ खूनसे लथपथ शरीर लेकर निर्भय-से विचरनेवाले योद्धा फूले हुए पलाशवृक्षोंके समान दिखायी देते थे ॥ २४ ॥

मातङ्गाश्चाप्यदृश्यन्त शरतोमरपीडिताः ।
पतन्तस्तत्र तत्रैव छिन्नाभ्रसदृशा रणे ॥ २५ ॥

रणभूमिमें बाणों और तोमरोंकी मारसे पीड़ित हो जहाँ-तहाँ गिरते हुए मतवाले हाथी भी कटे हुए बादलोंके समान दिखायी देते थे ॥ २५ ॥

गजानीकं महाराज वध्यमानं महात्मभिः ।
व्यदीर्यत दिशः सर्वा वातनुन्ना घना इव ॥ २६ ॥

महाराज ! वायुके वेगसे छिन्न-भिन्न हुए बादलोंके समान महामनस्वी वीरोंके बाणोंसे घायल हुई गजसेना सम्पूर्ण दिशाओंमें विदीर्ण हो रही थी ॥ २६ ॥

ते गजा घनसंकाशाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
वज्रनुन्ना इव बभुः पर्वता युगसंक्षये ॥ २७ ॥

मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होनेवाले हाथी चारों ओरसे पृथ्वीपर पड़े थे, जो प्रलयकालमें वज्रके आघातसे विदीर्ण होकर गिरे हुए पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे ॥ २७ ॥

हयानां सादिभिः सार्धं पतितानां महीतले ।
राशयः स्म प्रदृश्यन्ते गिरिमात्रास्ततस्ततः ॥ २८ ॥

सवारोंसहित धरतीपर गिरे हुए घोड़ोंके पहाड़ों-जैसे ढेर यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते थे ॥ २८ ॥

संजज्ञे रणभूमौ तु परलोकवहा नदी ।
शोणितोदा रथावर्ता ध्वजवृक्षास्थिशर्करा ॥ २९ ॥
भुजनक्रा धनुःस्रोता हस्तिशैला हयोपला ।
मेदोमज्जाकर्दमिनी छत्रहंसा गदोडुपा ॥ ३० ॥
कवचोष्णीषसंछन्ना पताकारुचिरद्रुमा ।
चक्रचक्रावलीजुष्टा त्रिवेणूरगसंवृता ॥ ३१ ॥

उस समय रणभूमिमें एक रक्तकी नदी बह चली, जो परलोककी ओर प्रवाहित होनेवाली थी । रक्त ही उसका जल था, रथ भँवरके समान प्रतीत होते थे, ध्वज तटवर्ती वृक्षके समान जान पड़ते थे, हड्डियाँ कंकड़-पत्थरोंका भ्रम उत्पन्न करती थीं, कटी हुई भुजाएँ नाकोंके समान दिखायी देती थीं, धनुष उसके स्रोत थे, हाथी पार्श्ववर्ती पर्वत और घोड़े प्रस्तर-खण्डके तुल्य थे, मेदा और मज्जा ये ही उसके पङ्क थे, छत्र हंस थे, गदाएँ नौका जान पड़ती थीं, कवच और पगड़ी आदि वस्तुएँ सेवारके समान उस नदीके जलको आच्छादित किये हुए थीं, पताकाएँ सुन्दर वृक्ष-सी दिखायी देती थीं, चक्र (पहिये) चक्रवाकोंके समूहकी भाँति उस नदीका सेवन करते थे और त्रिवेणुरूपी सर्प उसमें भरे हुए थे ॥ २९–३१ ॥

शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धनी ।
प्रावर्तत नदी रौद्रा कुरुसृञ्जयसंकुला ॥ ३२ ॥

वह भयंकर नदी शूरवीरोंके लिये हर्षजनक तथा कायरोंके लिये भय बढ़ानेवाली थी । कौरवों और संजयोंके समुदायसे वह व्याप्त हो रही थी ॥ ३२ ॥

तां नदीं परलोकाय वहन्तीमतिभैरवाम् ।
तेरुर्वाहननौभिस्तैः शूराः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥

परलोककी ओर ले जानेवाली उस अत्यन्त भयंकर नदी-को परिघ-जैसी मोटी भुजाओंवाले शूरवीर योद्धा अपने-अपने वाहनरूपी नौकाओंद्वारा पार करते थे ॥ ३३ ॥

वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
चतुरङ्गक्षये घोरे पूर्वदेवासुरोपमे ॥ ३४ ॥
व्याक्रोशन् बान्धवानन्ये तत्र तत्र परंतप ।
क्रोशद्भिर्दयितैरन्ये भयार्ता न निवर्तिरे ॥ ३५ ॥

प्रजानाथ ! परंतप ! प्राचीन देवासुर-संग्रामके समान चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करनेवाला वह मर्यादाशून्य घोर युद्ध जब चलने लगा; तब भयसे पीड़ित हुए कितने ही सैनिक अपने बन्धु-बान्धवोंको पुकारने लगे और बहुत-से योद्धा प्रियजनोंके पुकारनेपर भी पीछे नहीं लौटते थे ॥ ३४-३५ ॥

निर्मर्यादे तथा युद्धे वर्तमाने भयानके ।
अर्जुनो भीमसेनश्च मोहयांचक्रतुः परान् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार वह भयानक युद्ध सारी मर्यादाको तोड़कर चल रहा था । उस समय अर्जुन और भीमसेनने शत्रुओंको मूर्छित कर दिया था ॥ ३६ ॥

सा वध्यमाना महती सेना तव नराधिप ।
अमुह्यत् तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ ३७ ॥

नरेश्वर ! उनकी मार पड़नेसे आपकी विशाल सेना मदमत्त युवतीकी भाँति जहाँकी तहाँ बेहोश हो गयी ॥ ३७ ॥

मोहयित्वा च तां सेनां भीमसेनधनंजयौ ।
दध्मतुर्वारिजौ तत्र सिंहनादांश्च चक्रतुः ॥ ३८ ॥

उस कौरवसेनाको मूर्छित करके भीमसेन और अर्जुन शङ्ख बजाने तथा सिंहनाद करने लगे ॥ ३८ ॥

श्रुत्वैव तु महाशब्दं धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धर्मराजं पुरस्कृत्य मद्रराजमभिद्रुतौ ॥ ३९ ॥

उस महान् शब्दको सुनते ही धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने धर्मराज युधिष्ठिरको आगे करके मद्रराज शल्यपर धावा कर दिया ॥ ३९ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम घोररूपं विशाम्पते ।
शल्येन सङ्गताः शूरा यदयुध्यन्त भागशः ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! वहाँ हमने यह भयंकर आश्चर्यकी बात देखी कि पृथक्-पृथक् दल बनाकर आये हुए सभी शूरवीर अकेले शल्यके साथ ही जूझते रहे ॥ ४० ॥

माद्रीपुत्रौ तु रभसौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ।
अभ्ययातां त्वरायुक्तौ जिगीषन्तौ परंतप ॥ ४१ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! अस्त्रोंके ज्ञाता, रण-दुर्मद और वेगशाली वीर माद्रीकुमार नकुल-सहदेव विजयकी अभिलाषा लेकर बड़ी उतावलीके साथ राजा शल्य-पर चढ़ आये ॥ ४१ ॥

ततो न्यवर्तत बलं तावकं भरतर्षभ ।
शरैः प्रणुन्नं बहुधा पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंने अपने बाणोंकी मारसे आपकी सेनाको बारंबार घायल किया ॥४२॥

वध्यमाना चमूः सा तु पुत्राणां प्रेक्षतां तव ।
भेजे दिशो महाराज प्रणुन्ना शरवृष्टिभिः ॥ ४३ ॥

महाराज ! इस प्रकार चोट सहती हुई वह सेना बाणोंकी वर्षासे क्षत-विक्षत हो आपके पुत्रोंके देखते-देखते सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चली ॥ ४३ ॥

हाहाकारो महाञ्जज्ञे योधानां तव भारत ।
तिष्ठ तिष्ठेति चाप्यासीद् द्रावितानां महात्मनाम्॥४४॥

भरतनन्दन ! वहाँ आपके योद्धाओंमें महान् हाहाकार मच गया । भागे हुए योद्धाओंके पीछे महामनस्वी पाण्डव वीरोंकी 'ठहरो, ठहरो' की आवाज सुनायी देने लगी ॥४४॥

क्षत्रियाणां तदान्योन्यं संयुगे जयमिच्छताम् ।
प्राद्रवन्नेव सम्भग्नाः पाण्डवैस्तव सैनिकाः ॥ ४५ ॥
त्यक्त्वा युद्धे प्रियान् पुत्रान् भ्रातॄनथ पितामहान् ।
मातुलान् भागिनेयांश्च वयस्यानपि भारत ॥ ४६ ॥

भारत ! युद्धमें परस्पर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले क्षत्रियोंमेंसे पाण्डवोंद्वारा पराजित होकर आपके सैनिक युद्धमें अपने प्यारे पुत्रों, भाइयों, पितामहों, मामाओं, भानजों और मित्रोंको भी छोड़कर भाग गये ॥ ४५-४६ ॥

हयान् द्विपांस्त्वरयन्तो योधा जग्मुः समन्ततः ।

आत्मत्राणकृतोत्साहास्तावका भरतर्षभ ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अपनी रक्षामात्रके लिये उत्साह रखनेवाले आपके सैनिक घोड़ों और हाथियोंको तीव्र गतिसे हाँकते हुए सब ओर भाग चले ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

नकुलद्वारा कर्णके तीन पुत्रोंका वध तथा उभयपक्षकी सेनाओंका भयानक युद्ध

संजय उवाच

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा मद्रराजः प्रतापवान् ।
उवाच सारथिं तूर्णं चोदयाश्वान् महाजवान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस सेनाको इस तरह भागती देख प्रतापी मद्रराज शल्यने अपने सारथिसे कहा—'सूत ! मेरे महावेगशाली घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ाओ॥

एष तिष्ठति वै राजा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण विराजता ॥ २ ॥

'देखो, ये सामने मस्तकपर शोभाशाली श्वेत छत्र लगाये हुए पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े हैं ॥ २ ॥

अत्र मां प्रापय क्षिप्रं पश्य मे सारथे बलम् ।
न समर्थो हि मे पार्थः स्थातुमद्य पुरो युधि ॥ ३ ॥

'सारथे ! मुझे शीघ्र उनके पास पहुँचा दो। फिर मेरा बल देखो । आज युद्धमें कुन्तीकुमार युधिष्ठिर मेरे सामने कदापि नहीं ठहर सकते' ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्ततः प्रायान्मद्रराजस्य सारथिः ।
यत्र राजा सत्यसंधो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

उनके ऐसा कहनेपर मद्रराजका सारथि वहीं जा पहुँचा, जहाँ सत्यप्रतिज्ञ धर्मपुत्र युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ४ ॥

प्रापतत् तच्च सहसा पाण्डवानां महद् बलम् ।
दधारैको रणे शल्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥ ५ ॥

साथ ही पाण्डवोंकी वह विशाल सेना भी सहसा वहाँ आ पहुँची। परंतु जैसे तट उमड़ते हुए समुद्रको रोक देता है, उसी प्रकार अकेले राजा शल्यने रणभूमिमें उस सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ५ ॥

पाण्डवानां बलौघस्तु शल्यमासाद्य मारिष ।
व्यतिष्ठत तदा युद्धे सिन्धोर्वेग इवाचलम् ॥ ६ ॥

माननीय नरेश ! जैसे किसी नदीका वेग किसी पर्वतके पास पहुँचकर अवरुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार पाण्डवोंकी सेनाका वह समुदाय युद्धमें राजा शल्यके पास पहुँचकर खड़ा हो गया ॥ ६ ॥

मद्रराजं तु समरे दृष्ट्वा युद्धाय धिष्ठितम् ।
कुरवः संन्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ७ ॥

समराङ्गणमें मद्रराज शल्यको युद्धके लिये डटा हुआ देख कौरव-सैनिक मृत्युको ही युद्धसे निवृत्तिकी सीमा नियत करके पुनः रणभूमिमें लौट आये ॥ ७ ॥

तेषु राजन् निवृत्तेषु व्यूढानीकेषु भागशः ।
प्रावर्तत महारौद्रः संग्रामः शोणितोदकः ॥ ८ ॥

राजन् ! पृथक्-पृथक् सेनाओंकी व्यूह-रचना करके जब वे सभी सैनिक लौट आये, तब दोनों दलोंमें महाभयंकर संग्राम छिड़ गया, जहाँ पानीकी तरह खून बहाया जा रहा था ॥८॥

समार्च्छच्चित्रसेनं तु नकुलो युद्धदुर्मदः ।
तौ परस्परमासाद्य चित्रकार्मुकधारिणौ ॥ ९ ॥
मेघाविव यथोद्वृत्तौ दक्षिणोत्तरवर्षिणौ ।
शरतोयैः सिषिचतुस्तौ परस्परमाहवे ॥ १० ॥

इसी समय रणदुर्मद नकुलने कर्णपुत्र चित्रसेनपर आक्रमण किया । विचित्र धनुष धारण करनेवाले वे दोनों वीर एक-दूसरेसे भिड़कर दक्षिण तथा उत्तरकी ओरसे आये हुए दो बड़े जलवर्षक मेघोंके समान परस्पर बाणरूपी जलकी बौछार करने लगे ॥ ९-१० ॥

नान्तरं तत्र पश्यामि पाण्डवस्येतरस्य च ।
उभौ कृतास्त्रौ बलिनौ रथचर्याविशारदौ ॥ ११ ॥
परस्परवधे यत्तौ छिद्रान्वेषणतत्परौ ।

उस समय वहाँ पाण्डुपुत्र नकुल और कर्णकुमार चित्रसेनमें मुझे कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था। दोनों ही अस्त्र-शस्त्रोंके विद्वान्, बलवान् तथा रथयुद्धमें कुशल थे । परस्पर घातमें लगे हुए वे दोनों वीर एक-दूसरेके छिद्र (प्रहारके योग्य अवसर) ढूँढ़ रहे थे ॥ ११½ ॥

चित्रसेनस्तु भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ १२ ॥
नकुलस्य महाराज मुष्टिदेशेऽच्छिनद् धनुः ।

महाराज ! इतनेहीमें चित्रसेनने एक पानीदार पैने भल्लके द्वारा नकुलके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया॥

अथैनं छिन्नधन्वानं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ १३ ॥
त्रिभिः शरैरसम्भ्रान्तो ललाटे वै समार्पयत् ।

धनुष कट जानेपर उनके ललाटमें शिलापर तेज किये हुए सुनहरे पंखवाले तीन बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी । उस समय चित्रसेनके चित्तमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई ॥

हयांश्चास्य शरैस्तीक्ष्णैः प्रेषयामास मृत्यवे ॥ १४ ॥
तथा ध्वजं सारथिं च त्रिभिस्त्रिभिरपातयत् ।

उसने अपने तीखे बाणोंद्वारा नकुलके घोड़ोंको भी मृत्युके हवाले कर दिया तथा तीन-तीन बाणोंसे उनके ध्वज और सारथिको भी काट गिराया ॥ १४½ ॥

स शत्रुभुजनिर्मुक्तैर्ललाटस्थैस्त्रिभिः शरैः ॥ १५ ॥
नकुलः शुशुभे राजंस्त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ।

राजन् ! शत्रुकी भुजाओंसे छूटकर ललाटमें धँसे हुए उन तीन बाणोंके द्वारा नकुल तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान

शोभा पाने लगे ॥ १५½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च ॥ १६ ॥
रथादवातरद् वीरः शैलाग्रादिव केसरी ।

धनुष कट जानेपर रथहीन हुए वीर नकुल हाथमें ढाल-तलवार लेकर पर्वतके शिखरसे उतरनेवाले सिंहके समान रथसे नीचे आ गये ॥ १६½ ॥

पद्भ्यामापततस्तस्य शरवृष्टिं समासृजत् ॥ १७ ॥
नकुलोऽप्यग्रसत् तां वै चर्मणा लघुविक्रमः ।

उस समय चित्रसेन पैदल आक्रमण करनेवाले नकुलके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा । परंतु शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले नकुलने ढालके द्वारा ही रोककर उस बाण-वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ १७½ ॥

चित्रसेनरथं प्राप्य चित्रयोधी जितश्रमः ॥ १८ ॥
आरुरोह महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले महाबाहु नकुल परिश्रम-को जीत चुके थे । वे सारी सेनाके देखते-देखते चित्रसेनके रथके समीप जा उसपर चढ़ गये ॥ १८½ ॥

सकुण्डलं समुकुटं सुनसं स्वायतेक्षणम् ॥ १९ ॥
चित्रसेनशिरः कायादपाहरत पाण्डवः ।

तत्पश्चात् पाण्डुकुमारने सुन्दर नासिका और विशाल नेत्रोंसे युक्त कुण्डल और मुकुटसहित चित्रसेनके मस्तकको धड़से काट लिया ॥ १९½ ॥

स पपात रथोपस्थे दिवाकरसमद्युतिः ॥ २० ॥
चित्रसेनं विशस्तं तु दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
साधुवादस्वनांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ २१ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी चित्रसेन रथके पिछले भागमें गिर पड़ा । चित्रसेनको मारा गया देख वहाँ खड़े हुए पाण्डव महारथी नकुलको साधुवाद देने और प्रचुरमात्रामें सिंहनाद करने लगे ॥ २०-२१ ॥

विशस्तं भ्रातरं दृष्ट्वा कर्णपुत्रौ महारथौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च मुञ्चन्तौ विविधाञ्शरान् ॥ २२ ॥
ततोऽभ्यधावतां तूर्णं पाण्डवं रथिनां वरम् ।

अपने भाईको मारा गया देख कर्णके दो महारथी पुत्र सुषेण और सत्यसेन नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र नकुलपर तुरंत ही चढ़ आये ।२२½।

जिघांसन्तौ यथा नागं व्याघ्रौ राजन् महावने ॥ २३ ॥
तावभ्यधावतां तीक्ष्णौ द्वावप्येनं महारथम् ।
शरौघान् सम्यगस्यन्तौ जीमूतौ सलिलं यथा ॥ २४ ॥

राजन् ! जैसे विशाल वनमें दो व्याघ्र किसी एक हाथी-को मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर दौड़ें, उसी प्रकार तीखे स्वभाववाले वे दोनों भाई इन महारथी नकुलपर अपने बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे, मानो दो मेघ पानीकी धारावाहिक वृष्टि करते हों ॥ २३-२४ ॥

स शरैः सर्वतो विद्धः प्रहृष्ट इव पाण्डवः ।
अन्यत् कार्मुकमादाय रथमारुह्य वेगवान् ॥ २५ ॥
अतिष्ठत रणे वीरः क्रुद्धरूप इवान्तकः ।

सब ओरसे बाणोंद्वारा विद्ध होनेपर भी पाण्डुकुमार नकुल हर्ष और उत्साहमें भरे हुए वीर योद्धाकी भाँति दूसरा धनुष हाथमें लेकर बड़े वेगसे दूसरे रथपर जा चढ़े और कुपित हुए कालके समान रणभूमिमें खड़े हो गये ॥ २५½ ॥

तस्य तौ भ्रातरौ राजञ्शरैः संनतपर्वभिः ॥ २६ ॥
रथं विशकलीकर्तुं समारब्धौ विशाम्पते ।

राजन् ! प्रजानाथ ! उन दोनों भाइयोंने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा नकुलके रथके टुकड़े-टुकड़े करनेकी चेष्टा आरम्भ की ॥ २६½ ॥

ततः प्रहस्य नकुलश्चतुर्भिश्चतुरो रणे ॥ २७ ॥
जघान निशितैर्बाणैः सत्यसेनस्य वाजिनः ।

तब नकुलने हँसकर रणभूमिमें चार पैने बाणोंद्वारा सत्य-सेनके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ २७½ ॥

ततः संधाय नाराचं रुक्मपुङ्खं शिलाशितम् ॥ २८ ॥
धनुश्चिच्छेद राजेन्द्र सत्यसेनस्य पाण्डवः ।

राजेन्द्र ! तत्पश्चात् सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले एक नाराचका संधान करके पाण्डुपुत्र नकुलने सत्यसेनका धनुष काट दिया ॥ २८½ ॥

अथान्यं रथमास्थाय धनुरादाय चापरम् ॥ २९ ॥
सत्यसेनः सुषेणश्च पाण्डवं पर्यधावताम् ।

इसके बाद दूसरे रथपर सवार हो दूसरा धनुष हाथमें लेकर सत्यसेन और सुषेण दोनोंने पाण्डुकुमार नकुलपर धावा किया ॥ २९½ ॥

अविध्यत् तावसम्भ्रान्तो माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महाराज शराभ्यां रणमूर्धनि ।

महाराज ! माद्रीके प्रतापी पुत्र नकुलने बिना किसी घबराहटके युद्धके मुहानेपर दो-दो बाणोंसे उन दोनों भाइयोंको घायल कर दिया ॥ ३०½ ॥

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य महद् धनुः ॥ ३१ ॥
चिच्छेद प्रहसन् युद्धे क्षुरप्रेण महारथः ।

इससे सुषेणको बड़ा क्रोध हुआ । उस महारथीने हँसते-हँसते युद्धस्थलमें एक क्षुरप्रके द्वारा पाण्डुकुमार नकुलके विशाल धनुषको काट डाला ॥ ३१½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३२ ॥
सुषेणं पञ्चभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।

फिर तो नकुल क्रोधसे तमतमा उठे और दूसरा धनुष लेकर उन्होंने पाँच बाणोंसे सुषेणको घायल करके एकसे उसकी ध्वजाको भी काट डाला ॥ ३२½ ॥

सत्यसेनस्य च धनुर्हस्तावापं च मारिष ॥ ३३ ॥
चिच्छेद तरसा युद्धे तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ।

आर्य ! इसके बाद रणभूमिमें सत्यसेनके धनुष और दस्तानेके भी नकुलने वेगपूर्वक टुकड़े-टुकड़े कर डाले । इससे सब लोग जोर-जोरसे कोलाहल करने लगे ॥ ३३½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय वेगघ्नं भारसाधनम् ॥ ३४ ॥

शरैः संछादयामास समन्तात् पाण्डुनन्दनम् ।

तब सत्यसेनने शत्रुका वेग नष्ट करनेवाले दूसरे भार-साधक धनुषको हाथमें लेकर अपने बाणोंद्वारा पाण्डुनन्दन नकुलको ढक दिया ॥ ३४½ ॥

संनिवार्य तु तान् बाणान् नकुलः परवीरहा ॥ ३५ ॥
सत्यसेनं सुषेणं च द्वाभ्यां द्वाभ्यामविध्यत ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुलने उन बाणोंका निवारण करके सत्यसेन और सुषेणको भी दो-दो बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ३५½ ॥

तावेनं प्रत्यविध्येतां पृथक् पृथगजिह्मगैः ॥ ३६ ॥
सारथिं चास्य राजेन्द्र शितैर्विव्यधतुः शरैः ।

राजेन्द्र ! फिर उन दोनों भाइयोंने भी पृथक्-पृथक् अनेक बाणोंसे नकुलको बींध डाला और पैने बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३६½ ॥

सत्यसेनो रथेषां तु नकुलस्य धनुस्तथा ॥ ३७ ॥
पृथक्छराभ्यां चिच्छेद कृतहस्तः प्रतापवान् ।

तत्पश्चात् सिद्धहस्त और प्रतापी वीर सत्यसेनने पृथक्-पृथक् दो-दो बाणोंसे नकुलका धनुष और उनके रथके ईषा-दण्ड भी काट डाले ॥ ३७½ ॥

स रथेऽतिरथस्तिष्ठन् रथशक्तिं परामृशत् ॥ ३८ ॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् ।
लेलिहानामिव विभो नागकन्यां महाविषाम् ॥ ३९ ॥
समुद्यम्य च चिक्षेप सत्यसेनस्य संयुगे ।

तदनन्तर रथपर खड़े हुए अतिरथी वीर नकुलने एक रथशक्ति हाथमें ली, जिसमें सोनेका डंडा लगा हुआ था। उसका अग्रभाग कहीं भी कुण्ठित होनेवाला नहीं था । प्रभो ! तेलमें धोकर साफ की हुई वह निर्मल शक्ति जीभ लपलपाती हुई महाविषैली नागिनके समान प्रतीत होती थी । नकुल-ने युद्धस्थलमें सत्यसेनको लक्ष्य करके ऊपर उठाकर वह रथशक्ति चला दी ॥ ३८-३९½ ॥

सा तस्य हृदयं संख्ये विभेद च तथा नृप ॥ ४० ॥
स पपात रथाद् भूमिं गतसत्त्वोऽल्पचेतनः ।

नरेश्वर ! उस शक्तिने रणभूमिमें उसके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया । सत्यसेनकी चेतना जाती रही और वह प्राणशून्य होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४०½ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥ ४१ ॥
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं पादातं पाण्डुनन्दनम् ।

भाईको मारा गया देख सुषेण क्रोधसे व्याकुल हो उठा और तुरंत ही हरसा कट जानेसे पैदल हुए-से पाण्डुनन्दन नकुलपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४१½ ॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहान् ध्वजं छित्त्वा च पञ्चभिः ॥४२ ॥
त्रिभिर्वै सारथिं हत्वा कर्णपुत्रो ननाद ह ।

उसने चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको मार डाला और पाँचसे उनकी ध्वजा काटकर तीनसे सारथिके भी प्राण ले लिये । इसके बाद कर्णपुत्र जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा ॥

नकुलं विरथं दृष्ट्वा द्रौपदेयो महारथम् ॥ ४३ ॥
सुतसोमोऽभिदुद्राव परीप्सन् पितरं रणे ।

महारथी नकुलको रथहीन हुआ देख द्रौपदीका पुत्र सुतसोम अपने चाचाकी रक्षाके लिये वहाँ दौड़ा आया ४३½

ततोऽधिरुह्य नकुलः सुतसोमस्य तं रथम् ॥ ४४ ॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो गिरिस्थ इव केसरी ।

तब सुतसोमके उस रथपर आरूढ़ हो भरतश्रेष्ठ नकुल पर्वतपर बैठे हुए सिंहके समान सुशोभित होने लगे ॥४४½॥

अन्यत् कार्मुकमादाय सुषेणं समयोधयत् ॥ ४५ ॥
तावुभौ शरवर्षाभ्यां समासाद्य परस्परम् ।
परस्परवधे यत्नं चक्रतुः सुमहारथौ ॥ ४६ ॥

उन्होंने दूसरा धनुष हाथमें लेकर सुषेणके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया । वे दोनों महारथी वीर बाणोंकी वर्षाद्वारा एक दूसरेसे टक्कर लेकर परस्पर वधके लिये प्रयत्न करने लगे ॥ ४५-४६ ॥

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ।
सुतसोमं तु विंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ४७ ॥

उस समय सुषेणने कुपित होकर तीन बाणोंसे पाण्डुपुत्र नकुलको बींध डाला और सुतसोमकी दोनों भुजाओं एवं छातीमें बीस बाण मारे ॥ ४७ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
शरैस्तस्य दिशः सर्वाश्छादयामास वीर्यवान् ॥ ४८ ॥

महाराज ! तत्पश्चात् शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले परा-क्रमी नकुलने कुपित हो बाणोंकी वर्षासे सुषेणकी सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ४८ ॥

ततो गृहीत्वा तीक्ष्णाग्रमर्धचन्द्रं सुतेजनम् ।
सुवेगवन्तं चिक्षेप कर्णपुत्राय संयुगे ॥ ४९ ॥

इसके बाद तीखी धारवाले एक अत्यन्त तेज और वेगशाली अर्धचन्द्राकार बाण लेकर उसे समराङ्गणमें कर्णपुत्र-पर चला दिया ॥ ४९ ॥

तस्य तेन शिरः कायाज्जहार नृपसत्तम ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५० ॥

नृपश्रेष्ठ ! उस बाणसे नकुलने सम्पूर्ण सेनाओंके देखते-देखते सुषेणका मस्तक धड़से काट गिराया । वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ५० ॥

स हतः प्रापतद् राजन् नकुलेन महात्मना ।
नदीवेगादिवारुग्णस्तीरजः पादपो महान् ॥ ५१ ॥

महामनस्वी नकुलके हाथसे मारा जाकर सुषेण पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो नदीके वेगसे कटकर महान् तटवर्ती वृक्ष धराशायी हो गया हो ॥ ५१ ॥

कर्णपुत्रवधं दृष्ट्वा नकुलस्य च विक्रमम् ।
प्रदुद्राव भयात् सेना तावकी भरतर्षभ ॥ ५२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कर्णपुत्रोंका वध और नकुलका पराक्रम देख-कर आपकी सेना भयसे भाग चली ॥ ५२ ॥

तां तु सेनां महाराज मद्रराजः प्रतापवान्।
अपालयद् रणे शूरः सेनापतिररिंदमः ॥ ५३ ॥

महाराज ! उस समय रणभूमिमें शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर सेनापति प्रतापी मद्रराज शल्यने आपकी उस सेनाका संरक्षण किया ॥ ५३ ॥

विभीस्तस्थौ महाराज व्यवस्थाप्य च वाहिनीम्।
सिंहनादं भृशं कृत्वा धनुःशब्दं च दारुणम् ॥ ५४ ॥

राजाधिराज ! वे जोर-जोरसे सिंहनाद और धनुषकी भयंकर टंकार करके कौरवसेनाको स्थिर रखते हुए रणभूमिमें निर्भय खड़े थे ॥ ५४ ॥

तावकाः समरे राजन् रक्षिता दृढधन्वना।
प्रत्युद्ययुररातींस्तु समन्ताद् विगतव्यथाः ॥ ५५ ॥

राजन् ! सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले राजा शल्यसे सुरक्षित हो व्यथाशून्य हुए आपके सैनिक समरमें सब ओरसे शत्रुओंकी ओर बढ़ने लगे ॥ ५५ ॥

मद्रराजं महेष्वासं परिवार्य समन्ततः।
स्थिता राजन् महासेना योद्धुकामा समन्ततः ॥ ५६ ॥

नरेश्वर ! आपकी विशाल सेना महाधनुर्धर मद्रराज शल्यको चारों ओरसे घेरकर शत्रुओंके साथ युद्धके लिये खड़ी हो गयी ॥ ५६ ॥

सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य ह्रीनिषेवमरिंदमम् ॥ ५७ ॥

उधरसे सात्यकि, भीमसेन तथा माद्रीकुमार पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेव शत्रुदमन एवं लज्जाशील युधिष्ठिरको आगे करके चढ़ आये ॥ ५७ ॥

परिवार्य रणे वीराः सिंहनादं प्रचक्रिरे।
बाणशङ्खरवांस्तीव्रान् क्ष्वेडाश्च विविधा दधुः ॥ ५८ ॥

रणभूमिमें वे सभी वीर युधिष्ठिरको बीचमें करके सिंहनाद करने, बाणों और शङ्खोंकी तीव्र ध्वनि फैलाने तथा भाँति-भाँतिसे गर्जना करने लगे ॥ ५८ ॥

तथैव तावकाः सर्वे मद्राधिपतिमञ्जसा।
परिवार्य सुसंरब्धाः पुनर्युद्धमरोचयन् ॥ ५९ ॥

इसी प्रकार आपके समस्त सैनिक मद्रराजको चारों ओरसे घेरकर रोष और आवेशसे युक्त हो पुनः युद्धमें ही रुचि दिखाने लगे ॥ ५९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं भीरूणां भयवर्धनम्।
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ६० ॥

तदनन्तर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्तिका निमित्त बनाकर आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया, जो कायरोंका भय बढ़ानेवाला था ॥ ६० ॥

यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीद् विशाम्पते।
अभीतानां तथा राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ६१ ॥

राजन् ! प्रजानाथ ! जैसे पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार भयशून्य कौरवों और पाण्डवोंमें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला भयंकर संग्राम होने लगा ॥ ६१ ॥

ततः कपिध्वजो राजन् हत्वा संशप्तकान् रणे।
अभ्यद्रवत तां सेनां कौरवीं पाण्डुनन्दनः ॥ ६२ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर पाण्डुनन्दन कपिध्वज अर्जुनने भी संशप्तकोंका संहार करके रणभूमिमें उस कौरवसेनापर आक्रमण किया ॥ ६२ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
अभ्यधावन्त तां सेनां विसृजन्तः शिताञ्शरान् ॥ ६३ ॥

इसी प्रकार धृष्टद्युम्न आदि समस्त पाण्डव वीर पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए आपकी उस सेनापर चढ़ आये ॥

पाण्डवैरवकीर्णानां सम्मोहः समजायत।
न च जज्ञुस्त्वनीकानि दिशो वा विदिशस्तथा ॥ ६४ ॥

पाण्डवोंके बाणोंसे आच्छादित हुए कौरव-योद्धाओंपर मोह छा गया। उन्हें दिशाओं अथवा विदिशाओंका भी ज्ञान न रहा ॥ ६४ ॥

आपूर्यमाणा निशितैः शरैः पाण्डवचोदितैः।
हतप्रवीरा विध्वस्ता वार्यमाणा समन्ततः ॥ ६५ ॥

पाण्डवोंके चलाये हुए पैने बाणोंसे व्याप्त हो कौरवसेनाके मुख्य-मुख्य वीर मारे गये। वह सेना नष्ट होने लगी और चारों ओरसे उसकी गति अवरुद्ध हो गयी ॥ ६५ ॥

कौरव्यवध्यत चमूः पाण्डुपुत्रैर्महारथैः।
तथैव पाण्डवं सैन्यं शरै राजन् समन्ततः ॥ ६६ ॥
रणेऽहन्यत पुत्रैस्ते शतशोऽथ सहस्रशः।

राजन् ! महारथी पाण्डुपुत्र कौरवसेनाका वध करने लगे। इसी प्रकार आपके पुत्र भी पाण्डवसेनाके सैकड़ों, हजारों वीरोंका समराङ्गणमें सब ओरसे अपने बाणोंद्वारा संहार करने लगे ॥ ६६½ ॥

ते सेने भृशसंतप्ते वध्यमाने परस्परम् ॥ ६७ ॥
व्याकुले समपद्येतां वर्षासु सरिताविव।

जैसे वर्षाकालमें दो नदियाँ एक दूसरीके जलसे भरकर व्याकुल-सी हो उठती हैं, उसी प्रकार आपसकी मार खाती हुई वे दोनों सेनाएँ अत्यन्त संतप्त हो उठीं ॥ ६७½ ॥

आविवेश ततस्तीव्रं तावकानां महद् भयम्।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तथाभूते महाहवे ॥ ६८ ॥

राजेन्द्र ! उस अवस्थामें उस महासमरमें खड़े हुए आपके और पाण्डवयोद्धाओंके मनमें भी दुःसह एवं भारी भय समा गया ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

शल्यका पराक्रम, कौरव-पाण्डव योद्धाओंके द्वन्द्वयुद्ध तथा भीमसेनके द्वारा शल्यकी पराजय

संजय उवाच

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये वध्यमाने परस्परम्।
द्रवमाणेषु योधेषु विनदत्सु च दन्तिषु ॥ १ ॥
कूजतां स्तनतां चैव पदातीनां महाहवे।
निहतेषु महाराज हयेषु बहुधा तदा ॥ २ ॥
प्रक्षये दारुणे घोरे संहारे सर्वदेहिनाम्।
नानाशस्त्रसमावाये व्यतिषक्तरथद्विपे ॥ ३ ॥
हर्षणे युद्धशौण्डानां भीरूणां भयवर्धने।
गाहमानेषु योधेषु परस्परवधैषिषु ॥ ४ ॥
प्राणादाने महाघोरे वर्तमाने दुरोदरे।
संग्रामे घोररूपे तु यमराष्ट्रविवर्धने ॥ ५ ॥
पाण्डवास्तावकं सैन्यं व्यधमन्निशितैः शरैः।
तथैव तावका योधा जघ्नुः पाण्डवसैनिकान् ॥ ६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस महासमरमें जब दोनों पक्षोंकी सेनाएँ परस्परकी मार खाकर भयसे व्याकुल हो उठीं, दोनों दलोंके योद्धा पलायन करने लगे, हाथी चिग्घाड़ने तथा पैदल सैनिक कराहने और चिल्लाने लगे; बहुत-से घोड़े मारे गये, सम्पूर्ण देहधारियोंका घोर भयंकर एवं विनाशकारी संहार होने लगा, नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र परस्पर टकराने लगे, रथ और हाथी एक दूसरेसे उलझ गये, युद्धकुशल योद्धाओंका हर्ष और कायरोंका भय बढ़ानेवाला संग्राम होने लगा, एक दूसरेके वधकी इच्छासे उभयपक्षकी सेनाओंमें दोनों दलोंके योद्धा प्रवेश करने लगे, प्राणोंकी बाजी लगाकर महाभयंकर युद्धका जूआ आरम्भ हो गया तथा यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला घोर संग्राम चलने लगा, उस समय पाण्डव अपने तीखे बाणोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। इसी प्रकार आपके योद्धा भी पाण्डवसैनिकोंके वधमें प्रवृत्त हो गये ॥ १–६ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने युद्धे भीरुभयावहे।
पूर्वाह्णे चापि सम्प्राप्ते भास्करोदयनं प्रति ॥ ७ ॥
लब्धलक्षाः परे राजन् रक्षितास्तु महात्मना।
अयोधयंस्तव बलं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ८ ॥

राजन् ! पूर्वाह्णकाल प्राप्त होनेपर सूर्योदयके समय जब कायरोंका भय बढ़ानेवाला वर्तमान युद्ध चल रहा था, उस समय महात्मा अर्जुनसे सुरक्षित शत्रु-योद्धा, जो लक्ष्य वेधनेमें कुशल थे, मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी सीमा नियत करके आपकी सेनाके साथ जूझने लगे ॥ ७-८ ॥

बलिभिः पाण्डवैर्दृप्तैर्लब्धलक्षैः प्रहारिभिः।
कौरव्यसीदत् पृतना मृगीवाग्निसमाकुला ॥ ९ ॥

पाण्डव योद्धा बलवान् और प्रहारकुशल थे। उनका निशाना कभी खाली नहीं जाता था। उनकी मार खाकर कौरवसेना दावानलसे घिरी हुई हरिणीके समान अत्यन्त संतप्त हो उठी ॥ ९ ॥

तां दृष्ट्वा सीदतीं सेनां पङ्के गामिव दुर्बलाम्।
उज्जिहीर्षुस्तदा शल्यः प्रायात् पाण्डुसुतान् प्रति ॥ १० ॥

कीचड़में फँसी हुई दुर्बल गायके समान कौरवसेनाको बहुत कष्ट पाती देख उसका उद्धार करनेकी इच्छासे राजा शल्यने उस समय पाण्डवोंपर आक्रमण किया ॥ १० ॥

मद्रराजः सुसंक्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम्।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानाततायिनः ॥ ११ ॥

मद्रराज शल्यने अत्यन्त क्रोधमें भरकर उत्तम धनुष हाथमें ले संग्राममें अपने वधके लिये उद्यत हुए पाण्डवोंपर वेगपूर्वक धावा किया ॥ ११ ॥

पाण्डवा अपि भूपाल समरे जितकाशिनः।
मद्रराजं समासाद्य विभिदुर्निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

भूपाल ! समरमें विजयसे सुशोभित होनेवाले पाण्डव भी मद्रराज शल्यके निकट जाकर उन्हें अपने पैने बाणोंसे बींधने लगे ॥ १२ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मद्रराजो महारथः।
अर्दयामास तां सेनां धर्मराजस्य पश्यतः ॥ १३ ॥

तब महारथी मद्रराज धर्मराज युधिष्ठिरके देखते-देखते उनकी सेनाको अपने सैकड़ों तीखे बाणोंसे संतप्त करने लगे ॥ १३ ॥

प्रादुरासन् निमित्तानि नानारूपाण्यनेकशः।
चचाल शब्दं कुर्वाणा मही चापि सपर्वता ॥ १४ ॥

उस समय नाना प्रकारके बहुत-से अशुभसूचक निमित्त प्रकट होने लगे। पर्वतोंसहित पृथ्वी महान् शब्द करती हुई डोलने लगी ॥ १४ ॥

सदण्डशूला दीप्ताग्राः शीर्यमाणाः समन्ततः।
उल्का भूमिं दिवः पेतुराहत्य रविमण्डलम् ॥ १५ ॥

आकाशसे बहुत-सी उल्काएँ सूर्यमण्डलसे टकराकर पृथ्वीपर गिरने लगीं। उनके साथ दण्डयुक्त शूल भी गिर रहे थे। उन उल्काओंके अग्रभाग अपनी दीप्तिसे दमक रहे थे। वे सब-की-सब चारों ओर बिखरी पड़ती थीं ॥ १५ ॥

मृगाश्च महिषाश्चापि पक्षिणश्च विशाम्पते।
अपसव्यं तदा चक्रुः सेनां ते बहुशो नृप ॥ १६ ॥

प्रजानाथ ! नरेश्वर ! उस समय मृग, महिष और पक्षी आपकी सेनाको बारंबार दाहिने करके जाने लगे ॥ १६ ॥

भृगुसूनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ।
चरमं पाण्डुपुत्राणां पुरस्तात् सर्वभूभुजाम् ॥ १७ ॥

शुक्र और मंगल बुधसे संयुक्त हो पाण्डवोंके पृष्ठभागमें तथा अन्य सब नरेशोंके सम्मुख उदित हुए थे ॥ १७ ॥

शस्त्राग्रेष्वभवज्ज्वाला नेत्राण्याहत्य वर्षती।
शिरःस्वलीयन्त भृशं काकोलूकाश्च केतुषु ॥ १८ ॥

शस्त्रोंके अग्रभागमें ज्वाला-सी प्रकट होती और नेत्रोंमें चकाचौंध पैदा करके वह पृथ्वीपर गिर जाती थी। योद्धाओं-

के मस्तकों और ध्वजाओंमें कौए और उल्लू बारंबार छिपने लगे ॥

ततस्तद् युद्धमत्युग्रमभवत् सहचारिणाम् ।
तथा सर्वाण्यनीकानि संनिपत्य जनाधिप ॥ १९ ॥
अभ्ययुः कौरवा राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् ।

नरेश्वर ! तत्पश्चात् एक साथ संगठित होकर जूझनेवाले दोनों पक्षोंके वीरोंका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो गया । राजन् ! कौरव-योद्धाओंने अपनी सारी सेनाओंको एकत्र करके पाण्डव-सेनापर धावा बोल दिया ॥ १९½ ॥

शल्यस्तु शरवर्षेण वर्षन्निव सहस्रदृक् ॥ २० ॥
अभ्यवर्षत धर्मात्मा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

धर्मात्मा राजा शल्यने वर्षा करनेवाले इन्द्रकी भाँति कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥२०½॥

भीमसेनं शरैश्चापि रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २१ ॥
द्रौपदेयांस्तथा सर्वान् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
धृष्टद्युम्नं च शैनेयं शिखण्डिनमथापि च ॥ २२ ॥
एकैकं दशभिर्बाणैर्विव्याध स महाबलः ।
ततोऽसृजद् बाणवर्षं घर्मान्ते मघवानिव ॥ २३ ॥

महाबली शल्यने भीमसेन, द्रौपदीके सभी पुत्र, माद्री-कुमार नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा शिखण्डी—इनमेंसे प्रत्येकको शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंख-वाले दस-दस बाणोंसे घायल कर दिया । तत्पश्चात् वे वर्षा-कालमें जल बरसानेवाले इन्द्रके समान बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २१–२३ ॥

ततः प्रभद्रका राजन् सोमकाश्च सहस्रशः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्ते शल्यसायकैः ॥ २४ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् सहस्रों प्रभद्रक और सोमक योद्धा शल्यके बाणोंसे घायल होकर गिरे और गिरते हुए दिखायी देने लगे ॥ २४ ॥

भ्रमराणामिव व्राताः शलभानामिव व्रजाः ।
ह्रादिन्य इव मेघेभ्यः शल्यस्य न्यपतञ्शराः ॥ २५ ॥

शल्यके बाण भ्रमरोंके समूह, टिड्डियोंके दल और मेघों-की घटासे प्रकट होनेवाली बिजलियोंके समान पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ २५ ॥

द्विरदास्तुरगाश्चार्ताः पत्तयो रथिनस्तथा ।
शल्यस्य बाणैरपतन् बभ्रमुर्व्यनदंस्तथा ॥ २६ ॥

शल्यके बाणोंकी मार खाकर पीड़ित हुए हाथी, घोड़े, रथी और पैदल-सैनिक गिरने, चक्कर काटने और आर्तनाद करने लगे ॥ २६ ॥

आविष्ट इव मद्रेशो मन्युना पौरुषेण च ।
प्राच्छादयदरीन् संख्ये कालसृष्ट इवान्तकः ॥ २७ ॥

प्रलयकालमें प्रकट हुए यमराजके समान मद्रराज शल्य क्रोधसे आविष्ट हुए पुरुषकी भाँति अपने पुरुषार्थसे युद्धस्थल-में शत्रुओंको बाणोंद्वारा आच्छादित करने लगे ॥ २७ ॥

विनर्दमानो मद्रेशो मेघह्रादो महाबलः ।
सा वध्यमाना शल्येन पाण्डवानामनीकिनी ॥ २८ ॥
अजातशत्रुं कौन्तेयमभ्यधावद् युधिष्ठिरम् ।

महाबली मद्रराज मेघोंकी गर्जनाके समान सिंहनाद कर रहे थे । उनके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवसेना भागकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके पास चली गयी ॥ २८½॥

तां सम्मर्द्य ततः संख्ये लघुहस्तः शितैः शरैः॥ २९ ॥
बाणवर्षेण महता युधिष्ठिरमताडयत् ।

शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले शल्यने युद्धस्थलमें पैने बाणोंद्वारा पाण्डवसेनाका मर्दन करके बड़ी भारी बाणवर्षाके द्वारा युधिष्ठिरको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ २९½ ॥

तमापतन्तं पत्त्यश्वैः क्रुद्धो राजा युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥
अवारयच्छरैस्तीक्ष्णैर्महाद्विपमिवाङ्कुशैः ।

तब क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिरने पैदलों और घुड़-सवारोंके साथ आते हुए शल्यको अपने तीखे बाणोंसे उसी प्रकार रोक दिया, जैसे महावत अङ्कुशोंकी मारसे विशालकाय हाथीको आगे बढ़नेसे रोक देता है ॥ ३०½ ॥

तस्य शल्यः शरं घोरं मुमोचाशीविषोपमम् ॥ ३१ ॥
स निर्भिद्य महात्मानं वेगेनाभ्यपतच्च गाम् ।

उस समय शल्यने युधिष्ठिरपर विषैले सर्पके समान एक भयंकर बाणका प्रहार किया । वह बाण बड़े वेगसे महात्मा युधिष्ठिरको घायल करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३१½ ॥

ततो वृकोदरः क्रुद्धः शल्यं विव्याध सप्तभिः ॥ ३२ ॥
पञ्चभिः सहदेवस्तु नकुलो दशभिः शरैः ।
द्रौपदेयाश्च शत्रुघ्नं शूरमार्तायनिं शरैः ॥ ३३ ॥

यह देख भीमसेन कुपित हो उठे । उन्होंने सात बाणोंसे शल्यको बींध डाला । फिर सहदेवने पाँच, नकुलने दस और द्रौपदीके पुत्रोंने अनेक बाणोंसे शत्रुसूदन शूरवीर शल्यको घायल कर दिया ॥ ३२-३३ ॥

अभ्यवर्षन् महाराज मेघा इव महीधरम् ।
ततो दृष्ट्वा वार्यमाणं शल्यं पार्थैः समन्ततः ॥ ३४ ॥
कृतवर्मा कृपश्चैव संक्रुद्धावभ्यधावताम् ।
उलूकश्च महावीर्यः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ३५ ॥
समागम्याथ शनकैरश्वत्थामा महाबलः ।
तव पुत्राश्च कार्त्स्न्येन जुगुपुः शल्यमाहवे ॥ ३६ ॥

महाराज ! जैसे मेघ पर्वतपर पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे शल्यपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे । शल्यको कुन्ती-के पुत्रोंद्वारा सब ओरसे अवरुद्ध हुआ देख कृतवर्मा और कृपाचार्य क्रोधमें भरकर उनकी ओर दौड़े आये । साथ ही महापराक्रमी उलूक, सुबलपुत्र शकुनि, महाबली अश्वत्थामा तथा आपके सम्पूर्ण पुत्र भी धीरे-धीरे वहाँ आकर रणभूमिमें शल्यकी रक्षा करने लगे ॥ ३४–३६ ॥

भीमसेनं त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्मा शिलीमुखैः ।
बाणवर्षेण महता क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ३७ ॥

कृतवर्माने क्रोधमें भरे हुए भीमसेनको तीन बाणोंसे घायल करके भारी बाणवर्षाके द्वारा आगे बढ़नेसे रोक दिया॥३७॥

धृष्टद्युम्नं कृपः क्रुद्धो बाणवर्षैरपीडयत् ।
द्रौपदेयांश्च शकुनिर्यमौ च द्रौणिरभ्ययात् ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् कुपित हुए कृपाचार्यने धृष्टद्युम्नको अपनी बाण-वर्षाद्वारा पीड़ित कर दिया। शकुनिने द्रौपदीके पुत्रोंपर और अश्वत्थामाने नकुल-सहदेवपर धावा किया ॥ ३८ ॥

दुर्योधनो युधां श्रेष्ठ आहवे केशवार्जुनौ।
समभ्ययादुग्रतेजाः शरैश्चाप्यहनद् बली ॥ ३९ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ, भयंकर तेजस्वी और बलवान् दुर्योधनने समराङ्गणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनपर चढ़ाई की तथा बाणोंद्वारा उन्हें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३९ ॥

एवं द्वन्द्वशतान्यासंस्त्वदीयानां परैः सह।
घोररूपाणि चित्राणि तत्र तत्र विशाम्पते ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! इस प्रकार जहाँ-तहाँ आपके सैनिकोंके शत्रुओं-के साथ सैकड़ों भयानक एवं विचित्र द्वन्द्वयुद्ध होने लगे ॥

ऋक्षवर्णाञ्जघानाश्वान् भोजो भीमस्य संयुगे।
सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वात् पाण्डुनन्दनः ॥ ४१ ॥
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदापाणिरयुध्यत।

कृतवर्माने युद्धस्थलमें भीमसेनके रीछके समान रंगवाले घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मारे जानेपर पाण्डुनन्दन भीमसेन रथकी बैठकसे नीचे उतरकर हाथमें गदा ले युद्ध करने लगे, मानो यमराज अपना दण्ड उठाकर प्रहार कर रहे हों ॥ ४१½ ॥

प्रमुखे सहदेवस्य जघानाश्वान् स मद्रराट् ॥ ४२ ॥
ततः शल्यस्य तनयं सहदेवोऽसिनावधीत्।

मद्रराज शल्यने अपने सामने आये हुए सहदेवके घोड़ों-को मार डाला। तब सहदेवने भी शल्यके पुत्रको तलवारसे मार गिराया ॥ ४२½ ॥

गौतमः पुनराचार्यो धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ ४३ ॥
असम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तो यत्नवान् यत्नवत्तरम्।

कृपाचार्य बिना किसी घबराहटके विजयके लिये यत्न-शील हो सम्भ्रमरहित और अधिक प्रयत्नशील धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४३½ ॥

द्रौपदेयांस्तथा वीरानेकैकं दशभिः शरैः ॥ ४४ ॥
अविध्यद्‌द्‌ाचार्यसुतो नातिक्रुद्धो हसन्निव।

आचार्य द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने अधिक क्रुद्ध न होकर हँसते हुए-से दस-दस बाणोंद्वारा द्रौपदीके वीर पुत्रोंमेंसे प्रत्येक-को घायल कर दिया ॥ ४४½ ॥

पुनश्च भीमसेनस्य जघानाश्वांस्तथाऽऽहवे ॥ ४५ ॥
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं हताश्वः पाण्डुनन्दनः।
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदां क्रुद्धो महाबलः ॥ ४६ ॥
पोथयामास तुरगान् रथं च कृतवर्मणः।
कृतवर्मा त्ववप्लुत्य रथात् तस्मादपाक्रमत् ॥ ४७ ॥

(इसी बीचमें भीमसेन दूसरे रथपर आरूढ़ हो गये थे) कृतवर्माने युद्धस्थलमें पुनः भीमसेनके घोड़ोंको मार डाला। तब घोड़ोंके मारे जानेपर महाबली पाण्डुकुमार भीम-सेन शीघ्र ही रथसे उतर पड़े और कुपित हो दण्ड उठाये कालके समान गदा लेकर उन्होंने कृतवर्माके घोड़ों तथा रथ-को चूर-चूर कर दिया। कृतवर्मा उस रथसे कूदकर भाग गया ॥ ४५–४७ ॥

शल्योऽपि राजन् संक्रुद्धो निघ्नन् सोमकपाण्डवान्।
पुनरेव शितैर्बाणैर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ४८ ॥

राजन् ! इधर शल्य भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर सोमकों और पाण्डवयोद्धाओंका संहार करने लगे। उन्होंने पुनः पैने बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको पीड़ा देना प्रारम्भ किया ॥ ४८ ॥

तस्य भीमो रणे क्रुद्धः संदश्य दशनच्छदम्।
विनाशायाभिसंधाय गदामादाय वीर्यवान् ॥ ४९ ॥
यमदण्डप्रतीकाशां कालरात्रिमिवोद्यताम्।
गजवाजिमनुष्याणां देहान्तकरणीमपि ॥ ५० ॥

यह देख पराक्रमी भीमसेन कुपित हो ओठ चबाते हुए रणभूमिमें शल्यके विनाशका संकल्प लेकर यमदण्डके समान भयंकर गदा लिये उनपर टूट पड़े। हाथी, घोड़े और मनुष्योंके भी शरीरोंका विनाश करनेवाली वह गदा संहारके लिये उद्यत हुई कालरात्रिके समान जान पड़ती थी ॥ ४९-५० ॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तामुल्कां प्रज्वलितामिव।
शैक्यां व्यालीमिवात्युग्रां वज्रकल्पामयोमयीम् ॥ ५१ ॥
चन्दनागुरुपङ्काक्तां प्रमदामीप्सितामिव।
वसामेदोपदिग्धाङ्गीं जिह्वां वैवस्वतीमिव ॥ ५२ ॥

उसके ऊपर सोनेका पत्र जड़ा गया था। वह लोहेकी बनी हुई वज्रतुल्य गदा प्रज्वलित उल्का तथा छींकेपर बैठी हुई सर्पिणीके समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होती थी। अङ्गों-में चन्दन और अगुरुका लेप लगाये हुए मनचाही प्रियतमा रमणीके समान उसके सर्वाङ्गमें वसा और मेद लिपटे हुए थे। वह देखनेमें यमराजकी जिह्वाके समान भयंकर थी ५१-५२

पटुघण्टाशतरवां वासवीमशनीमिव।
निर्मुक्ताशीविषाकारां पृक्तां गजमदैरपि ॥ ५३ ॥
त्रासनीं सर्वभूतानां स्वसैन्यपरिहर्षिणीम्।
मनुष्यलोके विख्यातां गिरिशृङ्गविदारणीम् ॥ ५४ ॥

उसमें सैकड़ों घंटियाँ लगी थीं, जिनका कलरव गूँजता रहता था। वह इन्द्रके वज्रकी भाँति भयानक जान पड़ती थी। केंचुलसे छूटे हुए विषधर सर्पके समान वह सम्पूर्ण प्राणियोंके मनमें भय उत्पन्न करती थी और अपनी सेनाका हर्ष बढ़ाती रहती थी। उसमें हाथीके मद लिपटे हुए थे। पर्वतशिखरों-को विदीर्ण करनेवाली वह गदा मनुष्यलोकमें सर्वत्र विख्यात है ॥ ५३-५४ ॥

यया कैलासभवने महेश्वरसखं बली।
आह्वयामास युद्धाय भीमसेनो महाबलः ॥ ५५ ॥

यह वही गदा है, जिसके द्वारा महाबली भीमसेनने कैलासशिखरपर भगवान् शङ्करके सखा कुबेरको युद्धके लिये ललकारा था ॥ ५५ ॥

यया मायामयान् दृप्तान् सुबहून् धनदालये।
जघान गुह्यकान् क्रुद्धो नदन् पार्थो महाबलः ॥ ५६ ॥
निवार्यमाणो बहुभिर्द्रौपद्याः प्रियमास्थितः।

तथा जिसके द्वारा क्रोधमें भरे हुए महाबलवान् कुन्ती-कुमार भीमने बहुतोंके मना करनेपर भी द्रौपदीका प्रिय करने-के लिये उद्यत हो गर्जना करते हुए कुबेरभवनमें रहनेवाले

बहुत-से मायामय अभिमानी गुह्यकोंका वध किया था ५६½
तां वज्रमणिरत्नौघकल्मषां वज्रगौरवाम् ॥ ५७ ॥
समुद्यम्य महाबाहुः शल्यमभ्यपतद् रणे ।
जिसमें वज्रकी गुरुता भरी है और जो हीरे, मणि तथा रत्न-समूहोंसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करती है, उसीको हाथमें उठाकर महाबाहु भीमसेन रणभूमिमें शल्यपर टूट पड़े ॥
गदया युद्धकुशलस्तया दारुणनादया ॥ ५८ ॥
पोथयामास शल्यस्य चतुरोऽश्वान् महाजवान् ।
युद्धकुशल भीमसेनने भयंकर शब्द करनेवाली उस गदाके द्वारा शल्यके महान् वेगशाली चारों घोड़ोंको मार गिराया ॥५८½॥
ततः शल्यो रणे क्रुद्धः पीने वक्षसि तोमरम् ॥ ५९ ॥
निचखान नदन् वीरो वर्म भित्त्वा च सोऽभ्ययात् ।
तब रणभूमिमें कुपित हो गर्जना करते हुए वीर शल्यने भीमसेनके विशाल वक्षःस्थलमें एक तोमर धँसा दिया । वह उनके कवचको छेदकर छातीमें गड़ गया ॥ ५९½ ॥
वृकोदरस्त्वसम्भ्रान्तस्तमेवोद्धृत्य तोमरम् ॥ ६० ॥
यन्तारं मद्रराजस्य निर्बिभेद ततो हृदि ।
इससे भीमसेनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उन्होंने उसी तोमरको निकालकर उसके द्वारा मद्रराज शल्यके सारथि-की छाती छेद डाली ॥ ६०½ ॥
स भिन्नमर्मा रुधिरं वमन् वित्रस्तमानसः ॥ ६१ ॥
पपाताभिमुखो दीनो मद्रराजस्त्वपाक्रमत् ।
इससे सारथिका मर्मस्थल विदीर्ण हो गया और वह मुँह-से रक्तवमन करता हुआ दीन एवं भयभीतचित्त होकर शल्य-के सामने ही रथसे नीचे गिर पड़ा । फिर तो मद्रराज शल्य वहाँसे पीछे हट गये ॥ ६१½ ॥
कृतप्रतिकृतं दृष्ट्वा शल्यो विस्मितमानसः ॥ ६२ ॥
गदामाश्रित्य धर्मात्मा प्रत्यमित्रमवैक्षत ।
अपने प्रहारका भरपूर उत्तर प्राप्त हुआ देख धर्मात्मा शल्यका चित्त आश्चर्यसे चकित हो उठा । वे गदा हाथमें लेकर अपने शत्रुकी ओर देखने लगे ॥ ६२½ ॥
ततः सुमनसः पार्था भीमसेनमपूजयन् ।
ते दृष्ट्वा कर्म संग्रामे घोरमक्लिष्टकर्मणः ॥ ६३ ॥
संग्राममें अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भीमसेनका वह घोर पराक्रम देखकर कुन्तीके सभी पुत्र प्रसन्नचित्त हो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि भीमसेनशल्ययुद्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें भीमसेन और शल्यका युद्धविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

भीमसेन और शल्यका भयानक गदायुद्ध तथा युधिष्ठिरके साथ शल्यका युद्ध, दुर्योधनद्वारा चेकितानका और युधिष्ठिरद्वारा चन्द्रसेन एवं द्रुमसेनका वध, पुनः युधिष्ठिर और माद्रीपुत्रोंके साथ शल्यका युद्ध

संजय उवाच
पतितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
आदाय तरसा राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १ ॥
संजय कहते हैं—राजन् ! अपने सारथिको गिरा हुआ देख मद्रराज शल्य वेगपूर्वक लोहेकी गदा हाथमें लेकर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये ॥ १ ॥
तं दीप्तमिव कालाग्निं पाशहस्तमिवान्तकम् ।
सशृङ्गमिव कैलासं सवज्रमिव वासवम् ॥ २ ॥
सशूलमिव हर्यक्षं वने मत्तमिव द्विपम् ।
जवेनाभ्यपतद् भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ३ ॥
वे प्रलयकालकी प्रज्वलित अग्नि, पाशधारी यमराज, शिखरयुक्त कैलास, वज्रधारी इन्द्र, त्रिशूलधारी रुद्र तथा जंगलके मतवाले हाथीके समान भयंकर जान पड़ते थे । भीमसेन बहुत बड़ी गदा हाथमें लेकर वेगपूर्वक उनके ऊपर टूट पड़े ॥
ततः शङ्खप्रणादश्च तूर्याणां च सहस्रशः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां हर्षवर्धनः ॥ ४ ॥
फिर तो शङ्खनाद, सहस्रों वाद्योंका गम्भीर घोष तथा शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाला सिंहनाद सब ओर होने लगा ॥
प्रेक्षन्तः सर्वतस्तौ हि योधा योधमहाद्विपौ ।
तावकाश्चापरे चैव साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ ५ ॥
योद्धाओंमें महान् गजराजके समान पराक्रमी उन दोनों वीरोंको देखकर आपके और शत्रुपक्षके योद्धा सब ओरसे 'वाह-वाह' कहकर उनके प्रति सम्मान प्रकट करने लगे—॥
न हि मद्राधिपादन्यो रामाद् वा यदुनन्दनात् ।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ६ ॥
'संसारमें मद्रराज शल्य अथवा यदुनन्दन बलरामजीके सिवा दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो युद्धमें भीमसेनका वेग सह सके ॥ ६ ॥
तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुमुत्सहते नान्यो योधो युधि वृकोदरात् ॥ ७ ॥
'इसी प्रकार महामना मद्रराज शल्यकी गदाका वेग भी रणभूमिमें भीमसेनके सिवा दूसरा कोई योद्धा नहीं सह सकता'॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवर्तितौ गदाहस्तौ मद्रराजवृकोदरौ ॥ ८ ॥
शल्य और भीमसेन दोनों वीर हाथमें गदा लिये साँड़ोंकी तरह गर्जते हुए चक्कर लगाने और पैंतरे देने लगे ॥ ८ ॥
मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ९ ॥
मण्डलाकार गतिसे घूमनेमें, भाँति-भाँतिके पैंतरे दिखाने-की कलामें तथा गदाका प्रहार करनेमें उन दोनों पुरुषसिंहोंमें

कोई भी अन्तर नहीं दिखायी देता था; दोनों एक-से जान पड़ते थे ॥ ९ ॥

तप्तहेममयैः शुभ्रैर्बभूव भयवर्धिनी ।
अग्निजालैरिवाबद्धा पट्टैः शल्यस्य सा गदा ॥ १० ॥

तपाये हुए उज्ज्वल सुवर्णमय पत्रोंसे जड़ी हुई शल्यकी वह भयंकर गदा आगकी ज्वालाओंसे लिपटी हुई-सी प्रतीत होती थी ॥ १० ॥

तथैव चरतो मार्गान् मण्डलेषु महात्मनः ।
विद्युदभ्रप्रतीकाशा भीमस्य शुशुभे गदा ॥ ११ ॥

इसी प्रकार मण्डलाकार गतिसे विचित्र पैंतरोंके साथ विचरते हुए महामनस्वी भीमसेनकी गदा बिजलीसहित मेघके समान सुशोभित होती थी ॥ ११ ॥

ताडिता मद्रराजेन भीमस्य गदया गदा ।
दह्यमानेव खे राजन् सासृजत् पावकार्चिषः ॥ १२ ॥

राजन् ! मद्रराजने अपनी गदासे जब भीमसेनकी गदापर चोट की, तब वह प्रज्वलित-सी हो उठी और उससे आगकी लपटें निकलने लगीं ॥ १२ ॥

तथा भीमेन शल्यस्य ताडिता गदया गदा ।
अङ्गारवर्षं मुमुचे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १३ ॥

इसी प्रकार भीमसेनकी गदासे ताड़ित होकर शल्यकी गदा भी अङ्गारे बरसाने लगी। वह अद्भुत-सा दृश्य हुआ ॥ १३ ॥

दन्तैरिव महानागौ शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
तोत्त्रैरिव तदान्योन्यं गदाग्राभ्यां निजघ्नतुः ॥ १४ ॥

जैसे दो विशाल हाथी दाँतोंसे और दो बड़े-बड़े साँड़ सींगोंसे एक दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार अङ्कुशों-जैसी उन श्रेष्ठ गदाओंद्वारा वे दोनों वीर एक दूसरेपर आघात करने लगे ॥ १४ ॥

तौ गदाभिहतैर्गात्रैः क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १५ ॥

उन दोनोंके अङ्गोंमें गदाकी गहरी चोटोंसे घाव हो गये थे। अतः दोनों ही क्षणभरमें खूनसे नहा गये। उस समय खिले हुए दो पलाशवृक्षोंके समान वे दोनों वीर देखने ही योग्य जान पड़ते थे ॥ १५ ॥

गदया मद्रराजस्य सव्यदक्षिणमाहतः ।
भीमसेनो महाबाहुर्न चचालाचलो तथा ॥ १६ ॥

मद्रराजकी गदासे दायें-बायें अच्छी तरह चोट खाकर भी महाबाहु भीमसेन विचलित नहीं हुए। वे पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े रहे ॥ १६ ॥

तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो मुहुर्मुहुः ।
शल्यो न विव्यथे राजन् दन्तिनेव महागिरिः ॥ १७ ॥

इसी प्रकार भीमसेनकी गदाके वेगसे बारंबार आहत होनेपर भी शल्यको उसी प्रकार व्यथा नहीं हुई, जैसे दन्तार हाथीके आघातसे महान् पर्वत पीड़ित नहीं होता ॥ १७ ॥

शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदानिपातसंह्रादो वज्रयोरिव निःस्वनः ॥ १८ ॥

उस समय उन दोनों पुरुषसिंहोंकी गदाओंके टकरानेकी आवाज सम्पूर्ण दिशाओंमें दो वज्रोंके आघातके समान सुनायी देती थी ॥ १८ ॥

निवृत्य तु महावीर्यौ समुच्छ्रितमहागदौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ १९ ॥

महापराक्रमी भीमसेन और शल्य दोनों वीर अपनी विशाल गदाओंको ऊपर उठाये कभी पीछे लौट पड़ते, कभी मध्यम मार्गमें स्थित होते और कभी मण्डलाकार घूमने लगते थे ॥ १९ ॥

अथाभ्येत्य पदान्यष्टौ संनिपातोऽभवत् तयोः ।
उद्यम्य लोहदण्डाभ्यामतिमानुषकर्मणोः ॥ २० ॥

वे युद्ध करते-करते आठ कदम आगे बढ़ आये और लोहेके डंडे उठाकर एक दूसरेको मारने लगे। उनका पराक्रम अलौकिक था। उन दोनोंमें उस समय भयानक संघर्ष होने लगा ॥ २० ॥

पोथयन्तौ तदान्योन्यं मण्डलानि विचेरतुः ।
क्रियाविशेषं कृतिनौ दर्शयामासतुस्तदा ॥ २१ ॥

वे दोनों युद्धकलाके विद्वान् वीर, एक दूसरेको कुचलते हुए मण्डलाकार विचरते और अपना-अपना विशेष कार्य-कौशल प्रदर्शित करते थे ॥ २१ ॥

अथोद्यम्य गदे घोरे सशृङ्गाविव पर्वतौ ।
तावाजघ्नतुरन्योन्यं मण्डलानि विचेरतुः ॥ २२ ॥

तदनन्तर वे पुनः अपनी भयंकर गदाएँ उठाकर शिखरयुक्त दो पर्वतोंके समान परस्पर आघात करने और मण्डलाकार गतिसे विचरने लगे ॥ २२ ॥

क्रियाविशेषकृतिनौ रणभूमितलेऽचलौ ।
तौ परस्परसंरम्भाद् गदाभ्यां सुभृशाहतौ ॥ २३ ॥
युगपत् पेततुर्वीरावुभाविन्द्रध्वजाविव ।
उभयोः सेनयोर्वीरास्तदा हाहाकृतोऽभवन् ॥ २४ ॥

युद्धविषयक कार्यविशेषके ज्ञाता वे दोनों वीर अविचल-भावसे रणभूमिमें डटे हुए थे। वे एक दूसरेपर क्रोधपूर्वक गदाओंका प्रहार करके अत्यन्त घायल हो गये और दो इन्द्र-ध्वजोंके समान एक ही साथ पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय दोनों सेनाओंके वीर हाहाकार करने लगे ॥ २३-२४ ॥

भृशं मर्माण्यभिहतावुभावास्तां सुविह्वलौ ।
ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामृषभं रणे ॥ २५ ॥
अपोवाह कृपः शल्यं तूर्णमायोधनादथ ।

भीम और शल्य दोनोंके मर्मस्थानोंमें गहरी चोटें लगी थीं; इसलिये दोनों ही अत्यन्त व्याकुल हो गये थे। इतनेहीमें कृपाचार्य मद्रराज शल्यको अपने रथपर बिठाकर तुरंत ही युद्धभूमिसे दूर हटा ले गये ॥ २५½ ॥

क्षीणवद् विह्वलत्वात् तु निमेषात् पुनरुत्थितः॥ २६ ॥
भीमसेनो गदापाणिः समाह्वयत मद्रपम् ।

इधर गदाधारी भीमसेन पलक मारते-मारते पुनः होशमें आकर उठ खड़े हुए और विह्वलताके कारण मतवाले पुरुष-

के समान मद्रराजको युद्धके लिये ललकारने लगे ॥ २६½ ॥

ततस्तु तावकाः शूरा नानाशस्त्रसमायुताः ॥ २७ ॥
नानावादित्रशब्देन पाण्डुसेनामयोधयन् ।

तब आपके सैनिक नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर भाँति-भाँतिके रणवाद्योंकी गम्भीर ध्वनिके साथ पाण्डवसेनासे युद्ध करने लगे ॥ २७½ ॥

भुजावुच्छ्रित्य शस्त्रं च शब्देन महता ततः ॥ २८ ॥
अभ्यद्रवन् महाराज दुर्योधनपुरोगमाः ।

महाराज ! दुर्योधन आदि कौरववीर दोनों हाथ और शस्त्र उठाकर महान् कोलाहल एवं सिंहनाद करते हुए शत्रुओंपर टूट पड़े ॥ २८½ ॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य ततस्ते पाण्डुनन्दनाः ॥ २९ ॥
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनपुरोगमान् ।

उस कौरवदलको धावा करते देख पाण्डव-वीर सिंहके समान गर्जना करके दुर्योधन आदिकी ओर बढ़ चले ।२९½।

तेषामापततां तूर्णं पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ ३० ॥
प्रासेन चेकितानं वै विव्याध हृदये भृशम् ।

भरतश्रेष्ठ ! आपके पुत्रने तुरंत ही एक प्रासका प्रहार करके उन आक्रमणकारी पाण्डव योद्धाओंमेंसे चेकितानकी छातीपर गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३०½ ॥

स पपात रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ॥ ३१ ॥
रुधिरौघपरिक्लिन्नः प्रविश्य विपुलं तमः ।

आपके पुत्रद्वारा ताड़ित होकर चेकितान अत्यन्त मूर्छित हो रथकी बैठकमें गिर पड़ा । उस समय उसका सारा शरीर खूनसे लथपथ हो गया था ॥ ३१½ ॥

चेकितानं हतं दृष्ट्वा पाण्डवेया महारथाः ॥ ३२ ॥
असक्तमभ्यवर्षन्त शरवर्षाणि भागशः ।

चेकितानको मारा गया देख पाण्डव महारथी पृथक्-पृथक् बाणोंकी लगातार वर्षा करने लगे ॥ ३२½ ॥

तावकानामनीकेषु पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ३३ ॥
व्यचरन्त महाराज प्रेक्षणीयाः समन्ततः ।

महाराज ! विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डव आपकी सेनाओंमें सब ओर निर्भय विचरते थे । उस समय वे देखने ही योग्य थे ॥ ३३½ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च सौबलश्च महारथः ॥ ३४ ॥
अयोधयन् धर्मराजं मद्रराजपुरस्कृताः ।

तत्पश्चात् कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी शकुनि मद्रराज शल्यको आगे करके धर्मराज युधिष्ठिरसे युद्ध करने लगे ॥

भारद्वाजस्य हन्तारं भूरिवीर्यपराक्रमम् ॥ ३५ ॥
दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ।

राजाधिराज ! आपका पुत्र दुर्योधन अत्यन्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न द्रोणहन्ता धृष्टद्युम्नके साथ जूझने लगा ॥३५½॥

त्रिसाहस्रास्तथा राजंस्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ ३६ ॥
अयोधयन्त विजयं द्रोणपुत्रपुरस्कृताः ।

राजन् ! आपके पुत्रसे प्रेरित हो तीन हजार योद्धा अश्वत्थामाको अगुआ बनाकर अर्जुनके साथ युद्ध करने लगे ॥

विजये धृतसंकल्पाः समरे त्यक्तजीविताः ॥ ३७ ॥
प्राविशंस्तावका राजन् हंसा इव महत् सरः ।

नरेश्वर ! जैसे हंस महान् सरोवरमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार आपके सैनिक समराङ्गणमें विजयका दृढ़ संकल्प ले प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुओंकी सेनामें जा घुसे ॥ ३७½ ॥

ततो युद्धमभूद् घोरं परस्परवधैषिणाम् ॥ ३८ ॥
अन्योन्यवधसंयुक्तमन्योन्यप्रीतिवर्धनम् ।

फिर तो एक दूसरेके वधकी इच्छावाले उभयपक्षके सैनिकोंमें घोर युद्ध होने लगा । सभी एक दूसरेके संहारके लिये सचेष्ट थे और वह युद्ध उनकी पारस्परिक प्रसन्नताको बढ़ा रहा था ॥ ३८½ ॥

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे राजन् वीरवरक्षये ॥ ३९ ॥
अनिलेनेरितं घोरमुत्तस्थौ पार्थिवं रजः ।

राजन् ! बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाले उस घोर संग्रामके आरम्भ होते ही वायुकी प्रेरणासे धरतीकी भयंकर धूल ऊपरको उठने लगी ॥ ३९½ ॥

श्रवणान्नामधेयानां पाण्डवानां च कीर्तनात् ॥ ४० ॥
परस्परं विजानीमो यदयुध्यन्नभीतवत् ।

उस समय उस धूलके अन्धकारमें समस्त योद्धा निर्भय-से होकर युद्ध कर रहे थे । पाण्डव तथा कौरवयोद्धा जो अपना नाम लेकर परिचय देते थे, उसे ही सुनकर हमलोग एक दूसरेको पहचान पाते थे ॥ ४०½ ॥

तद्रजः पुरुषव्याघ्र शोणितेन प्रशामितम् ॥ ४१ ॥
दिशश्च विमला जातास्तस्मिंस्तमसि नाशिते ।

पुरुषसिंह ! उस समय इतना खून बहा कि उससे वहाँ छायी हुई सारी धूल बैठ गयी । उस धूलजनित अन्धकारका नाश होनेपर सम्पूर्ण दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं ॥ ४१½ ॥

तथा प्रवृत्ते संग्रामे घोररूपे भयानके ॥ ४२ ॥
तावकानां परेषां च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ।

इस प्रकार वह घोर एवं भयानक संग्राम चलने लगा । उस समय आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंमेंसे कोई भी युद्धसे विमुख नहीं हुआ ॥ ४२½ ॥

ब्रह्मलोकपरा भूत्वा प्रार्थयन्तो जयं युधि ॥ ४३ ॥
सुयुद्धेन पराक्रान्ता नराः स्वर्गमभीप्सवः ।

सबका लक्ष्य था ब्रह्मलोककी प्राप्ति । वे सभी सैनिक युद्धमें विजय चाहते और उत्तम युद्धके द्वारा पराक्रम दिखाते हुए स्वर्गलोक पानेकी अभिलाषा रखते थे ॥ ४३½ ॥

भर्तृपिण्डविमोक्षार्थं भर्तृकार्यविनिश्चिताः ॥ ४४ ॥
स्वर्गसंसक्तमनसो योधा युयुधिरे तदा ।

सभी योद्धा स्वामीके दिये हुए अन्नके ऋणसे उऋण होनेके लिये उनके कार्यको सिद्ध करनेका दृढ़ निश्चय किये मनमें स्वर्गकी अभिलाषा रखकर उस समय उत्साहपूर्वक युद्ध कर रहे थे ॥ ४४½ ॥

नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ॥ ४५ ॥
अन्योन्यमभिगर्जन्तः प्रहरन्तः परस्परम् ।

नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करके परस्पर प्रहार करनेवाले महारथी एक दूसरेको लक्ष्य करके गर्जना करते थे ॥

हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ॥ ४६ ॥
इति स्म वाचः श्रूयन्ते तव तेषां च वै बले ।

आपकी और पाण्डवोंकी सेनामें 'मारो, बींध डालो, पकड़ो, प्रहार करो और टुकड़े-टुकड़े कर डालो' ये ही बातें सुनायी देती थीं ॥ ४६½ ॥

ततः शल्यो महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४७ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्हन्तुकामो महारथम् ।

महाराज ! तदनन्तर राजा शल्यने महारथी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥

तस्य पार्थो महाराज नाराचान् वै चतुर्दश ॥ ४८ ॥
मर्माण्युद्दिश्य मर्मज्ञो निचखान हसन्निव ।

महाराज ! मर्मज्ञ कुन्तीकुमारने शल्यके मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके हँसते हुए-से चौदह नाराच चलाये और उनके अङ्गोंमें धँसा दिये ॥ ४८½ ॥

आवार्य पाण्डवं बाणैर्हन्तुकामो महाबलः ॥ ४९ ॥
विव्याध समरे क्रुद्धो बहुभिः कङ्कपत्रिभिः ।

महाबली शल्य पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको रोककर उन्हें मार डालनेकी इच्छासे समराङ्गणमें कङ्कपत्रयुक्त अनेक बाणोंद्वारा उनपर क्रोधपूर्वक प्रहार करने लगे ॥ ४९½ ॥

अथ भूयो महाराज शरेणानतपर्वणा ॥ ५० ॥
युधिष्ठिरं समाजघ्ने सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

राजाधिराज ! फिर उन्होंने सारी सेनाके देखते-देखते झुकी हुई गाँठवाले बाणसे युधिष्ठिरको घायल कर दिया ५०½

धर्मराजोऽपि संक्रुद्धो मद्रराजं महायशाः ॥ ५१ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।

तब महायशस्वी धर्मराजने भी अत्यन्त कुपित हो कङ्क और मोरकी पाँखोंवाले पैने बाणोंसे मद्रराज शल्यको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ५१½ ॥

चन्द्रसेनं च सप्तत्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ५२ ॥
द्रुमसेनं चतुःषष्ट्या निजघान महारथः ।

इसके बाद महारथी युधिष्ठिरने सत्तर बाणोंसे चन्द्रसेनको, नव बाणोंसे शल्यके सारथिको और चौंसठ बाणोंसे द्रुमसेनको मार डाला ॥ ५२½ ॥

चक्ररक्षे हते शल्यः पाण्डवेन महात्मना ॥ ५३ ॥
निजघान ततो राजंश्चेदीन् वै पञ्चविंशतिम् ।

महात्मा पाण्डवके द्वारा अपने चक्ररक्षकके मारे जानेपर राजा शल्यने पचीस चेदि-योद्धाओंका संहार कर डाला ५३½

सात्यकिं पञ्चविंशत्या भीमसेनं च पञ्चभिः ॥ ५४ ॥
माद्रीपुत्रौ शतेनाजौ विव्याध निशितैः शरैः ।

फिर सात्यकिको पचीस, भीमसेनको पाँच तथा माद्रीके पुत्रोंको सौ तीखे बाणोंसे रणभूमिमें घायल कर दिया ॥५४½॥

एवं विचरतस्तस्य संग्रामे राजसत्तम ॥ ५५ ॥
सम्प्रैषयच्छितान् पार्थः शरानाशीविषोपमान् ।

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार संग्राममें विचरते हुए राजा शल्यको लक्ष्य करके कुन्तीकुमारने विषधर सर्पोंके समान भयंकर एवं तीखे बाण चलाये ॥ ५५½ ॥

ध्वजाग्रं चास्य समरे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५६ ॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद् रथात् ।

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने समराङ्गणमें सामने खड़े हुए शल्यकी ध्वजाके अग्रभागको एक भल्लके द्वारा रथसे काट गिराया ॥

पाण्डुपुत्रेण वै तस्य केतुं छिन्नं महात्मना ॥ ५७ ॥
निपतन्तमपश्याम गिरिशृङ्गमिवाहतम् ।

महात्मा पाण्डुपुत्रके द्वारा कटकर गिरते हुए उस ध्वजको हमलोगोंने वज्रके आघातसे टूटकर नीचे गिरनेवाले पर्वत-शिखरके समान देखा था ॥ ५७½ ॥

ध्वजं निपतितं दृष्ट्वा पाण्डवं च व्यवस्थितम् ॥ ५८ ॥
संक्रुद्धो मद्रराजोऽभूच्छरवर्षं मुमोच ह ।

ध्वज नीचे गिर पड़ा और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर सामने खड़े हैं; यह देखकर मद्रराज शल्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५८½ ॥

शल्यः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ५९ ॥
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न क्षत्रियशिरोमणि शल्य वृष्टिकारी मेघके समान क्षत्रियोंपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ५९½

सात्यकिं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ६० ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ।

सात्यकि, भीमसेन और माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव—इनमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाणोंसे घायल करके वे युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे ॥ ६०½ ॥

ततो बाणमयं जालं विततं पाण्डवोरसि ॥ ६१ ॥
अपश्याम महाराज मेघजालमिवोद्गतम् ।

महाराज ! तदनन्तर हमलोगोंने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी छातीपर बाणोंका जाल-सा बिछा हुआ देखा, मानो आकाशमें मेघोंकी घटा घिर आयी हो ॥ ६१½ ॥

तस्य शल्यो रणे क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ६२ ॥
दिशः संछादयामास प्रदिशश्च महारथः ।

रणभूमिमें कुपित हुए महारथी शल्यने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे युधिष्ठिरकी सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंको ढक दिया ॥ ६२½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा बाणजालेन पीडितः ।
बभूवाद्भुतविक्रान्तो जम्भो वृत्रहणा यथा ॥ ६३ ॥

उस समय अद्भुत पराक्रमी राजा युधिष्ठिर उस बाण-समूहसे वैसे ही पीड़ित हो गये, जैसे इन्द्रने जम्भासुरको संतप्त किया था ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

मद्रराज शल्यका अद्भुत पराक्रम

संजय उवाच

पीडिते धर्मराजे तु मद्रराजेन मारिष।
सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ १॥
परिवार्य रथैः शल्यं पीडयामासुराहवे।

संजय कहते हैं—आर्य! जब मद्रराज शल्य धर्मराज युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे, तब सात्यकि, भीमसेन और माद्रीपुत्र पाण्डव नकुल-सहदेवने युद्धस्थलमें शल्यको रथोंद्वारा घेरकर उन्हें पीड़ा देना प्रारम्भ किया॥ १½॥

तमेकं बहुभिर्दृष्ट्वा पीड्यमानं महारथैः॥ २॥
साधुवादो महाञ्जज्ञे सिद्धाश्चासन् प्रहर्षिताः।
आश्चर्यमित्यभाषन्त मुनयश्चापि सङ्गताः॥ ३॥

अकेले शल्यको अनेक महारथियोंद्वारा पीड़ित होते देख उनको सब ओरसे महान् साधुवाद प्राप्त होने लगा। वहाँ एकत्र हुए सिद्ध और महर्षि भी हर्षमें भरकर बोल उठे—'आश्चर्य है'॥ २-३॥

भीमसेनो रणे शल्यं शल्यभूतं पराक्रमे।
एकेन विद्ध्वा बाणेन पुनर्विव्याध सप्तभिः॥ ४॥

भीमसेनने रणभूमिमें अपने पराक्रमके लिये कण्टकरूप शल्यको पहले एक बाणसे घायल करके फिर सात बाणोंसे बींध डाला॥ ४॥

सात्यकिश्च शतेनैनं धर्मपुत्रपरीप्सया।
मद्रेश्वरमवाकीर्य सिंहनादमथानदत्॥ ५॥

सात्यकि भी धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये मद्रराजको सौ बाणोंसे आच्छादित करके सिंहके समान दहाड़ने लगे॥ ५॥

नकुलः पञ्चभिश्चैनं सहदेवश्च पञ्चभिः।
विद्ध्वा तं तु पुनस्तूर्णं ततो विव्याध सप्तभिः॥ ६॥

नकुल और सहदेवने पाँच-पाँच बाणोंसे शल्यको घायल करके फिर सात बाणोंसे उन्हें तुरंत ही बींध डाला॥ ६॥

स तु शूरो रणे यत्तः पीडितस्तैर्महारथैः।
विकृष्य कार्मुकं घोरं वेगघ्नं भारसाधनम्॥ ७॥
सात्यकिं पञ्चविंशत्या शल्यो विव्याध मारिष।
भीमसेनं तु सप्तत्या नकुलं सप्तभिस्तथा॥ ८॥

माननीय नरेश! समराङ्गणमें शूरवीर शल्यने उन महारथियोंद्वारा पीड़ित होनेपर भी विजयके लिये यत्नशील हो भार सहन करनेमें समर्थ और शत्रुके वेगका नाश करनेवाले एक भयंकर धनुषको खींचकर सात्यकिको पचीस, भीमसेनको सत्तर और नकुलको सात बाण मारे॥ ७-८॥

ततः सविशिखं चापं सहदेवस्य धन्विनः।
छित्त्वा भल्लेन समरे विव्याधैनं त्रिसप्तभिः॥ ९॥

तत्पश्चात् समरभूमिमें एक भल्लके द्वारा धनुर्धर सहदेवके बाणसहित धनुषको काटकर शल्यने उन्हें इक्कीस बाणोंसे घायल कर दिया॥ ९॥

सहदेवस्तु समरे मातुलं भूरिवर्चसम्।
सज्यमन्यद् धनुः कृत्वा पञ्चभिः समताडयत्॥ १०॥
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलज्ज्वलनसंनिभैः।

तब सहदेवने संग्राममें दूसरे धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर अपने अत्यन्त तेजस्वी मामाको विषधर सर्पोंके समान भयंकर और जलती हुई आगके समान प्रज्वलित पाँच बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥ १०½॥

सारथिं चास्य समरे शरेणानतपर्वणा॥ ११॥
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तं वै भूयस्त्रिभिः शरैः।

साथ ही अत्यन्त कुपित होकर उन्होंने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे उनके सारथिको भी पीट दिया और उन्हें भी पुनः तीन बाणोंसे घायल किया॥ ११½॥

भीमसेनस्तु सप्तत्या सात्यकिर्नवभिः शरैः॥ १२॥
धर्मराजस्तथा षष्ट्या गात्रे शल्यं समार्पयत्।

तत्पश्चात् भीमसेनने सत्तर, सात्यकिने नौ और धर्मराज युधिष्ठिरने साठ बाणोंसे शल्यके शरीरको चोट पहुँचायी १२½

ततः शल्यो महाराज निर्विद्धस्तैर्महारथैः॥ १३॥
सुस्राव रुधिरं गात्रैर्गैरिकं पर्वतो यथा।

महाराज! उन महारथियोंद्वारा अत्यन्त घायल कर दिये जानेपर राजा शल्य अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाने लगे, मानो पर्वत गेरु-मिश्रित जलका झरना बहा रहा हो॥ १३½॥

तांश्च सर्वान् महेष्वासान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः॥ १४॥
विव्याध तरसा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्।

राजन्! उन्होंने उन सभी महाधनुर्धरोंको पाँच-पाँच बाणोंसे वेगपूर्वक घायल कर दिया। वह उनके द्वारा अद्भुत-सा कार्य हुआ॥ १४½॥

ततोऽपरेण भल्लेन धर्मपुत्रस्य मारिष॥ १५॥
धनुश्चिच्छेद समरे सज्यं स सुमहारथः।

मान्यवर! तदनन्तर उन श्रेष्ठ महारथी शल्यने समराङ्गणमें एक दूसरे भल्लके द्वारा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काट डाला॥ १५½॥

अथान्यद् धनुरादाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १६॥
साश्वसूतध्वजरथं शल्यं प्राच्छादयच्छरैः।

तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरा धनुष हाथमें लेकर घोड़े, सारथि, ध्वज और रथसहित शल्यको अपने बाणोंसे आच्छादित कर दिया॥ १६½॥

स च्छाद्यमानः समरे धर्मपुत्रस्य सायकैः॥ १७॥
युधिष्ठिरमथाविध्यद् दशभिर्निशितैः शरैः।

समराङ्गणमें धर्मपुत्रके बाणोंसे आच्छादित होते हुए शल्यने युधिष्ठिरको दस पैने बाणोंसे बींध डाला॥ १७½॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धर्मपुत्रे शरार्दिते॥ १८॥
मद्राणामधिपं शूरं शरैर्विव्याध पञ्चभिः।

जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर शल्यके बाणोंसे पीड़ित हो गये, तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने शूरवीर मद्रराजपर पाँच बाणोंका प्रहार किया ॥ १८½ ॥

स सात्यकेः प्रचिच्छेद क्षुरप्रेण महद् धनुः ॥ १९ ॥
भीमसेनमुखांस्तांश्च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ।

यह देख शल्यने एक क्षुरप्रसे सात्यकिके विशाल धनुषको काट दिया और भीमसेन आदिको भी तीन-तीन बाणोंसे चोट पहुँचायी ॥ १९½ ॥

तस्य क्रुद्धो महाराज सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ २० ॥
तोमरं प्रेषयामास स्वर्णदण्डं महाधनम् ।

महाराज ! तब सत्यपराक्रमी सात्यकिने कुपित हो शल्यपर सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एक बहुमूल्य तोमरका प्रहार किया ॥ २०½ ॥

भीमसेनोऽथ नाराचं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥ २१ ॥
नकुलः समरे शक्तिं सहदेवो गदां शुभाम् ।
धर्मराजः शतघ्नीं च जिघांसुः शल्यमाहवे ॥ २२ ॥

भीमसेनने प्रज्वलित सर्पके समान नाराच चलाया, नकुलने संग्रामभूमिमें शल्यपर शक्ति छोड़ी, सहदेवने सुन्दर गदा चलायी और धर्मराज युधिष्ठिरने रणक्षेत्रमें शल्यको मार डालनेकी इच्छासे उनपर शतघ्नीका प्रहार किया ॥२१-२२॥

तानापतत एवाशु पञ्चानां वै भुजच्युतान् ।
वारयामास समरे शस्त्रसङ्घैः स मद्रराट् ॥ २३ ॥

परंतु मद्रराज शल्यने समराङ्गणमें अपने शस्त्रसमूहोंद्वारा उन पाँचों वीरोंके हाथोंसे छूटे हुए उक्त सभी अस्त्रोंका शीघ्र ही निवारण कर दिया ॥ २३ ॥

सात्यकिप्रहितं शल्यो भल्लैश्चिच्छेद तोमरम् ।
प्रहितं भीमसेनेन शरं कनकभूषणम् ॥ २४ ॥
द्विधा चिच्छेद समरे कृतहस्तः प्रतापवान् ।

सिद्धहस्त एवं प्रतापी वीर शल्यने अपने भल्लोंद्वारा सात्यकिके चलाये हुए तोमरके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और भीमसेनके छोड़े हुए सुवर्णभूषित बाणके दो खण्ड कर डाले ॥

नकुलप्रेषितां शक्तिं हेमदण्डां भयावहाम् ॥ २५ ॥
गदां च सहदेवेन शरौघैः समवारयत् ।

इसी प्रकार उन्होंने नकुलकी चलायी हुई स्वर्ण-दण्ड-विभूषित भयंकर शक्तिका तथा सहदेवकी फेंकी हुई गदाका भी अपने बाणसमूहोंद्वारा निवारण कर दिया ॥ २५½ ॥

शराभ्यां च शतघ्नीं तां राज्ञश्चिच्छेद भारत ॥ २६ ॥
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां सिंहनादं ननाद च ।

भारत ! फिर शल्यने दो बाणोंसे राजा युधिष्ठिरकी उस शतघ्नीको भी पाण्डवोंके देखते-देखते काट डाला और सिंहके समान दहाड़ना आरम्भ किया ॥ २६½ ॥

नामृष्यत्तत्र शैनेयः शत्रोर्विजयमाहवे ॥ २७ ॥
अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ।
द्वाभ्यां मद्रेश्वरं विद्ध्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः॥२८॥

युद्धमें शत्रुकी इस विजयको शिनिपौत्र सात्यकि नहीं सहन कर सके । उन्होंने दूसरा धनुष हाथमें लेकर क्रोधसे आतुर हो दो बाणोंसे मद्रराजको घायल करके तीनसे उनके सारथिको भी बींध डाला ॥ २७-२८ ॥

ततः शल्यो रणे राजन् सर्वांस्तान् दशभिः शरैः ।
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपान् ॥ २९ ॥

राजन् ! तब राजा शल्य रणभूमिमें अत्यन्त कुपित हो उठे और जैसे महावत अङ्कुशोंसे बड़े-बड़े हाथियोंको चोट पहुँचाते हैं, उसी प्रकार उन्होंने उन सब योद्धाओंको दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २९ ॥

ते वार्यमाणाः समरे मद्रराज्ञा महारथाः ।
न शेकुः सम्मुखे स्थातुं तस्य शत्रुनिषूदनाः ॥ ३० ॥

समराङ्गणमें मद्रराज शल्यके द्वारा इस प्रकार रोके जाते हुए शत्रुसूदन पाण्डव-महारथी उनके सामने ठहर न सके ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा शल्यस्य विक्रमम् ।
निहतान् पाण्डवान् मेने पञ्चालानथ सृञ्जयान्॥ ३१ ॥

उस समय राजा दुर्योधन शल्यका वह पराक्रम देखकर ऐसा समझने लगा कि अब पाण्डव, पाञ्चाल और सृंजय अवश्य मार डाले जायँगे ॥ ३१ ॥

ततो राजन् महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान् ।
संत्यज्य मनसा प्राणान् मद्राधिपमयोधयत् ॥ ३२ ॥

राजन् ! तदनन्तर प्रतापी महाबाहु भीमसेन मनसे प्राणोंका मोह छोड़कर मद्रराज शल्यके साथ युद्ध करने लगे ॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
परिवार्य तदा शल्यं समन्ताद् व्यकिरञ्शरैः ॥ ३३ ॥

नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकिने भी उस समय शल्यको घेरकर उनके ऊपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ३३ ॥

स चतुर्भिर्महेष्वासैः पाण्डवानां महारथैः ।
वृतस्तान् योधयामास मद्रराजः प्रतापवान् ॥ ३४ ॥

इन चार महाधनुर्धर पाण्डवपक्षके महारथियोंसे घिरे हुए प्रतापी मद्रराज शल्य उन सबके साथ युद्ध कर रहे थे ॥

तस्य धर्मसुतो राजन् क्षुरप्रेण महाहवे ।
चक्ररक्षं जघानाशु मद्रराजस्य पार्थिवः ॥ ३५ ॥

राजन् ! उस महासमरमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने एक क्षुरप्रद्वारा मद्रराज शल्यके चक्ररक्षकको शीघ्र ही मार डाला॥

तस्मिंस्तु निहते शूरे चक्ररक्षे महारथे ।
मद्रराजोऽपि बलवान् सैनिकानावृणोच्छरैः ॥ ३६ ॥

अपने महारथी शूरवीर चक्ररक्षकके मारे जानेपर बलवान् मद्रराजने भी बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके समस्त योद्धाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३६ ॥

समावृतांस्ततस्तांस्तु राजन् वीक्ष्य स्वसैनिकान् ।
चिन्तयामास समरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥

राजन् ! समराङ्गणमें अपने समस्त सैनिकोंको बाणोंसे ढका हुआ देख धर्मपुत्र युधिष्ठिर मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगे—॥ ३७ ॥

कथं नु समरे शक्यं तन्माधववचो महत् ।
न हि क्रुद्धो रणे राजा क्षपयेत बलं मम ॥ ३८ ॥

'इस युद्धस्थलमें भगवान् श्रीकृष्णकी कही हुई वह महत्त्वपूर्ण बात कैसे सिद्ध हो सकेगी ? कहीं ऐसा न हो कि रणभूमिमें कुपित हुए महाराज शल्य मेरी सारी सेनाका संहार कर डालें ॥ ३८ ॥

(अहं मद्भ्रातरश्चैव सात्यकिश्च महारथः ।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव न शक्ताः स्म हि मद्रपम् ॥
निहनिष्यति चैवाद्य मातुलोऽस्मान् महाबलः ।
गोविन्दवचनं सत्यं कथं भवति किं त्विदम् ॥)

'मैं, मेरे भाई, महारथी सात्यकि तथा पाञ्चाल और संजय योद्धा सब मिलकर भी मद्रराज शल्यको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं । जान पड़ता है ये महाबली मामा आज हमलोगोंका वध कर डालेंगे । फिर भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात (कि शल्य मेरे हाथसे मारे जायँगे) कैसे सिद्ध होगी ?' ॥

ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
मद्रराजं समासेदुः पीडयन्तः समन्ततः ॥ ३९ ॥

पाण्डुके बड़े भाई महाराज धृतराष्ट्र ! तदनन्तर रथ, हाथी और घोड़ोंसहित समस्त पाण्डवयोद्धा मद्रराज शल्यको सब ओरसे पीड़ा देते हुए उनपर चढ़ आये ॥ ३९ ॥

नानाशस्त्रौघबहुलां शस्त्रवृष्टिं समुद्यताम् ।
व्यधमत् समरे राजा महाभ्राणीव मारुतः ॥ ४० ॥

जैसे वायु बड़े-बड़े बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार समराङ्गणमें राजा शल्यने अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण उस उमड़ी हुई शस्त्रवर्षाको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥

ततः कनकपुङ्खां तां शल्यक्षिप्तां वियद्गताम् ।
शरवृष्टिमपश्याम शलभानामिवायतिम् ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् शल्यके चलाये हुए सुनहरे पंखवाले बाणोंकी वर्षा आकाशमें टिड्डीदलोंके समान छा गयी, जिसे हमने अपनी आँखों देखा था ॥ ४१ ॥

ते शरा मद्रराजेन प्रेषिता रणमूर्धनि ।
सम्पतन्तः स्म दृश्यन्ते शलभानां व्रजा इव ॥ ४२ ॥

युद्धके मुहानेपर मद्रराजके चलाये हुए वे बाण शलभसमूहोंके समान गिरते दिखायी देते थे ॥ ४२ ॥

मद्रराजधनुर्मुक्तैः शरैः कनकभूषणैः ।
निरन्तरमिवाकाशं सम्बभूव जनाधिप ॥ ४३ ॥

नरेश्वर ! मद्रराज शल्यके धनुषसे छूटे हुए उन सुवर्णभूषित बाणोंसे आकाश ठसाठस भर गया था ॥ ४३ ॥

न पाण्डवानां नास्माकं तत्र किञ्चिद् व्यदृश्यत ।
बाणान्धकारे महति कृते तत्र महाहवे ॥ ४४ ॥

उस महायुद्धमें बाणोंद्वारा महान् अन्धकार छा गया, जिससे वहाँ हमारी और पाण्डवोंकी कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती थी ॥ ४४ ॥

मद्रराजेन बलिना लाघवाच्छरवृष्टिभिः ।
चाल्यमानं तु तं दृष्ट्वा पाण्डवानां बलार्णवम् ॥ ४५॥
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वदानवाः ।

बलवान् मद्रराजके द्वारा शीघ्रतापूर्वक की जानेवाली उस बाणवर्षासे पाण्डवोंके उस सैन्यसमुद्रको विचलित होते देख देवता, गन्धर्व और दानव अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये ४५½

स तु तान् सर्वतो यत्ताञ्शरैः संछाद्य मारिष ॥४६ ॥
धर्मराजमवच्छाद्य सिंहवद् व्यनदन्मुहुः ।

मान्यवर ! विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन समस्त योद्धाओंको सब ओरसे बाणोंद्वारा आच्छादित करके शल्य धर्मराज युधिष्ठिरको भी ढककर बारंबार सिंहके समान गर्जना करने लगे ॥ ४६½ ॥

ते च्छन्नाः समरे तेन पाण्डवानां महारथाः ॥ ४७ ॥
नाशक्नुवंस्तदा युद्धे प्रत्युद्यातुं महारथम् ।

समराङ्गणमें उनके बाणोंसे आच्छादित हुए पाण्डवोंके महारथी उस युद्धमें महारथी शल्यकी ओर आगे बढ़नेमें समर्थ न हो सके ॥ ४७½ ॥

धर्मराजपुरोगास्तु भीमसेनमुखा रथाः ।
न जहुः समरे शूरं शल्यमाहवशोभिनम् ॥ ४८ ॥

तो भी धर्मराजको आगे रखकर भीमसेन आदि रथी संग्राममें शोभा पानेवाले शूरवीर शल्यको वहाँ छोड़कर पीछे न हटे ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्ययुद्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्यका युद्धविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ५० श्लोक हैं)

चतुर्दशोऽध्यायः

अर्जुन और अश्वत्थामाका युद्ध तथा पाञ्चाल वीर सुरथका वध

संजय उवाच

अर्जुनो द्रौणिना विद्धो युद्धे बहुभिरायसैः ।
तस्य चानुचरैः शूरैस्त्रिगर्तानां महारथैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! दूसरी ओर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तथा उसके पीछे चलनेवाले त्रिगर्तदेशीय शूरवीर महारथियोंने अर्जुनको लोहेके बने हुए बहुत-से बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ १ ॥

द्रौणिं विव्याध समरे त्रिभिरेव शिलीमुखैः ।
तथेतरान् महेष्वासान् द्वाभ्यां द्वाभ्यां धनंजयः ॥ २ ॥

तब अर्जुनने समरभूमिमें तीन बाणोंसे अश्वत्थामाको और दो-दो बाणोंसे अन्य महाधनुर्धरोंको बींध डाला ॥ २ ॥

भूयश्चैव महाराज शरवर्षैरवाकिरत् ।
शरकण्टकितास्ते तु तावका भरतर्षभ ॥ ३ ॥
न जहुः पार्थमासाद्य ताड्यमानाः शितैः शरैः ।

महाराज ! भरतश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् अर्जुनने पुनः उन सबको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया । अर्जुनके पैने बाणोंकी मार खाकर उन बाणोंसे कण्टकयुक्त होकर भी आपके सैनिक अर्जुनको छोड़ न सके ॥ ३½ ॥

अर्जुनं रथवंशेन द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥ ४ ॥
अयोधयन्त समरे परिवार्य महारथाः ।

समराङ्गणमें द्रोणपुत्रको आगे करके कौरव महारथी अर्जुनको रथसमूहसे घेरकर उनके साथ युद्ध करने लगे ॥४½॥

तैस्तु क्षिप्ताः शरा राजन् कार्तस्वरविभूषिताः ॥ ५ ॥
अर्जुनस्य रथोपस्थं पूरयामासुरञ्जसा ।

राजन् ! उनके चलाये हुए सुवर्णभूषित बाणोंने अर्जुनके रथकी बैठकको अनायास ही भर दिया ॥ ५½ ॥

तथा कृष्णौ महेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥ ६ ॥
शरैर्वीक्ष्य विनुन्नाङ्गौ प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ।

सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ तथा महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्पूर्ण अङ्गोंको बाणोंसे व्यथित हुआ देख रणदुर्मद कौरवयोद्धा बड़े प्रसन्न हुए ॥ ६½ ॥

कूबरं रथचक्राणि ईषा योक्त्राणि वा विभो ॥ ७ ॥
युगं चैवानुकर्षं च शरभूतमभूत्तदा ।

प्रभो ! अर्जुनके रथके पहिये, कूबर, ईषादण्ड, लगाम या जोते, जूआ और अनुकर्ष—ये सब-के-सब उस समय बाणमय हो रहे थे ॥ ७½ ॥

नैतादृशं दृष्टपूर्वं राजन् नैव च नः श्रुतम् ॥ ८ ॥
यादृशं तत्र पार्थस्य तावकाः सम्प्रचक्रिरे ।

राजन् ! वहाँ आपके योद्धाओंने अर्जुनकी जैसी अवस्था कर दी थी, वैसी पहले कभी न तो देखी गयी और न सुनी ही गयी थी ॥ ८½ ॥

स रथः सर्वतो भाति चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः ॥ ९ ॥
उल्काशतैः सम्प्रदीप्तं विमानमिव भूतले ।

विचित्र पंखवाले पैने बाणोंद्वारा सब ओरसे व्याप्त हुआ अर्जुनका रथ भूतलपर सैकड़ों मसालोंसे प्रकाशित होनेवाले विमानके समान शोभा पाता था ॥ ९½ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज शरैः संनतपर्वभिः ॥ १० ॥
अवाकिरत्तां पृतनां मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ।

महाराज ! तदनन्तर अर्जुनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा आपकी उस सेनाको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे मेघ पानीकी वर्षासे पर्वतको आच्छादित कर देता है ॥ १०½ ॥

ते वध्यमानाः समरे पार्थनामाङ्कितैः शरैः ॥ ११ ॥
पार्थभूतममन्यन्त प्रेक्षमाणास्तथाविधम् ।

समरभूमिमें अर्जुनके नामसे अङ्कित बाणोंकी चोट खाते हुए कौरवसैनिक उन्हें उसी रूपमें देखते हुए सब कुछ अर्जुनमय ही मानने लगे ॥ ११½ ॥

कोपोद्धतशरज्वालो धनुःशब्दानिलो महान् ॥ १२ ॥
सैन्येन्धनं ददाहाशु तावकं पार्थपावकः ।

अर्जुनरूपी महान् अग्निने क्रोधसे प्रज्वलित हुई बाणमयी ज्वालाएँ फैलाकर धनुषकी टंकाररूपी वायुसे प्रेरित हो आपके सैन्यरूपी ईंधनको शीघ्रतापूर्वक जलाना आरम्भ किया ॥१२½॥

चक्राणां पततां चापि युगानां च धरातले ॥ १३ ॥
तूणीराणां पताकानां ध्वजानां च रथैः सह ।
ईषाणामनुकर्षाणां त्रिवेणूनां च भारत ॥ १४ ॥
अक्षाणामथ योक्त्राणां प्रतोदानां च सर्वशः ।
शिरसां पततां चापि कुण्डलोष्णीषधारिणाम् ॥ १५ ॥
भुजानां च महाभाग स्कन्धानां च समन्ततः ।
छत्राणां व्यजनैः सार्धं मुकुटानां च राशयः ॥ १६ ॥
समदृश्यन्त पार्थस्य रथमार्गेषु भारत ।

भारत ! महाभाग ! अर्जुनके रथके मार्गोंमें धरतीपर गिरते हुए रथके पहियों, जूओं, तरकसों, पताकाओं, ध्वजों, रथों, हरसों, अनुकर्षों, त्रिवेणु नामक काष्ठों, धुरों, रस्सियों, चाबुकों, कुण्डल और पगड़ी धारण करनेवाले मस्तकों, भुजाओं, कंधों, छत्रों, व्यजनों और मुकुटोंके ढेर-के-ढेर दिखायी देने लगे। १३–१६½।

ततः क्रुद्धस्य पार्थस्य रथमार्गे विशाम्पते ॥ १७ ॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।

प्रजानाथ ! कुपित हुए अर्जुनके रथके मार्गकी भूमिपर मांस और रक्तकी कीच जम जानेके कारण वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया ॥ १७½ ॥

भीरूणां त्रासजननी शूराणां हर्षवर्धिनी ॥ १८ ॥
बभूव भरतश्रेष्ठ रुद्रस्याक्रीडनं यथा ।

भरतश्रेष्ठ ! वह रणभूमि रुद्रदेवके क्रीडास्थल (श्मशान) की भाँति कायरोंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाली और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाली थी ॥ १८½ ॥

हत्वा तु समरे पार्थः सहस्रे द्वे परंतपः ॥ १९ ॥
रथानां सवरूथानां विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले पार्थ समराङ्गणमें आवरणसहित दो सहस्र रथोंका संहार करके धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १९½ ॥

यथा हि भगवानग्निर्जगद् दग्ध्वा चराचरम् ॥ २० ॥
विधूमो दृश्यते राजंस्तथा पार्थो धनंजयः ।

राजन् ! जैसे चराचर जगत्को दग्ध करके भगवान् अग्निदेव धूमरहित देखे जाते हैं, उसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुन भी देदीप्यमान हो रहे थे ॥ २०½ ॥

द्रौणिस्तु समरे दृष्ट्वा पाण्डवस्य पराक्रमम् ॥ २१ ॥
रथेनातिपताकेन पाण्डवं प्रत्यवारयत् ।

संग्रामभूमिमें पाण्डुपुत्र अर्जुनका वह पराक्रम देखकर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने अत्यन्त ऊँची पताकावाले रथके द्वारा आकर उन्हें रोका ॥ २१½ ॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ तावुभौ धन्विनां वरौ ॥ २२ ॥
समीयतुस्तदान्योन्यं परस्परवधैषिणौ ।

वे दोनों ही मनुष्योंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी थे और दोनों ही धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ समझे जाते थे । उस समय परस्पर वधकी इच्छासे दोनों ही एक-दूसरेके साथ भिड़ गये ॥२२½॥

तयोरासीन्महाराज बाणवर्षं सुदारुणम् ॥ २३ ॥
जीमूतयोर्यथा वृष्टिस्तपान्ते भरतर्षभ ।

महाराज ! भरतश्रेष्ठ ! जैसे वर्षा ऋतुमें दो मेघखण्ड पानी बरसा रहे हों, उसी प्रकार उन दोनोंके बाणोंकी वहाँ अत्यन्त भयंकर वर्षा होने लगी ॥ २३½ ॥

अन्योन्यस्पर्धिनौ तौ तु शरैः संनतपर्वभिः ॥ २४ ॥
ततक्षतुस्तदान्योन्यं शृङ्गाभ्यां वृषभाविव ।

जैसे दो साँड़ परस्पर सींगोंसे प्रहार करते हैं, उसी प्रकार आपसमें लाग-डाँट रखनेवाले वे दोनों वीर झुकी हुई गाँठ-वाले बाणोंद्वारा एक-दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे ॥ २४½ ॥

तयोर्युद्धं महाराज चिरं सममिवाभवत् ॥ २५ ॥
शस्त्राणां सङ्गमश्चैव घोरस्तत्राभवत् पुनः ।

महाराज ! बहुत देरतक तो उन दोनोंका युद्ध एक-सा चलता रहा । फिर उनमें वहाँ अस्त्र-शस्त्रोंका घोर संघर्ष आरम्भ हो गया ॥ २५½ ॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभी रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः ॥ २६ ॥
वासुदेवं च दशभिर्द्रौणिर्विव्याध भारत ।

भरतनन्दन ! तब अश्वत्थामाने अत्यन्त तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बारह बाणोंसे अर्जुनको और दस सायकोंसे श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया ॥ २६½ ॥

ततः प्रहर्षाद् बीभत्सुर्व्याक्षिपद् गाण्डिवं धनुः ॥२७॥
मानयित्वा मुहूर्तं तु गुरुपुत्रं महाहवे ।

तदनन्तर उस महासमरमें दो घड़ीतक गुरुपुत्रका आदर करके अर्जुनने बड़े हर्ष और उत्साहके साथ गाण्डीव धनुषको खींचना आरम्भ किया ॥ २७½ ॥

व्यश्वसूतरथं चक्रे सव्यसाची परंतपः ॥ २८ ॥
मृदुपूर्वं ततश्चैनं पुनः पुनरताडयत् ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले सव्यसाचीने अश्वत्थामाके घोड़े, सारथि एवं रथको चौपट कर दिया । फिर वे हल्के हाथों बाण चलाकर बारंबार उसे घायल करने लगे ॥ २८½ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन् द्रोणपुत्रस्त्वयस्मयम् ॥ २९ ॥
मुसलं पाण्डुपुत्राय चिक्षेप परिघोपमम् ।

जिसके घोड़े मार डाले गये थे, उसी रथपर खड़े हुए द्रोणपुत्रने पाण्डुकुमार अर्जुनपर लोहेका एक मुसल चलाया, जो परिघके समान प्रतीत होता था ॥ २९½ ॥

तमापतन्तं सहसा हेमपट्टविभूषितम् ॥ ३० ॥
चिच्छेद सप्तधा वीरः पार्थः शत्रुनिबर्हणः ।

शत्रुओंका संहार करनेवाले वीर अर्जुनने सहसा अपनी ओर आते हुए उस सुवर्णपत्रविभूषित मुसलके सात टुकड़े कर डाले ॥ ३०½ ॥

स च्छिन्नं मुसलं दृष्ट्वा द्रौणिः परमकोपनः ॥ ३१ ॥
आददे परिघं घोरं नगेन्द्रशिखरोपमम् ।

अपने मुसलको कटा हुआ देख अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ और उसने पर्वतशिखरके समान एक भयंकर परिघ हाथमें ले लिया ॥ ३१½ ॥

चिक्षेप चैव पार्थाय द्रौणिर्युद्धविशारदः ॥ ३२ ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धं परिघं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अर्जुनस्त्वरितो जघ्ने पञ्चभिः सायकोत्तमैः ॥ ३३ ॥

युद्धविशारद द्रोणपुत्रने वह परिघ अर्जुनपर दे मारा । क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान उस परिघको देखकर पाण्डु-पुत्र अर्जुनने तुरंत ही पाँच उत्तम बाणोंद्वारा उसे काट गिराया ॥ ३२-३३ ॥

स च्छिन्नः पतितो भूमौ पार्थबाणैर्महाहवे ।
दारयन् पृथिवीन्द्राणां मनांसीव च भारत ॥ ३४ ॥

भारत ! उस महासमरमें पार्थके बाणोंसे कटकर वह परिघ राजाओंके हृदयोंको विदीर्ण करता हुआ-सा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३४ ॥

ततोऽपरैस्त्रिभिर्भल्लैर्द्रौणिं विव्याध पाण्डवः ।
सोऽतिविद्धो बलवता पार्थेन सुमहात्मना ॥ ३५ ॥
नाकम्पत तदा द्रौणिः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः ।

तत्पश्चात् पाण्डुकुमार अर्जुनने दूसरे तीन भल्लोंसे द्रोण-पुत्रको घायल कर दिया । महामनस्वी बलवान् वीर अर्जुनके द्वारा अत्यन्त घायल होकर भी अश्वत्थामा अपने पुरुषार्थका आश्रय ले तनिक भी कम्पित नहीं हुआ ॥ ३५½ ॥

सुरथं च ततो राजन् भारद्वाजो महारथम् ॥ ३६ ॥
अवाकिरच्छरव्रातैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।

राजन् ! तब भारद्वाजनन्दन अश्वत्थामाने सम्पूर्ण क्षत्रियों-के देखते-देखते महारथी सुरथको अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ३६½ ॥

ततस्तु सुरथोऽप्याजौ पञ्चालानां महारथः ॥ ३७ ॥
रथेन मेघघोषेण द्रौणिमेवाभ्यधावत ।

तब युद्धस्थलमें पाञ्चाल महारथी सुरथने भी मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले रथके द्वारा अश्वत्थामापर ही धावा किया ॥

विकर्षन् वै धनुः श्रेष्ठं सर्वभारसहं दृढम् ॥ ३८ ॥
ज्वलनाशीविषनिभैः शरैश्चैनमवाकिरत् ।

सब प्रकारके भारोंको सहन करनेमें समर्थ, सुदृढ़ एवं उत्तम धनुषको खींचकर सुरथने अग्नि और विषैले सर्पोंके समान भयंकर बाणोंकी वर्षा करके अश्वत्थामाको ढक दिया ॥

सुरथं तं ततः क्रुद्धमापतन्तं महारथम् ॥ ३९ ॥
चुकोप समरे द्रौणिर्दण्डाहत इवोरगः ।

महारथी सुरथको क्रोधपूर्वक आक्रमण करते देख अश्व-त्थामा समरमें डंडेकी चोट खाये हुए सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ ३९½ ॥

त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा सृक्किणी परिसंलिहन् ॥४०॥
उद्वीक्ष्य सुरथं रोषाद् धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
मुमोच तीक्ष्णं नाराचं यमदण्डोपमद्युतिम् ॥ ४१ ॥

वह भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके अपने गलफरोंको चाटने लगा और सुरथकी ओर रोषपूर्वक देखकर धनुषकी प्रत्यञ्चाको साफ करके उसने यमदण्डके समान तेजस्वी तीखे नाराचका प्रहार किया ॥ ४०-४१ ॥

स तस्य हृदयं भित्त्वा प्रविवेशातिवेगितः ।
शक्राशनिरिवोत्सृष्टो विदार्य धरणीतलम् ॥ ४२ ॥

जैसे इन्द्रका छोड़ा हुआ अत्यन्त वेगशाली वज्र पृथ्वी फाड़कर उसके भीतर घुस जाता है, उसी प्रकार वह नाराच वेगपूर्वक सुरथकी छाती छेदकर उसके भीतर समा गया ॥ ४२ ॥

ततः स पतितो भूमौ नाराचेन समाहतः ।
वज्रेण च यथा शृङ्गं पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ४३ ॥

नाराचसे घायल हुआ सुरथ वज्रसे विदीर्ण हुए पर्वतके शिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४३ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव रथिनां वरः ॥ ४४ ॥

उस वीरके मारे जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुरंत ही उसी रथपर आरूढ हो गया ॥ ४४ ॥

ततः सज्जो महाराज द्रौणिराहवदुर्मदः ।
अर्जुनं योधयामास संशप्तकवृतो रणे ॥ ४५ ॥

महाराज ! फिर युद्धसज्जासे सुसज्जित हो रणभूमिमें संशप्तकोंसे घिरा हुआ रणदुर्मद द्रोणकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा ॥ ४५ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीदर्जुनस्य परैः सह ।
मध्यंदिनगते सूर्ये यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४६ ॥

वहाँ दोपहर होते-होते अर्जुनका शत्रुओंके साथ महाघोर युद्ध होने लगा, जो यमराजके राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाला था ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम दृष्ट्वा तेषां पराक्रमम् ।
यदेको युगपद् वीरान् समयोधयदर्जुनः ॥ ४७ ॥

उस समय उन कौरवपक्षीय वीरोंका पराक्रम देखकर हमने एक और आश्चर्यकी बात यह देखी कि अर्जुन अकेले ही एक ही समय उन सभी वीरोंके साथ युद्ध कर रहे हैं ॥४७॥

विमर्दः सुमहानासीदेकस्य बहुभिः सह ।
शतक्रतुर्यथा पूर्वं महत्या दैत्यसेनया ॥ ४८ ॥

जैसे पूर्वकालमें विशाल दैत्यसेनाके साथ इन्द्रका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार एकमात्र अर्जुनका बहुसंख्यक विपक्षियोंके साथ महान् संग्राम होने लगा ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

दुर्योधन और धृष्टद्युम्नका एवं अर्जुन और अश्वत्थामाका तथा शल्यके साथ नकुल और सात्यकि आदिका घोर संग्राम

संजय उवाच

दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
चक्रतुः सुमहद् युद्धं शरशक्तिसमाकुलम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! एक ओर दुर्योधन तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न महान् युद्ध कर रहे थे । वह युद्ध बाणों और शक्तियोंके प्रहारसे व्याप्त हो रहा था ॥ १ ॥

तयोरासन् महाराज शरधाराः सहस्रशः ।
अम्बुदानां यथा काले जलधाराः समन्ततः ॥ २ ॥

राजाधिराज ! जैसे वर्षाकालमें सब ओर मेघोंकी जलधाराएँ बरसती हैं, उसी प्रकार उन दोनोंकी ओरसे बाणोंकी सहस्रों धाराएँ गिर रही थीं ॥ २ ॥

राजा च पार्षतं विद्ध्वा शरैः पञ्चभिराशुगैः ।
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३ ॥

राजा दुर्योधनने पाँच शीघ्रगामी बाणोंद्वारा भयंकर बाणवाले द्रोणहन्ता धृष्टद्युम्नको बींधकर पुनः सात बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे बलवान् दृढविक्रमः ।
सप्तत्या विशिखानां वै दुर्योधनमपीडयत् ॥ ४ ॥

तब सुदृढ़ पराक्रमी बलवान् धृष्टद्युम्नने संग्रामभूमिमें सत्तर बाण मारकर दुर्योधनको पीड़ित कर दिया ॥ ४ ॥

पीडितं वीक्ष्य राजानं सोदर्या भरतर्षभ ।
महत्या सेनया सार्धं परिवव्रुः स पार्षतम् ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा दुर्योधनको पीड़ित हुआ देख उसके सारे भाइयोंने विशाल सेनाके साथ आकर धृष्टद्युम्नको घेर लिया ॥

स तैः परिवृतः शूरः सर्वतोऽतिरथैर्भृशम् ।
व्यचरत् समरे राजन् दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ ६ ॥

राजन् ! उन अतिरथी वीरोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए धृष्टद्युम्न अपनी अस्त्रसंचालनकी फुर्ती दिखाते हुए समरभूमिमें विचरने लगे ॥ ६ ॥

शिखण्डी कृतवर्माणं गौतमं च महारथम् ।
प्रभद्रकैः समायुक्तो योधयामास धन्विनौ ॥ ७ ॥

दूसरी ओर शिखण्डीने प्रभद्रकोंकी सेना साथ लेकर कृतवर्मा और महारथी कृपाचार्य—इन दोनों धनुर्धरोंसे युद्ध छेड़ दिया ॥ ७ ॥

तत्रापि सुमहद् युद्धं घोररूपं विशाम्पते ।
प्राणान् संत्यजतां युद्धे प्राणद्यूताभिदेवने ॥ ८ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ भी जीवनका मोह छोड़कर प्राणोंकी बाजी लगाकर खेले जानेवाले युद्धरूपी जूएमें लगे हुए समस्त सैनिकोंमें घोर संग्राम हो रहा था ॥ ८ ॥

शल्यः सायकवर्षाणि विमुञ्चन् सर्वतोदिशम् ।
पाण्डवान् पीडयामासससात्यकिवृकोदरान् ॥ ९ ॥

इधर शल्य सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्धमें सात्यकि और भीमसेनसहित पाण्डवोंको पीड़ा देने लगे॥

तथा तौ तु यमौ युद्धे यमतुल्यपराक्रमौ ।
योधयामास राजेन्द्र वीर्येणास्त्रबलेन च ॥ १० ॥

राजेन्द्र ! वे युद्धमें यमराजके तुल्य पराक्रमी नकुल और सहदेवके साथ भी अपने पराक्रम और अस्त्रबलसे युद्ध कर रहे थे ॥ १० ॥

शल्यसायकनुन्नानां पाण्डवानां महामृधे ।
त्रातारं नाभ्यगच्छन्त केचित्तत्र महारथाः ॥ ११॥

जब शल्य अपने बाणोंसे पाण्डव महारथियोंको आहत कर रहे थे, उस समय उस महासमरमें उन्हें कोई अपना रक्षक नहीं मिलता था ॥ ११ ॥

ततस्तु नकुलः शूरो धर्मराजे प्रपीडिते ।
अभिदुद्राव वेगेन मातुलं मातृनन्दनः ॥१२॥

जब धर्मराज युधिष्ठिर शल्यकी मारसे अत्यन्त पीड़ित हो गये, तब माताको आनन्दित करनेवाले शूरवीर नकुलने बड़े वेगसे अपने मामापर आक्रमण किया ॥ १२ ॥

संछाद्य समरे शल्यं नकुलः परवीरहा ।
विव्याध चैनं दशभिः स्मयमानः स्तनान्तरे ॥ १३ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुलने समराङ्गणमें शल्यको शरसमूहोंद्वारा आच्छादित करके मुसकराते हुए उनकी छातीमें दस बाण मारे ॥ १३ ॥

सर्वपारसवैर्बाणैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैर्धनुर्यन्त्रप्रचोदितैः ॥ १४ ॥

वे बाण सब-के-सब लोहेके बने थे । कारीगरने उन्हें अच्छी तरह माँज-धोकर स्वच्छ बनाया था । उनमें सोनेके पंख लगे थे और उन्हें सानपर चढ़ाकर तेज किया गया था । वे दसों बाण धनुषरूपी यन्त्रपर रखकर चलाये गये थे ॥१४॥

शल्यस्तु पीडितस्तेन स्वस्रीयेण महात्मना ।
नकुलं पीडयामास पत्रिभिर्नतपर्वभिः ॥ १५॥

अपने महामनस्वी भानजेके द्वारा पीड़ित हुए शल्यने झुकी हुई गाँठवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा नकुलको गहरी चोट पहुँचायी ॥ १५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनोऽथ सात्यकिः ।
सहदेवश्च माद्रेयो मद्रराजमुपाद्रवन् ॥ १६॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और माद्रीकुमार सहदेवने एक साथ मद्रराज शल्यपर आक्रमण किया॥

तानापतत एवाशु पूरयाणान् रथस्वनैः ।
दिशश्च विदिशश्चैव कम्पयानांश्च मेदिनीम् ॥ १७ ॥
प्रतिजग्राह समरे सेनापतिरमित्रजित् ।

वे अपने रथकी घर्घराहटसे सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंको गुँजाते हुए पृथ्वीको कम्पित कर रहे थे । सहसा आक्रमण करनेवाले उन वीरोंको शत्रुविजयी सेनापति शल्यने समरभूमिमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १७½ ॥

युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा भीमसेनं च पञ्चभिः ॥ १८ ॥
सात्यकिं च शतेनाजौ सहदेवं त्रिभिः शरैः ।
ततस्तु सशरं चापं नकुलस्य महात्मनः ॥ १९ ॥
मद्रेश्वरः क्षुरप्रेण तदा मारिष चिच्छिदे ।
तदशीर्यत विच्छिन्नं धनुः शल्यस्य सायकैः ॥ २० ॥

माननीय नरेश ! मद्रराज शल्यने युद्धस्थलमें युधिष्ठिरको तीन, भीमसेनको पाँच, सात्यकिको सौ और सहदेवको तीन बाणोंसे घायल करके महामनस्वी नकुलके बाणसहित धनुषको क्षुरप्रसे काट डाला । शल्यके बाणोंसे कटा हुआ वह धनुष टूक-टूक होकर बिखर गया॥ १८–२० ॥

अथान्यद् धनुरादाय माद्रीपुत्रो महारथः ।
मद्रराजरथं तूर्णं पूरयामास पत्रिभिः ॥ २१ ॥

इसके बाद माद्रीपुत्र महारथी नकुलने तुरंत ही दूसरा धनुष हाथमें लेकर मद्रराजके रथको बाणोंसे भर दिया॥२१॥

युधिष्ठिरस्तु मद्रेशं सहदेवश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्बाणैरुरस्येनमविध्यताम् ॥ २२ ॥

आर्य ! साथ ही युधिष्ठिर और सहदेवने दस-दस बाणोंसे उनकी छाती छेद डाली ॥ २२ ॥

भीमसेनस्तु तं षष्ट्या सात्यकिर्दशभिः शरैः ।
मद्रराजमभिद्रुत्य जघ्नतुः कङ्कपत्रिभिः ॥ २३ ॥

फिर भीमसेनने साठ और सात्यकिने कङ्कपत्रयुक्त दस बाणोंसे मद्रराजपर वेगपूर्वक प्रहार किया ॥ २३ ॥

मद्रराजस्ततः क्रुद्धः सात्यकिं नवभिः शरैः ।
विव्याध भूयः सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ २४ ॥

तब कुपित हुए मद्रराज शल्यने सात्यकिको झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंसे घायल करके फिर सत्तर बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २४ ॥

अथास्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ।
हयांश्च चतुरः संख्ये प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २५॥

मान्यवर ! इसके बाद शल्यने उनके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और संग्राममें उनके चारों घोड़ोंको भी मौतके घर भेज दिया ॥ २५ ॥

विरथं सात्यकिं कृत्वा मद्रराजो महारथः ।
विशिखानां शतेनैनमाजघान समन्ततः ॥ २६ ॥

सात्यकिको रथहीन करके महारथी मद्रराज शल्यने सौ बाणोंद्वारा उन्हें सब ओरसे घायल कर दिया ॥ २६ ॥

माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ भीमसेनं च पाण्डवम् ।
युधिष्ठिरं च कौरव्य विव्याध दशभिः शरैः ॥ २७ ॥

कुरुनन्दन ! इतना ही नहीं, उन्होंने क्रोधमें भरे हुए माद्रीकुमार नकुल-सहदेव, पाण्डुपुत्र भीमसेन तथा युधिष्ठिरको भी दस बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम मद्रराजस्य पौरुषम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त संयुगे ॥ २८ ॥

उस महान् संग्राममें हमलोगोंने मद्रराज शल्यका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि समस्त पाण्डव एक साथ होकर भी इन्हें युद्धमें पराजित न कर सके ॥ २८ ॥

अथान्यं रथमास्थाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
पीडितान् पाण्डवान् दृष्ट्वा मद्रराजवशंगतान् ॥ २९ ॥
अभिदुद्राव वेगेन मद्राणामधिपं बलात् ।

तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकिने दूसरे रथपर आरूढ़

होकर पाण्डवोंको पीड़ित तथा मद्रराजके अधीन हुआ देख बड़े वेगसे बलपूर्वक उनपर धावा किया ॥ २९½ ॥

आपतन्तं रथं तस्य शल्यः समितिशोभनः ॥ ३० ॥
प्रत्युद्ययौ रथेनैव मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।

युद्धमें शोभा पानेवाले शल्य उनके रथको अपनी ओर आते देख स्वयं भी रथके द्वारा ही उनकी ओर बढ़े । ठीक उसी तरह, जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मदमत्त हाथीका सामना करनेके लिये जाता है ॥ ३०½ ॥

स संनिपातस्तुमुलो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ३१ ॥
सात्यकेश्चैव शूरस्य मद्राणामधिपस्य च ।
यादृशो वै पुरा वृत्तः शम्बरामरराजयोः ॥ ३२ ॥

शूरवीर सात्यकि और मद्रराज शल्य इन दोनोंका वह संग्राम बड़ा भयंकर और अद्भुत दिखायी देता था । वह वैसा ही था, जैसा कि पूर्वकालमें शम्बरासुर और देवराज इन्द्रका युद्ध हुआ था ॥ ३१-३२ ॥

सात्यकिः प्रेक्ष्य समरे मद्रराजमवस्थितम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३३ ॥

सात्यकिने समराङ्गणमें खड़े हुए मद्रराजको देखकर उन्हें दस बाणोंसे बींध डाला और कहा—'खड़े रहो, खड़े रहो' ॥

मद्रराजस्तु सुभृशं विद्धस्तेन महात्मना ।
सात्यकिं प्रतिविव्याध चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः ॥ ३४ ॥

महामनस्वी सात्यकिके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए मद्रराजने विचित्र पंखवाले पैने बाणोंसे सात्यकिको भी घायल करके बदला चुकाया ॥ ३४ ॥

ततः पार्था महेष्वासाः सात्वताभिसृतं नृपम् ।
अभ्यवर्तन् रथैस्तूर्णं मातुलं वधकाङ्क्षया ॥ ३५ ॥

तब महाधनुर्धर पृथापुत्रोंने सात्यकिके साथ उलझे हुए मामा मद्रराज शल्यके वधकी इच्छासे रथोंद्वारा उनपर आक्रमण किया ॥ ३५ ॥

तत आसीत् परामर्दस्तुमुलः शोणितोदकः ।
शूराणां युध्यमानानां सिंहानामिव नर्दताम् ॥ ३६ ॥

फिर तो वहाँ घोर संग्राम छिड़ गया । सिंहोंके समान गर्जते और जूझते हुए शूरवीरोंका खून पानीकी तरह बहाया जाने लगा ॥ ३६ ॥

तेषामासीन्महाराज व्यतिक्षेपः परस्परम् ।
सिंहानामामिषेप्सूनां कूजतामिव संयुगे ॥ ३७ ॥

महाराज ! जैसे मांसके लोभसे सिंह गर्जते हुए आपसमें लड़ते हों, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें उन समस्त योद्धाओंका एक-दूसरेके प्रति भयंकर प्रहार हो रहा था ॥ ३७ ॥

तेषां बाणसहस्रौघैराकीर्णा वसुधाभवत् ।
अन्तरिक्षं च सहसा बाणभूतमभूत्तदा ॥ ३८ ॥

उस समय उनके सहस्रों बाणसमूहोंसे रणभूमि आच्छादित हो गयी और आकाश भी सहसा बाणमय प्रतीत होने लगा ॥ ३८ ॥

शरान्धकारं सहसा कृतं तत्र समन्ततः ।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे शरैर्मुक्तैर्महात्मभिः ॥ ३९ ॥

उन महामनस्वी वीरोंके छोड़े हुए बाणोंसे सहसा चारों ओर अन्धकार छा गया । मेघोंकी छाया-सी प्रकट हो गयी ॥

तत्र राजञ्शरैर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रकाशद्भिर्व्यरोचन्त दिशस्तदा ॥ ४० ॥

राजन् ! केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान वहाँ छूटे हुए सुवर्णमय पंखवाले चमकीले बाणोंसे उस समय सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं ॥ ४० ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे शल्यः शत्रुनिबर्हणः ।
यदेकः समरे शूरो योधयामास वै बहून् ॥ ४१ ॥

उस रणभूमिमें शत्रुसूदन शूरवीर शल्यने यह बड़ा अद्भुत पराक्रम किया कि अकेले ही वे उन बहुसंख्यक वीरोंके साथ युद्ध करते रहे ॥ ४१ ॥

मद्रराजभुजोत्सृष्टैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
सम्पतद्भिः शरैर्घोरैरवाकीर्यत मेदिनी ॥ ४२ ॥

मद्रराजकी भुजाओंसे छूटकर गिरनेवाले कंक और मोरकी पाँखोंसे युक्त भयानक बाणोंद्वारा वहाँकी सारी पृथ्वी ढक गयी थी ॥ ४२ ॥

तत्र शल्यरथं राजन् विचरन्तं महाहवे ।
अपश्याम यथापूर्वं शक्रस्यासुरसंक्षये ॥ ४३ ॥

राजन् ! जैसे पूर्वकालमें असुरोंका विनाश करते समय इन्द्रका रथ आगे बढ़ता था, उसी प्रकार उस महासमरमें हमलोगोंने राजा शल्यके रथको विचरते देखा था ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

पाण्डवसैनिकों और कौरवसैनिकोंका द्वन्द्वयुद्ध, भीमसेनद्वारा दुर्योधनकी तथा युधिष्ठिरद्वारा शल्यकी पराजय

संजय उवाच

ततः सैन्यास्तव विभो मद्रराजपुरस्कृताः ।
पुनरभ्यद्रवन् पार्थान् वेगेन महता रणे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रभो ! तदनन्तर आपके सभी सैनिक रणभूमिमें मद्रराजको आगे करके पुनः बड़े वेगसे पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ १ ॥

पीडितास्तावकाः सर्वे प्रधावन्तो रणोत्कटाः ।
क्षणेन चैव पार्थांस्ते बहुत्वात् समलोडयन् ॥ २ ॥

युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले आपके सभी योद्धा यद्यपि पीड़ित हो रहे थे, तथापि संख्यामें अधिक होनेके कारण उन सबने धावा बोलकर क्षणभरमें पाण्डवयोद्धाओंको मथ डाला ॥ २ ॥

ते वध्यमानाः समरे पाण्डवा नावतस्थिरे ।
निवार्यमाणा भीमेन पश्यतोः कृष्णयोस्तदा ॥ ३ ॥

समराङ्गणमें कौरवोंकी मार खाकर पाण्डवयोद्धा श्रीकृष्ण और अर्जुनके देखते-देखते भीमसेनके रोकनेपर भी वहाँ ठहर न सके ॥ ३ ॥

ततो धनंजयः क्रुद्धः कृपं सह पदानुगैः ।
अवाकिरच्छरौघेण कृतवर्माणमेव च ॥ ४ ॥

तदनन्तर दूसरी ओर क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने सेवकों-सहित कृपाचार्य और कृतवर्माको अपने बाणसमूहोंसे ढक दिया ॥ ४ ॥

शकुनिं सहदेवस्तु सहसैन्यमवाकिरत् ।
नकुलः पार्श्वतः स्थित्वा मद्रराजमवैक्षत ॥ ५ ॥

सहदेवने सेनासहित शकुनिको बाणोंसे आच्छादित कर दिया । नकुल पास ही खड़े होकर मद्रराजकी ओर देख रहे थे ॥ ५ ॥

द्रौपदेया नरेन्द्रांश्च भूयिष्ठान् समवारयन् ।
द्रोणपुत्रं च पाञ्चाल्यः शिखण्डी समवारयत् ॥ ६ ॥

द्रौपदीके पुत्रोंने बहुत-से राजाओंको आगे बढ़नेसे रोक रक्खा था । पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको रोक दिया ॥ ६ ॥

भीमसेनस्तु राजानं गदापाणिरवारयत् ।
शल्यं तु सह सैन्येन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥

भीमसेनने हाथमें गदा लेकर राजा दुर्योधनको रोका और सेनासहित कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने शल्यको ॥ ७ ॥

ततः समभवत् सैन्यं संसक्तं तत्र तत्र ह ।
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् संग्राममें पीठ न दिखानेवाले आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंकी वह सेना जहाँ-तहाँ परस्पर युद्ध करने लगी ॥ ८ ॥

तत्र पश्याम्यहं कर्म शल्यस्यातिमहद्रणे ।
यदेकः सर्वसैन्यानि पाण्डवानामयोधयत् ॥ ९ ॥

वहाँ रणभूमिमें मैंने राजा शल्यका बहुत बड़ा पराक्रम यह देखा कि वे अकेले ही पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाओंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ ९ ॥

व्यदृश्यत तदा शल्यो युधिष्ठिरसमीपतः ।
रणे चन्द्रमसोऽभ्याशे शनैश्चर इव ग्रहः ॥ १० ॥

उस समय शल्य युधिष्ठिरके समीप रणभूमिमें ऐसे दिखायी दे रहे थे, मानो चन्द्रमाके समीप शनैश्चर नामक ग्रह हो ॥ १० ॥

पीडयित्वा तु राजानं शरैराशीविषोपमैः ।
अभ्यधावत् पुनर्भीमं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ११ ॥

वे विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा राजा युधिष्ठिरको पीड़ित करके पुनः भीमसेनकी ओर दौड़े और उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगे ॥ ११ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा तथैव च कृतास्त्रताम् ।
अपूजयन्ननीकानि परेषां तावकानि च ॥ १२ ॥

उनकी वह फुर्ती और अस्त्रविद्याका ज्ञान देखकर आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंने भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥

पीड्यमानास्तु शल्येन पाण्डवा भृशविक्षताः ।
प्राद्रवन्त रणं हित्वा क्रोशमाने युधिष्ठिरे ॥ १३ ॥

शल्यके द्वारा पीड़ित एवं अत्यन्त घायल हुए पाण्डव-सैनिक युधिष्ठिरके पुकारनेपर भी युद्ध छोड़कर भाग चले ॥

वध्यमानेष्वनीकेषु मद्रराजेन पाण्डवः ।
अमर्षवशमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥

जब मद्रराजके द्वारा इस प्रकार पाण्डव-सैनिकोंका संहार होने लगा, तब पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर अमर्षके वशीभूत हो गये ॥ १४ ॥

ततः पौरुषमास्थाय मद्रराजमताडयत् ।
जयो वास्तु वधो वास्तु कृतबुद्धिर्महारथः ॥ १५ ॥

तदनन्तर उन्होंने अपने पुरुषार्थका आश्रय ले मद्रराज-पर प्रहार आरम्भ किया । महारथी युधिष्ठिरने यह निश्चय कर लिया कि आज या तो मेरी विजय होगी अथवा मेरा वध हो जायगा ॥ १५ ॥

समाहूयाब्रवीत् सर्वान् भ्रातॄन् कृष्णं च माधवम् ।
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च ये चान्ये पृथिवीक्षितः ॥ १६ ॥
कौरवार्थे पराक्रान्ताः संग्रामे निधनं गताः ।
यथाभागं यथोत्साहं भवन्तः कृतपौरुषाः ॥ १७ ॥

उन्होंने अपने समस्त भाइयों तथा श्रीकृष्ण और सात्यकिको बुलाकर इस प्रकार कहा—'बन्धुओ ! भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा अन्य जो-जो राजा दुर्योधनके लिये पराक्रम दिखाते थे, वे सब-के-सब संग्राममें मारे गये । तुमलोगोंने पुरुषार्थ करके उत्साहपूर्वक अपने-अपने हिस्सेका कार्य पूरा कर लिया ॥ १६-१७ ॥

भागोऽवशिष्ट एकोऽयं मम शल्यो महारथः ।
सोऽहमद्य युधा जेतुमाशंसे मद्रकाधिपम् ॥ १८ ॥

'अब एकमात्र महारथी शल्य शेष रह गये हैं, जो मेरे हिस्सेमें पड़ गये हैं । अतः आज मैं इन मद्रराज शल्यको युद्धमें जीतनेकी आशा करता हूँ ॥ १८ ॥

तत्र यन्मानसं मह्यं तत् सर्वं निगदामि वः ।
चक्ररक्षाविमौ वीरौ मम माद्रवतीसुतौ ॥ १९ ॥
अजेयौ वासवेनापि समरे शूरसम्मतौ ।

'इसके सम्बन्धमें मेरे मनमें जो संकल्प है, वह सब तुम लोगोंसे बता रहा हूँ, सुनो । जो समराङ्गणमें इन्द्रके लिये भी अजेय तथा शूरवीरोंद्वारा सम्मानित हैं, वे दोनों माद्रीकुमार वीर नकुल और सहदेव मेरे रथके पहियोंकी रक्षा करें ॥ १९½ ॥

साध्विमौ मातुलं युद्धे क्षत्रधर्मपुरस्कृतौ ॥ २० ॥
मदर्थं प्रतियुद्ध्येतां मानार्हौ सत्यसङ्गरौ ।
मां वा शल्यो रणे हन्ता तं वाहं भद्रमस्तु वः ॥ २१ ॥

'क्षत्रिय-धर्मको सामने रखते हुए ये सम्मान पानेके योग्य सत्यप्रतिज्ञ नकुल और सहदेव मेरे लिये समराङ्गणमें अपने मामाके साथ अच्छी तरह युद्ध करें । फिर या तो शल्य रण-

भूमिमें मुझे मार डालें या मैं उनका वध कर डालूँ। आपलोगोंका कल्याण हो ॥ २०-२१ ॥

इति सत्यामिमां वाणीं लोकवीरा निबोधत।
योत्स्येऽहं मातुलेनाद्य क्षात्रधर्मेण पार्थिवाः ॥ २२ ॥
स्वमंशमभिसंधाय विजयायेतराय च।

'विश्वविख्यात वीरो! तुमलोग मेरा यह सत्य वचन सुन लो। राजाओ! मैं क्षत्रियधर्मके अनुसार अपने हिस्सेका कार्य पूर्ण करनेका संकल्प लेकर अपनी विजय अथवा वधके लिये मामा शल्यके साथ आज युद्ध करूँगा ॥ २२½ ॥

तस्य मेऽप्यधिकं शस्त्रं सर्वोपकरणानि च ॥ २३ ॥
संसज्जन्तु रथे क्षिप्रं शास्त्रवद् रथयोजकाः।

'अतः रथ जोतनेवाले लोग शीघ्र ही मेरे रथपर शास्त्रीय विधिके अनुसार अधिक-से-अधिक शस्त्र तथा अन्य सब आवश्यक सामग्री सजाकर रख दें ॥ २३½ ॥

शैनेयो दक्षिणं चक्रं धृष्टद्युम्नस्तथोत्तरम् ॥ २४ ॥
पृष्ठगोपो भवत्वद्य मम पार्थो धनंजयः।
पुरःसरो ममाद्यास्तु भीमः शस्त्रभृतां वरः ॥ २५ ॥

'(नकुल-सहदेवके अतिरिक्त) सात्यकि मेरे दाहिने चक्रकी रक्षा करें और धृष्टद्युम्न बायें चक्रकी। आज कुन्तीकुमार अर्जुन मेरे पृष्ठभागकी रक्षामें तत्पर रहें और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन मेरे आगे-आगे चलें ॥ २४-२५ ॥

एवमभ्यधिकः शल्याद् भविष्यामि महामृधे।
एवमुक्तास्तथा चक्रुस्तदा राज्ञः प्रियैषिणः ॥ २६ ॥

'ऐसी व्यवस्था होनेपर मैं इस महायुद्धमें शल्यसे अधिक शक्तिशाली हो जाऊँगा।' उनके ऐसा कहनेपर राजाका प्रिय करनेकी इच्छावाले भाइयोंने उस समय वैसा ही किया ।२६।

ततः प्रहर्षः सैन्यानां पुनरासीत् तदा मृधे।
पञ्चालानां सोमकानां मत्स्यानां च विशेषतः॥ २७ ॥

तदनन्तर उस युद्धस्थलमें पुनः पाण्डवसैनिकों विशेषतः पाञ्चालों, सोमकों और मत्स्यदेशीय योद्धाओंके मनमें महान् हर्षोल्लास छा गया ॥ २७ ॥

प्रतिज्ञां तां तदा राजा कृत्वा मद्रेशमभ्ययात्।
ततः शङ्खांश्च भेरीश्च शतशश्चैव पुष्कलान् ॥ २८ ॥
अवादयन्त पञ्चालाः सिंहनादांश्च नेदिरे।

राजा युधिष्ठिरने उस समय पूर्वोक्त प्रतिज्ञा करके मद्रराज शल्यपर चढ़ाई की। फिर तो पाञ्चाल योद्धा शङ्ख, भेरी आदि सैकड़ों प्रकारके प्रचुर रणवाद्य बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ २८½ ॥

तेऽभ्यधावन्त संरब्धा मद्रराजं तरस्विनम् ॥ २९ ॥
महता हर्षजेनाथ नादेन कुरुपुङ्गवाः।

उन कुरुकुलके श्रेष्ठ वीरोंने रोषमें भरकर महान् हर्षनादके साथ वेगशाली वीर मद्रराज शल्यपर धावा किया ॥२९½॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ॥ ३० ॥
तूर्यशब्देन महता नादयन्तश्च मेदिनीम्।

वे हाथियोंके घण्टोंकी आवाज, शङ्खोंकी ध्वनि तथा वाद्योंके महान् घोषसे पृथ्वीको गुँजा रहे थे ॥ ३०½ ॥

तान् प्रत्यगृह्णात् पुत्रस्ते मद्रराजश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥
महामेघानिव बहूञ्शैलावस्तोदयावुभौ।

उस समय आपके पुत्र दुर्योधन तथा पराक्रमी मद्रराज शल्यने उन सबको आगे बढ़नेसे रोका। ठीक उसी तरह, जैसे अस्ताचल और उदयाचल दोनों बहुसंख्यक महामेघोंको रोक देते हैं ॥ ३१½ ॥

शल्यस्तु समरश्लाघी धर्मराजमरिंदमम् ॥ ३२ ॥
ववर्ष शरवर्षेण शम्बरं मघवा इव।

युद्धकी स्पृहा रखनेवाले शल्य शत्रुदमन धर्मराज युधिष्ठिरपर उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे शम्बरासुरपर इन्द्र ॥ ३२½ ॥

तथैव कुरुराजोऽपि प्रगृह्य रुचिरं धनुः ॥ ३३ ॥
द्रोणोपदेशान् विविधान् दर्शयानो महामनाः।
ववर्ष शरवर्षाणि चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार महामना कुरुराज युधिष्ठिरने भी सुन्दर धनुष हाथमें लेकर द्रोणाचार्यके दिये हुए नाना प्रकारके उपदेशोंका प्रदर्शन करते हुए शीघ्रतापूर्वक सुन्दर एवं विचित्र रीतिसे बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ३३-३४ ॥

न चास्य विवरं कश्चिद् ददर्श चरतो रणे।
तावुभौ विविधैर्बाणैस्ततक्षाते परस्परम् ॥ ३५ ॥
शार्दूलावामिषप्रेप्सू पराक्रान्ताविवाहवे।

रणमें विचरते हुए युधिष्ठिरकी कोई भी त्रुटि किसीने नहीं देखी। मांसके लोभसे पराक्रम प्रकट करनेवाले दो सिंहोंके समान वे दोनों वीर युद्धस्थलमें नाना प्रकारके बाणोंद्वारा एक दूसरेको घायल करने लगे ॥ ३५½ ॥

भीमस्तु तव पुत्रेण युद्धशौण्डेन संगतः ॥ ३६ ॥
पाञ्चाल्यः सात्यकिश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
शकुनिप्रमुखान् वीरान् प्रत्यगृह्णन् समन्ततः॥ ३७ ॥

राजन्! भीमसेन तो आपके युद्धकुशल पुत्र दुर्योधनके साथ भिड़ गये और धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा पाण्डुपुत्र माद्रीकुमार नकुल-सहदेव सब ओरसे शकुनि आदि वीरोंका सामना करने लगे ॥ ३६-३७ ॥

तदाऽऽसीत् तुमुलं युद्धं पुनरेव जयैषिणाम्।
तावकानां परेषां च राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३८ ॥

नरेश्वर! फिर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंमें उस समय घोर संग्राम छिड़ गया, जो आपकी कुमन्त्रणाका परिणाम था ॥ ३८ ॥

दुर्योधनस्तु भीमस्य शरेणानतपर्वणा।
चिच्छेदादिश्य संग्रामे ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ॥ ३९ ॥

दुर्योधनने घोषणा करके झुकी हुई गाँठवाले बाणसे संग्राममें भीमसेनके सुवर्णभूषित ध्वजको काट डाला ॥ ३९ ॥

स किङ्किणीकजालेन महता चारुदर्शनः।
पपात रुचिरः संख्ये भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ४० ॥

वह देखनेमें मनोहर और सुन्दर ध्वज भीमसेनके देखते-

देखते छोटी-छोटी घंटियोंके महान् समूहके साथ युद्धस्थलमें गिर पड़ा ॥ ४० ॥

पुनश्चास्य धनुश्चित्रं गजराजकरोपमम् ।
क्षुरेण शितधारेण प्रचकर्त नराधिपः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् राजा दुर्योधनने तीखी धारवाले क्षुरसे भीमसेनके विचित्र धनुषको भी, जो हाथीकी सूँड़के समान था, काट डाला ॥ ४१ ॥

स च्छिन्नधन्वा तेजस्वी रथशक्त्या सुतं तव ।
बिभेदोरसि विक्रम्य स रथोपस्थ आविशत् ॥ ४२ ॥

धनुष कट जानेपर तेजस्वी भीमसेनने पराक्रमपूर्वक आपके पुत्रकी छातीमें रथशक्तिका प्रहार किया । उसकी चोट खाकर दुर्योधन रथके पिछले भागमें मूर्छित होकर बैठ गया ॥ ४२ ॥

तस्मिन् मोहमनुप्राप्ते पुनरेव वृकोदरः ।
यन्तुरेव शिरः कायात् क्षुरप्रेणाहरत् तदा ॥ ४३ ॥

उसके मूर्छित हो जानेपर भीमसेनने फिर क्षुरप्रके द्वारा उसके सारथिका ही सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ४३ ॥

हतसूता हयास्तस्य रथमादाय भारत ।
व्यद्रवन्त दिशो राजन् हाहाकारस्तदाभवत् ॥ ४४ ॥

भरतवंशी नरेश ! सारथिके मारे जानेपर उसके घोड़े रथ लिये चारों दिशाओंमें दौड़ लगाने लगे । उस समय आपकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ४४ ॥

तमभ्यधावत् त्राणार्थं द्रोणपुत्रो महारथः ।
कृपश्च कृतवर्मा च पुत्रं तेऽपि परीप्सवः ॥ ४५ ॥

तब महारथी द्रोणपुत्र दुर्योधनकी रक्षाके लिये दौड़ा । कृपाचार्य और कृतवर्मा भी आपके पुत्रको बचानेके लिये आ पहुँचे ॥ ४५ ॥

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये त्रस्तास्तस्य पदानुगाः ।
गाण्डीवधन्वा विस्फार्य धनुस्तानहनच्छरैः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार जब सारी सेनामें हलचल मच गयी, तब दुर्योधनके पीछे चलनेवाले सैनिक भयसे थर्रा उठे । उस समय गाण्डीवधारी अर्जुनने अपने धनुषको खींचकर छोड़े हुए बाणोंद्वारा उन सबको मार डाला ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिरस्तु मद्रेशमभ्यधावदमर्षितः ।
स्वयं संनोदयन्नश्वान् दन्तवर्णान् मनोजवान् ॥ ४७ ॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने अमर्षमें भरकर दाँतोंके समान श्वेत वर्णवाले और मनके तुल्य वेगशाली घोड़ोंको स्वयं ही हाँकते हुए मद्रराज शल्यपर धावा किया ॥ ४७ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे ।
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तो यत् तदा दारुणोऽभवत् ॥ ४८ ॥

वहाँ हमने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरमें एक आश्चर्यकी बात देखी । वे पहलेसे जितेन्द्रिय और कोमल स्वभावके होकर भी उस समय कठोर हो गये ॥ ४८ ॥

विवृताक्षश्च कौन्तेयो वेपमानश्च मन्युना ।
चिच्छेद योधान् निशितैः शरैः शतसहस्रशः ॥ ४९ ॥

क्रोधसे काँपते तथा आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए कुन्तीकुमारने अपने पैने बाणोंद्वारा सैकड़ों और हजारों शत्रुसैनिकोंका संहार कर डाला ॥ ४९ ॥

यां यां प्रत्युद्ययौ सेनां तां तां ज्येष्ठः स पाण्डवः ।
शरैरपातयद् राजन् गिरीन् वज्रैरिवोत्तमैः ॥ ५० ॥

राजन् ! जैसे इन्द्रने उत्तम वज्रोंके प्रहारसे पर्वतोंको धराशायी कर दिया था, उसी प्रकार वे ज्येष्ठ पाण्डव जिस-जिस सेनाकी ओर अग्रसर हुए, उसी-उसीको अपने बाणोंद्वारा मार गिराया ॥ ५० ॥

साश्वसूतध्वजरथान् रथिनः पातयन् बहून् ।
अक्रीडदेको बलवान् पवनस्तोयदानिव ॥ ५१ ॥

जैसे प्रबल वायु मेघोंको छिन्न-भिन्न करती हुई उनके साथ खेलती है, उसी प्रकार बलवान् युधिष्ठिर अकेले ही घोड़े, सारथि, ध्वज और रथोंसहित बहुत-से रथियोंको धराशायी करते हुए उनके साथ खेल-सा करने लगे ॥ ५१ ॥

साश्वारोहांश्च तुरगान् पत्तींश्चैव सहस्रधा ।
व्यपोथयत संग्रामे क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ५२ ॥

जैसे क्रोधमें भरे हुए रुद्रदेव पशुओंका संहार करते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिरने इस संग्राममें कुपित हो घुड़सवारों, घोड़ों और पैदलोंके सहस्रों टुकड़े कर डाले ॥ ५२ ॥

शून्यमायोधनं कृत्वा शरवर्षैः समन्ततः ।
अभ्यद्रवत मद्रेशं तिष्ठ शल्येति चाब्रवीत् ॥ ५३ ॥

उन्होंने अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा चारों ओरसे युद्धस्थलको सूना करके मद्रराजपर धावा किया और कहा—'शल्य ! खड़े रहो, खड़े रहो' ॥ ५३ ॥

तस्य तच्चरितं दृष्ट्वा संग्रामे भीमकर्मणः ।
वित्रेसुस्तावकाः सर्वे शल्यस्त्वेनं समभ्ययात् ॥ ५४ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले युधिष्ठिरका युद्धमें वह पराक्रम देखकर आपके सारे सैनिक थर्रा उठे; परंतु शल्यने इनपर आक्रमण कर दिया ॥ ५४ ॥

ततस्तौ भृशसंक्रुद्धौ प्रध्माय सलिलोद्भवौ ।
समाहूय तदान्योन्यं भर्त्सयन्तौ समीयतुः ॥ ५५ ॥

फिर वे दोनों वीर अत्यन्त कुपित हो शङ्ख बजाकर एक दूसरेको ललकारते और फटकारते हुए परस्पर भिड़ गये ॥

शल्यस्तु शरवर्षेण पीडयामास पाण्डवम् ।
मद्रराजं तु कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६ ॥

शल्यने बाणोंकी वर्षा करके पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको पीड़ित कर दिया तथा कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भी बाणोंकी वर्षाद्वारा मद्रराज शल्यको आच्छादित कर दिया ॥ ५६ ॥

अदृश्येतां तदा राजन् कङ्कपत्रिभिराचितौ ।
उद्भिन्नरुधिरौ शूरौ मद्रराजयुधिष्ठिरौ ॥ ५७ ॥

राजन् ! उस समय शूरवीर मद्रराज और युधिष्ठिर दोनों कङ्कपत्रयुक्त बाणोंसे व्याप्त हो खून बहाते दिखायी देते थे ॥५७॥

पुष्पितौ शुशुभाते वै वसन्ते किंशुकौ यथा ।
दीप्यमानौ महात्मानौ प्राणद्यूतेन दुर्मदौ ॥ ५८ ॥
दृष्ट्वा सर्वाणि सैन्यानि नाध्यवस्यंस्तयोर्जयम् ।

जैसे वसन्त ऋतुमें फूले हुए दो पलाशके वृक्ष शोभा पाते हों, वैसे ही उन दोनोंकी शोभा हो रही थी। प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धका जूआ खेलते हुए उन मदमत्त महामनस्वी एवं दीप्तिमान् वीरोंको देखकर सारी सेनाएँ यह निश्चय नहीं कर पाती थीं कि इन दोनोंमें किसकी विजय होगी ॥ ५८½ ॥

हत्वा मद्राधिपं पार्थो भोक्ष्यतेऽद्य वसुन्धराम्॥ ५९ ॥
शल्यो वा पाण्डवं हत्वा दद्याद् दुर्योधनाय गाम्।
इतीव निश्चयो नाभूद् योधानां तत्र भारत ॥ ६० ॥

भरतनन्दन ! 'आज कुन्तीकुमार युधिष्ठिर मद्रराजको मारकर इस भूतलका राज्य भोगेंगे अथवा शल्य ही पाण्डुकुमार युधिष्ठिरको मारकर दुर्योधनको भूमण्डलका राज्य सौंप देंगे ।' इस बातका निश्चय वहाँ योद्धाओंको नहीं हो पाता था ॥ ५९-६० ॥

प्रदक्षिणमभूत् सर्वं धर्मराजस्य युध्यतः ।
ततः शरशतं शल्यो मुमोचाथ युधिष्ठिरे ॥ ६१ ॥
धनुश्चास्य शिताग्रेण बाणेन निरकृन्तत ।

युद्ध करते समय युधिष्ठिरके लिये सब कुछ प्रदक्षिण (अनुकूल) हो रहा था। तदनन्तर शल्यने युधिष्ठिरपर सौ बाणोंका प्रहार किया तथा तीखी धारवाले बाणसे उनके धनुषको भी काट दिया ॥ ६१½ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय शल्यं शरशतैस्त्रिभिः॥ ६२ ॥
अविध्यत् कार्मुकं चास्य क्षुरेण निरकृन्तत ।
अथास्य निजघानाश्वांश्चतुरो नतपर्वभिः ॥ ६३ ॥
द्वाभ्यामतिशिताग्राभ्यामुभौ तत् पार्ष्णिसारथी।
ततोऽस्य दीप्यमानेन पीतेन निशितेन च ॥ ६४ ॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद् ध्वजम् ।
ततः प्रभग्नं तत् सैन्यं दौर्योधनमरिंदम ॥ ६५ ॥

तब युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर शल्यको तीन सौ बाणोंसे घायल कर दिया और एक क्षुरके द्वारा उनके धनुषके भी दो टुकड़े कर दिये। इसके बाद झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको मार डाला। फिर दो अत्यन्त तीखे बाणोंसे दोनों पार्श्वरक्षकोंको यमलोक भेज दिया। तदनन्तर एक चमकते हुए पानीदार पैने भल्लसे सामने खड़े हुए शल्यके ध्वजको भी काट गिराया। शत्रुदमन नरेश ! फिर तो दुर्योधनकी वह सेना वहाँसे भाग खड़ी हुई ॥ ६२-६५ ॥

ततो मद्राधिपं द्रौणिरभ्यधावत् तथा कृतम् ।
आरोप्य चैनं स्वरथे त्वरमाणः प्रदुद्रुवे ॥ ६६ ॥

उस समय मद्रराज शल्यकी ऐसी अवस्था हुई देख अश्वत्थामा दौड़ा और उन्हें अपने रथपर बिठाकर तुरंत वहाँसे भाग गया ॥ ६६ ॥

मुहूर्तमिव तौ गत्वा नर्दमाने युधिष्ठिरे ।
स्थित्वा ततो मद्रपतिरन्यं स्यन्दनमास्थितः ॥ ६७ ॥
विधिवत् कल्पितं शुभ्रं महाम्बुदनिनादिनम् ।
सज्जयन्त्रोपकरणं द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिर दो घड़ीतक उनका पीछा करके सिंहके समान दहाड़ते रहे। तत्पश्चात् मद्रराज शल्य मुस्कराकर दूसरे रथपर जा बैठे। उनका वह उज्ज्वल रथ विधिपूर्वक सजाया गया था। उससे महान् मेघके समान गम्भीर ध्वनि होती थी। उसमें यन्त्र आदि आवश्यक उपकरण सजाकर रख दिये गये थे और वह रथ शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ ६७-६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्ययुधिष्ठिरयुद्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्य और युधिष्ठिरका युद्धविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

भीमसेनद्वारा राजा शल्यके घोड़े और सारथिका तथा युधिष्ठिरद्वारा राजा शल्य और उनके भाईका वध एवं कृतवर्माकी पराजय

संजय उवाच

अथान्यद् धनुरादाय बलवान् वेगवत्तरम् ।
युधिष्ठिरं मद्रपतिर्विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर बलवान् मद्रराज शल्य दूसरा अत्यन्त वेगशाली धनुष हाथमें लेकर युधिष्ठिरको घायल करके सिंहके समान गर्जने लगे ॥ १ ॥

ततः स शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ॥ २ ॥

तत्पश्चात् अमेय आत्मबलसे सम्पन्न क्षत्रियशिरोमणि शल्य वर्षा करनेवाले मेघके समान क्षत्रियवीरोंपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २ ॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा भीमसेनं त्रिभिः शरैः ।
सहदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ३ ॥

उन्होंने सात्यकिको दस, भीमसेनको तीन तथा सहदेवको भी तीन बाणोंसे घायल करके युधिष्ठिरको भी पीड़ित कर दिया ॥

तांस्तानन्यान् महेष्वासान् साश्वान् सरथकूबरान् ।
अर्दयामास विशिखैरुल्काभिरिव कुञ्जरान् ॥ ४ ॥

जैसे शिकारी जलते हुए काष्ठोंसे हाथियोंको पीड़ा देते हैं, उसी प्रकार वे दूसरे-दूसरे महाधनुर्धर वीरोंको भी घोड़े, रथ और कूबरोंसहित अपने बाणोंद्वारा पीड़ित करने लगे ॥ ४ ॥

कुञ्जरान् कुञ्जरारोहानश्वानश्वप्रयायिनः ।
रथांश्च रथिनः सार्धं जघान रथिनां वरः ॥ ५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ शल्यने हाथियों और हाथीसवारोंको, घोड़ों और घुड़सवारोंको तथा रथों और रथियोंको एक साथ ही नष्ट कर दिया ॥ ५ ॥

बाहूंश्चिच्छेद तरसा सायुधान् केतनानि च ।

चकार च महीं योधैस्तीर्णां वेदीं कुशैरिव ॥ ६ ॥

उन्होंने आयुधोंसहित भुजाओं और ध्वजोंको वेगपूर्वक काट डाला और पृथ्वीपर उसी प्रकार योद्धाओंकी लाशें बिछा दीं, जैसे वेदीपर कुश बिछाये जाते हैं ॥ ६ ॥

तथा तमरिसैन्यानि घ्नन्तं मृत्युमिवान्तकम् ।
परिवव्रुर्भृशं क्रुद्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥ ७ ॥

इस प्रकार मृत्यु और यमराजके समान शत्रुसेनाका संहार करनेवाले राजा शल्यको अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए पाण्डव, पाञ्चाल तथा सोमक-योद्धाओंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥

तं भीमसेनश्च शिनेश्च नप्ता
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
समागतं भीमबलेन राज्ञा
पर्याप्तमन्योन्यमथाह्वयन्त ॥ ८ ॥

भीमसेन, शिनिपौत्र सात्यकि और माद्रीके पुत्र नरश्रेष्ठ नकुल-सहदेव—ये भयंकर बलशाली राजा युधिष्ठिरके साथ भिड़े हुए सामर्थ्यशाली वीर शल्यको परस्पर युद्धके लिये ललकारने लगे ॥ ८ ॥

ततस्तु शूराः समरे नरेन्द्र
नरेश्वरं प्राप्य युधां वरिष्ठम् ।
आवार्य चैनं समरे नृवीरा
जघ्नुः शरैः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ९ ॥

नरेन्द्र ! तत्पश्चात् वे शौर्यशाली नरवीर योद्धाओंमें श्रेष्ठ नरेश्वर शल्यको रोककर समरभूमिमें भयंकर वेगशाली बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ ९ ॥

संरक्षितो भीमसेनेन राजा
माद्रीसुताभ्यामथ माधवेन ।
मद्राधिपं पत्रिभिरुग्रवेगैः
स्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने ॥ १० ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने भीमसेन, नकुल-सहदेव तथा सात्यकिसे सुरक्षित हो मद्रराज शल्यकी छातीमें उग्रवेगशाली बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥ १० ॥

ततो रणे तावकानां रथौघाः
समीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्तम् ।
पर्यावव्रुः प्रवरास्ते सुसज्जा
दुर्योधनस्यानुमते पुरस्तात् ॥ ११ ॥

तब रणभूमिमें मद्रराजको बाणोंसे पीड़ित देख आपके श्रेष्ठ रथी योद्धा दुर्योधनकी आज्ञासे सुसज्जित हो उन्हें घेरकर युधिष्ठिरके आगे खड़े हो गये ॥ ११ ॥

ततो द्रुतं मद्रजनाधिपो रणे
युधिष्ठिरं सप्तभिरभ्यविद्ध्यत् ।
तं चापि पार्थो नवभिः पृषत्कै-
र्विव्याध राजंस्तुमुले महात्मा ॥ १२ ॥

इसके बाद मद्रराजने संग्राममें तुरंत ही सात बाणोंसे युधिष्ठिरको बींध डाला । राजन् ! उस तुमुल युद्धमें महात्मा युधिष्ठिरने भी नौ बाणोंसे शल्यको घायल कर दिया ॥ १२ ॥

आकर्णपूर्णायतसम्प्रयुक्तैः
शरैस्तदा संयति तैलधौतैः ।
अन्योन्यमाच्छादयतां महारथौ
मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरश्च ॥ १३ ॥

मद्रराज शल्य और युधिष्ठिर दोनों महारथी कानतक खींचकर छोड़े गये और तेलमें धोये हुए बाणोंद्वारा उस समय युद्धमें एक-दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ १३ ॥

ततस्तु तूर्णं समरे महारथौ
परस्परस्यान्तरमीक्षमाणौ ।
शरैर्भृशं विव्यधतुर्नृपोत्तमौ
महाबलौ शत्रुभिरप्रधृष्यौ ॥ १४ ॥

वे दोनों महारथी समरभूमिमें एक-दूसरेपर प्रहार करनेका अवसर देख रहे थे । दोनों ही शत्रुओंके लिये अजेय, महाबलवान् तथा राजाओंमें श्रेष्ठ थे । अतः बड़ी उतावलीके साथ बाणोंद्वारा एक-दूसरेको गहरी चोट पहुँचाने लगे ॥ १४ ॥

तयोर्धनुर्ज्यातलनिःस्वनो महान्
महेन्द्रवज्राशनितुल्यनिःस्वनः ।
परस्परं बाणगणैर्महात्मनोः
प्रवर्षतोर्मद्रपपाण्डुवीरयोः ॥ १५ ॥

परस्पर बाणोंकी वर्षा करते हुए महामना मद्रराज तथा पाण्डववीर युधिष्ठिरके धनुषकी प्रत्यञ्चाका महान् शब्द इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ता था ॥ १५ ॥

तौ चेरतुर्व्याघ्रशिशुप्रकाशौ
महावनेष्वामिषगृद्धिनाविव ।
विषाणिनौ नागवराविवोभौ
ततक्षतुः संयति जातदर्पौ ॥ १६ ॥

उन दोनोंका घमण्ड बढ़ा हुआ था । वे दोनों मांसके लोभसे महान् वनमें जूझते हुए व्याघ्रके दो बच्चोंके समान तथा दाँतोंवाले दो बड़े-बड़े गजराजोंकी भाँति युद्धस्थलमें परस्पर आघात करने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तु मद्राधिपतिर्महात्मा
युधिष्ठिरं भीमबलं प्रसह्य ।
विव्याध वीरं हृदयेऽतिवेगं
शरेण सूर्याग्निसमप्रभेण ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् महामना मद्रराज शल्यने सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी बाणसे अत्यन्त वेगवान् और भयंकर बलशाली वीर युधिष्ठिरकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ १७ ॥

ततोऽतिविद्धोऽथ युधिष्ठिरोऽपि
सुसम्प्रयुक्तेन शरेण राजन् ।
जघान मद्राधिपतिं महात्मा
मुदं च लेभे ऋषभः कुरूणाम् ॥ १८ ॥

राजन् ! उससे अत्यन्त घायल होनेपर भी कुरुकुल-शिरोमणि महात्मा युधिष्ठिरने अच्छी तरह चलाये हुए बाणके द्वारा मद्रराज शल्यको आहत (एवं मूर्च्छित) कर दिया । इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १८ ॥

ततो मुहूर्तादिव पार्थिवेन्द्रो
लब्ध्वा संज्ञां क्रोधसंरक्तनेत्रः ।
शतेन पार्थं त्वरितो जघान
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावः ॥ १९ ॥

तब इन्द्रके समान प्रभावशाली राजा शल्यने दो ही घड़ीमें होशमें आकर क्रोधसे लाल आँखें करके बड़ी उतावलीके साथ युधिष्ठिरको सौ बाण मारे ॥ १९ ॥

त्वरंस्ततो धर्मसुतो महात्मा
शल्यस्य कोपान्नवभिः पृषत्कैः ।
भित्त्वा ह्युरस्तपनीयं च वर्म
जघान षड्भिस्त्वपरैः पृषत्कैः ॥ २० ॥

इसके बाद धर्मपुत्र महात्मा युधिष्ठिरने कुपित हो शीघ्रतापूर्वक नौ बाण मारकर राजा शल्यकी छाती और उनके सुवर्णमय कवचको विदीर्ण कर दिया । फिर छः बाण और मारे ॥ २० ॥

ततस्तु मद्राधिपतिः प्रकृष्टं
धनुर्विकृष्य व्यसृजत् पृषत्कान् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां च तथैव राज्ञ-
श्चिच्छेद चापं कुरुपुङ्गवस्य ॥ २१ ॥

तदनन्तर मद्रराजने अपने उत्तम धनुषको खींचकर बहुत-से बाण छोड़े । उन्होंने दो बाणोंसे कुरुकुलशिरोमणि राजा युधिष्ठिरके धनुषको काट दिया ॥ २१ ॥

नवं ततोऽन्यत् समरे प्रगृह्य
राजा धनुर्घोरतरं महात्मा ।
शल्यं तु विव्याध शरैः समन्ताद्
यथा महेन्द्रो नमुचिं शिताग्रैः ॥ २२ ॥

तब महात्मा राजा युधिष्ठिरने समराङ्गणमें दूसरे नये और अत्यन्त भयंकर धनुषको हाथमें लेकर तीखी धारवाले बाणोंसे शल्यको उसी प्रकार सब ओरसे घायल कर दिया, जैसे देवराज इन्द्रने नमुचिको ॥ २२ ॥

ततस्तु शल्यो नवभिः पृषत्कै-
र्भीमस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
निकृत्य रौक्मे पटुवर्मणी तयो-
र्विदारयामास भुजौ महात्मा ॥ २३ ॥

तब महामनस्वी शल्यने नौ बाणोंसे भीमसेन तथा राजा युधिष्ठिरके सोनेके सुदृढ़ कवचोंको काटकर उन दोनोंकी भुजाओंको विदीर्ण कर डाला ॥ २३ ॥

ततोऽपरेण ज्वलनार्कतेजसा
क्षुरेण राज्ञो धनुरुन्ममाथ ।
कृपश्च तस्यैव जघान सूतं
षड्भिः शरैः सोऽभिमुखः पपात ॥ २४ ॥

इसके बाद अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी क्षुरके द्वारा उन्होंने राजा युधिष्ठिरके धनुषको मथित कर दिया। फिर कृपाचार्यने भी छः बाणोंसे उन्हींके सारथिको मार डाला। सारथि उनके सामने ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥

मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य
शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान् ।
वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा
योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् मद्रराजने चार बाणोंसे युधिष्ठिरके चारों घोड़ोंका भी संहार कर डाला । घोड़ोंको मारकर महामनस्वी शल्यने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके योद्धाओंका विनाश आरम्भ कर दिया ॥ २५ ॥

(यदद्भुतं कर्म न शक्यमन्यैः
सुदुःसहं तत् कृतवन्तमेकम् ।
शल्यं नरेन्द्रस्य विषण्णभावाद्
विचिन्तयामास मृदङ्गकेतुः ॥
किमेतदिन्द्रावरजस्य वाक्यं
मोघं भवत्यद्य विधेर्बलेन ।
जहीति शल्यं ह्यवदत् तदाजौ
न लोकनाथस्य वचोऽन्यथा स्यात्॥)

जो अद्भुत एवं दुःसह कार्य दूसरे किसीसे नहीं हो सकता, वही एकमात्र शल्यने राजा युधिष्ठिरके प्रति कर दिखाया । इससे मृदंगचिह्नित ध्वजवाले युधिष्ठिर विषादग्रस्त हो इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'क्या आज दैवबलसे इन्द्रके छोटे भाई भगवान् श्रीकृष्णकी बात झूठी हो जायगी । उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'आप युद्धमें शल्यको मार डालिये' उन जगदीश्वरका कथन व्यर्थ तो नहीं होना चाहिये ॥'

तथा कृते राजनि भीमसेनो
मद्राधिपस्याथ ततो महात्मा ।
छित्त्वा धनुर्वेगवता शरेण
द्वाभ्यामविध्यत् सुभृशं नरेन्द्रम्॥ २६ ॥

जब मद्रराज शल्यने राजा युधिष्ठिरकी ऐसी दशा कर दी, तब महामनस्वी भीमसेनने एक वेगवान् बाणद्वारा उनके धनुषको काट दिया और दो बाणोंसे उन नरेशको भी अत्यन्त घायल कर दिया ॥ २६ ॥

तथापरेणास्य जहार यन्तुः
कायाच्छिरः संहननीयमध्यात् ।
जघान चाश्वांश्चतुरः सुशीघ्रं
तथा भृशं कुपितो भीमसेनः ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् अधिक क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने दूसरे बाणसे शल्यके सारथिका मस्तक उसके धड़से अलग कर दिया और उनके चारों घोड़ोंको भी शीघ्र ही मार डाला ॥ २७ ॥

तमग्रणीः सर्वधनुर्धराणा-
मेकं चरन्तं समरेऽतिवेगम् ।
भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां
माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव ॥ २८ ॥

इसके बाद सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें अग्रगण्य भीमसेन तथा माद्रीकुमार सहदेवने समराङ्गणमें बड़े वेगसे एकाकी विचरनेवाले शल्यपर सैकड़ों बाणोंकी वर्षा की ॥ २८ ॥

तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं
भीमः शरैरस्य चकर्त वर्म ।
स भीमसेनेन निकृत्तवर्मा
मद्राधिपश्चर्म सहस्रतारम् ॥ २९ ॥
प्रगृह्य खड्गं च रथान्महात्मा
प्रस्कन्द्य कुन्तीसुतमभ्यधावत् ।
छित्त्वा रथेषां नकुलस्य सोऽथ
युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत् ॥ ३० ॥

उन बाणोंसे शल्यको मोहित हुआ देख भीमसेनने उनके कवचको भी काट डाला। भीमसेनके द्वारा अपना कवच कट जानेपर भयंकर बलशाली महामनस्वी मद्रराज शल्य सहस्र तारोंके चिह्नसे सुशोभित ढाल और तलवार लेकर उस रथसे कूद पड़े और कुन्तीपुत्रकी ओर दौड़े। उन्होंने नकुलके रथका हरसा काटकर युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ २९-३० ॥

तं चापि राजानमथोत्पतन्तं
क्रुद्धं यथैवान्तकमापतन्तम् ।
धृष्टद्युम्नो द्रौपदेयाः शिखण्डी
शिनेश्च नप्ता सहसा परीयुः ॥ ३१ ॥

क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान उछलकर आनेवाले राजा शल्यको धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी तथा सात्यकिने सहसा चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३१ ॥

अथास्य चर्माप्रतिमं न्यकृन्तद्
भीमो महात्मा नवभिः पृषत्कैः ।
खड्गं च भल्लैर्निचकर्त मुष्टौ
नदन् प्रहृष्टस्तव सैन्यमध्ये ॥ ३२ ॥

महामना भीमने नौ बाणोंसे उनकी अनुपम ढालके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर आपकी सेनाके बीचमें बड़े हर्षके साथ गर्जना करते हुए उन्होंने अनेक भल्लोंद्वारा उनकी तलवारकी मुट्ठी भी काट डाली ॥ ३२ ॥

तत् कर्म भीमस्य समीक्ष्य हृष्टा-
स्ते पाण्डवानां प्रवरा रथौघाः ।
नादं च चक्रुर्भृशमुत्स्मयन्तः
शङ्खांश्च दध्मुः शशिसंनिकाशान् ॥ ३३ ॥

भीमसेनका यह अद्भुत कर्म देखकर पाण्डवदलके श्रेष्ठ रथी बड़े प्रसन्न हुए और वे हँसते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शङ्ख बजाने लगे ॥ ३३ ॥

तेनाथ शब्देन विभीषणेन
तथाभितप्तं बलमप्रधृष्यम् ।
कांदिग्भूतं रुधिरेणोक्षिताङ्गं
विसंज्ञकल्पं च तदा विषण्णम् ॥ ३४ ॥

उस भयानक शब्दसे संतप्त हो अजेय कौरवसेना विषाद-ग्रस्त एवं अचेत-सी हो गयी। वह खूनसे लथपथ हो अज्ञात दिशाओंकी ओर भागने लगी ॥ ३४ ॥

स मद्रराजः सहसा विकीर्णो
भीमाग्रगैः पाण्डवयोधमुख्यैः ।
युधिष्ठिरस्याभिमुखं जवेन
सिंहो यथा मृगहेतोः प्रयातः ॥ ३५ ॥

भीम जिनके अगुआ थे, उन पाण्डवपक्षके प्रमुख वीरोंद्वारा बाणोंसे आच्छादित किये गये मद्रराज शल्य सहसा बड़े वेगसे युधिष्ठिरकी ओर दौड़े, मानो कोई सिंह किसी मृगको पकड़नेके लिये झपटा हो ॥ ३५ ॥

स धर्मराजो निहताश्वसूतः
क्रोधेन दीप्तो ज्वलनप्रकाशः ।
दृष्ट्वा च मद्राधिपतिं स तूर्णं
समभ्यधावत् तमरिं बलेन ॥ ३६ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरके घोड़े और सारथि मारे गये थे, इसलिये वे क्रोधसे उद्दीप्त हो प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ते थे। उन्होंने अपने शत्रु मद्रराज शल्यको देखकर उन-पर बलपूर्वक आक्रमण किया ॥ ३६ ॥

गोविन्दवाक्यं त्वरितं विचिन्त्य
दध्रे मतिं शल्यविनाशनाय ।
स धर्मराजो निहताश्वसूतो
रथे तिष्ठञ्शक्तिमेवाभ्यकाङ्क्षत् ॥ ३७ ॥

उस समय श्रीकृष्णके वचनको स्मरण करके उन्होंने शीघ्र ही शल्यको मार डालनेका निश्चय किया। धर्मराजके घोड़े और सारथि तो मारे ही जा चुके थे केवल रथ शेष था, अतः उसीपर खड़े होकर उन्होंने शल्यपर शक्तिके ही प्रयोगका विचार किया ॥ ३७ ॥

तच्चापि शल्यस्य निशम्य कर्म
महात्मनो भागमथावशिष्टम् ।
कृत्वा मनः शल्यवधे महात्मा
यथोक्तमिन्द्रावरजस्य चक्रे ॥ ३८ ॥

महात्मा युधिष्ठिरने महामना शल्यके पूर्वोक्त कर्मको देख-सुनकर और उन्हें अपना ही भाग अवशिष्ट जानकर, जैसा श्रीकृष्णने कहा था उसके अनुसार शल्यके वधका संकल्प किया ॥

स धर्मराजो मणिहेमदण्डां
जग्राह शक्तिं कनकप्रकाशाम् ।
नेत्रे च दीप्ते सहसा विवृत्य
मद्राधिपं क्रुद्धमना निरैक्षत् ॥ ३९ ॥

धर्मराजने मणि और सुवर्णमय दण्डसे युक्त तथा सोनेके समान प्रकाशित होनेवाली शक्ति हाथमें ली और मन-ही-मन कुपित हो सहसा रोषसे जलती हुई आँखें फाड़कर मद्रराज शल्यकी ओर देखा ॥ ३९ ॥

निरीक्षितोऽसौ नरदेव राज्ञा
पूतात्मना निहृतकल्मषेण ।
आसीन्न यद् भस्मसान्मद्रराज-
स्तदद्भुतं मे प्रतिभाति राजन् ॥ ४० ॥

नरदेव ! पापरहित, पवित्र अन्तःकरणवाले, राजा युधिष्ठिरके रोषपूर्वक देखनेपर भी मद्रराज शल्य जलकर भस्म नहीं हो गये, यह मुझे अद्भुत बात जान पड़ती है ॥ ४० ॥

ततस्तु शक्तिं रुचिरोग्रदण्डां
मणिप्रवेकोज्ज्वलितां प्रदीप्ताम् ।
चिक्षेप वेगात् सुभृशं महात्मा
मद्राधिपाय प्रवरः कुरूणाम् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर कौरव-शिरोमणि महात्मा युधिष्ठिरने सुन्दर एवं भयंकर दण्डवाली तथा उत्तम मणियोंसे जटित होनेके कारण प्रज्वलित दिखायी देनेवाली उस देदीप्यमान शक्तिको मद्रराज शल्यके ऊपर बड़े वेगसे चलाया ॥ ४१ ॥

दीप्तामथैनां प्रहितां बलेन
सविस्फुलिङ्गां सहसा पतन्तीम् ।
प्रैक्षन्त सर्वे कुरवः समेता
दिवो युगान्ते महतीमिवोल्काम् ॥ ४२ ॥

बलपूर्वक फेंकी जानेसे प्रज्वलित हुई तथा आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई उस शक्तिको, वहाँ आये हुए समस्त कौरवोंने प्रलयकालमें आकाशसे गिरनेवाली बड़ी भारी उल्काके समान सहसा शल्यपर गिरती देखा ॥ ४२ ॥

तां कालरात्रीमिव पाशहस्तां
यमस्य धात्रीमिव चोग्ररूपाम् ।
स ब्रह्मदण्डप्रतिमाममोघां
ससर्ज यत्तो युधि धर्मराजः ॥ ४३ ॥

वह शक्ति पाश हाथमें लिये हुए कालरात्रिके समान उग्र, यमराजकी धायके समान भयंकर तथा ब्रह्मदण्डके समान अमोघ थी । धर्मराजने बड़े यत्न और सावधानीके साथ युद्धमें उसका प्रयोग किया था ॥ ४३ ॥

गन्धस्रगग्र्यासनपानभोजनै-
रभ्यर्चितां पाण्डुसुतैः प्रयत्नात् ।
सांवर्तकाग्निप्रतिमां ज्वलन्तीं
कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्राम् ॥ ४४ ॥

पाण्डवोंने गन्ध (चन्दन), माला, उत्तम आसन, पेय-पदार्थ और भोजन आदि अर्पण करके सदा प्रयत्नपूर्वक उसकी पूजा की थी । वह प्रलयकालिक संवर्तक नामक अग्निके समान प्रज्वलित होती और अथर्वाङ्गिरस मन्त्रोंसे प्रकट की गयी कृत्याके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी ॥४४॥

ईशानहेतोः प्रतिनिर्मितां तां
त्वष्ट्रा रिपूणामसुदेहभक्ष्याम् ।
भूम्यन्तरिक्षादिजलाशयानि
प्रसह्य भूतानि निहन्तुमीशाम् ॥ ४५ ॥

त्वष्टा प्रजापति (विश्वकर्मा) ने भगवान् शंकरके लिये उस शक्तिका निर्माण किया था । वह शत्रुओंके प्राण और शरीरको अपना ग्रास बना लेनेवाली थी तथा जल, थल एवं आकाश आदिमें रहनेवाले प्राणियोंको भी बलपूर्वक मार डालनेमें समर्थ थी ॥ ४५ ॥

घण्टापताकामणिवज्रभाजं
वैदूर्यचित्रां तपनीयदण्डाम् ।
त्वष्ट्रा प्रयत्नान्नियमेन क्लृप्तां
ब्रह्मद्विषामन्तकरीममोघाम् ॥ ४६ ॥

उसमें छोटी-छोटी घंटियाँ और पताकाएँ लगी थीं, मणि और हीरे जड़े गये थे, वैदूर्यमणिके द्वारा उसे चित्रित किया गया था । उस शक्तिका दण्ड तपाये हुए सुवर्णका बना था । विश्वकर्माने नियमपूर्वक रहकर बड़े प्रयत्नसे उसको बनाया था । वह ब्रह्मद्रोहियोंका विनाश करनेवाली तथा लक्ष्य वेधनेमें अचूक थी ॥ ४६ ॥

बलप्रयत्नादधिरूढवेगां
मन्त्रैश्च घोरैरभिमन्त्र्य यत्नात् ।
ससर्ज मार्गेण च तां परेण
वधाय मद्राधिपतेस्तदानीम् ॥ ४७ ॥

बल और प्रयत्नके द्वारा उसका वेग बहुत बढ़ गया था, युधिष्ठिरने उस समय मद्रराजका वध करनेके लिये उसे घोर मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके उत्तम मार्गके द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़ा था ॥ ४७ ॥

हतोऽसि पापेत्यभिगर्जमानो
रुद्रोऽन्धकायान्तकरं यथेषुम् ।
प्रसार्य बाहुं सुदृढं सुपाणिं
क्रोधेन नृत्यन्निव धर्मराजः ॥ ४८ ॥

जैसे रुद्रने अन्धकासुरपर प्राणान्तकारी बाण छोड़ा था, उसी प्रकार क्रोधसे नृत्य-सा करते हुए धर्मराज युधिष्ठिरने सुन्दर हाथवाली अपनी सुदृढ़ बाँह फैलाकर वह शक्ति शल्यपर चला दी और गरजते हुए कहा—'ओ पापी ! तू मारा गया' ॥

(स्फुरत्प्रभामण्डलमंशुजालै-
र्धर्मात्मनो मद्रविनाशकाले ।
पुरत्रयप्रोत्सरणे पुरस्ता-
न्माहेश्वरं रूपमभूत् तदानीम् ॥)

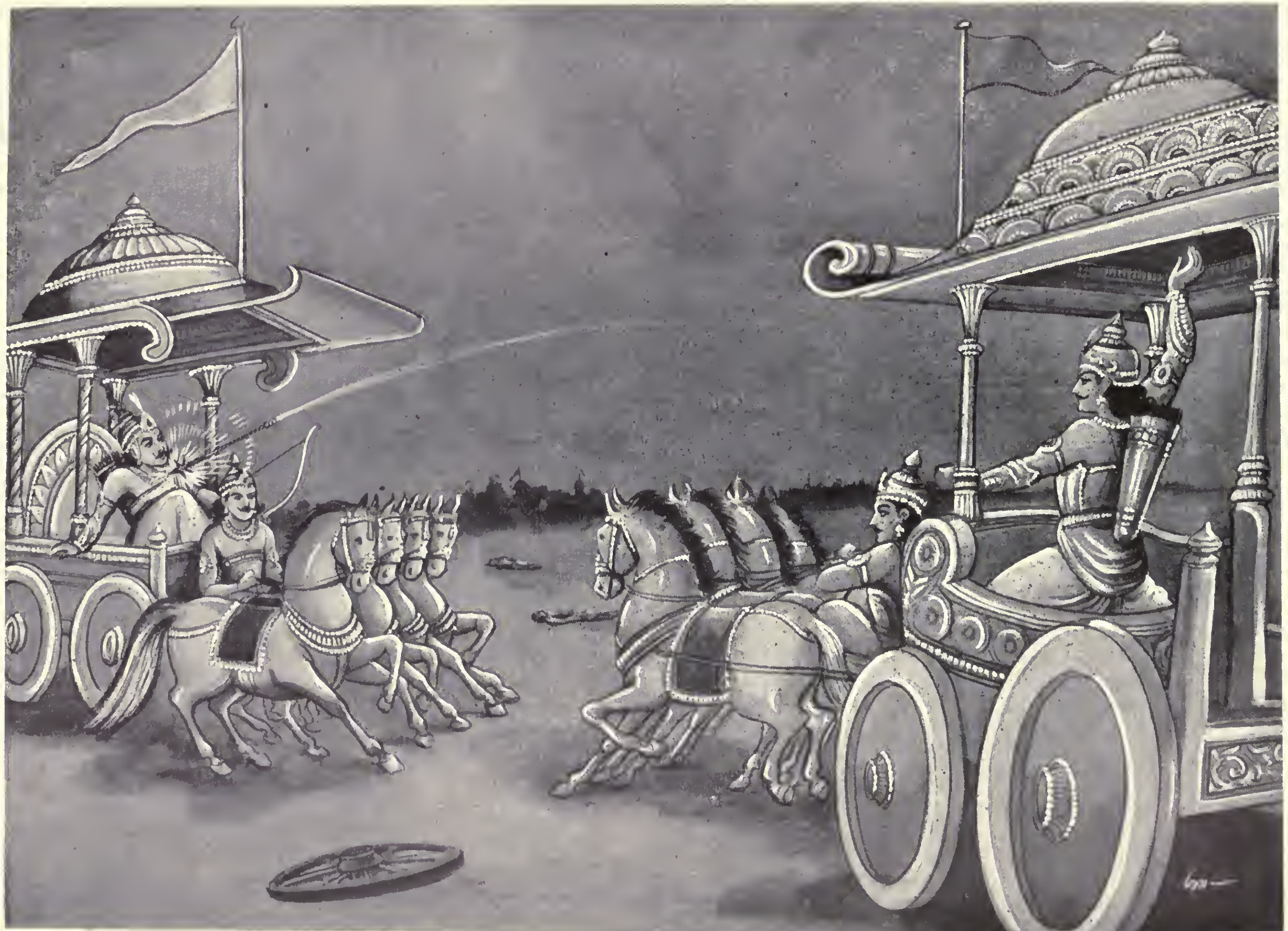
पूर्वकालमें त्रिपुरोंका विनाश करते समय भगवान् महेश्वरका जैसा स्वरूप प्रकट हुआ था, वैसा ही शल्यके संहारकालमें उस समय धर्मात्मा युधिष्ठिरका रूप जान पड़ता था । वे अपने किरणसमूहोंसे प्रभाका पुञ्ज बिखेर रहे थे ॥

तां सर्वशक्त्या प्रहितां सुशक्तिं
युधिष्ठिरेणाप्रतिवार्यवीर्याम् ।
प्रतिग्रहायाभिननर्द शल्यः
सम्यग्घुतामग्निरिवाज्यधाराम् ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिरने उस उत्तम शक्तिको अपना सारा बल लगाकर चलाया था । इसके सिवा, उसके बल और प्रभावको रोकना किसीके लिये भी असम्भव था तो भी उसकी चोट सहनेके लिये मद्रराज शल्य गरज उठे, मानो हवन की हुई घृतधाराको ग्रहण करनेके लिये अग्निदेव प्रज्वलित हो उठे हों ॥४९॥

सा तस्य मर्माणि विदार्य शुभ्र-
मुरो विशालं च तथैव भित्त्वा ।
विवेश गां तोयमिवाप्रसक्ता
यशो विशालं नृपतेर्दहन्ती ॥ ५० ॥

परंतु वह शक्ति राजा शल्यके मर्मस्थानोंको विदीर्ण करके उनके उज्ज्वल एवं विशाल वक्षःस्थलको चीरती तथा विस्तृत



युधिष्ठिरद्वारा शल्यपर शक्तिका घातक प्रहार

यशको दग्ध करती हुई जलकी भाँति धरतीमें समा गयी। उसकी गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती थी ॥ ५० ॥

नासाक्षिकर्णास्यविनिःसृतेन
प्रस्यन्दता च व्रणसम्भवेन।
संसिक्तगात्रो रुधिरेण सोऽभूत्
क्रौञ्चो यथा स्कन्दहतो महाद्रिः॥ ५१॥

जैसे कार्तिकेयकी शक्तिसे आहत हुआ महापर्वत क्रौञ्च गेरूमिश्रित झरनोंके जलसे भीग गया था, उसी प्रकार नाक, आँख, कान और मुखसे निकले तथा घावोंसे बहते हुए खूनसे शल्यका सारा शरीर नहा गया ॥ ५१ ॥

प्रसार्य बाहू च रथाद् गतो गां
संछिन्नवर्मा कुरुनन्दनेन।
महेन्द्रवाहप्रतिमो महात्मा
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य॥ ५२॥

कुरुनन्दन! भीमसेनने जिनके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला था, वे इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान विशालकाय राजा शल्य दोनों बाहें फैलाकर वज्रके मारे हुए पर्वत-शिखरकी भाँति रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५२ ॥

बाहू प्रसार्याभिमुखो धर्मराजस्य मद्रराट्।
ततो निपतितो भूमाविन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः॥ ५३॥

मद्रराज शल्य धर्मराज युधिष्ठिरके सामने ही अपनी दोनों भुजाओंको फैलाकर ऊँचे इन्द्रध्वजके समान धराशायी हो गये ॥ ५३ ॥

स तथा भिन्नसर्वाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः।
प्रत्युद्गत इव प्रेम्णा भूम्या स नरपुङ्गवः॥ ५४॥
प्रियया कान्तया कान्तः पतमान इवोरसि।

उनके सारे अङ्ग विदीर्ण हो गये थे तथा वे खूनसे नहा उठे थे। जैसे प्रियतमा कामिनी अपने वक्षःस्थलपर गिरनेकी इच्छावाले प्रियतमका प्रेमपूर्वक स्वागत करती है, उसी प्रकार पृथ्वीने अपने ऊपर गिरते हुए नरश्रेष्ठ शल्यको मानो प्रेमपूर्वक आगे बढ़कर अपनाया था ॥ ५४½ ॥

चिरं भुक्त्वा वसुमतीं प्रियां कान्तामिव प्रभुः॥ ५५॥
सर्वैरङ्गैः समाश्लिष्य प्रसुप्त इव चाभवत्।

प्रियतमा कान्ताकी भाँति इस वसुधाका चिरकालतक उपभोग करनेके पश्चात् राजा शल्य मानो अपने सम्पूर्ण अङ्गोंसे उसका आलिङ्गन करके सो गये थे ॥ ५५½ ॥

धर्म्ये धर्मात्मना युद्धे निहतो धर्मसूनुना॥ ५६॥
सम्यग्घुत इव स्विष्टः प्रशान्तोऽग्निरिवाध्वरे।

उस धर्मानुकूल युद्धमें धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा मारे गये राजा शल्य यज्ञमें विधिपूर्वक घीकी आहुति पाकर शान्त होनेवाली 'स्विष्टकृत्' अग्निके समान सर्वथा शान्त हो गये ॥ ५६½ ॥

शक्त्या विभिन्नहृदयं विप्रविद्धायुधध्वजम्॥ ५७॥
संशान्तमपि मद्रेशं लक्ष्मीर्नैव विमुञ्चति।

शक्तिने राजा शल्यके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर डाला था, उनके आयुध तथा ध्वज छिन्न-भिन्न हो बिखरे पड़े थे और वे सदाके लिये शान्त हो गये थे तो भी मद्रराजको लक्ष्मी (शोभा या कान्ति) छोड़ नहीं रही थी ॥ ५७½ ॥

ततो युधिष्ठिरश्चापमादायेन्द्रधनुष्प्रभम्॥ ५८॥
व्यधमद् द्विषतः संख्ये खगराडिव पन्नगान्।
देहान् सुनिशितैर्भल्लै रिपूणां नाशयन् क्षणात्॥५९॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने इन्द्रधनुषके समान कान्तिमान् दूसरा धनुष लेकर सर्पोंका संहार करनेवाले गरुड़की भाँति युद्धस्थलमें तीखे भल्लोंद्वारा शत्रुओंके शरीरोंका नाश करते हुए क्षणभरमें उन सबका विध्वंस कर दिया ॥ ५८-५९ ॥

ततः पार्थस्य बाणौघैरावृताः सैनिकास्तव।
निमीलिताक्षाः क्षिण्वन्तो भृशमन्योन्यमर्दिताः॥ ६०॥
क्षरन्तो रुधिरं देहैर्विपन्नायुधजीविताः।

युधिष्ठिरके बाणसमूहोंसे आच्छादित हुए आपके सैनिकोंने आँखें मीच लीं और आपसमें ही एक-दूसरेको घायल करके वे अत्यन्त पीडित हो गये। उस समय शरीरोंसे रक्तकी धारा बहाते हुए वे अपने अस्त्र-शस्त्र और जीवनसे भी हाथ धो बैठे॥

ततः शल्ये निपतिते मद्रराजानुजो युवा॥ ६१॥
भ्रातुस्तुल्यो गुणैः सर्वैः रथी पाण्डवमभ्ययात्।

तदनन्तर, मद्रराज शल्यके मारे जानेपर उनका छोटा भाई, जो अभी नवयुवक था और सभी गुणोंमें अपने भाईकी ही समानता करता था, रथपर आरूढ हो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर चढ़ आया ॥ ६१½ ॥

विव्याध च नरश्रेष्ठो नाराचैर्बहुभिस्त्वरन्॥ ६२॥
हतस्यापचितिं भ्रातुश्चिकीर्षुर्युद्धदुर्मदः।

मारे गये भाईका प्रतिशोध लेनेकी इच्छासे वह रणदुर्मद नरश्रेष्ठ वीर बड़ी उतावलीके साथ उन्हें बहुत-से नाराचोंद्वारा घायल करने लगा ॥ ६२½ ॥

तं विव्याधाशुगैः षड्भिर्धर्मराजस्त्वरन्निव॥ ६३॥
कार्मुकं चास्य चिच्छेद क्षुराभ्यां ध्वजमेव च।

तब धर्मराजने उसे शीघ्रतापूर्वक छः बाणोंसे बींध डाला तथा दो क्षुरोंसे उसके धनुष और ध्वजको काट दिया ॥

ततोऽस्य दीप्यमानेन सुदृढेन शितेन च॥ ६४॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरच्छिरः।

तत्पश्चात् एक चमकीले, सुदृढ़ और तीखे भल्लसे सामने खड़े हुए उस राजकुमारके मस्तकको काट गिराया ॥६४½॥

सकुण्डलं तद् ददृशे पतमानं शिरो रथात्॥ ६५॥
पुण्यक्षयमनुप्राप्य पतन् स्वर्गादिव च्युतः।

पुण्य समाप्त होनेपर स्वर्गसे भ्रष्ट हो नीचे गिरनेवाले जीवकी भाँति उसका वह कुण्डलसहित मस्तक रथसे भूतलपर गिरता देखा गया ॥ ६५½ ॥

तस्यापकृत्तशीर्षं तु शरीरं पतितं रथात्॥ ६६॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं दृष्ट्वा सैन्यमभज्यत।

फिर खूनसे लथपथ हुआ उसका शरीर भी, जिसका सिर काट लिया गया था, रथसे नीचे गिर पड़ा। उसे देखकर आपकी सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ६६½ ॥

विचित्रकवचे तस्मिन् हते मद्रनृपानुजे ॥ ६७ ॥
हाहाकारं प्रकुर्वाणाः कुरवोऽभिप्रदुद्रुवुः ।

मद्रनरेशका वह छोटा भाई विचित्र कवचसे सुशोभित था, उसके मारे जानेपर समस्त कौरव हाहाकार करते हुए भाग चले ॥ ६७½ ॥

शल्यानुजं हतं दृष्ट्वा तावकास्त्यक्तजीविताः ॥ ६८ ॥
वित्रेसुः पाण्डवभयाद् रजोध्वस्तास्तदा भृशम् ।

शल्यके भाईको मारा गया देख धूलिधूसरित हुए आपके सारे सैनिक पाण्डुपुत्रके भयसे जीवनकी आशा छोड़कर अत्यन्त त्रस्त हो गये ॥ ६८½ ॥

तांस्तथा भज्यमानांस्तु कौरवान् भरतर्षभ ॥ ६९ ॥
शिनेर्नप्ता किरन् बाणैरभ्यवर्तत सात्यकिः ।

भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार भागते हुए उन कौरवयोद्धाओंपर बाणोंकी वर्षा करते हुए शिनि-पौत्र सात्यकि उनका पीछा करने लगे ॥ ६९½ ॥

तमायान्तं महेष्वासं दुष्प्रसह्यं दुरासदम् ॥ ७० ॥
हार्दिक्यस्त्वरितो राजन् प्रत्यगृह्णादभीतवत् ।

राजन् ! दुःसह एवं दुर्जय महाधनुर्धर सात्यकिको अक्रमण करते देख कृतवर्माने शीघ्रतापूर्वक एक निर्भय वीर-की भाँति उन्हें रोका ॥ ७०½ ॥

तौ समेतौ महात्मानौ वार्ष्णेयौ वरवाजिनौ ॥ ७१ ॥
हार्दिक्यः सात्यकिश्चैव सिंहाविव बलोत्कटौ ।

श्रेष्ठ घोड़ोंवाले वे महामनस्वी वृष्णिवंशी वीर सात्यकि और कृतवर्मा दो बलोन्मत्त सिंहोंके समान एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ ७१½ ॥

इषुभिर्विमलाभासैश्छादयन्तौ परस्परम् ॥ ७२ ॥
अर्चिर्भिरिव सूर्यस्य दिवाकरसमप्रभौ ।

सूर्यके समान तेजस्वी वे दोनों वीर दिनकरकी किरणोंके सदृश निर्मल कान्तिवाले बाणोंद्वारा एक दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ ७२½ ॥

चापमार्गबलोद्धूतान् मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः ॥ ७३ ॥
आकाशगानपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान् ।

वृष्णिवंशके उन दोनों सिंहोंके धनुषद्वारा बलपूर्वक चलाये हुए शीघ्रगामी बाणोंको हमने टिड्डीदलोंके समान आकाशमें व्याप्त हुआ देखा था ॥ ७३½ ॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ॥ ७४ ॥
चापमेकेन चिच्छेद हार्दिक्यो नतपर्वणा ।

कृतवर्माने दस बाणोंसे सात्यकिको तथा तीनसे उनके घोड़ोंको घायल करके झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे उनके धनुषको भी काट दिया ॥ ७४½ ॥

तन्निकृत्तं धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः ॥ ७५ ॥
अन्यदादत्त वेगेन वेगवत्तरमायुधम् ।

उस कटे हुए श्रेष्ठ धनुषको फेंककर शिनिप्रवर सात्यकि-ने उससे भी अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष शीघ्रतापूर्वक हाथमें ले लिया ॥ ७५½ ॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ॥ ७६ ॥
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।

उस श्रेष्ठ धनुषको लेकर सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें अग्रगण्य सात्यकिने कृतवर्माकी छातीमें दस बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ७६½ ॥

ततो रथं युगेषां च च्छित्त्वा भल्लैः सुसंयतैः ॥ ७७ ॥
अश्वांस्तस्यावधीत् तूर्णमुभौ च पार्ष्णिसारथी ।

तत्पश्चात् सुसंयत भल्लोंके प्रहारसे उसके रथ, जूए और ईषादण्ड (हरसे) को काटकर शीघ्र ही घोड़ों तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला ॥ ७७½ ॥

ततस्तं विरथं दृष्ट्वा कृपः शारद्वतः प्रभो ॥ ७८ ॥
अपोवाह ततः क्षिप्रं रथमारोप्य वीर्यवान् ।

प्रभो ! कृतवर्माको रथहीन हुआ देख शरद्वान्‌के पराक्रमी पुत्र कृपाचार्य उसे शीघ्र ही अपने रथपर बिठाकर वहाँसे दूर हटा ले गये ॥ ७८½ ॥

मद्रराजे हते राजन् विरथे कृतवर्मणि ॥ ७९ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ।

राजन् ! जब मद्रराज मारे गये और कृतवर्मा भी रथहीन हो गया, तब दुर्योधनकी सारी सेना पुनः युद्धसे मुँह मोड़कर भागने लगी ॥ ७९½ ॥

तत् परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृते ॥ ८० ॥
बलं तु हतभूयिष्ठं तत् तदाऽऽसीत् पराङ्मुखम् ।

परंतु वहाँ सब ओर धूल छा रही थी, इसलिये शत्रुओं-को इस बातका पता न चला । अधिकांश योद्धाओंके मारे जानेसे उस समय वह सारी सेना युद्धसे विमुख हो गयी थी ॥ ८०½ ॥

ततो मुहूर्तात् तेऽपश्यन् रजो भीमं समुत्थितम् ॥ ८१ ॥
विविधैः शोणितस्रावैः प्रशान्तं पुरुषर्षभ ।

पुरुषप्रवर ! तदनन्तर दो ही घड़ीमें उन सबने देखा कि धरतीकी जो धूल ऊपर उड़ रही थी, वह नाना प्रकारके रक्तका स्रोत बहनेसे शान्त हो गयी है ॥ ८१½ ॥

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥ ८२ ॥
जवेनापततः पार्थानेकः सर्वानवारयत् ।

उस समय दुर्योधनने यह देखकर कि मेरी सेना मेरे पाससे भाग गयी है, वेगसे आक्रमण करनेवाले समस्त पाण्डव-योद्धाओंको अकेले ही रोका ॥ ८२½ ॥

पाण्डवान् सरथान् दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ८३ ॥
आनर्तं च दुराधर्षं शितैर्बाणैरवारयत् ।

रथसहित पाण्डवोंको, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको तथा दुर्जय वीर आनर्तनरेशको सामने देखकर उसने तीखे बाणों-द्वारा उन सबको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ८३½ ॥

तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवागतम् ॥ ८४ ॥
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्योऽपि न्यवर्तत ।

जैसे मरणधर्मा मनुष्य पास आयी हुई अपनी मौतको नहीं टाल सकते, उसी प्रकार वे शत्रुपक्षके सैनिक दुर्योधनको

लाँघकर आगे न बढ़ सके। इसी समय कृतवर्मा भी दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः वहीं लौट आया ॥ ८४½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ॥ ८५ ॥
चतुर्भिर्निजघानाश्वान् पत्रिभिः कृतवर्मणः ।
विव्याध गौतमं चापि षड्भिर्भल्लैः सुतेजनैः ॥ ८६ ॥

तब महारथी राजा युधिष्ठिरने बड़ी उतावलीके साथ चार बाण मारकर कृतवर्माके चारों घोड़ोंका संहार कर डाला तथा छः तेज धारवाले भल्लोंसे कृपाचार्यको भी घायल कर दिया ॥ ८५-८६ ॥

अश्वत्थामा ततो राज्ञा हताश्वं विरथीकृतम् ।
तमपोवाह हार्दिक्यं स्वरथेन युधिष्ठिरात् ॥ ८७ ॥

इसके बाद अश्वत्थामा अपने रथके द्वारा घोड़ोंके मारे जानेसे रथहीन हुए कृतवर्माको राजा युधिष्ठिरके पाससे दूर हटा ले गया ॥ ८७ ॥

ततः शारद्वतः षड्भिः प्रत्यविद्ध्यद् युधिष्ठिरम् ।
विव्याध चाश्वान्निशितैस्तस्याष्टाभिः शिलीमुखैः॥८८॥

तब कृपाचार्यने छः बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला और आठ पैने बाणोंसे उनके घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥

एवमेतन्महाराज युद्धशेषमवर्तत ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् सह पुत्रस्य भारत ॥ ८९ ॥

महाराज ! भरतवंशी नरेश ! इस प्रकार पुत्रसहित आपकी कुमन्त्रणासे इस युद्धका अन्त हुआ ॥ ८९ ॥

तस्मिन् महेष्वासवरे विशस्ते
संग्राममध्ये कुरुपुङ्गवेन ।
पार्थाः समेताः परमप्रहृष्टाः
शङ्खान् प्रदध्मुर्हतमीक्ष्य शल्यम्॥ ९० ॥

कुरुकुलशिरोमणि युधिष्ठिरके द्वारा युद्धमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर शल्यके मारे जानेपर कुन्तीके सभी पुत्र एकत्र हो अत्यन्त हर्षमें भर गये और शल्यको मारा गया देख शङ्ख बजाने लगे ॥ ९० ॥

युधिष्ठिरं च प्रशशंसुराजौ
पुरा कृते वृत्रवधे यथेन्द्रम् ।
चक्रुश्च नानाविधवाद्यशब्दान्
निनादयन्तो वसुधां समेताः ॥ ९१ ॥

जैसे पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध करनेपर देवताओंने इन्द्रकी स्तुति की थी, उसी प्रकार सब पाण्डवोंने रणभूमिमें युधिष्ठिरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए वे सब लोग नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनि फैलाने लगे ॥ ९१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्यका वधविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ९४ श्लोक हैं)

अष्टादशोऽध्यायः

मद्रराजके अनुचरोंका वध और कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

शल्येऽथ निहते राजन् मद्रराजपदानुगाः ।
रथाः सप्तशता वीरा निर्ययुर्महतो बलात् ॥ १ ॥
दुर्योधनस्तु द्विरदमारुह्याचलसंनिभम् ।
छत्रेण ध्रियमाणेन वीज्यमानश्च चामरैः ॥ २ ॥
न गन्तव्यं न गन्तव्यमिति मद्रानवारयत् ।
दुर्योधनेन ते वीरा वार्यमाणाः पुनः पुनः ॥ ३ ॥
युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन् बलम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! मद्रराज शल्यके मारे जानेपर उनके अनुगामी सात सौ वीर रथी विशाल कौरव-सेनासे निकल पड़े । उस समय दुर्योधन पर्वताकार हाथीपर आरूढ़ हो सिरपर छत्र धारण किये चामरोंसे वीजित होता हुआ वहाँ आया और 'न जाओ, न जाओ' ऐसा कहकर उन मद्रदेशीय वीरोंको रोकने लगा; परंतु दुर्योधनके बारंबार रोकनेपर भी वे वीर योद्धा युधिष्ठिरके वधकी इच्छासे पाण्डवोंकी सेनामें जा घुसे ॥ १—३½ ॥

ते तु शूरा महाराज कृतचित्ताश्च योधने ॥ ४ ॥
धनुःशब्दं महत् कृत्वा सहायुध्यन्त पाण्डवैः ।

महाराज ! उन शूरवीरोंने युद्ध करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया था, अतः धनुषकी गम्भीर टंकार करके पाण्डवोंके साथ संग्राम आरम्भ कर दिया ॥ ४½ ॥

श्रुत्वा च निहतं शल्यं धर्मपुत्रं च पीडितम् ॥ ५ ॥
मद्रराजप्रिये युक्तैर्मद्रकाणां महारथैः ।
आजगाम ततः पार्थो गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः ॥ ६ ॥
पूरयन् रथघोषेण दिशः सर्वा महारथः ।

शल्य मारे गये और मद्रराजका प्रिय करनेमें लगे हुए मद्रदेशीय महारथियोंने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पीड़ित कर रखा है; यह सुनकर कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुन गाण्डीव धनुषकी टंकार करते और रथके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूर्ण करते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥ ५-६½ ॥

ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ७ ॥
सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाः सह सोमकैः॥ ८ ॥
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात् पर्यवारयन् ।

तदनन्तर अर्जुन, भीमसेन, माद्रीपुत्र पाण्डुकुमार नकुल, सहदेव, पुरुषसिंह सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पाञ्चाल और सोमक वीर—इन सबने युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ७-८½

ते समन्तात् परिवृताः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥ ९ ॥
क्षोभयन्ति स्म तां सेनां मकराः सागरं यथा ।

युधिष्ठिरको तब ओरसे घेरकर लड़ते हुए पुरुषप्रवर पाण्डव उस सेनाको उसी प्रकार क्षुब्ध करने लगे, जैसे मगर समुद्रको ॥ ९½ ॥

वृक्षानिव महावाताः कम्पयन्ति स्म तावकान् ॥ १० ॥
पुरोवातेन गङ्गेव क्षोभ्यमाणा महानदी ।
अक्षोभ्यत तदा राजन् पाण्डूनां ध्वजिनी ततः ॥ ११ ॥

जैसे महावायु (आँधी) वृक्षोंको हिला देती है, उसी प्रकार पाण्डव-वीरोंने आपके सैनिकोंको कम्पित कर दिया। राजन् ! जैसे पूर्वी हवा महानदी गङ्गाको क्षुब्ध कर देती है, उसी प्रकार उन सैनिकोंने पाण्डवोंकी सेनामें भी हलचल मचा दी ॥ १०-११ ॥

प्रस्कन्द्य सेनां महतीं महात्मानो महारथाः ।
बहवश्चुक्रुशुस्तत्र क्व स राजा युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥
भ्रातरो वास्य ते शूरा दृश्यन्ते नेह केन च ।

वे बहुसंख्यक महामनस्वी मद्रमहारथी विशाल पाण्डव-सेनाको मथकर जोर-जोरसे पुकार-पुकारकर कहने लगे—'कहाँ है वह राजा युधिष्ठिर ? अथवा उसके वे शूरवीर भाई ? वे सब यहाँ दिखायी क्यों नहीं देते ? ॥ १२½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽथ शैनेयो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ १३ ॥
पञ्चालाश्च महावीर्याः शिखण्डी च महारथः ।

'धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके सभी पुत्र, महापराक्रमी पाञ्चाल और महारथी शिखण्डी—ये सब कहाँ हैं ?' ॥ १३½ ॥

एवं तान् वादिनः शूरान् द्रौपदेया महारथाः ॥ १४ ॥
अभ्यघ्नन् युयुधानश्च मद्रराजपदानुगान् ।

ऐसी बातें कहते हुए उन मद्रराजके अनुगामी वीर योद्धाओंको द्रौपदीके महारथी पुत्रों और सात्यकिने मारना आरम्भ किया ॥ १४½ ॥

चक्रैर्विमथितैः केचित् केचिच्छिन्नैर्महाध्वजैः ॥ १५ ॥
ते दृश्यन्तेऽपि समरे तावका निहताः परैः ।

समराङ्गणमें आपके वे सैनिक शत्रुओंद्वारा मारे जाने लगे। कुछ योद्धा छिन्न-भिन्न हुए रथके पहियों और कुछ कटे हुए विशाल ध्वजोंके साथ ही धराशायी होते दिखायी देने लगे ॥ १५½ ॥

आलोक्य पाण्डवान् युद्धे योधा राजन् समन्ततः ॥ १६ ॥
वार्यमाणा ययुर्वेगात् पुत्रेण तव भारत ।

राजन् ! भरतनन्दन ! वे योद्धा युद्धमें सब ओर फैले हुए पाण्डवोंको देखकर आपके पुत्रके मना करनेपर भी वेग-पूर्वक आगे बढ़ गये ॥ १६½ ॥

दुर्योधनश्च तान् वीरान् वारयामास सान्त्वयन् ॥ १७ ॥
न चास्य शासनं केचित्तत्र चक्रुर्महारथाः ।

दुर्योधनने उन वीरोंको सान्त्वना देते हुए बहुत मना किया, किंतु वहाँ किन्हीं महारथियोंने उसकी इस आज्ञाका पालन नहीं किया ॥ १७½ ॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् ॥ १८ ॥
दुर्योधनं महाराज वचनं वचनक्षमः ।

महाराज ! तब प्रवचनपटु गान्धारराजपुत्र शकुनिने दुर्योधनसे यह बात कही—॥ १८½ ॥

किं नः सम्प्रेक्षमाणानां मद्राणां हन्यते बलम् ॥ १९ ॥
न युक्तमेतत् समरे त्वयि तिष्ठति भारत ।

'भारत ! हमलोगोंके देखते-देखते मद्रदेशकी यह सेना क्यों मारी जाती है ? तुम्हारे रहते ऐसा कदापि नहीं होना चाहिये ॥ १९½ ॥

सहितैश्चापि योद्धव्यमित्येष समयः कृतः ॥ २० ॥
अथ कस्मात् परानेव घ्नतो मर्षयसे नृप ।

'यह शपथ ली जा चुकी है कि 'हम सब लोग एक साथ होकर लड़ें ।' नरेश्वर ! ऐसी दशामें शत्रुओंको अपनी सेनाका संहार करते देखकर भी तुम क्यों सहन करते हो ?' ॥ २०½ ॥

दुर्योधन उवाच

वार्यमाणा मया पूर्वं नैते चक्रुर्वचो मम ॥ २१ ॥
एते विनिहताः सर्वे प्रस्कन्नाः पाण्डुवाहिनीम् ।

दुर्योधनने कहा—मैंने पहले ही इन्हें बहुत मना किया था, परंतु इन लोगोंने मेरी बात नहीं मानी और पाण्डवसेनामें घुसकर ये प्रायः सब-के-सब मारे गये ॥ २१½ ॥

शकुनिरुवाच

न भर्तुः शासनं वीरा रणे कुर्वन्त्यमर्षिताः ॥ २२ ॥
अलं क्रोद्धुमथैतेषां नायं काल उपेक्षितुम् ।
यामः सर्वे च सम्भूय सवाजिरथकुञ्जराः ॥ २३ ॥
परित्रातुं महेष्वासान् मद्रराजपदानुगान् ।
अन्योन्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप ॥ २४ ॥

शकुनि बोला—नरेश्वर ! युद्धस्थलमें रोषामर्षके वशीभूत हुए वीर स्वामीकी आज्ञाका पालन नहीं करते हैं; वैसी दशामें इनपर क्रोध करना उचित नहीं है। यह इनकी उपेक्षा करनेका समय नहीं है। हम सब लोग एक साथ हो मद्रराजके महाधनुर्धर सेवकोंकी रक्षाके लिये हाथी, घोड़े और रथसहित चलें तथा महान् प्रयत्नपूर्वक एक दूसरेकी रक्षा करें ॥ २२–२४ ॥

संजय उवाच

एवं सर्वेऽनुसंचिन्त्य प्रययुर्यत्र सैनिकाः ।
एवमुक्तस्तदा राजा बलेन महता वृतः ॥ २५ ॥
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्निव मेदिनीम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा विचारकर सब लोग वहीं गये, जहाँ वे सैनिक मौजूद थे। शकुनिके वैसा कहने-पर राजा दुर्योधन विशाल सेनाके साथ सिंहनाद करता और पृथ्वीको कँपाता हुआ-सा आगे बढ़ा ॥ २५½ ॥

हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ॥ २६ ॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत ।

भारत ! उस समय आपकी सेनामें 'मार डालो, घायल करो, पकड़ लो, प्रहार करो और टुकड़े-टुकड़े कर डालो' यह भयंकर शब्द गूँज रहा था ॥ २६½ ॥

पाण्डवास्तु रणे दृष्ट्वा मद्रराजपदानुगान् ॥ २७ ॥
सहितानभ्यवर्तन्त गुल्ममास्थाय मध्यमम् ।

रणभूमिमें मद्रराजके सेवकोंको एक साथ धावा करते देख पाण्डवोंने मध्यम गुल्म (सेना) का आश्रय ले उनका सामना किया ॥ २७½ ॥

ते मुहूर्ताद् रणे वीरा हस्ताहस्ति विशाम्पते ॥ २८ ॥
निहताः प्रत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः ।

प्रजानाथ ! वे मद्रराजके अनुगामी वीर रणभूमिमें दो ही घड़ीके भीतर हाथों-हाथ मारे गये दिखायी दिये ॥२८½॥

ततो नः सम्प्रयातानां हता मद्रास्तरस्विनः ॥ २९ ॥
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन् सहिताः परे ।

वहाँ हमारे पहुँचते ही मद्रदेशके वे वेगशाली वीर कालके गालमें चले गये और शत्रुसैनिक अत्यन्त प्रसन्न हो एक साथ किलकारियाँ भरने लगे ॥ २९½ ॥

उत्थितानि कबन्धानि समदृश्यन्त सर्वशः ॥ ३० ॥
पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलम् ।

सब ओर कबन्ध खड़े दिखायी दे रहे थे और सूर्यमण्डलके बीचसे वहाँ बड़ी भारी उल्का गिरी ॥ ३०½ ॥

रथैर्भग्नैर्युगाक्षैश्च निहतैश्च महारथैः ॥ ३१ ॥
अश्वैर्निपतितैश्चैव संछन्नाभूद् वसुन्धरा ।

टूटे-फूटे रथों, जूओं और धुरोंसे, मारे गये महारथियोंसे तथा धराशायी हुए घोड़ोंसे भूमि ढक गयी थी ॥ ३१½॥

वातायमानैस्तुरगैर्युगासक्तैस्ततस्ततः ॥ ३२ ॥
अदृश्यन्त महाराज योधास्तत्र रणाजिरे ।

महाराज ! वहाँ समराङ्गणमें बहुत-से योद्धा जूएमें बँधे हुए वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा इधर-उधर ले जाये जाते दिखायी देते थे ॥ ३२½ ॥

भग्नचक्रान् रथान् केचिदहरंस्तुरगा रणे ॥ ३३ ॥
रथार्धं केचिदादाय दिशो दश विबभ्रमुः ।

कुछ घोड़े रणभूमिमें टूटे पहियोंवाले रथोंको लिये जा रहे थे और कितने ही अश्व आधे ही रथको लेकर दसों दिशाओंमें चक्कर लगाते थे ॥ ३३½ ॥

तत्र तत्र व्यदृश्यन्त योक्त्रैः श्लिष्टाः स्म वाजिनः॥३४॥
रथिनः पतमानाश्च दृश्यन्ते स्म नरोत्तमाः ।
गगनात् प्रच्युताः सिद्धाः पुण्यानामिव संक्षये ॥ ३५ ॥

जहाँ-तहाँ जोतोंसे जुड़े हुए घोड़े और नरश्रेष्ठ रथी गिरते दिखायी दे रहे थे, मानो सिद्ध (पुण्यात्मा) पुरुष पुण्यक्षय होनेपर आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़े हों ॥ ३४-३५॥

निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु वै ।
अस्मानापततश्चापि दृष्ट्वा पार्था महारथाः ॥ ३६ ॥
अभ्यवर्तन्त वेगेन जयगृद्धाः प्रहारिणः ।
बाणशब्दरवान् कृत्वा विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः ॥ ३७ ॥

मद्रराजके उन शूरवीर सैनिकोंके मारे जानेपर हमें आक्रमण करते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले महारथी पाण्डव-योद्धा शङ्खध्वनिके साथ बाणोंकी सनसनाहट फैलाते हुए हमारा सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आये ३६-३७

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्यप्रहारिणः ।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान् प्रचुक्रुशुः ॥ ३८ ॥

हमारे पास पहुँचकर लक्ष्य वेधनेमें सफल और प्रहारकुशल पाण्डव-सैनिक अपने धनुष हिलाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३८ ॥

ततो हतमभिप्रेक्ष्य मद्रराजबलं महत् ।
मद्रराजं च समरे दृष्ट्वा शूरं निपातितम् ॥ ३९ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ।

मद्रराजकी वह विशाल सेना मारी गयी तथा शूरवीर मद्रराज शल्य पहले ही समरभूमिमें धराशायी किये जा चुके हैं, यह सब अपनी आँखों देखकर दुर्योधनकी सारी सेना पुनः पीठ दिखाकर भाग चली ॥ ३९½ ॥

वध्यमानं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
दिशो भेजेऽथ सम्भ्रान्तं भ्रामितं दृढधन्विभिः ॥ ४० ॥

महाराज ! विजयसे उल्लसित होनेवाले दृढ़ धनुर्धर पाण्डवोंकी मार खाकर कौरव-सेना घबरा उठी और भ्रान्त-सी होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगी ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

पाण्डवसैनिकोंका आपसमें बातचीत करते हुए पाण्डवोंकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रकी निन्दा करना तथा कौरव-सेनाका पलायन, भीमद्वारा इक्कीस हजार पैदलोंका संहार और दुर्योधनका अपनी सेनाको उत्साहित करना

संजय उवाच

पातिते युधि दुर्धर्षे मद्रराजे महारथे ।
तावकास्तव पुत्राश्च प्रायशो विमुखाभवन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्जय महारथी मद्रराज शल्यके मारे जानेपर आपके सैनिक और पुत्र प्रायः संग्रामसे विमुख हो गये ॥ १ ॥

वणिजो नावि भिन्नायां यथागाधेऽप्लवेऽर्णवे ।
अपारे पारमिच्छन्तो हते शूरे महात्मना ॥ २ ॥
मद्रराजे महाराज वित्रस्ताः शरविक्षताः ।

महाराज ! जैसे अगाध महासागरमें नाव टूट जानेपर उस नौकारहित अपार समुद्रसे पार जानेकी इच्छावाले व्यापारी व्याकुल हो उठते हैं, उसी प्रकार महात्मा युधिष्ठिरके द्वारा

शूरवीर मद्रराज शल्यके मारे जानेपर आपके सैनिक बाणोंसे क्षत-विक्षत एवं भयभीत हो बड़ी घबराहटमें पड़ गये ॥

अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ ३ ॥
वृषा यथा भग्नशृङ्गाः शीर्णदन्ता यथा गजाः ।

वे अपनेको अनाथ समझते हुए किसी नाथ (सहायक) की इच्छा रखते थे और सिंहके सताये हुए मृगों, टूटे सींगवाले साँड़ों तथा जीर्ण-शीर्ण दाँतोंवाले हाथियोंके समान असमर्थ हो गये थे ॥ ३½ ॥

मध्याह्ने प्रत्यपायाम निर्जिताजातशत्रुणा ॥ ४ ॥
न संधातुमनीकानि न च राजन् पराक्रमे ।
आसीद् बुद्धिर्हते शल्ये भूयो योधस्य कस्यचित्॥ ५ ॥

राजन् ! अजातशत्रु युधिष्ठिरसे पराजित हो दोपहरके समय हमलोग युद्धसे भाग चले थे । शल्यके मारे जानेसे किसी भी योद्धाके मनमें सेनाओंको संगठित करने तथा पराक्रम दिखानेका उत्साह नहीं होता था ॥ ४-५ ॥

भीष्मे द्रोणे च निहते सूतपुत्रे च भारत ।
यद् दुःखं तव योधानां भयं चासीद् विशाम्पते॥ ६ ॥
तद् भयं स च नः शोको भूय एवाभ्यवर्तत ।

भारत ! प्रजानाथ ! भीष्म, द्रोण और सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके योद्धाओंको जो दुःख और भय प्राप्त हुआ था, वही भय और वही शोक पुनः(शल्यके मारे जानेपर) हमारे सामने उपस्थित हुआ ॥ ६½ ॥

निराशाश्च जये तस्मिन् हते शल्ये महारथे ॥ ७ ॥
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ताश्च शितैः शरैः ।

जिनके प्रमुख वीर मारे गये थे, वे कौरव-सैनिक महारथी शल्यका वध हो जानेपर पैने बाणोंसे क्षत-विक्षत और विध्वस्त हो विजयकी ओरसे निराश हो गये थे ॥ ७½ ॥

मद्रराजे हते राजन् योधास्ते प्राद्रवन् भयात् ॥ ८ ॥
अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ।
आरुह्य जवसम्पन्नाः पादाताः प्राद्रवंस्तथा ॥ ९ ॥

राजन् ! मद्रराजकी मृत्यु हो जोनेपर आपके वे सभी योद्धा भयके मारे भागने लगे । कुछ सैनिक घोड़ोंपर, कुछ हाथियोंपर और दूसरे महारथी रथोंपर आरूढ़ हो बड़े वेगसे भागे । पैदल सैनिक भी वहाँसे भाग खड़े हुए ॥

द्विसाहस्राश्च मातङ्गा गिरिरूपाः प्रहारिणः ।
सम्प्राद्रवन् हते शल्ये अङ्कुशाङ्गुष्ठनोदिताः ॥ १० ॥

दो हजार प्रहारकुशल पर्वताकार मतवाले हाथी शल्यके मारे जानेपर अङ्कुशों और पैरके अँगूठोंसे प्रेरित हो तीव्र गतिसे पलायन करने लगे ॥ १० ॥

ते रणाद् भरतश्रेष्ठ तावकाः प्राद्रवन् दिशः ।
धावतश्चाप्यपश्याम श्वसमानाञ्शराहतान् ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! आपके वे सैनिक रणभूमिसे सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भागे थे । हमने देखा, वे बाणोंसे क्षत-विक्षत हो हाँफते हुए दौड़े जा रहे हैं ॥ ११ ॥

तान् प्रभग्नान् द्रुतान् दृष्ट्वा हतोत्साहान् पराजितान् ।
अभ्यवर्तन्त पञ्चालाः पाण्डवाश्च जयैषिणः ॥ १२ ॥

उन्हें हतोत्साह, पराजित एवं हताश होकर भागते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पाञ्चाल और पाण्डव उनका पीछा करने लगे ॥ १२ ॥

बाणशब्दरवाश्चापि सिंहनादाश्च पुष्कलाः ।
शङ्खशब्दश्च शूराणां दारुणः समपद्यत ॥१३ ॥

बाणोंकी सनसनाहट, शूरवीरोंका सिंहनाद और शङ्खध्वनि इन सबकी मिली-जुली आवाज बड़ी भयानक जान पड़ती थी॥

दृष्ट्वा तु कौरवं सैन्यं भयत्रस्तं प्रविद्रुतम् ।
अन्योन्यं समभाषन्त पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥

कौरव-सेनाको भयसे संत्रस्त होकर भागती देख पाण्डवोंसहित पाञ्चाल योद्धा आपसमें इस प्रकार वार्तालाप करने लगे—॥

अद्य राजा सत्यधृतिर्हतामित्रो युधिष्ठिरः ।
अद्य दुर्योधनो हीनो दीप्तया नृपतिश्रियः ॥ १५ ॥

'आज सत्यपरायण राजा युधिष्ठिर शत्रुहीन हो गये और आज दुर्योधन अपनी देदीप्यमान राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गया ॥

अद्य श्रुत्वा हतं पुत्रं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
विह्वलः पतितो भूमौ किल्बिषं प्रतिपद्यताम् ॥ १६ ॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रको मारा गया सुनकर व्याकुल हो पृथ्वीपर पछाड़ खाकर गिरें और दुःख भोगें ॥

अद्य जानातु कौन्तेयं समर्थं सर्वधन्विनाम् ।
अद्यात्मानं च दुर्मेधा गर्हयिष्यति पापकृत् ॥ १७ ॥
अद्य क्षत्तुर्वचः सत्यं स्मरतां ब्रुवतो हितम् ।

'आज वे समझ लें कि कुन्तीपुत्र अर्जुन सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ एवं सामर्थ्यशाली हैं । आज पापाचारी दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र अपनी भरपेट निन्दा करें और विदुरजीने जो सत्य एवं हितकर वचन कहे थे, उन्हें याद करें ॥ १७½ ॥

अद्यप्रभृति पार्थं च प्रेष्यभूत इवाचरन् ॥ १८ ॥
विजानातु नृपो दुःखं यत् प्राप्तं पाण्डुनन्दनैः ।

'आजसे वे स्वयं ही दासतुल्य होकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी परिचर्या करते हुए अच्छी तरह समझ लें कि 'पाण्डवोंने पहले कितना कष्ट उठाया था ?' ॥ १८½ ॥

अद्य कृष्णस्य माहात्म्यं विजानातु महीपतिः ॥ १९ ॥
अद्यार्जुनधनुर्घोषं घोरं जानातु संयुगे ।
अस्त्राणां च बलं सर्वं बाह्वोश्च बलमाहवे ॥ २० ॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अनुभव करें कि भगवान् श्रीकृष्णका कैसा माहात्म्य है और आज वे यह भी जान लें कि युद्धस्थलमें अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टंकार कितनी भयंकर है ! उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी सारी शक्ति कैसी है तथा रणभूमिमें उनकी दोनों भुजाओंका बल कितना अद्भुत है !॥ १९-२० ॥

अद्य ज्ञास्यति भीमस्य बलं घोरं महात्मनः ।
हते दुर्योधने युद्धे शक्रेणेवासुरे बले ॥ २१ ॥

'जैसे इन्द्रने असुरोंकी सेनाका संहार किया था, उसी प्रकार युद्धमें भीमसेनके हाथसे दुर्योधनके मारे जानेपर आज धृतराष्ट्रको यह ज्ञात हो जायगा कि 'महामनस्वी भीमका बल कैसा भयंकर है !'॥ २१ ॥

यत् कृतं भीमसेनेन दुःशासनवधे तदा ।
नान्यः कर्तास्ति लोकेऽस्मिन्नृते भीमान्महाबलात् ॥२२॥

'दुःशासनके वधके समय भीमसेनने जो कुछ किया था, उसे महाबली भीमसेनके सिवा इस संसारमें दूसरा कोई नहीं कर सकता ॥ २२ ॥

अद्य श्रेष्ठस्य जानीतां पाण्डवस्य पराक्रमम् ।
मद्रराजं हतं श्रुत्वा देवैरपि सुदुःसहम् ॥ २३ ॥

'देवताओंके लिये भी दुःसह मद्रराज शल्यके वधका वृत्तान्त सुनकर आज धृतराष्ट्र ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरके पराक्रमको भी अच्छी तरह जान लें ॥ २३ ॥

अद्य ज्ञास्यति संग्रामे माद्रीपुत्रौ सुदुःसहौ ।
निहते सौबले वीरे प्रवीरेषु च सर्वशः ॥ २४ ॥

'आज संग्राममें सुबलपुत्र वीर शकुनि तथा दूसरे समस्त प्रमुख वीरोंके मारे जानेपर उन्हें शत्रुके लिये अत्यन्त दुःसह माद्रीकुमार नकुल-सहदेवकी शक्तिका भी ज्ञान हो जायगा ॥

कथं जयो न तेषां स्याद् येषां योद्धा धनंजयः ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २५ ॥
द्रौपद्यास्तनयाः पञ्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
शिखण्डी च महेष्वासो राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥

'जिनकी ओरसे युद्ध करनेवाले धनंजय, सात्यकि, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, माद्रीकुमार पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेव, महाधनुर्धर शिखण्डी तथा स्वयं राजा युधिष्ठिर-जैसे वीर हैं, उनकी विजय कैसे न हो? ।२५-२६।

येषां च जगतीनाथो नाथः कृष्णो जनार्दनः ।
कथं तेषां जयो न स्याद् येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥२७॥

'सम्पूर्ण जगत्के स्वामी जनार्दन श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं और जिन्हें धर्मका आश्रय प्राप्त है, उनकी विजय क्यों न हो? ॥ २७ ॥

(लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषां नाथो हृषीकेशः सर्वलोकविभुर्हरिः ॥)

'अखिल विश्वके प्रभु और सबकी इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान् श्रीहरि जिनके स्वामी और संरक्षक हैं, उन्हींको लाभ प्राप्त होता है और उन्हींकी विजय होती है। भला उनकी पराजय कैसे हो सकती है? ॥

भीष्मं द्रोणं च कर्णं च मद्रराजानमेव च ।
तथान्यान् नृपतीन् वीराञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ २८ ॥
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुमृते पार्थाद् युधिष्ठिरात् ।
यस्य नाथो हृषीकेशः सदा सत्ययशोनिधिः ॥ २९ ॥

'कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा है जो रणभूमिमें भीष्म, द्रोण, कर्ण, मद्रराज शल्य तथा अन्य सैकड़ों-हजारों नरपतियोंपर विजय प्राप्त कर सके। सदा सत्य और यशके सागर भगवान् श्रीकृष्ण जिनके स्वामी एवं रक्षक हैं, उन्हींको यह सफलता प्राप्त हो सकती है' ॥ २८-२९ ॥

इत्येवं वदमानास्ते हर्षेण महता युताः ।
प्रभग्नांस्तावकान् योधान् संजयाः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥३०॥

इस तरहकी बातें करते हुए संजयवीर अत्यन्त हर्षमें भरकर आपके भागते हुए योद्धाओंका पीछा करने लगे ॥

धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ।
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥ ३१ ॥

इसी समय पराक्रमी अर्जुनने आपकी रथसेनापर धावा किया। साथ ही नकुल-सहदेव और महारथी सात्यकिने शकुनिपर चढ़ाई की ॥ ३१ ॥

तान् प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान् ।
दुर्योधनस्तदा सूतमब्रवीद् विजयाय च ॥ ३२ ॥

भीमसेनके भयसे पीड़ित हुए अपने उन समस्त योद्धाओंको भागते देख दुर्योधनने विजयकी इच्छासे अपने सारथिसे कहा—॥ ३२ ॥

मामतिक्रमते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
जघने सर्वसैन्यानां ममाश्वान् प्रतिपादय ॥ ३३ ॥

'सूत! मैं यहाँ हाथमें धनुष लिये खड़ा हूँ और अर्जुन मुझे लाँघ जानेकी चेष्टा कर रहे हैं। अतः तुम मेरे घोड़ोंको सारी सेनाके पिछले भागमें पहुँचा दो ॥ ३३ ॥

जघने युध्यमानं हि कौन्तेयो मां समन्ततः ।
नोत्सहेदभ्यतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ॥ ३४ ॥

'पृष्ठभागमें रहकर युद्ध करते समय मुझे अर्जुन किसी ओरसे भी लाँघनेका साहस नहीं कर सकते। ठीक वैसे ही, जैसे महासागर अपने तटप्रान्तको नहीं लाँघ पाता है ॥ ३४ ॥

पश्य सैन्यं महत् सूत पाण्डवैः समभिद्रुतम् ।
सैन्यरेणुं समुद्भूतं पश्यस्वैनं समन्ततः ॥ ३५ ॥

'सारथे! देखो, पाण्डव मेरी विशाल सेनाको खदेड़ रहे हैं और सैनिकोंके दौड़नेसे उठी हुई धूल जो सब ओर छा गयी है उसपर भी दृष्टिपात करो ॥ ३५ ॥

सिंहनादांश्च बहुशः शृणु घोरान् भयावहान् ।
तस्माद् याहि शनैः सूत जघनं परिपालय ॥ ३६ ॥

'सूत! वह सुनो, बारंबार भय उत्पन्न करनेवाले घोर सिंहनाद हो रहे हैं। इसलिये तुम धीरे-धीरे चलो और सेनाके पृष्ठ-भागकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

मयि स्थिते च समरे निरुद्धेषु च पाण्डुषु ।
पुनरावर्तते तूर्णं मामकं बलमोजसा ॥ ३७ ॥

'जब मैं समराङ्गणमें खड़ा होऊँगा और पाण्डवोंका बढ़ाव रुक जायगा, तब मेरी सेना पुनः शीघ्र ही लौट आयेगी और सारी शक्ति लगाकर युद्ध करेगी' ॥ ३७ ॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्य शूरार्यसदृशं वचः ।
सारथिर्हेमसंछन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ॥ ३८ ॥

राजन्! आपके पुत्रका यह श्रेष्ठ वीरोचित वचन सुनकर सारथिने सोनेके साज-बाजसे सजे हुए घोड़ोंको धीरे-धीरे आगे बढ़ाया ॥ ३८ ॥

गजाश्वरथिभिर्हीनास्त्यक्तात्मानः पदातयः ।
एकविंशतिसाहस्राः संयुगायावतस्थिरे ॥ ३९ ॥

उस समय वहाँ हाथीसवार, घुड़सवार तथा रथियोंसे

रहित इक्कीस हजार केवल पैदल योद्धा अपने जीवनका मोह छोड़कर युद्धके लिये डट गये ॥ ३९ ॥

नानादेशसमुद्भूता नानानगरवासिनः ।
अवस्थितास्तदा योधाः प्रार्थयन्तो महद् यशः ॥ ४० ॥

वे अनेक देशोंमें उत्पन्न और अनेक नगरोंके निवासी वीर सैनिक महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए वहाँ युद्ध करनेके लिये खड़े हुए थे ॥ ४० ॥

तेषामापततां तत्र संहृष्टानां परस्परम् ।
सम्मर्दः सुमहाञ्जज्ञे घोररूपो भयानकः ॥ ४१ ॥

परस्पर हर्षमें भरकर एक-दूसरेपर आक्रमण करनेवाले उभय पक्षके सैनिकोंका वह घोर एवं महान् संघर्ष बड़ा भयंकर हुआ ॥ ४१ ॥

भीमसेनस्तदा राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
बलेन चतुरङ्गेण नानादेश्यानवारयत् ॥ ४२ ॥

राजन् ! उस समय भीमसन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न चतुरगिणी सेना साथ लेकर उन अनेकदशीय सैनिकोंको रोकने लगे ॥ ४२ ॥

भीममेवाभ्यवर्तन्त रणेऽन्ये तु पदातयः ।
प्रक्ष्वेड्यास्फोट्य संहृष्टा वीरलोकं यियासवः ॥४३॥

तब रणभूममे अन्य पैदल योद्धा हर्ष और उत्साहमें भरकर भुजाओंपर ताल ठोंकते और सिंहनाद करते हुए वीरलोकमें जानेकी इच्छासे भीमसेनके ही सामने आ पहुँचे ॥

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
धार्तराष्ट्रा विनेदुर्हि नान्यामकथयन् कथाम् ॥ ४४ ॥

भीमसेनके पास पहुंचकर वे रोषभरे रणदुर्मद कौरव-योद्धा केवल गर्जना करने लगे, मुँहसे दूसरी कोइ बात नहीं कहते थे ॥ ४४ ॥

परिवार्य रणे भीमं निजघ्नुस्ते समन्ततः ।
स वध्यमानः समरे पदातिगणसंवृतः ॥ ४५ ॥
न चचाल ततः स्थानान्मैनाक इव पर्वतः ।

उन्होंने रणभूमिमें भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर उनपर प्रहार आरम्भ कर दिया । समराङ्गणमें पैदल सैनिकोंसे घिरे हुए भीमसेन उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चोट सहते हुए भी मैनाक पर्वतके समान अपने स्थानसे विचलित नहीं हुए ॥

ते तु क्रुद्धा महाराज पाण्डवस्य महारथम् ॥ ४६ ॥
निग्रहीतुं प्रवृत्ता हि योधांश्चान्यानवारयन् ।

महाराज ! वे सभी सैनक कुपित हो पाण्डव महारथी भीमसेनको पकड़नेकी चेष्टामें सलग्न हो गये और दूसरे योद्धाओंको भी आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ४६½ ॥

अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः ॥ ४७ ॥
सोऽवतीर्य रथात् तूर्णं पदातिः समवस्थितः ।
जातरूपप्रतिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ४८ ॥
अवधीत् तावकान् योधान् दण्डपाणिरिवान्तकः ।

उनके इस प्रकार सब ओर खड़े होनेपर उस समय रणभूमिमें भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ । वे तुरंत अपने रथसे उतरकर पैदल खड़े हो गये और सोनेसे जड़ी हुई विशाल गदा हाथमें लेकर दण्डधारी यमराजके समान आपके उन योद्धाओंका सहार करने लगे ॥ ४७-४८½ ॥

विप्रहीणरथाश्वांस्तानवधीत् पुरुषर्षभः ॥ ४९ ॥
एकविंशतिसाहस्रान् पदातीन् समपोथयत् ।

रथ और घोड़ोंसे रहित उन इक्कीसों हजार पैदल सैनिकोंको पुरुषप्रवर भीमने गदासे मारकर धराशायी कर दिया ॥

हत्वा तत् पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ॥ ५० ॥
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत ।

सत्यपराक्रमी भीमसेन उस पैदल सेनाका संहार करके थोड़ी ही देरमें धृष्टद्युम्नको आगे किये दिखायी दिये ॥५०½॥

पादाता निहता भूमौ शिश्यिरे रुधिरोक्षिताः ॥ ५१ ॥
सम्भग्ना इव वातेन कर्णिकाराः सुपुष्पिताः ।

मारे गये पैदल सैनिक खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर सदाके लिये सो गये, मानो हवाके उखाड़े हुए सुन्दर लाल फूलोंसे भरे कनेरके वृक्ष पड़े हों ॥ ५१½ ॥

नानाशस्त्रसमायुक्ता नानाकुण्डलधारिणः ॥ ५२ ॥
नानाजात्या हतास्तत्र नानादेशसमागताः ।

वहाँ नाना देशोंसे आये हुए, नाना जातिके, नाना शस्त्र धारण किये और नाना प्रकारके कुण्डलधारी योद्धा मारे गये थे ॥ ५२½ ॥

पताकाध्वजसंछन्नं पदातीनां महद् बलम् ॥ ५३ ॥
निकृत्तं विबभौ रौद्रं घोररूपं भयावहम् ।

ध्वज और पताकाओंसे आच्छादित पैदलोंकी वह विशाल सेना छिन्न-भिन्न होकर रौद्र, घोर एव भयानक प्रतीत होती थी ॥ ५३½ ॥

युधिष्ठिरपुरोगाश्च सहसैन्या महारथाः ॥ ५४ ॥
अभ्यधावन् महात्मानं पुत्रं दुर्योधनं तव ।

तत्पश्चात् सेनासहित युधिष्ठिर आदि महारथी आपके महामनस्वी पुत्र दुर्योधनकी ओर दौड़े ॥ ५४½ ॥

ते सर्वे तावकान् दृष्ट्वा महेष्वासाः पराङ्मुखान्॥५५॥
नात्यवर्तन्त ते पुत्रं वेलेव मकरालयम् ।

आपके योद्धाओंको युद्धसे विमुख हो भागते देख वे सब महाधनुर्धर पाण्डव-महारथी आपके पुत्रको लाँघकर आगे नहीं बढ़ सके । जैसे तटभूमि समुद्रको आगे नहीं बढ़ने देती है (उसी प्रकार दुर्योधनने उन्हें अग्रसर नही होने दिया)॥

तदद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ॥ ५६ ॥
यदेकं सहिताः पार्था न शेकुरतिवर्तितुम् ।

उस समय हमलोगोंने आपके पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि कुन्तीके सभी पुत्र एक साथ प्रयत्न करनेपर भी उसे लाँघकर आगे न जा सके ॥ ५६½ ॥

नातिदूरापयातं तु कृतबुद्धिं पलायने ॥ ५७ ॥
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद् भृशविक्षतम् ।

जब दुर्योधनने देखा कि मेरी सेना भागनेका निश्चय करके अभी अधिक दूर नहीं गयी है, तब उसने उन अत्यन्त घायल हुए सैनिकोंको पुकारकर कहा—॥ ५७½ ॥

न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च ॥ ५८ ॥
यत्र यातान्न वा हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः ।

'अरे ! इस तरह भागनेसे क्या लाभ है ? मैं पृथ्वीमें या पर्वतोंपर ऐसा कोई स्थान नहीं देखता, जहाँ जानेपर तुम्हें पाण्डव मार न सकें ॥ ५८½ ॥

अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥ ५९ ॥
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ।

'अब तो इनके पास बहुत थोड़ी सेना शेष रह गयी है और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भी अत्यन्त घायल हो चुके हैं, ऐसी दशामें यदि हम सब लोग साहस करके डटे रहें तो हमारी विजय अवश्य होगी ॥ ५९½ ॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतविप्रियाः ॥ ६० ॥
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयान्नः समरे वधः ।

'तुम पाण्डवोंके अपराध तो कर ही चुके हो । यदि अलग-अलग होकर भागोगे तो पाण्डव पीछा करके तुम्हें अवश्य मार डालेंगे । ऐसी दशामें हमारे लिये संग्राममें मारा जाना ही श्रेयस्कर है ॥ ६०½ ॥

शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥ ६१ ॥
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तकः सदा ।
को नु मूढो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियो ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

'जितने क्षत्रिय यहाँ एकत्र हुए हैं, वे सब कान खोलकर सुन लें—जब शूरवीर और कायर सभीको सदा ही मौत मार डालती है, तब ऐसा कौन मूर्ख मनुष्य है, जो क्षत्रिय कहलाकर भी निश्चितरूपसे युद्ध नहीं करेगा ॥ ६१-६२ ॥

श्रेयो नो भीमसेनस्य क्रुद्धस्याभिमुखे स्थितम् ।
सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥ ६३ ॥

'अतः क्रोधमें भरे हुए भीमसेनके सामने डटे रहना ही हमारे लिये कल्याणकारी होगा । क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्ध करनेवाले वीर पुरुषोंके लिये संग्राममें होनेवाली मृत्यु ही सुखद है ॥

मर्त्येनावश्यमर्तव्यं गृहेष्वपि कदाचन ।
युध्यतः क्षत्रधर्मेण मृत्युरेष सनातनः ॥ ६४ ॥

'मरणधर्मा मनुष्यको कभी-न-कभी अवश्य मरना पड़ेगा । घरमें भी उससे छुटकारा नहीं है । अतः क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्ध करते हुए ही जो मृत्यु होती है, यही क्षत्रियके लिये सनातन मृत्यु है ॥ ६४ ॥

हत्वेह सुखमाप्नोति हतः प्रेत्य महत् फलम् ।
न युद्धधर्माच्छ्रेयान् वै पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ॥ ६५ ॥
अचिरेणैव ताँल्लोकान् हतो युद्धे समश्नुते ।

'कौरवो ! वीर पुरुष शत्रुको मारकर इह लोकमें सुख भोगता है और यदि मारा गया तो वह परलोकमें जाकर महान् फलका भागी होता है; अतः युद्धधर्मसे बढ़कर स्वर्गकी प्राप्तिके लिये दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है । युद्धमें मारा गया वीर पुरुष थोड़ी ही देरमें उन प्रसिद्ध पुण्य-लोकोंमें जाकर सुख भोगता है' ॥ ६५½ ॥

श्रुत्वा तद् वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः ॥ ६६ ॥
पुनरेवाभ्यवर्तन्त पाण्डवानाततायिनः ।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब राजा उसका आदर करते हुए पुनः आततायी पाण्डवोंका सामना करनेके लिये लौट आये ॥ ६६½ ॥

तानापतत एवाशु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ ६७ ॥
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्था जयगृद्धाः प्रमन्यवः ।

उनके आक्रमण करते ही अपनी सेनाका व्यूह बनाकर प्रहारकुशल, विजयाभिलाषी तथा बढ़े हुए क्रोधवाले पाण्डव शीघ्र ही उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥

धनंजयो रथेनाजावभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥ ६८ ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः ।

पराक्रमी अर्जुन अपने त्रिलोकविख्यात गाण्डीव धनुषकी टङ्कार करते हुए रथके द्वारा युद्धके लिये वहाँ आ पहुँचे ॥

माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः ॥ ६९ ॥
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा यत्ता वै तावकं बलम् ॥ ७० ॥

माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव और महाबली सात्यकिने शकुनिपर धावा किया । ये सब लोग हर्ष और उत्साहमें भरकर बड़ी सावधानीके साथ आपकी सेनापर वेगपूर्वक टूट पड़े ॥ ६९-७० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

(दाक्षिणात्य पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ७१ श्लोक हैं)

विंशोऽध्यायः

धृष्टद्युम्नद्वारा राजा शाल्वके हाथीका और सात्यकिद्वारा राजा शाल्वका वध

संजय उवाच

संनिवृत्ते जनौघे तु शाल्वो म्लेच्छगणाधिपः ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः पाण्डवानां महद् बलम् ॥ १ ॥
आस्थाय सुमहानागं प्रभिन्नं पर्वतोपमम् ।
दृप्तमैरावतप्रख्यममित्रगणमर्दनम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब कौरवपक्षका जन-समूह पुनः युद्धके लिये लौट आया, उस समय म्लेच्छोंका राजा शाल्व अत्यन्त क्रुद्ध हो मदकी धारा बहानेवाले, पर्वतके समान विशालकाय, अभिमानी तथा ऐरावतके सदृश शत्रु-समुदायका संहार करनेमें समर्थ एक महान् गजराजपर आरूढ़ हो पाण्डवोंकी विशाल सेनाका सामना करनेके लिये आया ॥

योऽसौ महाभद्रकुलप्रसूतः
सुपूजितो धार्तराष्ट्रेण नित्यम् ।
सुकल्पितः शास्त्रविनिश्चयज्ञैः
सदोपवाह्यः समरेषु राजन् ॥ ३ ॥

राजन् ! वह हाथी महाभद्र नामक गजराजके कुलमें

उत्पन्न हुआ था। धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने नित्य ही उसका आदर किया था, गजशास्त्रके ज्ञाता पुरुषोंने उसे अच्छी तरह सजाया था और सदा ही युद्धके अवसरोंपर वह सवारीके उपयोगमें लाया जाता था ॥ ३ ॥

तमास्थितो राजवरो बभूव
यथोदयस्थः सविता क्षपान्ते ।
स तेन नागप्रवरेण राज-
न्नभ्युद्ययौ पाण्डुसुतान् समेतान् ॥४॥
शितैः पृषत्कैर्विददार वेगै-
र्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः सुघोरैः ।

राजाओंमें श्रेष्ठ शाल्व उस गजराजपर बैठकर प्रातःकाल उदयाचलपर स्थित हुए सूर्यदेवके समान सुशोभित होने लगा। महाराज ! वह उस श्रेष्ठ हाथीके द्वारा वहाँ एकत्र हुए समस्त पाण्डवोंपर चढ़ आया और इन्द्रके वज्रकी भाँति अत्यन्त भयंकर तीखे बाणोंसे उन सबको वेगपूर्वक विदीर्ण करने लगा ॥ ४½ ॥

ततः शरान् वै सृजतो महारणे
योधांश्च राजन् नयतो यमालयम् ॥ ५ ॥
नास्यान्तरं ददृशुः स्वे परे वा
यथा पुरा वज्रधरस्य दैत्याः ।
ऐरावणस्थस्य चमूविमर्दे-
ऽदैत्याः पुरा वासवस्येव राजन् ॥ ६ ॥

राजन् ! जैसे पूर्वकालमें ऐरावतपर बैठकर शत्रु-सेनाका संहार करते हुए वज्रधारी इन्द्रके बाण छोड़ने और विपक्षीको मार गिरानेके अन्तरको दैत्य और देवता नहीं देख पाते थे, उसी प्रकार उस महासमरमें शाल्वके बाण छोड़ने तथा सैनिकोंको यमलोक पहुँचानेमें कितनी देर लगती है, इसे अपने या शत्रुपक्षके योद्धा नहीं देख सके ॥ ५-६ ॥

ते पाण्डवाः सोमकाः सृञ्जयाश्च
तमेकनागं ददृशुः समन्तात् ।
सहस्रशो वै विचरन्तमेकं
यथा महेन्द्रस्य गजं समीपे ॥ ७ ॥

इन्द्रके ऐरावत हाथीकी भाँति म्लेच्छराजका वह गजराज यद्यपि रणभूमिमें अकेला ही निकट विचर रहा था, तो भी पाण्डव, सृंजय और सोमक योद्धा उसे सहस्रोंकी संख्यामें देखते थे। उन्हें सब ओर वही वह दिखायी देता था ॥ ७ ॥

संद्राव्यमाणं तु बलं परेषां
परीतकल्पं विबभौ समन्ततः ।
नैवावतस्थे समरे भृशं भयाद्
विमृद्यमानं तु परस्परं तदा ॥ ८ ॥

उस हाथीके द्वारा खदेड़ी जाती हुई वह सेना सब ओरसे घिरी हुई-सी जान पड़ती थी। अत्यन्त भयके कारण वह समरभूमिमें ठहर न सकी। उस समय सभी सैनिक आपसमें ही धक्के खाकर कुचले जाने लगे ॥ ८ ॥

ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूः
सा पाण्डवी तेन नराधिपेन ।
दिशश्चतस्रः सहसा विधाविता
गजेन्द्रवेगं तमपारयन्ती ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा च तां वेगवतीं प्रभग्नां
सर्वे त्वदीया युधि योधमुख्याः ।
अपूजयंस्ते तु नराधिपं तं
दध्मुश्च शङ्खाञ्शशिसंनिकाशान् ॥ १० ॥

म्लेच्छराज शाल्वने पाण्डवोंकी उस विशाल सेनामें सहसा भगदड़ मचा दी। उस गजराजके वेगको सहन न कर सकनेके कारण वह सेना तत्काल चारों दिशाओंमें भाग चली ! उस वेगशालिनी सेनाको भागती देख युद्धस्थलमें खड़े हुए आपके सभी प्रधान-प्रधान योद्धा म्लेच्छराज शाल्वकी प्रशंसा करने और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शङ्ख बजाने लगे ॥ ९-१० ॥

श्रुत्वा निनादं त्वथ कौरवाणां
हर्षाद् विमुक्तं सह शङ्खशब्दैः ।
सेनापतिः पाण्डवसृञ्जयानां
पाञ्चालपुत्रो मसृषे न कोपात् ॥ ११ ॥

शङ्खध्वनिके साथ कौरवोंका वह हर्षनाद सुनकर पाण्डवों और सृंजयोंके सेनापति पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न क्रोधपूर्वक उसे सहन न कर सके ॥ ११ ॥

ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा
प्रत्युद्ययौ त्वरमाणो जयाय ।
जम्भो यथा शक्रसमागमे वै
नागेन्द्रमैरावणमिन्द्रवाह्यम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर उन महामनस्वी धृष्टद्युम्नने बड़ी उतावलीके साथ विजय प्राप्त करनेके लिये उस हाथीपर चढ़ाई की। जैसे इन्द्रके साथ युद्ध छिड़नेपर जम्भासुरने इन्द्रवाहन नागराज ऐरावतपर धावा किया था ॥ १२ ॥

तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा
पाञ्चालपुत्रं युधि राजसिंहः ।
तं वै द्विपं प्रेषयामास तूर्णं
वधाय राजन् द्रुपदात्मजस्य ॥ १३ ॥

राजन् ! पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नको युद्धमें सहसा आक्रमण करते देख नृपश्रेष्ठ शाल्वने उस हाथीको उनके वधके लिये तुरंत ही उनकी ओर बढ़ाया ॥ १३ ॥

स तं द्विपेन्द्रं सहसा पतन्त-
मविध्यदग्निप्रतिमैः पृषत्कैः ।
कर्मारधौतैर्निशितैर्ज्वलद्भि-
र्नाराचमुख्यैस्त्रिभिरुग्रवेगैः ॥ १४ ॥

उस नागराजको सहसा आते देख धृष्टद्युम्नने अग्निके समान प्रज्वलित, कारीगरके साफ किये हुए, तेजधारवाले, तीन भयंकर वेगशाली उत्तम नाराचोंद्वारा घायल कर दिया ॥

ततोऽपरान् पञ्चशतान् महात्मा
नाराचमुख्यान् विससर्ज कुम्भे ।
स तैस्तु विद्धः परमद्विपो रणे
तदा परावृत्य भृशं प्रदुद्रुवे ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् महामना धृष्टद्युम्नने उसके कुम्भस्थलको लक्ष्य करके पाँच सौ उत्तम नाराच और छोड़े। उनके द्वारा अत्यन्त घायल हुआ वह महान् गजराज युद्धसे मुँह मोड़कर वेगपूर्वक भागने लगा ॥ १५ ॥

तं नागराजं सहसा प्रणुन्नं
विद्राव्यमाणं विनिवर्त्य शाल्वः ।
तोत्राङ्कुशैः प्रेषयामास तूर्णं
पाञ्चालराजस्य रथं प्रदिश्य ॥ १६ ॥

उस नागराजको सहसा पीड़ित होकर भागते देख शाल्वराजने पुनः युद्धकी ओर लौटाया और पीड़ा देनेवाले अङ्कुशोंसे मारकर उसे तुरंत ही पाञ्चालराजके रथकी ओर दौड़ाया ॥

दृष्ट्वाऽऽपतन्तं सहसा तु नागं
धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव ।
गदां प्रगृह्योग्रजवेन वीरो
भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलाङ्गः ॥ १७ ॥

हाथीको सहसा आक्रमण करते देख वीर धृष्टद्युम्न हाथमें गदा ले शीघ्र ही अत्यन्त वेगपूर्वक अपने रथसे कूदकर पृथ्वीपर आ गये। उस समय उनके सारे अङ्ग भयसे व्याकुल हो रहे थे ॥ १७ ॥

स तं रथं हेमविभूषिताङ्गं
साश्वं ससूतं सहसा विमृद्य ।
उत्क्षिप्य हस्तेन नदन् महाद्विपो
विपोथयामास वसुन्धरातले ॥ १८ ॥

गर्जना करते हुए उस विशालकाय हाथीने धृष्टद्युम्नके उस सुवर्णभूषित रथको घोड़ों और सारथिसहित सहसा कुचल डाला और सूँड़से ऊपर उठाकर पृथ्वीपर दे मारा ॥

पाञ्चालराजस्य सुतं च दृष्ट्वा
तदार्दितं नागवरेण तेन ।
तमभ्यधावत् सहसा जवेन
भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता ॥ १९ ॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको उस गजराजके द्वारा पीड़ित हुआ देख भीमसेन, शिखण्डी और सात्यकि सहसा बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़े ॥ १९ ॥

शरैश्च वेगं सहसा निगृह्य
तस्याभितो व्यापततो गजस्य ।
स संगृहीतो रथिभिर्गजो वै
चचाल तैर्वार्यमाणश्च संख्ये ॥ २० ॥

उन रथियोंने सब ओर आक्रमण करनेवाले उस हाथीके वेगको सहसा अपने बाणोंद्वारा अवरुद्ध कर दिया। उनके द्वारा अपनी प्रगति रुक जानेके कारण वह निगृहीत-सा होकर विचलित हो उठा ॥ २० ॥

ततः पृषत्कान् प्रववर्ष राजा
सूर्यो यथा रश्मिजालं समन्तात् ।
तैराशुगैर्वध्यमाना रथौघाः
प्रदुद्रुवुः सहितास्तत्र तत्र ॥ २१ ॥

तदनन्तर जैसे सूर्यदेव सब ओर अपनी किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार राजा शाल्वने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उन शीघ्रगामी बाणोंकी मार खाकर वे पाण्डव रथी एक साथ इधर-उधर भागने लगे ॥ २१ ॥

तत् कर्म शाल्वस्य समीक्ष्य सर्वे
पाञ्चालपुत्रा नृप सृञ्जयाश्च ।
हाहाकारैर्नादयन्ति स्म युद्धे
द्विपं समन्ताद् रुरुधुर्नराग्र्याः ॥ २२ ॥

नरेश्वर ! शाल्वका वह पराक्रम देखकर समस्त नरश्रेष्ठ पाञ्चाल तथा सृंजय अपने हाहाकारोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगे। उन्होंने युद्धभूमिमें उस हाथीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २२ ॥

पाञ्चालपुत्रस्त्वरितस्तु शूरो
गदां प्रगृह्याचलशृङ्गकल्पाम् ।
ससम्भ्रमं भारत शत्रुघाती
जवेन वीरोऽनुससार नागम् ॥ २३ ॥

भारत ! इसी समय शत्रुघाती शूरवीर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने तुरंत ही पर्वतशिखरके समान विशाल गदा हाथमें लेकर बड़े वेगसे उस हाथीपर आक्रमण किया ॥२३॥

ततस्तु नागं धरणीधराभं
मदं स्रवन्तं जलदप्रकाशम् ।
गदां समाविद्ध्य भृशं जघान
पाञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी ॥ २४ ॥

पाञ्चालराजके वेगवान् पुत्रने मेघोंके समान मदकी वर्षा करनेवाले उस पर्वताकार गजराजपर अपनी गदा घुमाकर बड़े वेगसे प्रहार किया ॥ २४ ॥

स भिन्नकुम्भः सहसा विनद्य
मुखात् प्रभूतं क्षतजं विमुञ्चन् ।
पपात नागो धरणीधराभः
क्षितिप्रकम्पाच्चलितो यथाद्रिः ॥ २५ ॥

गदाके आघातसे हाथीका कुम्भस्थल फट गया और वह पर्वतके समान विशालकाय गजराज सहसा चीत्कार करके मुँहसे रक्तवमन करता हुआ गिर पड़ा, मानो भूकम्प आनेसे कोई पहाड़ ढह गया हो ॥ २५ ॥

निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे
हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्ये ।
स शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो
जहार भल्लेन शिरः शितेन ॥ २६ ॥

जब वह गजराज गिराया जाने लगा, उस समय आपके पुत्रकी सेनामें हाहाकार मच गया। इतनेहीमें शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिने एक तीखे भल्लसे शाल्वराजका सिर काट दिया ॥ २६ ॥

हृतोत्तमाङ्गो युधि सात्वतेन
पपात भूमौ सह नागराज्ञा ।
यथाद्रिशृङ्गं सुमहत् प्रणुन्नं
वज्रेण देवाधिपचोदितेन ॥ २७ ॥

रणभूमिमें सात्यकिद्वारा मस्तक कट जानेपर शाल्वराज भी उस गजराजके साथ ही धराशायी हो गया, मानो देवराज इन्द्रके चलाये हुए वज्रसे कटकर कोई विशाल पर्वतशिखर पृथ्वीपर गिर पड़ा हो ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शाल्ववधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शाल्वका वधविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा क्षेमधूर्तिका वध, कृतवर्माका युद्ध और उसकी पराजय एवं कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समितिशोभने।
तवाभज्यद् बलं वेगाद् वातेनेव महाद्रुमः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धमें शोभा पानेवाले शूरवीर शाल्वके मारे जानेपर आपकी सेनाके पाँव उखड़ गये। जैसे वेगपूर्वक चली हुई वायुके झोंकेसे कोई विशाल वृक्ष उखड़ गया हो ॥ १ ॥

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः।
दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः ॥ २ ॥

अपनी सेनाका व्यूह भङ्ग हुआ देखकर महाबलवान् महारथी शूरवीर कृतवर्माने समराङ्गणमें शत्रुकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २ ॥

सन्निवृत्तास्तु ते शूरा दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
शैलोपमं स्थिरं राजन् कीर्यमाणं शरैर्युधि ॥ ३ ॥

राजन्! कृतवर्माको युद्धस्थलमें डटा हुआ देख वे भागे हुए शूरमा भी लौट आये। युद्धस्थलमें बाणोंकी वर्षासे आच्छादित होनेपर भी वह सात्वतवंशी वीर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़ा था ॥ ३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह।
निवृत्तानां महाराज मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ४ ॥

महाराज! तदनन्तर लौटे हुए कौरवोंका पाण्डवोंके साथ मृत्युको ही युद्धसे निवृत्तिकी सीमा नियत करके घोर संग्राम होने लगा ॥ ४ ॥

तत्राश्चर्यमभूद् युद्धं सात्वतस्य परैः सह।
यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदाम् ॥ ५ ॥

वहाँ कृतवर्माका शत्रुओंके साथ होनेवाला युद्ध अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत होता था; क्योंकि उसने अकेले ही दुर्जय पाण्डव-सेनाकी प्रगति रोक दी थी ॥ ५ ॥

तेषामन्योन्यसुहृदां कृते कर्मणि दुष्करे।
सिंहनादः प्रहृष्टानां दिविस्पृक् सुमहानभूत् ॥ ६ ॥

एक दूसरेका हित चाहनेवाले कौरवसैनिक कृतवर्माके द्वारा यह दुष्कर पराक्रम किये जानेपर अत्यन्त हर्षमें भर गये। उनका महान् सिंहनाद आकाशमें गूँज उठा ॥ ६ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ताः पञ्चाला भरतर्षभ।
शिनेर्नप्ता महाबाहुरन्वपद्यत सात्यकिः ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! उनकी उस गर्जनासे पाञ्चाल सैनिक थर्रा उठे। उस समय शिनिपौत्र महाबाहु सात्यकि उन शत्रुओंका सामना करनेके लिये आये ॥ ७ ॥

स समासाद्य राजानं क्षेमधूर्तिं महाबलम्।
सप्तभिर्निशितैर्बाणैरनयद् यमसादनम् ॥ ८ ॥

उन्होंने आते ही महाबली राजा क्षेमधूर्तिको सात पैने बाणोंसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ ८ ॥

तमायान्तं महाबाहुं प्रवपन्तं शिताञ्शरान्।
जवेनाभ्यपतद् धीमान् हार्दिक्यः शिनिपुङ्गवम् ॥ ९ ॥

तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए शिनि-पौत्र महाबाहु सात्यकिको आते देख बुद्धिमान् कृतवर्मा बड़े वेगसे उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ ९ ॥

सात्वतौ च महावीर्यौ धन्विनौ रथिनां वरौ।
अन्योन्यमभ्यधावेतां शस्त्रप्रवरधारिणौ ॥ १० ॥

फिर तो उत्तम अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, महापराक्रमी, धनुर्धर वीर सात्वतवंशी सात्यकि और कृतवर्मा एक दूसरेपर धावा करने लगे ॥ १० ॥

पाण्डवाः सहपञ्चाला योधाश्चान्ये नृपोत्तमाः।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोर्घोरे समागमे ॥ ११ ॥

उन दोनोंके घोर संग्राममें पाञ्चालोंसहित पाण्डव और दूसरे नृपश्रेष्ठ योद्धा दर्शक होकर तमाशा देखने लगे ॥ ११ ॥

नाराचैर्वत्सदन्तैश्च वृष्ण्यन्धकमहारथौ।
अभिजघ्नतुरन्योन्यं प्रहृष्टाविव कुञ्जरौ ॥ १२ ॥

वृष्णि और अन्धकवंशके वे दोनों वीर महारथी हर्षमें भरकर लड़ते हुए दो हाथियोंके समान एक दूसरेपर नाराचों और वत्सदन्तोंका प्रहार करने लगे ॥ १२ ॥

चरन्तौ विविधान् मार्गान् हार्दिक्यशिनिपुङ्गवौ।
मुहुरन्तर्दधाते तौ बाणवृष्ट्या परस्परम् ॥ १३ ॥

कृतवर्मा और सात्यकि दोनों नाना प्रकारके पैंतरे दिखाते हुए विचरते थे और बारंबार बाणोंकी वर्षा करके वे एक दूसरेको अदृश्य कर देते थे ॥ १३ ॥

चापवेगबलोद्धूतान् मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः।
आकाशे समपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान् ॥ १४ ॥

वृष्णिवंशके उन दोनों सिंहोंके धनुषके वेग और बलसे चलाये हुए शीघ्रगामी बाणोंको हम आकाशमें छाये हुए टिड्डीदलोंके समान देखते थे ॥ १४ ॥

तमेकं सत्यकर्माणमासाद्य हृदिकात्मजः।
अविध्यन्निशितैर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १५ ॥

कृतवर्माने अद्वितीय वीर सत्यपराक्रमी सात्यकिके पास पहुँचकर चार पैने बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

स दीर्घबाहुः संक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
अष्टभिः कृतवर्माणमविद्ध्यत् परमेषुभिः ॥ १६ ॥

तब महाबाहु सात्यकिने अङ्कुशोंकी चोट खाये हुए गजराजके समान अत्यन्त क्रोधमें भरकर आठ उत्तम बाणोंद्वारा कृतवर्माको घायल कर दिया ॥ १६ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः कृतवर्मा शिलाशितैः ।
सात्यकिं त्रिभिराहत्य धनुरेकेन चिच्छिदे ॥ १७ ॥

यह देख कृतवर्माने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये और शिलापर तेज किये हुए तीन बाणोंसे सात्यकिको घायल करके एकसे उनके धनुषको काट डाला ॥ १७ ॥

निकृत्तं तद् धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः ।
अन्यदादत्त वेगेन शैनेयः सशरं धनुः ॥ १८ ॥

उस कटे हुए श्रेष्ठ धनुषको फेंककर शिनिप्रवर सात्यकिने बाणसहित दूसरे धनुषको वेगपूर्वक हाथमें ले लिया ॥ १८ ॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ।
आरोप्य च धनुः शीघ्रं महावीर्यो महाबलः ॥ १९ ॥
अमृष्यमाणो धनुषश्छेदनं कृतवर्मणा ।
कुपितोऽतिरथः शीघ्रं कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ २० ॥

सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ महाबली एवं महापराक्रमी युयुधानने उस उत्तम धनुषको लेकर शीघ्र ही उसपर बाण चढ़ाया और कृतवर्माके द्वारा अपने धनुषका काटा जाना सहन न करके उन अतिरथी वीरने कुपित हो शीघ्रतापूर्वक उसपर आक्रमण किया ॥ १९-२० ॥

ततः सुनिशितैर्बाणैर्दशभिः शिनिपुङ्गवः ।
जघान सूतं चाश्वांश्च ध्वजं च कृतवर्मणः ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् शिनिप्रवर सात्यकिने अत्यन्त तीखे दस बाणोंके द्वारा कृतवर्माके ध्वज, सारथि और घोड़ोंको नष्ट कर दिया ॥

ततो राजन् महेष्वासः कृतवर्मा महारथः ।
हताश्वसूतं सम्प्रेक्ष्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ २२ ॥
रोषेण महताऽऽविष्टः शूलमुद्यम्य मारिष ।
चिक्षेप भुजवेगेन जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् ॥ २३ ॥

राजन् ! महाधनुर्धर महारथी कृतवर्मा अपने सुवर्णभूषित रथको घोड़े और सारथिसे रहित देख महान् रोषसे भर गया। मान्यवर ! फिर उसने शिनिप्रवर सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे एक शूल उठाकर उसे अपनी भुजाओंके सम्पूर्ण वेगसे चला दिया ॥ २२-२३ ॥

तच्छूलं सात्वतो ह्याजौ निर्भिद्य निशितैः शरैः ।
चूर्णितं पातयामास मोहयन्निव माधवम् ॥ २४ ॥

परंतु सात्यकिने युद्धस्थलमें अपने पैने बाणोंद्वारा उस शूलको काटकर चकनाचूर कर दिया और कृतवर्माको मोहमें डालते हुए से उस चूर-चूर हुए शूलको पृथ्वीपर गिरा दिया॥

ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं समताडयत् ।
स युद्धे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः ॥ २५ ॥
कृतवर्मा कृतस्तेन धरणीमन्वपद्यत ।

इसके बाद उन्होंने कृतवर्माकी छातीमें एक भल्लद्वारा गहरी चोट पहुँचायी । तब वह युयुधानद्वारा घोड़ों और सारथिसे रहित किया हुआ कृतवर्मा रथ छोड़कर युद्धस्थलमें पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ २५½ ॥

तस्मिन् सात्यकिना वीरे द्वैरथे विरथीकृते ॥ २६ ॥
समपद्यत सर्वेषां सैन्यानां सुमहद् भयम् ।

उस द्वैरथ युद्धमें सात्यकिद्वारा वीर कृतवर्माके रथहीन हो जानेपर आपके सारे सैनिकोंके मनमें महान् भय समा गया॥

पुत्रस्य तव चात्यर्थं विषादः समजायत ॥ २७ ॥
हतसूते हताश्वे तु विरथे कृतवर्मणि ।

जब कृतवर्माके घोड़े और सारथि मारे गये तथा वह रथहीन हो गया, तब आपके पुत्र दुर्योधनके मनमें बड़ा खेद हुआ ॥

हताश्वं च समालक्ष्य हतसूतमरिंदम ॥ २८ ॥
अभ्यधावत् कृपो राजञ्जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् ।

शत्रुदमन नरेश ! कृतवर्माके घोड़ों और सारथिको मारा गया देख कृपाचार्य सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे वहाँ दौड़े हुए आये ॥ २८½ ॥

तमारोप्य रथोपस्थे मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ २९ ॥
अपोवाह महाबाहुं तूर्णमायोधनादपि ।

फिर सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते महाबाहु कृतवर्माको अपने रथपर बिठाकर वे उसे तुरंत ही युद्धस्थलसे दूर हटा ले गये ॥ २९½ ॥

शैनेयेऽधिष्ठिते राजन् विरथे कृतवर्मणि ॥ ३० ॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ।

राजन् ! जब सात्यकि युद्धके लिये डटे रहे और कृतवर्मा रथहीन होकर भाग गया, तब दुर्योधनकी सारी सेना पुनः युद्धसे विमुख हो वहाँसे पलायन करने लगी ॥ ३०½ ॥

तत् परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृताः ॥ ३१ ॥
तावकाः प्रद्रुता राजन् दुर्योधनमृते नृपम् ।

परंतु सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे आच्छादित होनेके कारण शत्रुओंके सैनिक कौरव-सेनाके भागनेकी बात न जान सके । राजन् ! राजा दुर्योधनके सिवा, आपके सभी योद्धा वहाँसे भाग गये ॥ ३१½ ॥

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥ ३२ ॥
जवेनाभ्यपतत् तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत् ।

दुर्योधन अपनी सेनाको निकटसे भागती देख बड़े वेगसे शत्रुओंपर टूट पड़ा और उन सबको अकेले ही शीघ्रतापूर्वक रोकने लगा ॥ ३२½ ॥

पाण्डूंश्च सर्वान् संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ३३ ॥
शिखण्डिनं द्रौपदेयान् पञ्चालानां च ये गणाः ।
केकयान् सोमकांश्चैव सृञ्जयांश्चैव मारिष ॥ ३४ ॥
असम्भ्रमं दुराधर्षः शितैर्बाणैरवाकिरत् ।
अतिष्ठदाहवे यत्तः पुत्रस्तव महाबलः ॥ ३५ ॥

माननीय नरेश ! उस समय क्रोधमें भरा हुआ आपका महाबली पुत्र दुर्धर्ष दुर्योधन सावधान हो बिना किसी घबराहटके समस्त पाण्डवों, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी,

द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, पाञ्चालों, केकयों, सोमकों और सृञ्जयों-पर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगा तथा निर्भय होकर युद्धभूमि-में डटा रहा ॥ ३३-३५ ॥

यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्रपूतः प्रकाशवान्।
तथा दुर्योधनो राजा संग्रामे सर्वतोऽभवत्॥ ३६॥

जैसे यज्ञमें मन्त्रोंद्वारा पवित्र हुए महान् अग्निदेव प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार संग्राममें राजा दुर्योधन सब ओरसे देदीप्यमान हो रहा था ॥ ३६ ॥

तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवाहवे।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्यः समपद्यत॥ ३७॥

जैसे मरणधर्मा मनुष्य अपनी मृत्युका उल्लङ्घन नहीं कर सकते, उसी प्रकार युद्धभूमिमें शत्रुसैनिक राजा दुर्योधनका सामना न कर सके। इतनेहीमें कृतवर्मा दूसरे रथपर आरूढ़ होकर वहाँ आ पहुँचा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सात्यकिकृतवर्मयुद्धे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें सात्यकि और कृतवर्माका युद्धविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

दुर्योधनका पराक्रम और उभयपक्षकी सेनाओंका घोर संग्राम

संजय उवाच

पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनां वरः।
दुरुत्सहो बभौ युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! रथपर बैठा हुआ रथियोंमें श्रेष्ठ आपका प्रतापी पुत्र दुर्योधन रुद्रदेवके समान युद्धमें शत्रुओंके लिये दुःसह प्रतीत होने लगा ॥ १ ॥

तस्य बाणसहस्रैस्तु प्रच्छन्ना ह्यभवन्मही।
परांश्च सिषिचे बाणैर्धाराभिरिव पर्वतान्॥ २॥

उसके सहस्रों बाणोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी। जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको सींचते हैं, उसी प्रकार वह शत्रुओंको अपनी बाणधारासे नहलाने लगा ॥ २ ॥

न च सोऽस्ति पुमान् कश्चित् पाण्डवानां बलार्णवे।
हयो गजो रथो वापि यः स्याद् बाणैरविक्षतः॥ ३॥

पाण्डवोंके सैन्यसागरमें कोई भी ऐसा मनुष्य, घोड़ा, हाथी अथवा रथ नहीं था, जो दुर्योधनके बाणोंसे क्षत-विक्षत न हुआ हो ॥ ३ ॥

यं यं हि समरे योधं प्रपश्यामि विशाम्पते।
स स बाणैश्चितोऽभूद् वै पुत्रेण तव भारत॥ ४॥

प्रजानाथ! भरतनन्दन! मैं समराङ्गणमें जिस-जिस योद्धा-को देखता था, वही-वही आपके पुत्रके बाणोंसे व्याप्त हुआ दिखायी देता था ॥ ४ ॥

यथा सैन्येन रजसा समुद्धूतेन वाहिनी।
प्रत्यदृश्यत संछन्ना तथा बाणैर्महात्मनः॥ ५॥

जैसे सैनिकोंद्वारा उड़ायी हुई धूलसे सारी सेना आच्छादित हो गयी थी, उसी प्रकार वह महामनस्वी दुर्योधनके बाणोंसे ढकी दिखायी देती थी ॥ ५ ॥

बाणभूतामपश्याम पृथिवीं पृथिवीपते।
दुर्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना॥ ६॥

पृथ्वीपते! हमने देखा कि शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले धनुर्धर वीर दुर्योधनने सारी रणभूमिको बाणमयी कर दिया है ॥ ६ ॥

तेषु योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च।
एको दुर्योधनो ह्यासीत् पुमानिति मतिर्मम॥ ७॥

आपके या शत्रुपक्षके सहस्रों योद्धाओंमें मुझे एकमात्र दुर्योधन ही वीर पुरुष जान पड़ता था ॥ ७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम्।
यदेकं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त भारत॥ ८॥

भारत! हमने वहाँ आपके पुत्रका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि समस्त पाण्डव एक साथ मिलकर भी उस एकाकी वीरका सामना नहीं कर सके ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरं शतेनाजौ विव्याध भरतर्षभ।
भीमसेनं च सप्तत्या सहदेवं च पञ्चभिः॥ ९॥
नकुलं च चतुःषष्ट्या धृष्टद्युम्नं च पञ्चभिः।
सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम्॥ १०॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष।

भरतश्रेष्ठ! उसने युद्धस्थलमें युधिष्ठिरको सौ, भीमसेनको सत्तर, सहदेवको पाँच, नकुलको चौसठ, धृष्टद्युम्नको पाँच, द्रौपदीके पुत्रोंको सात तथा सात्यकिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया। मान्यवर! साथ ही उसने एक भल्ल मारकर सहदेवका धनुष भी काट डाला ॥ ९-१०½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान्॥ ११॥
अभ्यद्रवत राजानं प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः।
ततो दुर्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः॥ १२॥

प्रतापी माद्रीपुत्र सहदेवने उस कटे हुए धनुषको फेंक-कर दूसरा विशाल धनुष हाथमें ले राजा दुर्योधनपर धावा किया और युद्धस्थलमें दस बाणोंसे उसे घायल कर दिया॥

नकुलस्तु ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः।
घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च॥ १३॥

इसके बाद महाधनुर्धर वीर नकुलने नौ भयंकर बाणोंद्वारा राजा दुर्योधनको बींध डाला और उच्चस्वरसे गर्जना की ॥ १३ ॥

सात्यकिश्चैव राजानं शरेणानतपर्वणा।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः॥ १४॥
अशीत्या भीमसेनश्च शरै राजानमार्पयन्।

फिर सात्यकिने भी झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे राजा-को घायल कर दिया। तदनन्तर द्रौपदीके पुत्रोंने राजा

दुर्योधनको तिहत्तर, धर्मराजने पाँच और भीमसेनने अस्सी बाण मारे ॥ १४½ ॥

समन्तात् कीर्यमाणस्तु बाणसंघैर्महात्मभिः ॥ १५ ॥
न चचाल महाराज सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

महाराज ! वे महामनस्वी वीर सारी सेनाके देखते-देखते दुर्योधनपर चारों ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा कर रहे थे तो भी वह विचलित नहीं हुआ ॥ १५½ ॥

लाघवं सौष्ठवं चापि वीर्यं चापि महात्मनः ॥ १६ ॥
अति सर्वाणि भूतानि ददृशुः सर्वमानवाः ।

उस महामनस्वी वीरकी फुर्ती, अस्त्र-संचालनका सुन्दर ढंग तथा पराक्रम—इन सबको सब लोगोंने सम्पूर्ण प्राणियोंसे बढ़-चढ़कर देखा ॥ १६½ ॥

धार्तराष्ट्रा हि राजेन्द्र योधास्तु स्वल्पमन्तरम् ॥ १७ ॥
अपश्यमाना राजानं पर्यवर्तन्त दंशिताः ।

राजेन्द्र ! आपके योद्धा थोड़ा-सा भी अन्तर न देखकर कवच आदिसे सुसज्जित हो राजा दुर्योधनको चारों ओरसे घेर-कर खड़े हो गये ॥ १७½ ॥

तेषामापततां घोरस्तुमुलः समपद्यत ॥ १८ ॥
क्षुब्धस्य हि समुद्रस्य प्रावृट्काले यथा स्वनः ।

जैसे वर्षाकालमें विक्षुब्ध हुए समुद्रकी भीषण गर्जना सुनायी देती है, उसी प्रकार उन आक्रमणकारी कौरवोंका घोर एवं भयंकर कोलाहल प्रकट होने लगा ॥ १८½ ॥

समासाद्य रणे ते तु राजानमपराजितम् ॥ १९ ॥
प्रत्युद्ययुर्महेष्वासाः पाण्डवानाततायिनः ।

वे महाधनुर्धर कौरवयोद्धा रणभूमिमें अपराजित राजा दुर्योधनके पास पहुँचकर आततायी पाण्डवोंपर जा चढ़े ॥

भीमसेनं रणे क्रुद्धो द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥ २० ॥
नानाबाणैर्महाराज प्रमुक्तैः सर्वतोदिशम् ।
नाज्ञायन्त रणे वीरा न दिशः प्रदिशः कुतः ॥ २१ ॥

महाराज ! रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सम्पूर्ण दिशाओंमें छोड़े गये अनेक प्रकारके बाणोंद्वारा भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। उस समय संग्राममें न तो वीरोंकी पहचान होती थी और न दिशाओंकी, फिर अवान्तर-दिशाओं (कोणों) की तो बात ही क्या है ? ॥ २०-२१ ॥

तावुभौ क्रूरकर्माणावुभौ भारत दुःसहौ ।
घोररूपमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २२ ॥

भारत ! वे दोनों वीर क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले और शत्रुओंके लिये दुःसह थे। अतः एक-दूसरेके प्रहारका भरपूर जवाब देनेकी इच्छा रखकर वे घोर युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥

त्रासयन्तौ दिशः सर्वा ज्याक्षेपकठिनत्वचौ ।
शकुनिस्तु रणे वीरो युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २३ ॥

प्रत्यञ्चा खींचनेसे उनके हाथोंकी त्वचा बहुत कठोर हो गयी थी और वे सम्पूर्ण दिशाओंको आतङ्कित कर रहे थे। दूसरी ओर वीर शकुनि रणभूमिमें युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगा॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सुबलस्य सुतो विभो ।
नादं चकार बलवत् सर्वसैन्यानि कोपयन् ॥ २४ ॥

प्रभो ! सुबलके उस पुत्रने युधिष्ठिरके चारों घोड़ोंको मारकर सम्पूर्ण सेनाओंका क्रोध बढ़ाते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ २४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरं राजानमपराजितम् ।
अपोवाह रथेनाजौ सहदेवः प्रतापवान् ॥ २५ ॥

इसी बीचमें प्रतापी सहदेव युद्धमें किसीसे परास्त न होनेवाले वीर राजा युधिष्ठिरको अपने रथपर बिठाकर दूर हटा ले गये ॥ २५ ॥

अथान्यं रथमास्थाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
शकुनिं नवभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २६ ॥

तदनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः धावा किया और शकुनिको पहले नौ बाणोंसे घायल करके फिर पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ २६ ॥

ननाद च महानादं प्रवरः सर्वधन्विनाम् ।
तद् युद्धमभवच्चित्रं घोररूपं च मारिष ॥ २७ ॥
प्रेक्षतां प्रीतिजननं सिद्धचारणसेवितम् ।

इसके बाद सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। मान्यवर ! उनका वह युद्ध विचित्र, भयंकर, सिद्धों और चारणोंद्वारा सेवित तथा दर्शकोंका हर्ष बढ़ानेवाला था॥

उलूकस्तु महेष्वासं नकुलं युद्धदुर्मदम् ॥ २८ ॥
अभ्यद्रवदमेयात्मा शरवर्षैः समन्ततः ।

दूसरी ओर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उलूकने महाधनुर्धर रणदुर्मद नकुलपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करते हुए धावा किया।

तथैव नकुलः शूरः सौबलस्य सुतं रणे ॥ २९ ॥
शरवर्षेण महता समन्तात् पर्यवारयत् ।

इसी प्रकार शूरवीर नकुलने रणभूमिमें शकुनिके पुत्रको बड़ी भारी बाणवर्षाके द्वारा सब ओरसे अवरुद्ध कर दिया ॥

तौ तत्र समरे वीरौ कुलपुत्रौ महारथौ ॥ ३० ॥
योधयन्तावपश्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

वे दोनों वीर महारथी उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए थे ! अतः समराङ्गणमें एक-दूसरेके प्रहारका प्रतीकार करनेकी इच्छा रखकर जूझते दिखायी देते थे ॥ ३०½ ॥

तथैव कृतवर्माणं शैनेयः शत्रुतापनः ॥ ३१ ॥
योधयञ्शुशुभे राजन् बलिं शक्र इवाहवे ।

राजन् ! इसी तरह शत्रुसंतापी सात्यकि कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए युद्धस्थलमें उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे इन्द्र बलिके साथ ॥ ३१½ ॥

दुर्योधनो धनुश्छित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ॥ ३२ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध निशितैः शरैः ।

दुर्योधनने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया और धनुष कट जानेपर उन्हें पैने बाणोंसे बींध डाला ॥ ३२½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि समरे प्रगृह्य परमायुधम् ॥ ३३ ॥
राजानं योधयामास पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।

तब धृष्टद्युम्न भी दूसरा उत्तम धनुष लेकर समरभूमिमें

सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते राजा दुर्योधनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३३½ ॥

तयोर्युद्धं महच्चासीत् संग्रामे भरतर्षभ ॥ ३४ ॥
प्रभिन्नयोर्यथा सक्तं मत्तयोर्वरहस्तिनोः ।

भरतश्रेष्ठ! रणभूमिमें उन दोनोंका महान् युद्ध ऐसा जान पड़ता था, मानो मदकी धारा बहानेवाले दो उत्तम मतवाले हाथी आपसमें जूझ रहे हों ॥ ३४½ ॥

गौतमस्तु रणे क्रुद्धो द्रौपदेयान् महाबलान् ॥ ३५ ॥
विव्याध बहुभिः शूरः शरैः संनतपर्वभिः ।

दूसरी ओर शूरवीर कृपाचार्यने रणभूमिमें कुपित हो महाबली द्रौपदीपुत्रोंको झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ३५½ ॥

तस्य तैरभवद् युद्धमिन्द्रियैरिव देहिनः ॥ ३६ ॥
घोररूपमसंवार्यं निर्मर्यादमवर्तत ।

जैसे देहधारी जीवात्माका पाँचों इन्द्रियोंके साथ युद्ध हो रहा हो, उसी प्रकार उन पाँचों भाइयोंके साथ कृपाचार्यका युद्ध हो रहा था। धीरे-धीरे वह युद्ध अत्यन्त घोर, अनिवार्य और अमर्यादित हो गया ॥ ३६½ ॥

ते च सम्पीडयामासुरिन्द्रियाणीव बालिशम् ॥ ३७ ॥
स च तान् प्रति संरब्धः प्रत्ययोधयदाहवे ।

जैसे इन्द्रियाँ मूढ़ मनुष्यको पीड़ा देती हैं, उसी प्रकार वे पाँचों भाई कृपाचार्यको पीड़ित करने लगे। कृपाचार्य भी अत्यन्त रोषमें भरकर रणक्षेत्रमें उन सबके साथ युद्ध कर रहे थे ॥

एवं चित्रमभूद् युद्धं तस्य तैः सह भारत ॥ ३८ ॥
उत्थायोत्थाय हि यथा देहिनामिन्द्रियैर्विभो ।

भारत ! उनका उन द्रौपदीपुत्रोंके साथ ऐसा विचित्र युद्ध होने लगा, जैसे बारंबार उठ-उठकर विषयोंकी ओर प्रवृत्त होनेवाली इन्द्रियोंके साथ देहधारियोंका युद्ध होता रहता है ॥

नराश्चैव नरैः सार्धं दन्तिनो दन्तिभिस्तथा ॥ ३९ ॥
हया हयैः समासक्ता रथिनो रथिभिः सह ।
संकुलं चाभवद् भूयो घोररूपं विशाम्पते ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! उस समय मनुष्य मनुष्योंसे, हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे और रथी रथियोंसे भिड़ गये थे। फिर उनमें अत्यन्त घोर घमासान युद्ध होने लगा ॥ ३९-४० ॥

इदं चित्रमिदं घोरमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
युद्धान्यासन् महाराज घोराणि च बहूनि च ॥ ४१ ॥

प्रभो! महाराज! यह विचित्र, यह घोर, यह रौद्र युद्ध—इस प्रकार बहुत-से भीषण युद्ध चलने लगे ॥ ४१ ॥

ते समासाद्य समरे परस्परमरिंदमाः ।
व्यनदंश्चैव जघ्नुश्च समासाद्य महाहवे ॥ ४२ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे समस्त योद्धा समराङ्गणमें एक-दूसरेसे भिड़कर उस महायुद्धमें परस्पर टक्कर लेते हुए प्रहार और सिंहनाद करने लगे ॥ ४२ ॥

तेषां पत्रसमुद्भूतं रजस्तीव्रमदृश्यत ।
वातेन चोद्धतं राजन् धावद्भिश्चाश्वसादिभिः ॥ ४३ ॥

राजन्! उनके वाहनोंसे, हवासे और दौड़ते हुए घुड़सवारोंसे उड़ायी गयी भयंकर धूल सब ओर व्याप्त दिखायी देती थी ॥

रथनेमिसमुद्भूतं निःश्वासैश्चापि दन्तिनाम् ।
रजः संध्याभ्रकपिलं दिवाकरपथं ययौ ॥ ४४ ॥

रथके पहियों और हाथियोंके उच्छ्वासोंसे ऊपर उठायी हुई धूल संध्याकालके मेघोंके समान सूर्यके मार्गमें छा गयी थी ॥

रजसा तेन सम्पृक्तो भास्करो निष्प्रभः कृतः ।
संछादिताभवद् भूमिस्ते च शूरा महारथाः॥ ४५ ॥

उस धूलके सम्पर्कमें आकर सूर्य प्रभाहीन हो गये थे तथा पृथ्वी और वे महारथी शूरवीर भी ढक गये थे ॥ ४५ ॥

मुहूर्तादिव संवृत्तं नीरजस्कं समन्ततः ।
वीरशोणितसिक्तायां भूमौ भरतसत्तम ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर दो ही घड़ीमें वीरोंके रक्तसे धरती सिंच उठी और सब ओरकी धूल बैठ जानेके कारण रणक्षेत्र निर्मल हो गया ॥ ४६ ॥

उपाशाम्यत् ततस्तीव्रं तद् रजो घोरदर्शनम् ।
ततोऽपश्यमहं भूयो द्वन्द्वयुद्धानि भारत ॥ ४७ ॥
यथाप्राणं यथाश्रेष्ठं मध्याह्ने वै सुदारुणे ।
वर्मणां तत्र राजेन्द्र व्यदृश्यन्तोज्ज्वलाः प्रभाः॥ ४८ ॥

वह भयंकर दिखायी देनेवाली तीव्र धूलि सर्वथा शान्त हो गयी। भारत ! राजेन्द्र ! तब मैं फिर उस दारुण मध्याह्नकालमें अपने बल और श्रेष्ठताके अनुसार अनेक द्वन्द्वयुद्ध देखने लगा। योद्धाओंके कवचोंकी प्रभा वहाँ अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देती थी ॥ ४७-४८ ॥

शब्दश्च तुमुलः संख्ये शराणां पततामभूत् ।
महावेणुवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ ४९ ॥

जैसे पर्वतपर जलते हुए विशाल बाँसोंके वनसे प्रकट होनेवाला चटचट शब्द सुनायी देता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें बाणोंके गिरनेका भयंकर शब्द वहाँ गूँज रहा था ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

कौरवपक्षके सात सौ रथियोंका वध, उभयपक्षकी सेनाओंका मर्यादाशून्य घोर संग्राम तथा शकुनिका कूट युद्ध और उसकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने तदा युद्धे घोररूपे भयानके ।
अभज्यत बलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब वह भयानक घोर

युद्ध होने लगा, उस समय पाण्डवोंने आपके पुत्रकी सेनाके पाँव उखाड़ दिये ॥ १ ॥

तांस्तु यत्नेन महता संनिवार्य महारथान्।
पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २ ॥

उन भागते हुए महारथियोंको महान् प्रयत्नसे रोककर आपका पुत्र पाण्डवोंकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा ॥ २ ॥

निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रजयैषिणः।
संनिवृत्तेषु तेष्वेवं युद्धमासीत् सुदारुणम् ॥ ३ ॥

यह देख आपके पुत्रकी विजय चाहनेवाले योद्धा सहसा लौट पड़े। इस प्रकार उनके लौटनेपर उन सबमें अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ३ ॥

तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम्।
परेषां तव सैन्ये वा नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ॥ ४ ॥

आपके और शत्रुओंके योद्धाओंका वह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था। उस समय शत्रुओंकी अथवा आपकी सेनामें भी कोई युद्धसे विमुख नहीं होता था ॥ ४ ॥

अनुमानेन युध्यन्ते संज्ञाभिश्च परस्परम्।
तेषां क्षयो महानासीद् युध्यतामितरेतरम् ॥ ५ ॥

सब लोग अनुमानसे और नाम बतानेसे शत्रु तथा मित्रकी पहचान करके परस्पर युद्ध करते थे। परस्पर जूझते हुए उन वीरोंका वहाँ बड़ा भारी विनाश हो रहा था ॥ ५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः।
जिगीषमाणः संग्रामे धार्तराष्ट्रान् सराजकान् ॥ ६ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिर महान् क्रोधसे युक्त हो संग्राममें राजा दुर्योधनसहित आपके पुत्रोंको जीतना चाहते थे ॥ ६ ॥

त्रिभिः शारद्वतं विद्ध्वा रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
चतुर्भिर्निजघानाश्वान् नाराचैः कृतवर्मणः ॥ ७ ॥

उन्होंने शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीन बाणोंसे कृपाचार्यको घायल करके चार नाराचोंसे कृत-वर्माके घोड़ोंको मार डाला ॥ ७ ॥

अश्वत्थामा तु हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम्।
अथ शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविद्ध्यद् युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥

तब अश्वत्थामा यशस्वी कृतवर्माको अपने रथपर बिठाकर अन्यत्र हटा ले गया। तदनन्तर कृपाचार्यने आठ बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला ॥ ८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा रथान् सप्तशतान् रणे।
प्रैषयद् यत्र राजासौ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

इसके बाद राजा दुर्योधनने रणभूमिमें सात सौ रथियोंको वहाँ भेजा, जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ९ ॥

ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति ॥ १० ॥

रथियोंसे युक्त और मन तथा वायुके समान वेगशाली वे रथ रणभूमिमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके रथकी ओर दौड़े ॥

ते समन्तान्महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम्।
अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ११ ॥

महाराज! जैसे बादल सूर्यको ढक देते हैं, उसी प्रकार उन रथियोंने युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर अपने बाणों-द्वारा उन्हें अदृश्य कर दिया ॥ ११ ॥

ते दृष्ट्वा धर्मराजानं कौरवेयैस्तथा कृतम्।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः ॥ १२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरको कौरवोंद्वारा वैसी दशामें पहुँचाया गया देख अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए शिखण्डी आदि रथी सहन न कर सके ॥ १२ ॥

रथैरश्ववरैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः।
आजग्मुरथ रक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥

वे छोटी-छोटी घंटियोंकी जालीसे ढके और श्रेष्ठ अश्वोंसे जुते हुए रथोंद्वारा कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये वहाँ आ पहुँचे ॥ १३ ॥

ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः।
पाण्डवानां कुरूणां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ १४ ॥

तदनन्तर कौरवों और पाण्डवोंका अत्यन्त भयंकर संग्राम आरम्भ हो गया, जिसमें पानीकी तरह खून बहाया जाता था। वह युद्ध यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥

रथान् सप्तशतान् हत्वा कुरूणामाततायिनाम्।
पाण्डवाः सह पञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन् ॥ १५ ॥

उस समय पाञ्चालोंसहित पाण्डवोंने आततायी कौरवोंके उन सात सौ रथियोंको मारकर पुनः अन्य योद्धाओंको आगे बढ़नेसे रोका ॥ १५ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् तव पुत्रस्य पाण्डवैः।
न च तत् तादृशं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम् ॥ १६ ॥

वहाँ आपके पुत्रका पाण्डवोंके साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ। वैसा युद्ध मैंने न तो कभी देखा था और न मेरे सुननेमें ही आया था ॥ १६ ॥

वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे समन्ततः।
वध्यमानेषु योधेषु तावकेष्वितरेषु च ॥ १७ ॥
विनदत्सु च योधेषु शङ्खवर्यैश्च पूरितैः।
उत्क्रुष्टैः सिंहनादैश्च गर्जितैश्चैव धन्विनाम् ॥ १८ ॥
अतिप्रवृत्ते युद्धे च छिद्यमानेषु मर्मसु।
धावमानेषु योधेषु जयगृद्धिषु मारिष ॥ १९ ॥
संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसम्भवे।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तथा ॥ २० ॥
निर्मर्यादे महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे।
प्रादुरासन् विनाशाय तदोत्पाताः सुदारुणाः ॥ २१ ॥

माननीय नरेश! जब सब ओरसे वह मर्यादाशून्य युद्ध होने लगा, आपके और शत्रुपक्षके योद्धा मारे जाने लगे, युद्ध-परायण वीरोंकी गर्जना और श्रेष्ठ शङ्खोंकी ध्वनि होने लगी, धनुर्धरोंकी ललकार, सिंहनाद और गर्जनाओंके साथ जब वह युद्ध औचित्यकी सीमाको पार कर गया, योद्धाओंके मर्मस्थल विदीर्ण किये जाने लगे, विजयाभिलाषी योद्धा इधर-उधर दौड़ने लगे, रणभूमिमें सब ओर शोकजनक संहार होने

लगा, बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंके सीमन्तके सिन्दूर मिटाये जाने लगे तथा सारी मर्यादाओंको तोड़कर अत्यन्त भयंकर महायुद्ध चलने लगा, उस समय विनाशकी सूचना देनेवाले अति दारुण उत्पात प्रकट होने लगे ॥ १७–२१ ॥

चचाल शब्दं कुर्वाणा सपर्वतवना मही।
सदण्डाः सोल्मुका राजन् कीर्यमाणाः समन्ततः ॥२२॥
उल्का पेतुर्दिवो भूमावाहत्य रविमण्डलम्।

राजन्! पर्वत और वनोंसहित पृथ्वी भयानक शब्द करती हुई डोलने लगी और आकाशसे दण्ड तथा जलते हुए काष्ठोंसहित बहुत-सी उल्काएँ सूर्यमण्डलसे टकराकर सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखरी पड़ती थीं ॥ २२½ ॥

विष्वग्वाताः प्रादुरासन् नीचैः शर्करवर्षिणः ॥ २३ ॥
अश्रूणि मुमुचुर्नागा वेपथुं चास्पृशन् भृशम्।

चारों ओर नीचे बालू और कंकड़ बरसानेवाली हवाएँ चलने लगीं। हाथी आँसू बहाने और थरथर काँपने लगे ॥

एतान् घोराननादृत्य समुत्पातान् सुदारुणान् ॥ २४ ॥
पुनर्युद्धाय संयत्ताः क्षत्रियास्तस्थुरव्यथाः।
रमणीये कुरुक्षेत्रे पुण्ये स्वर्गं यियासवः ॥ २५ ॥

इन घोर एवं दारुण उत्पातोंकी अवहेलना करके क्षत्रिय वीर मनमें व्यथासे रहित हो पुनः युद्धके लिये तैयार हो गये और स्वर्गमें जानेकी अभिलाषा ले रमणीय एवं पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें उत्साहपूर्वक डट गये ॥ २४-२५ ॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत्।
युद्धयध्वमग्रतो यावत् पृष्ठतो हन्मि पाण्डवान् ॥२६॥

तत्पश्चात् गान्धारराजके पुत्र शकुनिने कौरवयोद्धाओंसे कहा—'वीरो! तुमलोग सामनेसे युद्ध करो और मैं पीछेसे पाण्डवोंका संहार करता हूँ' ॥ २६ ॥

ततो नः सम्प्रयातानां मद्रयोधास्तरस्विनः।
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्तापरे तथा ॥ २७ ॥

इस सलाहके अनुसार जब हमलोग चले तो मद्रदेशके वेगशाली योद्धा तथा अन्य सैनिक हर्षसे उल्लसित हो किल-कारियाँ भरने लगे ॥ २७ ॥

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्या दुरासदाः।
शरासनानि धुन्वन्तः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २८ ॥

इतनेहीमें दुर्धर्ष पाण्डव पुनः हमारे पास आ पहुँचे और हमें अपने लक्ष्यके रूपमें पाकर धनुष हिलाते हुए हम लोगोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २८ ॥

ततो हतं परैस्तत्र मद्रराजबलं तदा।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत् पराङ्मुखम् ॥ २९ ॥

थोड़ी ही देरमें शत्रुओंने वहाँ मद्रराजकी सेनाका संहार कर डाला। यह देख दुर्योधनकी सेना पुनः पीठ दिखाकर भागने लगी ॥ २९ ॥

गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ ३० ॥

तब बलवान् गान्धारराज शकुनिने पुनः इस प्रकार कहा—'अपने धर्मको न जाननेवाले पापियो! इस तरह तुम्हारे भागनेसे क्या होगा? लौटो और युद्ध करो' ॥३०॥

अनीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ।
आसीद् गान्धारराजस्य विशालप्रासयोधिनाम् ॥ ३१ ॥
बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये।
पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय गान्धारराज शकुनिके पास विशाल प्रास लेकर युद्ध करनेवाले घुड़सवारोंकी दस हजार सेना मौजूद थी। उसीको साथ लेकर वह उस जन-संहार-कारी युद्धमें पाण्डव-सेनाके पिछले भागकी ओर गया और वे सब मिलकर पैने बाणोंसे उस सेनापर चोट करने लगे ॥

तदभ्रमिव वातेन क्षिप्यमाणं समन्ततः।
अभज्यत महाराज पाण्डूनां सुमहद् बलम् ॥ ३३ ॥

महाराज! जैसे वायुके वेगसे मेघोंका दल सब ओरसे छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार इस आक्रमणसे पाण्डवों-की विशाल सेनाका व्यूह भंग हो गया ॥ ३३ ॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात्।
अभ्यनादयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम् ॥ ३४ ॥

तब युधिष्ठिरने पास ही अपनी सेनामें भगदड़ मची देख शान्तभावसे महाबली सहदेवको पुकारा ॥ ३४ ॥

असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीडय दंशितः।
सैन्यानि सूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम् ॥ ३५ ॥

और कहा—'पाण्डुनन्दन! कवच धारण करके आया हुआ वह सुबलपुत्र शकुनि हमारी सेनाके पिछले भागको पीड़ा देकर सारे सैनिकोंका संहार कर रहा है; इस दुर्बुद्धिको देखो तो सही ॥ ३५ ॥

गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि।
रथानीकमहं धक्ष्ये पाञ्चालसहितोऽनघ ॥ ३६ ॥

'निष्पाप वीर! तुम द्रौपदीके पुत्रोंको साथ लेकर जाओ और सुबलपुत्र शकुनिको मार डालो। मैं पाञ्चाल योद्धाओंके साथ यहीं रहकर शत्रुकी इस रथसेनाको भस्म कर डालूँगा ॥

गच्छन्तु कुञ्जराः सर्वे वाजिनश्च सह त्वया।
पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं तैर्वृतो जहि ॥ ३७ ॥

'तुम्हारे साथ सभी हाथीसवार, घुड़सवार और तीन हजार पैदल सैनिक भी जायँ तथा उन सबसे घिरे रहकर तुम शकुनिका नाश करो' ॥ ३७ ॥

ततो गजाः सप्तशताश्चापपाणिभिरास्थिताः।
पञ्च चाश्वसहस्राणि सहदेवश्च वीर्यवान् ॥ ३८ ॥
पादाताश्च त्रिसाहस्रा द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
रणे ह्यभ्यद्रवंस्ते तु शकुनिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार हाथमें धनुष लिये बैठे हुए सवारोंसे युक्त सात सौ हाथी, पाँच हजार घुड़सवार, पराक्रमी सहदेव, तीन हजार पैदल योद्धा और द्रौपदीके सभी पुत्र—इन सबने रणभूमिमें युद्ध-दुर्मद शकुनिपर धावा किया ॥ ३८-३९ ॥

ततस्तु सौबलो राजन्नभ्यतिक्रम्य पाण्डवान् ।
जघान पृष्ठतः सेनां जयगृद्धः प्रतापवान् ॥ ४० ॥

राजन्! उधर विजयाभिलाषी प्रतापी सुबलपुत्र शकुनि पाण्डवोंका उल्लङ्घन करके पीछेकी ओरसे उनकी सेनाका संहार कर रहा था ॥ ४० ॥

अश्वारोहास्तु संरब्धाः पाण्डवानां तरस्विनाम् ।
प्राविशन् सौबलानीकमभ्यतिक्रम्य तान् रथान् ॥ ४१ ॥

वेगशाली पाण्डवोंके घुड़सवारोंने अत्यन्त कुपित होकर उन कौरव रथियोंका उल्लङ्घन करके सुबलपुत्रकी सेनामें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥

ते तत्र सादिनः शूराः सौबलस्य महद् बलम् ।
रणमध्ये व्यतिष्ठन्त शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४२ ॥

वे शूरवीर घुड़सवार वहाँ जाकर रणभूमिके मध्यभागमें खड़े हो गये और शकुनिकी उस विशाल सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४२ ॥

तदुद्यतगदाप्रासमकापुरुषसेवितम् ।
प्रावर्तत महद् युद्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ४३ ॥

राजन्! फिर तो आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप वह महान् युद्ध आरम्भ हो गया, जो कायरोंसे नहीं, वीर पुरुषोंसे सेवित था। उस समय सभी योद्धाओंके हाथोंमें गदा अथवा प्रास उठे रहते थे ॥ ४३ ॥

उपारमन्त ज्याशब्दाः प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ।
न हि स्वेषां परेषां वा विशेषः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥

धनुषकी प्रत्यञ्चाके शब्द बंद हो गये। रथी योद्धा दर्शक बनकर तमाशा देखने लगे। उस समय अपने या शत्रुपक्षके योद्धाओंमें पराक्रमकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ ४४ ॥

शूरबाहुविसृष्टानां शक्तीनां भरतर्षभ ।
ज्योतिषामिव सम्पातमपश्यन् कुरुपाण्डवाः ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ! शूरवीरोंकी भुजाओंसे छूटी हुई शक्तियाँ शत्रुओंपर इस प्रकार गिरती थीं, मानो आकाशसे तारे टूटकर पड़ रहे हों। कौरव-पाण्डवयोद्धाओंने इसे प्रत्यक्ष देखा था ॥

ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च तत्र तत्र विशाम्पते ।
सम्पतन्तीभिराकाशमावृतं बह्वशोभत ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ! वहाँ गिरती हुई निर्मल ऋष्टियोंसे व्याप्त हुए आकाशकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ४६ ॥

प्रासानां पततां राजन् रूपमासीत् समन्ततः ।
शलभानामिवाकाशे तदा भरतसत्तम ॥ ४७ ॥

भरतकुलभूषण नरेश! उस समय सब ओर गिरते हुए प्रासोंका स्वरूप आकाशमें छाये हुए टिड्डीदलोंके समान जान पड़ता था ॥ ४७ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४८ ॥

सैकड़ों और हजारों घोड़े अपने घायल सवारोंके साथ सारे अङ्गोंमें लहू-लुहान होकर धरतीपर गिर रहे थे ॥ ४८ ॥

अन्योन्यं परिपिष्टाश्च समासाद्य परस्परम् ।
आविक्षताः स्म दृश्यन्ते वमन्तो रुधिरं मुखैः ॥ ४९ ॥

बहुत-से सैनिक परस्पर टकराकर एक दूसरेसे पिस जाते और क्षत-विक्षत हो मुखोंसे रक्त वमन करते हुए दिखायी देते थे ॥ ४९ ॥

ततोऽभवत्तमो घोरं सैन्येन रजसा वृते ।
तानपाक्रमतोऽद्राक्षं तस्माद् देशादरिंदम ॥ ५० ॥

शत्रुदमन नरेश! तत्पश्चात् जब सेनाद्वारा उठी हुई धूलसे सब ओर घोर अन्धकार छा गया, उस समय हमने देखा कि बहुत-से योद्धा वहाँसे भागे जा रहे हैं ॥ ५० ॥

अश्वान् राजन् मनुष्यांश्च रजसा संवृते सति ।
भूमौ निपतिताश्चान्ये वमन्तो रुधिरं बहु ॥ ५१ ॥

राजन्! धूलसे सारा रणक्षेत्र भर जानेके कारण अँधेरेमें बहुत-से घोड़ों और मनुष्योंको भी हमने भागते देखा था। कितने ही योद्धा पृथ्वीपर गिरकर मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन कर रहे थे ॥ ५१ ॥

केशाकेशि समालग्ना न शेकुश्चेष्टितुं नराः ।
अन्योन्यमश्वपृष्ठेभ्यो विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ५२ ॥

बहुत-से मनुष्य परस्पर केश पकड़कर इतने सट गये थे कि कोई चेष्टा नहीं कर पाते थे। कितने ही महाबली योद्धा एक दूसरेको घोड़ोंकी पीठोंसे खींच रहे थे ॥ ५२ ॥

मल्ला इव समासाद्य निजघ्नुरितरेतरम् ।
अश्वैश्च व्यपकृष्यन्त बहवोऽत्र गतासवः ॥ ५३ ॥

बहुत-से सैनिक पहलवानोंकी भाँति परस्पर भिड़कर एक दूसरेपर चोट करते थे। कितने ही प्राणशून्य होकर अश्वोंद्वारा इधर-उधर घसीटे जा रहे थे ॥ ५३ ॥

भूमौ निपतिताश्चान्ये बहवो विजयैषिणः ।
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त पुरुषाः शूरमानिनः ॥ ५४ ॥

बहुतेरे विजयाभिलाषी तथा अपनेको शूरवीर माननेवाले पुरुष जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर पड़े दिखायी देते थे ॥ ५४ ॥

रक्तोक्षितैश्छिन्नभुजैरवकृष्टशिरोरुहैः ।
व्यदृश्यत मही कीर्णा शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५५ ॥

कटी हुई बाँहों और खींचे गये केशोंवाले सैकड़ों और हजारों रक्तरंजित शरीरोंसे रणभूमि आच्छादित दिखायी देती थी॥

दूरं न शक्यं तत्रासीद् गन्तुमश्वेन केनचित् ।
साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले ॥ ५६ ॥

सवारोंसहित घोड़ोंकी लाशोंसे पटे हुए भूतलपर किसीके लिये भी घोड़ेद्वारा दूरतक जाना असम्भव हो गया था ॥

रुधिरोक्षितसन्नाहैरात्तशस्त्रैरुदायुधैः ।
नानाप्रहरणैर्घोरैः परस्परवधैषिभिः ॥ ५७ ॥
सुसंनिकृष्टैः संग्रामे हतभूयिष्ठसैनिकैः ।

योद्धाओंके कवच रक्तसे भीग गये थे। वे सब हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये धनुष उठाये नाना प्रकारके भयंकर आयुधोंद्वारा एक दूसरेके वधकी इच्छा रखते थे। उस संग्राममें सभी योद्धा अत्यन्त निकट होकर युद्ध करते थे और उनमेंसे अधिकांश सैनिक मार डाले गये थे ॥ ५७½ ॥

स मुहूर्तं ततो युद्ध्वा सौबलोऽथ विशाम्पते ॥ ५८ ॥
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्ततः ।

प्रजानाथ ! शकुनि वहाँ दो घड़ी युद्ध करके शेष बचे हुए छः हजार घुड़सवारोंके साथ भाग निकला ॥ ५८½ ॥

तथैव पाण्डवानीकं रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ५९ ॥
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छ्रान्तवाहनम् ।

इसी प्रकार खूनसे नहायी हुई पाण्डव-सेना भी शेष छः हजार घुड़सवारोंके साथ युद्धसे निवृत्त हो गयी । उसके सारे वाहन थक गये थे ॥ ५९½ ॥

अश्वारोहाश्च पाण्डूनामब्रुवन् रुधिरोक्षिताः ॥ ६० ॥
सुसंनिकृष्टे संग्रामे भूयिष्ठे त्यक्तजीविताः ।

उस समय उस निकटवर्ती महायुद्धमें प्राणोंका मोह छोड़कर जूझनेवाले पाण्डवसेनाके रक्तरंजित घुड़सवार इस प्रकार बोले—॥ ६०½ ॥

न हि शक्यं रथैर्योद्धुं कुत एव महागजैः ॥ ६१ ॥
रथानेव रथा यान्तु कुञ्जराः कुञ्जरानपि ।
प्रतियातो हि शकुनिः स्वमनीकमवस्थितः ॥ ६२ ॥
न पुनः सौबलो राजा युद्धमभ्यागमिष्यति ।

'यहाँ रथोंद्वारा भी युद्ध नहीं किया जा सकता । फिर बड़े-बड़े हाथियोंकी तो बात ही क्या है ? रथ रथोंका सामना करनेके लिये जायँ और हाथी हाथियोंका । शकुनि भागकर अपनी सेनामें चला गया । अब फिर राजा शकुनि युद्धमें नहीं आयेगा' ॥ ६१-६२½ ॥

ततस्तु द्रौपदेयाश्च ते च मत्ता महाद्विपाः ॥ ६३ ॥
प्रययुर्यत्र पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नो महारथः ।

उनकी यह बात सुनकर द्रौपदीके पाँचों पुत्र और वे मतवाले हाथी वहीं चले गये, जहाँ पाञ्चालराजकुमार महारथी धृष्टद्युम्न थे ॥ ६३½ ॥

सहदेवोऽपि कौरव्य रजोमेघे समुत्थिते ॥ ६४ ॥
एकाकी प्रययौ तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ।

कुरुनन्दन ! वहाँ धूलका बादल-सा घिर आया था । उस समय सहदेव भी अकेले ही, जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहीं चले गये ॥ ६४½ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु शकुनिः सौबलः पुनः ॥ ६५ ॥
पार्श्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य वाहिनीम् ।

उन सबके चले जानेपर सुबलपुत्र शकुनि पुनः कुपित हो पार्श्वभागसे आकर धृष्टद्युम्नकी सेनाका संहार करने लगा॥

तत् पुनस्तुमुलं युद्धं प्राणांस्त्यक्त्वाभ्यवर्तत॥ ६६ ॥
तावकानां परेषां च परस्परवधैषिणाम् ।

फिर तो परस्पर वधकी इच्छावाले आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें प्राणोंका मोह छोड़कर भयंकर युद्ध होने लगा।६६½।

ते चान्योन्यमवैक्षन्त तस्मिन् वीरसमागमे ॥ ६७ ॥
योधाः पर्यपतन् राजन् शतशोऽथ सहस्रशः ।

राजन् ! शूरवीरोंके उस संघर्षमें सब ओरसे सैकड़ों-हजारों योद्धा टूट पड़े और वे एक-दूसरेकी ओर देखने लगे॥

असिभिश्छिद्यमानानां शिरसां लोकसंक्षये ॥ ६८ ॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दस्तालानां पततामिव ।

उस लोकसंहारकारी संग्राममें तलवारोंसे काटे जाते हुए मस्तक जब पृथ्वीपर गिरते थे, तब उनसे ताड़के फलोंके गिरनेकी-सी धमाकेकी आवाज होती थी ॥ ६८½ ॥

विमुक्तानां शरीराणां छिन्नानां पततां भुवि ॥ ६९ ॥
सायुधानां च बाहूनामूरूणां च विशाम्पते ।
आसीत् कटकटाशब्दः सुमहाँल्लोमहर्षणः ॥ ७० ॥

प्रजानाथ ! छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर गिरनेवाले कवच-शून्य शरीरों, आयुधोंसहित भुजाओं और जाँघोंका अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी कट-कट शब्द सुनायी पड़ता था ॥

निघ्नन्तो निशितैः शस्त्रैर्भ्रातॄन् पुत्रान् सखीनपि ।
योधाः परिपतन्ति स्म यथामिषकृते खगाः ॥ ७१ ॥

जैसे पक्षी मांसके लिये एक-दूसरेपर झपटते हैं, उसी प्रकार वहाँ योद्धा अपने तीखे शस्त्रोंद्वारा भाइयों, मित्रों और पुत्रोंका भी संहार करते हुए एक दूसरेपर टूटे पड़ते थे ॥

अन्योन्यं प्रतिसंरब्धाः समासाद्य परस्परम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति न्यघ्नन् सहस्रशः ॥ ७२ ॥

दोनों पक्षोंके योद्धा एक दूसरेसे भिड़कर परस्पर अत्यन्त कुपित हो 'पहले मैं, पहले मैं' ऐसा कहते हुए सहस्रों सैनिकोंका वध करने लगे ॥ ७२ ॥

संघातेनासनभ्रष्टैरश्वारोहैर्गतासुभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७३ ॥

शत्रुओंके आघातसे प्राणशून्य होकर आसनसे भ्रष्ट हुए अश्वारोहियोंके साथ सैकड़ों और हजारों घोड़े धराशायी होने लगे ॥ ७३ ॥

स्फुरतां प्रतिपिष्टानामश्वानां शीघ्रगामिनाम् ।
स्तनतां च मनुष्याणां सन्नद्धानां विशाम्पते ॥ ७४ ॥
शक्त्यृष्टिप्रासशब्दश्च तुमुलः समपद्यत ।
भिन्दतां परमर्माणि राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ७५ ॥

प्रजापालक नरेश ! आपकी खोटी सलाहके अनुसार बहुत-से शीघ्रगामी अश्व गिरकर छटपटा रहे थे । कितने ही पिस गये थे और बहुत-से कवचधारी मनुष्य गर्जना करते हुए शत्रुओंके मर्म विदीर्ण कर रहे थे । उन सबके शक्ति, ऋष्टि और प्रासोंका भयंकर शब्द वहाँ गूँजने लगा था ॥

श्रमाभिभूताः संरब्धाः श्रान्तवाहाः पिपासवः ।
विक्षताश्च शितैः शस्त्रैरभ्यवर्तन्त तावकाः ॥ ७६ ॥

आपके सैनिक परिश्रमसे थक गये थे, क्रोधमें भरे हुए थे, उनके वाहन भी थकावटसे चूर-चूर हो रहे थे और वे सब-के-सब प्याससे पीड़ित थे । उनके सारे अङ्ग तीक्ष्ण शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे ॥ ७६ ॥

मत्ता रुधिरगन्धेन बहवोऽत्र विचेतसः ।
जघ्नुः परान् स्वकांश्चैव प्राप्तान् प्राप्ताननन्तरान् ॥७७॥

वहाँ बहते हुए रक्तकी गन्धसे मतवाले हो बहुत-से सैनिक विवेक-शक्ति खो बैठे थे और बारी-बारीसे अपने पास आये

हुए शत्रुपक्षके तथा अपने पक्षके सैनिकोंका भी वध कर डालते थे ॥ ७७ ॥

बहवश्च गतप्राणाः क्षत्रिया जयगृद्धिनः ।
भूमावभ्यपतन् राजन् शरवृष्टिभिरावृताः ॥ ७८ ॥

राजन्! बहुत-से विजयाभिलाषी क्षत्रिय बाणोंकी वर्षासे आच्छादित हो प्राणोंका परित्याग करके पृथ्वीपर पड़े थे ॥

वृकगृध्रशृगालानां तुमुले मोदनेऽहनि ।
आसीद् बलक्षयो घोरस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ७९ ॥

भेड़ियों, गीधों और सियारोंका आनन्द बढ़ानेवाले उस भयंकर दिनमें आपके पुत्रकी आँखोंके सामने कौरवसेनाका घोर संहार हुआ ॥ ७९ ॥

नराश्वकायैः संछन्ना भूमिरासीद् विशाम्पते ।
रुधिरोदकचित्रा च भीरूणां भयवर्धिनी ॥ ८० ॥

प्रजानाथ! वह रणभूमि मनुष्यों और घोड़ोंकी लाशोंसे पट गयी थी तथा पानीकी तरह बहाये जाते हुए रक्तसे विचित्र शोभा धारण करके कायरोंका भय बढ़ा रही थी ॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैस्तक्षमाणाः पुनः पुनः ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च न न्यवर्तन्त भारत ॥ ८१ ॥

भारत! खड्गों, पट्टिशों और शूलोंसे एक-दूसरेको बारंबार घायल करते हुए आपके और पाण्डवोंके योद्धा युद्धसे पीछे नहीं हटते थे ॥ ८१ ॥

प्रहरन्तो यथाशक्ति यावत् प्राणस्य धारणम् ।
योधाः परिपतन्ति स्म वमन्तो रुधिरं व्रणैः ॥ ८२ ॥

जबतक प्राण रहते, तबतक यथाशक्ति प्रहार करते हुए योद्धा अन्ततोगत्वा अपने घावोंसे रक्त बहाते हुए धराशायी हो जाते थे ॥ ८२ ॥

शिरो गृहीत्वा केशेषु कबन्धः स्म प्रदृश्यते ।
उद्यम्य च शितं खड्गं रुधिरेण परिप्लुतम् ॥ ८३ ॥

वहाँ कोई-कोई कबन्ध (धड़) ऐसा दिखायी दिया, जो एक हाथमें शत्रुके कटे हुए मस्तकको केशसहित पकड़े हुए और दूसरे हाथमें खूनसे रँगी हुई तीखी तलवार उठाये खड़ा था॥

तथोत्थितेषु बहुषु कबन्धेषु नराधिप ।
तथा रुधिरगन्धेन योधाः कश्मलमाविशन् ॥ ८४ ॥

नरेश्वर! फिर उस तरहके बहुत-से कबन्ध उठे दिखायी देने लगे तथा रुधिरकी गन्धसे प्रायः सभी योद्धाओंपर मोह छा गया था ॥ ८४ ॥

मन्दीभूते ततः शब्दे पाण्डवानां महद् बलम् ।
अल्पावशिष्टैस्तुरगैरभ्यवर्तत सौबलः ॥ ८५ ॥

तत्पश्चात् जब उस युद्धका कोलाहल कुछ कम हुआ, तब सुबलपुत्र शकुनि थोड़े-से बचे हुए घुड़सवारोंके साथ पुनः पाण्डवोंकी विशाल सेनापर टूट पड़ा ॥ ८५ ॥

ततोऽभ्यधावंस्त्वरिताः पाण्डवा जयगृद्धिनः ।
पदातयश्च नागाश्च सादिनश्चोद्यतायुधाः ॥ ८६ ॥
कोष्ठकीकृत्य चाप्येनं परिक्षिप्य च सर्वशः ।
शस्त्रैर्नानाविधैर्जघ्नुर्युद्धपारं तितीर्षवः ॥ ८७ ॥

तब विजयाभिलाषी पाण्डवोंने भी तुरंत उसपर धावा कर दिया। पाण्डव युद्धसे पार होना चाहते थे; अतः उनके पैदल, हाथीसवार और घुड़सवार सभी हथियार उठाये आगे बढ़े तथा शकुनिको सब ओरसे घेरकर उसे कोष्ठबद्ध करके नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा घायल करने लगे ॥८६-८७॥

त्वदीयास्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य सर्वतः समभिद्रुतान् ।
रथाश्वपत्तिद्विरदाः पाण्डवानभिदुद्रुवुः ॥ ८८ ॥

पाण्डवसैनिकोंको सब ओरसे आक्रमण करते देख आपके रथी, घुड़सवार, पैदल और हाथीसवार भी पाण्डवोंपर टूट पड़े॥

केचित् पदातयः पद्भिर्मुष्टिभिश्च परस्परम् ।
निजघ्नुः समरे शूराः क्षीणशस्त्रास्ततोऽपतन् ॥ ८९ ॥

कुछ शूरवीर पैदल योद्धा समराङ्गणमें पैदलोंके साथ भिड़ गये और अस्त्र-शस्त्रोंके क्षीण हो जानेपर एक दूसरेको मुक्कोंसे मारने लगे। इस प्रकार लड़ते-लड़ते वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८९ ॥

रथेभ्यो रथिनः पेतुर्द्विपेभ्यो हस्तिसादिनः ।
विमानेभ्यो दिवो भ्रष्टाः सिद्धाः पुण्यक्षयादिव ॥ ९० ॥

जैसे सिद्ध पुरुष पुण्यक्षय होनेपर स्वर्गलोकके विमानोंसे नीचे गिर जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ रथी रथोंसे और हाथी-सवार हाथियोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९० ॥

एवमन्योन्यमायत्ता योधा जघ्नुर्महाहवे ।
पितॄन् भ्रातॄन् वयस्यांश्च पुत्रानपि तथा परे ॥ ९१ ॥

इस प्रकार उस महायुद्धमें दूसरे-दूसरे योद्धा परस्पर विजयके लिये प्रयत्नशील हो पिता, भाई, मित्र और पुत्रोंका भी वध करने लगे ॥ ९१ ॥

एवमासीदमर्यादं युद्धं भरतसत्तम ।
प्रासासिबाणकलिले वर्तमाने सुदारुणे ॥ ९२ ॥

भरतश्रेष्ठ! प्रास, खड्ग और बाणोंसे व्याप्त हुए उस अत्यन्त भयंकर रणक्षेत्रमें इस प्रकार मर्यादाशून्य युद्ध हो रहा था ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनद्वारा दुर्योधनके दुराग्रहकी निन्दा और रथियोंकी सेनाका संहार

संजय उवाच

तस्मिञ्शब्दे मृदौ जाते पाण्डवैर्निहते बले ।
अश्वैः सप्तशतैः शिष्टैरुपावर्तत सौबलः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब पाण्डव-योद्धाओंने

अधिकांश सेनाका संहार कर डाला और युद्धका कोलाहल कम हो गया, तब सुबलपुत्र शकुनि शेष बचे हुए सात सौ घुड़सवारोंके साथ कौरव सेनाके समीप चला गया ॥ १ ॥

स यात्वा वाहिनीं तूर्णमब्रवीत् त्वरयन् युधि ।
युद्ध्यध्वमिति संहृष्टाः पुनः पुनररिंदमाः ॥ २ ॥
अपृच्छत् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु राजा महाबलः ।

वह तुरंत कौरव-सेनामें पहुँचकर सबको युद्धके लिये शीघ्रता करनेकी प्रेरणा देता हुआ बोला—'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीरो ! तुम हर्ष और उत्साहके साथ युद्ध करो ।' ऐसा कहकर उसने वहाँ बारम्बार क्षत्रियोंसे पूछा—'महाबली राजा दुर्योधन कहाँ है ?' ॥ २½ ॥

शकुनेस्तद् वचः श्रुत्वा तमूचुर्भरतर्षभ ॥ ३ ॥
असौ तिष्ठति कौरव्यो रणमध्ये महाबलः ।
यत्रैतत् सुमहच्छत्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ ४ ॥
यत्र ते सतनुत्राणा रथास्तिष्ठन्ति दंशिताः ।

भरतश्रेष्ठ ! शकुनिकी वह बात सुनकर उन क्षत्रियोंने उसे यह उत्तर दिया—'प्रभो ! महाबली कुरुराज रणक्षेत्रके मध्यभागमें वहाँ खड़े हैं, जहाँ यह पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विशाल छत्र तना हुआ है तथा जहाँ वे शरीर-रक्षक आवरणों एवं कवचोंसे सुसज्जित रथ खड़े हैं ॥ ३-४½ ॥

यत्रैष तुमुलः शब्दः पर्जन्यनिनदोपमः ॥ ५ ॥
तत्र गच्छ द्रुतं राजंस्ततो द्रक्ष्यसि कौरवम् ।

'राजन् ! जहाँ यह मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान भयानक शब्द गूँज रहा है, वहीं शीघ्रतापूर्वक चले जाइये, वहाँ आप कुरुराजका दर्शन कर सकेंगे' ॥ ५½ ॥

एवमुक्तस्तु तैर्योधैः शकुनिः सौबलस्तदा ॥ ६ ॥
प्रययौ तत्र यत्रासौ पुत्रस्तव नराधिप ।
सर्वतः संवृतो वीरैः समरे चित्रयोधिभिः ॥ ७ ॥

नरेश्वर ! तब उन योद्धाओंके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनि वहीं गया, जहाँ आपका पुत्र दुर्योधन समराङ्गणमें विचित्र युद्ध करनेवाले वीरोंद्वारा सब ओरसे घिरा हुआ खड़ा था ॥ ६-७ ॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा रथानीके व्यवस्थितम् ।
स रथांस्तावकान् सर्वान् हर्षयञ्शकुनिस्ततः ॥ ८ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं हृष्टरूपो विशाम्पते ।
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानोऽब्रवीन्नृपम् ॥ ९ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर दुर्योधनको रथसेनामें खड़ा देख आपके सम्पूर्ण रथियोंका हर्ष बढ़ाता हुआ शकुनि अपनेको कृतार्थ-सा मानकर बड़े हर्षके साथ राजा दुर्योधनसे इस प्रकार बोला—॥

जहि राजन् रथानीकमश्वाः सर्वे जिता मया ।
नात्यक्त्वा जीवितं संख्ये शक्यो जेतुं युधिष्ठिरः॥ १० ॥

'राजन् ! शत्रुकी रथसेनाका नाश कीजिये । समस्त घुड़सवारोंको मैंने जीत लिया है । राजा युधिष्ठिर अपने प्राणोंका परित्याग किये बिना जीते नहीं जा सकते ॥ १० ॥

हते तस्मिन् रथानीके पाण्डवेनाभिपालिते ।
गजानेतान् हनिष्यामः पदातींश्चेतरांस्तथा ॥ ११ ॥

'पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा सुरक्षित इस रथ-सेनाका संहार हो जानेपर हम इन हाथीसवारों, पैदलों और घुड़सवारोंका भी वध कर डालेंगे' ॥ ११ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य तावका जयगृद्धिनः ।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टाः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १२ ॥

विजयाभिलाषी शकुनिकी यह बात सुनकर आपके सैनिक अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े वेगसे पाण्डव-सेनापर टूट पड़े॥

सर्वे विवृततूणीराः प्रगृहीतशरासनाः ।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान् प्रणेदिरे ॥ १३ ॥

सबके तरकसोंके मुँह खुल गये, सबने हाथमें धनुष ले लिये और सभी धनुष हिलाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १३ ॥

ततो ज्यातलनिर्घोषः पुनरासीद् विशाम्पते ।
प्रादुरासीच्छराणां च सुमुक्तानां सुदारुणः ॥ १४ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर फिर प्रत्यञ्चाकी टङ्कार और अच्छी तरह छोड़े हुए बाणोंकी भयानक सनसनाहट प्रकट होने लगी॥

तान् समीपगतान् दृष्ट्वा जवेनोद्यतकार्मुकान् ।
उवाच देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १५ ॥

उन सबको बड़े वेगसे धनुष उठाये पास आया देखकर कुन्तीकुमार अर्जुनने देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ १५ ॥

चोदयाश्वानसम्भ्रान्तः प्रविशैतद् बलार्णवम् ।
अन्तमद्य गमिष्यामि शत्रूणां निशितैः शरैः ॥ १६ ॥
अष्टादश दिनान्यद्य युद्धस्यास्य जनार्दन ।
वर्तमानस्य महतः समासाद्य परस्परम् ॥ १७ ॥

'जनार्दन ! आप स्वस्थचित्त होकर इन घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्यसागरमें प्रवेश कीजिये । आज मैं तीखे बाणोंसे शत्रुओंका अन्त कर डालूँगा । परस्पर भिड़कर इस महान् संग्रामके आरम्भ हुए आज अठारह दिन हो गये ॥१६-१७॥

अनन्तकल्पा ध्वजिनी भूत्वा ह्येषां महात्मनाम् ।
क्षयमद्य गता युद्धे पश्य दैवं यथाविधम् ॥ १८ ॥

'इन महामनस्वी कौरवोंके पास अपार सेना थी; परंतु युद्धमें इस समयतक प्रायः नष्ट हो गयी । देखिये, प्रारब्धका कैसा खेल है ! ॥ १८ ॥

समुद्रकल्पं च बलं धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
अस्मानासाद्य संजातं गोष्पदोपममच्युत ॥ १९ ॥

'माधव ! अच्युत ! दुर्योधनकी समुद्र-जैसी अनन्त सेना हमलोगोंसे टक्कर लेकर आज गायकी खुरीके समान हो गयी है ॥ १९ ॥

हते भीष्मे तु संदध्याच्छिवं स्यादिह माधव ।
न च तत् कृतवान् मूढो धार्तराष्ट्रः सुबालिशः॥ २० ॥

'माधव ! यदि भीष्मके मारे जानेपर दुर्योधन सन्धि कर लेता तो यहाँ सबका कल्याण होता; परंतु उस अज्ञानी मूर्खने वैसा नहीं किया ॥ २० ॥

उक्तं भीष्मेण यद् वाक्यं हितं तथ्यं च माधव ।
तच्चापि नासौ कृतवान् वीतबुद्धिः सुयोधनः ॥ २१ ॥

'मधुकुलभूषण ! भीष्मजीने जो सच्ची और हितकर बात बतायी थी, उसे भी उस बुद्धिहीन दुर्योधनने नहीं माना॥

तस्मिंस्तु तुमुले भीष्मे प्रच्युते धरणीतले ।
न जाने कारणं किं तु येन युद्धमवर्तत ॥ २२ ॥

'तदनन्तर घमासान युद्ध आरम्भ हुआ और उसमें भीष्मजी पृथ्वीपर मार गिराये गये । फिर भी न जाने क्या कारण था, जिससे युद्ध चालू ही रह गया ॥ २२ ॥

मूढांस्तु सर्वथा मन्ये धार्तराष्ट्रान् सुबालिशान् ।
पतिते शान्तनोः पुत्रे येऽकार्षुः संयुगं पुनः ॥ २३ ॥

'मैं धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको सर्वथा मूर्ख और नादान समझता हूँ, जिन्होंने शान्तनुनन्दन भीष्मजीके धराशायी होनेपर भी पुनः युद्ध जारी रक्खा ॥ २३ ॥

अनन्तरं च निहते द्रोणे ब्रह्मविदां वरे ।
राधेये च विकर्णे च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २४ ॥

'तत्पश्चात् वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, राधापुत्र कर्ण और विकर्ण मारे गये तो भी यह मार-काट बंद नहीं हुई ॥

अल्पावशिष्टे सैन्येऽस्मिन् सूतपुत्रे च पातिते ।
सपुत्रे वै नरव्याघ्रे नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २५ ॥

'पुत्रसहित नरश्रेष्ठ सूतपुत्रके मार गिराये जानेपर जब कौरवसेना थोड़ी-सी ही बच रही थी तो भी यह युद्धकी आग नहीं बुझी ॥ २५ ॥

श्रुतायुषि हते वीरे जलसन्धे च पौरवे ।
श्रुतायुधे च नृपतौ नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २६ ॥

'श्रुतायु, वीर जलसन्ध पौरव तथा राजा श्रुतायुधके मारे जानेपर भी यह संहार बंद नहीं हुआ ॥ २६ ॥

भूरिश्रवसि शल्ये च शाल्वे चैव जनार्दन ।
आवन्त्येषु च वीरेषु नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २७॥

'जनार्दन ! भूरिश्रवा, शल्य, शाल्व तथा अवन्ति देशके वीर मारे गये तो भी यह युद्धकी ज्वाला शान्त न हो सकी ॥

जयद्रथे च निहते राक्षसे चाप्यलायुधे ।
बाह्लिके सोमदत्ते च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २८ ॥

'जयद्रथ, बाह्लिक, सोमदत्त तथा राक्षस अलायुध—ये सभी परलोकवासी हो गये तो भी यह युद्धकी प्यास न बुझ सकी॥

भगदत्ते हते शूरे काम्बोजे च सुदारुणे ।
दुःशासने च निहते नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २९॥

'भगदत्त, शूरवीर काम्बोजराज सुदक्षिण तथा अत्यन्त दारुण दुःशासनके मारे जानेपर भी कौरवोंकी युद्ध-पिपासा शान्त नहीं हुई ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा विनिहताञ्शूरान् पृथङ्माण्डलिकान् नृपान्।
बलिनश्च रणे कृष्ण नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ ३०॥

'श्रीकृष्ण ! विभिन्न मण्डलोंके स्वामी शूरवीर बलवान् नरेशोंको रणभूमिमें मारा गया देखकर भी यह युद्धकी आग बुझ न सकी ॥ ३० ॥

अक्षौहिणीपतीन् दृष्ट्वा भीमसेननिपातितान् ।
मोहाद् वा यदि वा लोभान्नैवाशाम्यत वैशसम्॥ ३१ ॥

'भीमसेनके द्वारा धराशायी किये गये अक्षौहिणीपतियों- को देखकर भी मोहवश अथवा लोभके कारण युद्ध बंद न हो सका ॥ ३१ ॥

को नु राजकुले जातः कौरवेयो विशेषतः ।
निरर्थकं महद् वैरं कुर्यादन्यः सुयोधनात् ॥ ३२ ॥

'राजाके कुलमें उत्पन्न होकर विशेषतः कुरुकुलकी संतान होकर दुर्योधनके सिवा दूसरा कौन ऐसा है, जो व्यर्थ ही (अपने बन्धुओंके साथ) महान् वैर बाँधे ॥ ३२ ॥

गुणतोऽभ्यधिकाञ्ज्ञात्वा बलतः शौर्यतोऽपि वा ।
अमूढः को नु युद्ध्येत जानन् प्राज्ञो हिताहितम्॥ ३३ ॥

'दूसरोंको गुणसे, बलसे अथवा शौर्यसे भी अपनी अपेक्षा महान् जानकर भी अपने हित और अहितको समझने- वाला मूढ़ताशून्य कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष होगा ? जो उनके साथ युद्ध करेगा ॥ ३३ ॥

यन्न तस्य मनो ह्यासीत् त्वयोक्तस्य हितं वचः ।
प्रशमे पाण्डवैः सार्धं सोऽन्यस्य शृणुयात् कथम् ॥३४॥

'आपके द्वारा हितकारक वचन कहे जानेपर भी जिसका पाण्डवोंके साथ संधि करनेका मन नहीं हुआ, वह दूसरेकी बात कैसे सुन सकता है ? ॥ ३४ ॥

येन शान्तनवो वीरो द्रोणो विदुर एव च ।
प्रत्याख्याताः शमस्यार्थे किं नु तस्याद्य भेषजम्॥ ३५ ॥

'जिसने संधिके विषयमें वीर शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुरजीकी भी बात माननेसे इन्कार कर दी, उसके लिये अब कौन-सी दवा है ?॥ ३५ ॥

मौर्ख्याद् येन पिता वृद्धः प्रत्याख्यातो जनार्दन ।
तथा माता हितं वाक्यं भाषमाणा हितैषिणी ॥ ३६ ॥
प्रत्याख्याता ह्यसत्कृत्य स कस्मै रोचयेद् वचः ।

'जनार्दन ! जिसने मूर्खतावश अपने वृद्ध पिताकी भी बात नहीं मानी और हितकी बात बतानेवाली अपनी हितैषिणी माताका भी अपमान करके उसकी आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया, उसे दूसरे किसीकी बात क्यों रुचेगी ? ॥ ३६½ ॥

कुलान्तकरणो व्यक्तं जात एष जनार्दन ॥ ३७ ॥
तथास्य दृश्यते चेष्टा नीतिश्चैव विशाम्पते ।

'जनार्दन ! निश्चय ही यह अपने कुलका विनाश करनेवाला पैदा हुआ है । प्रजानाथ ! इसकी नीति और चेष्टा ऐसी ही दिखायी देती है ॥ ३७½ ॥

नैष दास्यति नो राज्यमिति मे मतिरच्युत ॥ ३८ ॥
उक्तोऽहं बहुशस्तात विदुरेण महात्मना ।
न जीवन् दास्यते भागं धार्तराष्ट्रस्तु मानद ॥ ३९ ॥

'अच्युत ! मैं समझता हूँ, यह अब भी हमें अपना राज्य नहीं देगा । तात ! महात्मा विदुरने मुझसे अनेक बार कहा है कि 'मानद ! दुर्योधन जीते-जी राज्यका भाग नहीं लौटायेगा ॥ ३८-३९ ॥

यावत् प्राणा धरिष्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः।
तावद् युष्मास्वपापेषु प्रचरिष्यति पापकम् ॥ ४० ॥

'दुर्बुद्धि दुर्योधनके प्राण जबतक शरीरमें स्थित रहेंगे, तबतक तुम निष्पाप बन्धुओंपर भी वह पापपूर्ण बर्ताव ही करता रहेगा ॥ ४० ॥

न च युक्तोऽन्यथा जेतुमृते युद्धेन माधव।
इत्यब्रवीत् सदा मां हि विदुरः सत्यदर्शनः ॥ ४१ ॥

'माधव ! युद्धके सिवा और किसी उपायसे दुर्योधनको जीतना सम्भव नहीं है ।' यह बात सत्यदर्शी विदुरजी सदासे ही मुझसे कहते आ रहे हैं ॥ ४१ ॥

तत् सर्वमद्य जानामि व्यवसायं दुरात्मनः।
यदुक्तं वचनं तेन विदुरेण महात्मना ॥ ४२ ॥

'महात्मा विदुरने जो बात कही है, उसके अनुसार मैं उस दुरात्माके सम्पूर्ण निश्चयको आज जानता हूँ ॥ ४२ ॥

यो हि श्रुत्वा वचः पथ्यं जामदग्न्याद् यथातथम्।
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्ध्रुवं नाशमुखे स्थितः ॥ ४३ ॥

'जिस दुर्बुद्धिने यमदग्निनन्दन परशुरामजीके मुखसे यथार्थ एवं हितकारक वचन सुनकर भी उसकी अवहेलना कर दी, वह निश्चय ही विनाशके मुखमें स्थित है ॥ ४३ ॥

उक्तं हि बहुशः सिद्धैर्जातमात्रे सुयोधने।
एनं प्राप्य दुरात्मानं क्षयं क्षत्रं गमिष्यति ॥ ४४ ॥

'दुर्योधनके जन्म लेते ही सिद्ध पुरुषोंने बारंबार कहा था कि 'इस दुरात्माको पाकर क्षत्रियजातिका बिनाश हो जायगा'॥

तदिदं वचनं तेषां निरुक्तं वै जनार्दन।
क्षयं याता हि राजानो दुर्योधनकृते भृशम् ॥ ४५ ॥

'जनार्दन ! उनकी वह बात यथार्थ हो गयी; क्योंकि दुर्योधनके कारण बहुत-से राजा नष्ट हो गये ॥ ४५ ॥

सोऽद्य सर्वान् रणे योधान् निहनिष्यामि माधव।
क्षत्रियेषु हतेष्वाशु शून्ये च शिबिरे कृते ॥ ४६ ॥
वधाय चात्मनोऽस्माभिः संयुगं रोचयिष्यति।
तदन्तं हि भवेद् वैरमनुमानेन माधव ॥ ४७ ॥

'माधव ! आज मैं रणभूमिमें शत्रुपक्षके समस्त योद्धाओंको मार गिराऊँगा। इन क्षत्रियोंका शीघ्र ही संहार हो जानेपर जब सारा शिविर सूना हो जायगा, तब वह अपने वधके लिये हमलोगोंके साथ जूझना पसंद करेगा। माधव ! मेरे अनुमानसे उसका वध होनेपर ही इस वैरका अन्त होगा ॥

एवं पश्यामि वार्ष्णेय चिन्तयन् प्रज्ञया स्वया।
विदुरस्य च वाक्येन चेष्टया च दुरात्मनः ॥ ४८ ॥

'वृष्णिनन्दन ! मैं अपनी बुद्धिसे, विदुरजीके वाक्यसे और दुरात्मा दुर्योधनकी चेष्टासे भी सोच-विचारकर ऐसा ही होता देखता हूँ ॥ ४८ ॥

तस्माद् याहि चमूं वीर यावद्धन्मि शितैः शरैः।
दुर्योधनं महाबाहो वाहिनीं चास्य संयुगे ॥ ४९ ॥

'अतः वीर ! महाबाहो ! आप कौरव-सेनाकी ओर चलिये, जिससे मैं पैने बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें दुर्योधन और उसकी सेनाका संहार करूँ ॥ ४९ ॥

क्षेममद्य करिष्यामि धर्मराजस्य माधव।
हत्वैतद् दुर्बलं सैन्यं धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ ५० ॥

'माधव ! आज मैं दुर्योधनके देखते-देखते इस दुर्बल सेनाका नाश करके धर्मराजका कल्याण करूँगा' ॥ ५० ॥

संजय उवाच

अभीषुहस्तो दाशार्हस्तथोक्तः सव्यसाचिना।
तद् बलौघममित्राणामभीतः प्राविशद् बलात् ॥ ५१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लिये दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने निर्भय हो शत्रुओंके उस सैन्य-सागरमें बलपूर्वक प्रवेश किया॥

कुन्तखड्गशरैर्घोरं शक्तिकण्टकसंकुलम्।
गदापरिघपन्थानं रथनागमहाद्रुमम् ॥ ५२ ॥
हयपत्तिलताकीर्णं गाहमानो महायशाः।
व्यचरत्तत्र गोविन्दो रथेनातिपताकिना ॥ ५३ ॥

वह सेना एक वनके समान थी। वह वन कुन्त, खड्ग और बाणोंसे अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था, शक्तिरूपी काँटोंसे भरा हुआ था, गदा और परिघ उसमें जानेके मार्ग थे, रथ और हाथी उसमें रहनेवाले बड़े-बड़े वृक्ष थे, घोड़े और पैदलरूपी लताओंसे वह व्याप्त हो रहा था, महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण ऊँची पताकावाले रथके द्वारा उस सैन्यवनमें प्रवेश करके सब ओर विचरने लगे ॥ ५२-५३ ॥

ते हयाः पाण्डुरा राजन् वहन्तोऽर्जुनमाहवे।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त दाशार्हेण प्रचोदिताः ॥ ५४ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये वे सफेद घोड़े युद्धस्थलमें अर्जुनको ढोते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें दिखायी पड़ते थे ॥

ततः प्रायाद् रथेनाजौ सव्यसाची परंतपः।
किरञ्शरशतांस्तीक्ष्णान् वारिधारा घनो यथा॥ ५५ ॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः शराणां नतपर्वणाम्।

फिर तो जैसे बादल पानीकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुन युद्धस्थलमें सैकड़ों पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए रथके द्वारा आगे बढ़े। उस समय झुकी हुई गाँठवाले बाणोंका महान् शब्द प्रकट होने लगा ॥

इषुभिश्छाद्यमानानां समरे सव्यसाचिना ॥ ५६ ॥
असज्जन्तस्तनुत्रेषु शरौघाः प्रापतन् भुवि।

सव्यसाची अर्जुनद्वारा समरभूमिमें बाणोंसे आच्छादित होनेवाले सैनिकोंके कवचोंपर उनके बाण अटकते नहीं थे। वे चोट करके पृथ्वीपर गिर जाते थे ॥ ५६½ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शा गाण्डीवप्रेषिताः शराः ॥ ५७ ॥
नरान् नागान् समाहत्य हयांश्चापि विशाम्पते।
अपतन्त रणे बाणाः पतङ्गा इव घोषिणः ॥ ५८ ॥

प्रजानाथ ! इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर स्पर्शवाले बाण गाण्डीवसे प्रेरित हो मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंका भी संहार करके शब्द करनेवाले टिड्डीदलोंके समान रणभूमिमें गिर पड़ते थे॥

आसीत् सर्वमवच्छन्नं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः।
न प्राज्ञायन्त समरे दिशो वा प्रदिशोऽपि वा ॥ ५९ ॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उस रणभूमिकी सारी वस्तुएँ आच्छादित हो गयी थीं। दिशाओं अथवा विदिशाओंका भी ज्ञान नहीं हो पाता था ॥ ५९ ॥

सर्वमासीज्जगत् पूर्णं पार्थनामाङ्कितैः शरैः।
रुक्मपुङ्खैस्तैलधौतैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥ ६० ॥

अर्जुनके नामसे अंकित, तेलके धोये और कारीगरके साफ किये सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा वहाँका सारा जगत् व्याप्त हो रहा था ॥ ६० ॥

ते दह्यमानाः पार्थेन पावकेनेव कुञ्जराः।
पार्थं न प्रजहुर्घोरा वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ६१ ॥

दावानलके आगसे जलनेवाले हाथियोंके समान पार्थके पैने बाणोंकी मार खाकर दग्ध होते हुए वे घोर कौरव-योद्धा अर्जुनको छोड़कर हटते नहीं थे ॥ ६१ ॥

शरचापधरः पार्थः प्रज्वलन्निव भास्करः।
ददाह समरे योधान् कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ६२ ॥

जैसे जलती हुई आग घास-फूसके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले धनुष-बाणधारी अर्जुनने समराङ्गणमें आपके योद्धाओंको दग्ध कर दिया ॥

यथा वनान्ते वनपैर्विसृष्टः
कक्षं दहेत् कृष्णगतिः सुघोषः।
भूरिद्रुमं शुष्कलतावितानं
भृशं समृद्धो ज्वलनः प्रतापी ॥ ६३ ॥
एवं स नाराचगणप्रतापी
शरार्चिरुच्चावचतिग्मतेजाः ।
ददाह सर्वां तव पुत्रसेना-
ममृष्यमाणस्तरसा तरस्वी ॥ ६४ ॥

जैसे वनचरोंद्वारा वनके भीतर लगायी हुई आग धीरे-धीरे बढ़कर प्रज्वलित एवं महान् तापसे युक्त हो घास-फूसके ढेरको, बहुसंख्यक वृक्षोंको और सूखी हुई लतावल्लरियोंको भी जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार नाराचसमूहोंद्वारा ताप देनेवाले, बाणरूपी ज़्वालाओंसे युक्त, वेगवान्, प्रचण्ड तेजस्वी और अमर्षमें भरे हुए अर्जुनने समराङ्गणमें आपके पुत्रकी सारी रथसेनाको शीघ्रतापूर्वक भस्म कर डाला।६३-६४।

तस्येषवः प्राणहराः सुमुक्ता
नासज्जन् वै वर्मसु रुक्मपुङ्खाः।
न च द्वितीयं प्रमुमोच बाणं
नरे हये वा परमद्विपे वा ॥ ६५ ॥

उनके अच्छी तरह छोड़े हुए सुवर्णमय पंखवाले प्राणान्तकारी बाण कवचोंपर नहीं अटकते थे। उन्हें छेदकर भीतर घुस जाते थे। वे मनुष्य, घोड़े अथवा विशालकाय हाथीपर भी दूसरा बाण नहीं छोड़ते थे (एक ही बाणसे उसका काम तमाम कर देते थे) ॥ ६५ ॥

अनेकरूपाकृतिभिर्हि बाणै-
र्महारथानीकमनुप्रविश्य ।
स एवैकस्तव पुत्रस्य सेनां
जघान दैत्यानिव वज्रपाणिः ॥ ६६ ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र दैत्योंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार एकमात्र अर्जुनने ही रथियोंकी विशाल सेनामें प्रवेश करके अनेक रूप-रंगवाले बाणोंद्वारा आपके पुत्रकी सेनाका विनाश कर दिया ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

अर्जुन और भीमसेनद्वारा कौरवोंकी रथसेना एवं गजसेनाका संहार, अश्वत्थामा आदिके द्वारा दुर्योधनकी खोज, कौरवसेनाका पलायन तथा सात्यकिद्वारा संजयका पकड़ा जाना

संजय उवाच

पश्यतां यतमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! यद्यपि कौरवयोद्धा युद्धसे पीछे न हटनेवाले शूरवीर थे और विजयके लिये पूरा प्रयत्न कर रहे थे तो भी उनके देखते-देखते अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे उनके संकल्पको व्यर्थ कर दिया ॥ १ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शानविषह्यान् महौजसः।
विसृजन् दृश्यते बाणान् धारा मुञ्चन्निवाम्बुदः॥ २ ॥

जैसे बादल पानीकी धारा गिराता है, उसी प्रकार वे बाणोंकी वर्षा करते दिखायी देते थे। उन बाणोंका स्पर्श इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर था। वे बाण असह्य एवं महान् शक्तिशाली थे ॥ २ ॥

तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं किरीटिना।
सम्प्रदुद्राव संग्रामात् तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर वह बची हुई सेना आपके पुत्रके देखते-देखते रणभूमिसे भाग चली ॥

पितॄन् भ्रातॄन् परित्यज्य वयस्यानपि चापरे।
हतधुर्या रथाः केचिद्धतसूतास्तथा परे ॥ ४ ॥

कुछ लोग अपने पिता और भाइयोंको छोड़कर भागे तो दूसरे लोग मित्रोंको। कितने ही रथोंके घोड़े मारे गये थे और कितनोंके सारथि ॥ ४ ॥

भग्नाक्षयुगचक्रेषाः केचिदासन् विशाम्पते।
अन्येषां सायकाः क्षीणास्तथान्ये बाणपीडिताः॥ ५ ॥

प्रजानाथ ! किन्हींके रथोंके जूए, धुरे, पहिये और हरसे भी टूट गये थे, दूसरे योद्धाओंके बाण नष्ट हो गये और अन्य योद्धा अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो गये थे ॥ ५ ॥

अक्षता युगपत् केचित् प्राद्रवन् भयपीडिताः ।
केचित् पुत्रानुपादाय हतभूयिष्ठबान्धवाः ॥ ६ ॥

कुछ लोग घायल न होनेपर भी भयसे पीड़ित हो एक साथ ही भागने लगे और कुछ लोग अधिकांश बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर पुत्रोंको साथ लेकर भागे ॥ ६ ॥

विचुक्रुशुः पितॄंस्त्वन्ये सहायानपरे पुनः ।
बान्धवांश्च नरव्याघ्र भ्रातॄन् सम्बन्धिनस्तथा ॥ ७ ॥
दुद्रुवुः केचिदुत्सृज्य तत्र तत्र विशाम्पते ।
बहवोऽत्र भृशं विद्धा मुह्यमाना महारथाः ॥ ८ ॥

नरव्याघ्र ! कोई पिताको पुकारते थे, कोई सहायकोंको। प्रजानाथ ! कुछ लोग अपने भाई-बन्धुओं और सगे-सम्बन्धियोंको जहाँ-के-तहाँ छोड़कर भाग गये । बहुत-से महारथी पार्थके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो मूर्च्छित हो रहे थे ॥७-८॥

निःश्वसन्ति स्म दृश्यन्ते पार्थबाणहता नराः ।
तानन्ये रथमारोप्य ह्याश्वास्य च मुहूर्तकम् ॥ ९ ॥
विश्रान्ताश्च वितृष्णाश्च पुनर्युद्धाय जग्मिरे ।

अर्जुनके बाणोंसे आहत हो कितने ही मनुष्य रणभूमिमें ही पड़े-पड़े उच्छ्वास लेते दिखायी देते थे । उन्हें दूसरे लोग अपने रथपर बिठाकर घड़ी-दो-घड़ी आश्वासन दे स्वयं भी विश्राम करके प्यास बुझाकर पुनः युद्धके लिये जाते थे ॥

तानपास्य गताः केचित् पुनरेव युयुत्सवः ॥ १० ॥
कुर्वन्तस्तव पुत्रस्य शासनं युद्धदुर्मदाः ।

रणभूमिमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले कितने ही युद्धाभिलाषी योद्धा उन घायलोंको वैसे ही छोड़कर आपके पुत्रकी आज्ञाका पालन करते हुए पुनः युद्धके लिये चल देते थे ॥ १०½ ॥

पानीयमपरे पीत्वा पर्याश्वास्य च वाहनम् ॥ ११ ॥
वर्माणि च समारोप्य केचिद् भरतसत्तम ।
समाश्वास्यापरे भ्रातॄन् निक्षिप्य शिबिरेऽपि च ॥ १२ ॥
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये पुनर्युद्धमरोचयन् ।

भरतश्रेष्ठ ! दूसरे लोग स्वयं पानी पीकर घोड़ोंकी भी थकावट दूर करते । उसके बाद कवच धारण करके लड़नेके लिये जाते थे । अन्य बहुत-से सैनिक अपने घायल बन्धुओं, पुत्रों और पिताओंको आश्वासन दे उन्हें शिबिरमें रख आते । उसके बाद युद्धमें मन लगाते थे ॥ ११-१२½ ॥

सज्जयित्वा रथान् केचिद् यथामुख्यं विशाम्पते ॥ १३ ॥
आप्लुत्य पाण्डवानीकं पुनर्युद्धमरोचयन् ।

प्रजानाथ ! कुछ लोग अपने रथको रणसामग्रीसे सुसज्जित करके पाण्डव-सेनापर चढ़ आते और अपनी प्रधानताके अनुसार किसी श्रेष्ठ वीरके साथ जूझना पसंद करते थे ॥

ते शूराः किङ्किणीजालैः समाच्छन्ना बभासिरे ॥ १४ ॥
त्रैलोक्यविजये युक्ता यथा दैतेयदानवाः ।

वे शूरवीर कौरव-सैनिक रथमें लगे हुए किंकिणीसमूहसे आच्छादित हो तीनों लोकोंपर विजय पानेके लिये उद्यत हुए दैत्यों और दानवोंके समान सुशोभित होते थे ॥ १४½ ॥

आगम्य सहसा केचिद् रथैः स्वर्णविभूषितैः ॥ १५ ॥
पाण्डवानामनीकेषु धृष्टद्युम्नमयोधयन् ।

कुछ लोग अपने सुवर्णभूषित रथोंके द्वारा सहसा आकर पाण्डवसेनाओंमें धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे ॥ १५½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ॥ १६ ॥
नाकुलिस्तु शतानीको रथानीकमयोधयन् ।

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी और नकुलपुत्र शतानीक—ये आपकी रथसेनाके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १६½ ॥

पाञ्चाल्यस्तु ततः क्रुद्धः सैन्येन महताऽऽवृतः ॥ १७ ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धस्तावकान् हन्तुमुद्यतः ।

तदनन्तर आपके सैनिकोंका वध करनेके लिये उद्यत हो विशाल सेनासे घिरे हुए धृष्टद्युम्नने अत्यन्त क्रोधपूर्वक आक्रमण किया ॥ १७½ ॥

ततस्त्वापततस्तस्य तव पुत्रो जनाधिप ॥ १८ ॥
बाणसंघाननेकान् वै प्रेषयामास भारत ।

नरेश्वर ! भरतनन्दन ! उस समय आपके पुत्रने आक्रमण करनेवाले धृष्टद्युम्नपर बहुत-से बाणसमूहोंका प्रहार किया ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १९ ॥
नाराचैरर्धनाराचैर्बहुभिः क्षिप्रकारिभिः ।
वत्सदन्तैश्च बाणैश्च कर्मारपरिमार्जितैः ॥ २० ॥
अश्वांश्च चतुरो हत्वा बाह्वोरुरसि चार्पितः ।

राजन् ! आपके धनुर्धर पुत्रने बहुत-से नाराच, अर्धनाराच, शीघ्रकारी वत्सदन्त और कारीगरद्वारा साफ किये हुए बाणोंसे धृष्टद्युम्नके चारों घोड़ोंको मारकर उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें भी चोट पहुँचायी ॥ १९-२०½ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ २१ ॥
तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे ।
सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ २२ ॥

दुर्योधनके प्रहारसे अत्यन्त घायल हुए महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न अङ्कुशसे पीड़ित हुए हाथीके समान कुपित हो उठे और उन्होंने अपने बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको मौतके हवाले कर दिया तथा एक भल्लसे उसके सारथिका भी सिर धड़से काट लिया ॥ २१-२२ ॥

ततो दुर्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः ।
अपाक्रामद्धतरथो नातिदूरमरिंदमः ॥ २३ ॥

इस प्रकार रथके नष्ट हो जानेपर शत्रुदमन राजा दुर्योधन एक घोड़ेकी पीठपर सवार हो वहाँसे कुछ दूर हट गया ॥

दृष्ट्वा तु हतविक्रान्तं स्वमनीकं महाबलः ।
तव पुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः ॥ २४ ॥

महाराज ! अपनी सेनाका पराक्रम नष्ट हुआ देख आपका महाबली पुत्र दुर्योधन वहीं चला गया, जहाँ सुबलपुत्र शकुनि खड़ा था ॥ २४ ॥

ततो रथेषु भग्नेषु त्रिसाहस्रा महाद्विपाः ।
पाण्डवान् रथिनः सर्वान् समन्तात् पर्यवारयन्॥ २५ ॥

रथसेनाके भंग हो जानेपर तीन हजार विशालकाय गज-

राजोंने समस्त पाण्डवरथियोंको चारों ओरसे घेर लिया ॥

ते वृताः समरे पञ्च गजानीकेन भारत ।
अशोभन्त महाराज ग्रहा व्याप्ता घनैरिव ॥ २६ ॥

भरतनन्दन ! महाराज ! समराङ्गणमें गजसेनासे घिरे हुए पाँचों पाण्डव मेघोंसे आवृत हुए पाँच ग्रहोंके समान शोभा पाते थे ॥ २६ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज लब्धलक्ष्यो महाभुजः ।
विनिर्ययौ रथेनैव श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २७ ॥

राजेन्द्र ! तब भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन महाबाहु अर्जुन अपने बाणोंका लक्ष्य पाकर रथके द्वारा आगे बढ़े ॥ २७ ॥

तैः समन्तात् परिवृतः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्गजानीकमयोधयत् ॥ २८ ॥

उन्हें चारों ओरसे पर्वताकार हाथियोंने घेर रक्खा था। वे तीखी धारवाले निर्मल नाराचोंद्वारा उस गजसेनाके साथ युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

तत्रैकबाणनिहतानपश्याम महागजान् ।
पतितान् पात्यमानांश्च निर्भिन्नान् सव्यसाचिना॥ २९ ॥

वहाँ हमने देखा कि सव्यसाची अर्जुनके एक ही बाणकी चोट खाकर बड़े-बड़े हाथियोंके शरीर विदीर्ण होकर गिर गये हैं और लगातार गिराये जा रहे हैं ॥ २९ ॥

भीमसेनस्तु तान् दृष्ट्वा नागान् मत्तगजोपमः ।
करेणादाय महतीं गदामभ्यपतद् बली ॥ ३० ॥
अथाप्लुत्य रथात् तूर्णं दण्डपाणिरिवान्तकः ।

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी बलवान् भीमसेन उन गजराजोंको आते देख तुरंत ही रथसे कूदकर हाथमें विशाल गदा लिये दण्डधारी यमराजके समान उनपर टूट पड़े ।३०½।

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथम् ॥ ३१ ॥
वित्रेसुस्तावकाः सैन्याः शकृन्मूत्रे च सुस्रुवुः ।

पाण्डव महारथी भीमसेनको गदा उठाये देख आपके सैनिक भयसे थर्रा उठे और मल-मूत्र करने लगे ॥ ३१½ ॥

आविग्नं च बलं सर्वं गदाहस्ते वृकोदरे ॥ ३२ ॥
गदया भीमसेनेन भिन्नकुम्भान् रजस्वलान् ।
धावमानानपश्याम कुञ्जरान् पर्वतोपमान् ॥ ३३ ॥

भीमसेनके गदा हाथमें लेते ही सारी कौरवसेना उद्विग्न हो उठी। हमने देखा, भीमसेनकी गदासे उन धूलिधूसर पर्वताकार हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये हैं और वे इधर-उधर भाग रहे हैं ॥ ३२-३३ ॥

प्राद्रवन् कुञ्जरास्ते तु भीमसेनगदाहताः ।
पेतुरार्तस्वरं कृत्वा छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३४ ॥

भीमसेनकी गदासे घायल हो वे हाथी भाग चले और आर्तनाद करके पंख कटे हुए पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३४ ॥

प्रभिन्नकुम्भांस्तु बहून् द्रवमाणानितस्ततः ।
पतमानांश्च सम्प्रेक्ष्य वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ ३५ ॥

कुम्भस्थल फट जानेके कारण इधर-उधर भागते और गिरते हुए बहुत-से हाथियोंको देखकर आपके सैनिक संत्रस्त हो उठे ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
गार्ध्रपत्रैः शितैर्बाणैर्निन्युर्वै यमसादनम् ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिर तथा माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव भी अत्यन्त कुपित हो गीधकी पाँखोंसे युक्त पैने बाणोंद्वारा उन हाथियोंको यमलोक भेजने लगे ॥ ३६ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे पराजित्य नराधिपम् ।
अपक्रान्ते तव सुते हयपृष्ठं समाश्रिते ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वा च पाण्डवान् सर्वान् कुञ्जरैः परिवारितान्।
धृष्टद्युम्नो महाराज सहसा समुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥
पुत्रः पाञ्चालराजस्य जिघांसुः कुञ्जरान् ययौ ।

उधर धृष्टद्युम्नने समराङ्गणमें राजा दुर्योधनको पराजित कर दिया था। महाराज ! जब आपका पुत्र घोड़ेकी पीठपर सवार हो वहाँसे भाग गया, तब समस्त पाण्डवोंको हाथियोंसे घिरा हुआ देखकर धृष्टद्युम्नने सहसा उस गजसेनापर धावा किया। पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्न उन हाथियोंको मार डालनेके लिये वहाँसे चल दिये ॥ ३७-३८½ ॥

अदृष्ट्वा तु रथानीके दुर्योधनमरिंदमम् ॥ ३९ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
अपृच्छन् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु दुर्योधनो गतः ॥ ४० ॥

इधर रथसेनामें शत्रुदमन दुर्योधनको न देखकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्माने समस्त क्षत्रियोंसे पूछा—'राजा दुर्योधन कहाँ चले गये ? ॥३९-४०॥

तेऽपश्यमाना राजानं वर्तमाने जनक्षये ।
मन्वाना निहतं तत्र तव पुत्रं महारथाः ॥ ४१ ॥
विवर्णवदना भूत्वा पर्यपृच्छन्त ते सुतम् ।

वर्तमान जनसंहारमें राजाको न देखकर वे महारथी आपके पुत्रको मारा गया मान बैठे और मुँह उदास करके सबसे आपके पुत्रका पता पूछने लगे ॥ ४१½ ॥

आहुः केचिद्धते सूते प्रयातो यत्र सौबलः ॥ ४२ ॥
हित्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम् ।

कुछ लोगोंने कहा—'सारथिके मारे जानेपर पाञ्चालराजकी उस दुःसह सेनाको त्यागकर राजा दुर्योधन वहीं गये हैं, जहाँ शकुनि हैं' ॥ ४२½ ॥

अपरे त्वब्रुवंस्तत्र क्षत्रिया भृशविक्षताः ॥ ४३ ॥
दुर्योधनेन किं कार्यं द्रक्ष्यध्वं यदि जीवति ।
युद्ध्यध्वं सहिताः सर्वे किं वो राजा करिष्यति ॥ ४४ ॥

दूसरे अत्यन्त घायल हुए क्षत्रिय वहाँ इस प्रकार कहने लगे—'अरे ! दुर्योधनसे यहाँ क्या काम है ? यदि वे जीवित होंगे तो तुम सब लोग उन्हें देख ही लोगे। इस समय तो सब लोग एक साथ होकर केवल युद्ध करो। राजा तुम्हारी क्या (सहायता) करेंगे' ॥ ४३-४४ ॥

ते क्षत्रियाः क्षतैर्गात्रैर्हतभूयिष्ठवाहनाः ।

शरैः सम्पीड्यमानास्तु नातिव्यक्तमथाब्रुवन् ॥ ४५ ॥
इदं सर्वं बलं हन्मो येन स्म परिवारिताः ।
एते सर्वे गजान् हत्वा उपयान्ति स्म पाण्डवाः ॥ ४६ ॥

वहाँ जो क्षत्रिय युद्ध कर रहे थे, उनके अधिकांश वाहन नष्ट हो गये थे। शरीर क्षत-विक्षत हो रहे थे। वे बाणोंसे पीड़ित होकर कुछ अस्पष्ट वाणीमें बोले—'हमलोग जिससे घिरे हैं, इस सारी सेनाको मार डालें। ये सारे पाण्डव गज-सेनाका संहार करके हमारे समीप चले आ रहे हैं' ॥ ४५-४६ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषामश्वत्थामा महाबलः ।
भित्त्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम् ॥ ४७ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च प्रययौ यत्र सौबलः ।
रथानीकं परित्यज्य शूराः सुदृढधन्विनः ॥ ४८ ॥

उनकी बात सुनकर महाबली अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—ये सभी दृढ़ धनुर्धर शूरवीर पाञ्चालराजकी उस दुःसह सेनाका व्यूह तोड़कर, रथसेनाका परित्याग करके जहाँ शकुनि था, वहीं जा पहुँचे ॥ ४७-४८ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु धृष्टद्युम्नपुरस्कृताः ।
आययुः पाण्डवा राजन् विनिघ्नन्तः स्म तावकम् ॥ ४९ ॥

राजन्! उन सबके आगे बढ़ जानेपर धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव आपकी सेनाका संहार करते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥

दृष्ट्वा तु तानापततः सम्प्रहृष्टान् महारथान् ।
पराक्रान्तास्ततो वीरा निराशा जीविते तदा ॥ ५० ॥

हर्ष और उत्साहमें भरे हुए उन महारथियोंको आक्रमण करते देख आपके पराक्रमी वीर उस समय जीवनसे निराश हो गये ॥ ५० ॥

विवर्णमुखभूयिष्ठमभवत् तावकं बलम् ।
परिक्षीणायुधान् दृष्ट्वा तानहं परिवारितान् ॥ ५१ ॥
राजन् बलेन द्व्यङ्गेन त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
आत्मना पञ्चमोऽयुद्ध्यं पाञ्चालस्य बलेन ह ॥ ५२ ॥

आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंका मुख उदास हो गया। उन सबके आयुध नष्ट हो गये थे और वे चारों ओरसे घिर गये थे। राजन्! उन सबकी वैसी अवस्था देख मैं जीवनका मोह छोड़कर अन्य चार महारथियोंको साथ ले हाथी और घोड़े दो अङ्गोंवाली सेनासे मिलकर धृष्टद्युम्नकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा ॥ ५१-५२ ॥

तस्मिन् देशे व्यवस्थाय यत्र शारद्वतः स्थितः ।
सम्प्रद्रुता वयं पञ्च किरीटिशरपीडिताः ॥ ५३ ॥
धृष्टद्युम्नं महारौद्रं तत्र नोऽभूद् रणो महान् ।
जितास्तेन वयं सर्वे व्यपयाम रणात् ततः ॥ ५४ ॥

मैं उसी स्थानमें स्थित होकर युद्ध कर रहा था, जहाँ कृपाचार्य मौजूद थे; परंतु किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर हम पाँचों वहाँसे भागकर महाभयंकर धृष्टद्युम्नके पास जा पहुँचे। वहाँ उनके साथ हमलोगोंका बड़ा भारी युद्ध हुआ। उन्होंने हम सबको परास्त कर दिया। तब हम वहाँसे भी भाग निकले ॥ ५३-५४ ॥

अथापश्यं सात्यकिं तमुपायान्तं महारथम् ।
रथैश्चतुःशतैर्वीरो मामभ्यद्रवदाहवे ॥ ५५ ॥

इतनेहीमें मैंने महारथी सात्यकिको अपने पास आते देखा। वीर सात्यकिने युद्धस्थलमें चार सौ रथियोंके साथ मुझपर धावा किया ॥ ५५ ॥

धृष्टद्युम्नादहं मुक्तः कथंचिच्छ्रान्तवाहनात् ।
पतितो माधवानीकं दुष्कृती नरकं यथा ॥ ५६ ॥

थके हुए वाहनोंवाले धृष्टद्युम्नसे किसी प्रकार छूटा तो मैं सात्यकिकी सेनामें आ फँसा; जैसे कोई पापी नरकमें गिर गया हो ॥ ५६ ॥

तत्र युद्धमभूद् घोरं मुहूर्तमतिदारुणम् ।
सात्यकिस्तु महाबाहुर्मम हत्वा परिच्छदम् ॥ ५७ ॥
जीवग्राहमगृह्णान्मां मूर्छितं पतितं भुवि ।

वहाँ दो घड़ीतक बड़ा भयंकर एवं घोर युद्ध हुआ। महाबाहु सात्यकिने मेरी सारी युद्धसामग्री नष्ट कर दी और जब मैं मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब मुझे जीवित ही पकड़ लिया ॥ ५७½ ॥

ततो मुहूर्तादिव तद् गजानीकमवध्यत ॥ ५८ ॥
गदया भीमसेनेन नाराचैरर्जुनेन च ।

तदनन्तर दो ही घड़ीमें भीमसेनने गदासे और अर्जुनने नाराचोंसे उस गजसेनाका संहार कर डाला ॥ ५८½ ॥

अभिपिष्टैर्महानागैः समन्तात् पर्वतोपमैः ॥ ५९ ॥
नातिप्रसिद्धेव गतिः पाण्डवानामजायत ।

चारों ओर पर्वताकार विशालकाय हाथी पड़े थे, जो भीमसेन और अर्जुनके आघातोंसे पिस गये थे। उनके कारण पाण्डवोंका आगे बढ़ना अत्यन्त दुष्कर हो गया था ॥ ५९½ ॥

रथमार्गं ततश्चक्रे भीमसेनो महाबलः ॥ ६० ॥
पाण्डवानां महाराज व्यपाकर्षन्महागजान् ।

महाराज! तब महाबली भीमसेनने बड़े-बड़े हाथियोंको खींचकर हटाया और पाण्डवोंके लिये रथ जानेका मार्ग बनाया ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ६१ ॥
अपश्यन्तो रथानीके दुर्योधनमरिंदमम् ।
राजानं मृगयामासुस्तव पुत्रं महारथम् ॥ ६२ ॥

इधर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये रथसेनामें आपके महारथी पुत्र शत्रुदमन राजा दुर्योधनको न देखकर उसकी खोज करने लगे ॥ ६१-६२ ॥

परित्यज्य च पाञ्चाल्यं प्रयाता यत्र सौबलः ।
राज्ञोऽदर्शनसंविग्ना वर्तमाने जनक्षये ॥ ६३ ॥

वे धृष्टद्युम्नका सामना करना छोड़कर जहाँ शकुनि था, वहाँ चले गये। वर्तमान नरसंहारमें राजा दुर्योधनको न देखनेके कारण वे उद्विग्न हो उठे थे ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि दुर्योधनापयाने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें दुर्योधनका पलायनविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका और बहुत-सी चतुरङ्गिणी सेनाका वध

संजय उवाच

गजानीके हते तस्मिन् पाण्डुपुत्रेण भारत।
वध्यमाने बले चैव भीमसेनेन संयुगे॥ १॥
चरन्तं च तथा दृष्ट्वा भीमसेनमरिंदमम्।
दण्डहस्तं यथा क्रुद्धमन्तकं प्राणहारिणम्॥ २॥
समेत्य समरे राजन् हतशेषाः सुतास्तव।
अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव॥ ३॥
सोदर्याः सहिता भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन्।

संजय कहते हैं—राजन्! भरतनन्दन! पाण्डुपुत्र भीमसेनके द्वारा आपकी गजसेना तथा दूसरी सेनाका भी संहार हो जानेपर जब आपका पुत्र कुरुवंशी दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया, तब मरनेसे बचे हुए आपके सभी पुत्र एक साथ हो गये और समराङ्गणमें दण्डधारी, प्राणान्तकारी यमराजके समान कुपित हुए शत्रुदमन भीमसेनको विचरते देख सब मिलकर उनपर टूट पड़े॥ १—३½॥

दुर्मर्षणः श्रुतान्तश्च जैत्रो भूरिबलो रविः॥ ४॥
जयत्सेनः सुजातश्च तथा दुर्विषहोऽरिहा।
दुर्विमोचननामा च दुष्प्रधर्षस्तथैव च॥ ५॥
श्रुतर्वा च महाबाहुः सर्वे युद्धविशारदाः।
इत्येते सहिता भूत्वा तव पुत्राः समन्ततः॥ ६॥
भीमसेनमभिद्रुत्य रुरुधुः सर्वतोदिशम्।

दुर्मर्षण, श्रुतान्त (चित्राङ्ग), जैत्र, भूरिबल (भीमबल), रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह (दुर्विगाह), शत्रुनाशक दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष (दुष्प्रधर्षण) और महाबाहु श्रुतर्वा—ये सभी आपके युद्धविशारद पुत्र एक साथ हो सब ओरसे भीमसेनपर धावा करके उनकी सम्पूर्ण दिशाओंको रोककर खड़े हो गये॥ ४—६½॥

ततो भीमो महाराज स्वरथं पुनरास्थितः॥ ७॥
मुमोच निशितान् बाणान् पुत्राणां तव मर्मसु।

महाराज! तब भीम पुनः अपने रथपर आरूढ़ हो आपके पुत्रोंके मर्मस्थानोंमें तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे॥

ते कीर्यमाणा भीमेन पुत्रास्तव महारणे॥ ८॥
भीमसेनमपाकर्षन् प्रवणादिव कुञ्जरम्।

उस महासमरमें जब भीमसेन आपके पुत्रोंपर बाणोंका प्रहार करने लगे, तब वे भीमसेनको उसी प्रकार दूरतक खींच ले गये, जैसे शिकारी नीचे स्थानसे हाथीको खींचते हैं॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः शिरो दुर्मर्षणस्य ह॥ ९॥
क्षुरप्रेण प्रमथ्याशु पातयामास भूतले।

तब रणभूमिमें क्रुद्ध हुए भीमसेनने एक क्षुरप्रसे दुर्मर्षण-का मस्तक शीघ्रतापूर्वक पृथ्वीपर काट गिराया॥ ९½॥

ततोऽपरेण भल्लेन सर्वावरणभेदिना॥ १०॥
श्रुतान्तमवधीद् भीमस्तव पुत्रं महारथः।

तत्पश्चात् समस्त आवरणोंका भेदन करनेवाले दूसरे भल्लके द्वारा महारथी भीमसेनने आपके पुत्र श्रुतान्तका अन्त कर दिया॥ १०½॥

जयत्सेनं ततो विद्ध्वा नाराचेन हसन्निव॥ ११॥
पातयामास कौरव्यं रथोपस्थादरिंदमः।

फिर हँसते-हँसते उन शत्रुदमन वीरने कुरुवंशी जयत्सेन-को नाराचसे घायल करके उसे रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया॥ ११½॥

स पपात रथाद् राजन् भूमौ तूर्णं ममार च॥ १२॥
श्रुतर्वा तु ततो भीमं क्रुद्धो विव्याध मारिष।
शतेन गृध्रवाजानां शराणां नतपर्वणाम्॥ १३॥

राजन्! जयत्सेन रथसे पृथ्वीपर गिरा और तुरंत मर गया। मान्यवर नरेश! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए श्रुतर्वाने गीधकी पाँख और झुकी हुई गाँठवाले सौ बाणोंसे भीमसेन-को बींध डाला॥ १२-१३॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमो जैत्रं भूरिबलं रविम्।
त्रीनेतांस्त्रिभिरानर्च्छद् विषाग्निप्रतिमैः शरैः॥ १४॥

यह देख भीमसेन क्रोधसे जल उठे और उन्होंने रण-भूमिमें विष और अग्निके समान भयंकर तीन बाणोंद्वारा जैत्र, भूरिबल और रवि—इन तीनोंपर प्रहार किया॥ १४॥

ते हता न्यपतन् भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः।
वसन्ते पुष्पशबला निकृत्ता इव किंशुकाः॥ १५॥

उन बाणोंद्वारा मारे गये वे तीनों महारथी वसन्त ऋतुमें कटे हुए पुष्पयुक्त पलाशके वृक्षोंकी भाँति रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १५॥

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन च परंतपः।
दुर्विमोचनमाहत्य प्रेषयामास मृत्यवे॥ १६॥

इसके बाद शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमसेनने दूसरे तीखे भल्लसे दुर्विमोचनको मारकर मृत्युके लोकमें भेज दिया॥

स हतः प्रापतद् भूमौ स्वरथाद् रथिनां वरः।
गिरेस्तु कूटजो भग्नो मारुतेनेव पादपः॥ १७॥

रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्विमोचन उस भल्लकी चोट खाकर अपने रथसे भूमिपर गिर पड़ा, मानो पर्वतके शिखरपर उत्पन्न हुआ वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर धराशायी हो गया हो॥

दुष्प्रधर्षं ततश्चैव सुजातं च सुतं तव।
एकैकं न्यहनत् संख्ये द्वाभ्यां द्वाभ्यां चमूमुखे॥ १८॥

तदनन्तर भीमसेनने आपके पुत्र दुष्प्रधर्ष और सुजातको रणक्षेत्रमें सेनाके मुहानेपर दो-दो बाणोंसे मार गिराया॥ १८॥

तौ शिलीमुखविद्धाङ्गौ पेततू रथसत्तमौ।
ततः पतन्तं समरे अभिवीक्ष्य सुतं तव॥ १९॥
भल्लेन पातयामास भीमो दुर्विषहं रणे।
स पपात हतो वाहात् पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥ २०॥

वे दोनों महारथी वीर बाणोंसे सारा शरीर बिंध जानेके कारण रणभूमिमें गिर पड़े। तत्पश्चात् आपके पुत्र दुर्विषहको संग्राममें चढ़ाई करते देख भीमसेनने एक भल्लसे मार गिराया। उस भल्लकी चोट खाकर दुर्विषह सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते रथसे नीचे जा गिरा ॥ १९-२० ॥

दृष्ट्वा तु निहतान् भ्रातॄन् बहूनेकेन संयुगे।
अमर्षवशमापन्नः श्रुतर्वा भीममभ्ययात् ॥ २१ ॥

युद्धस्थलमें एकमात्र भीमके द्वारा अपने बहुत-से भाइयोंको मारा गया देख श्रुतर्वा अमर्षके वशीभूत हो भीमसेनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ २१ ॥

विक्षिपन् सुमहच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्।
विसृजन् सायकांश्चैव विषाग्निप्रतिमान् बहून् ॥ २२ ॥

वह अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको खींचकर उसके द्वारा विष और अग्निके समान भयंकर बहुतेरे बाणोंकी वर्षा कर रहा था ॥ २२ ॥

स तु राजन् धनुश्छित्त्वा पाण्डवस्य महामृधे।
अथैनं छिन्नधन्वानं विंशत्या समवाकिरत् ॥ २३ ॥

राजन्! उसने उस महासमरमें पाण्डुपुत्रके धनुषको काटकर कटे हुए धनुषवाले भीमसेनको बीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय भीमसेनो महाबलः।
अवाकिरत् तव सुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

तब महाबली भीमसेन दूसरा धनुष लेकर आपके पुत्रपर बाणोंकी वर्षा करने लगे और बोले—'खड़ा रह, खड़ा रह'॥

महदासीत् तयोर्युद्धं चित्ररूपं भयानकम्।
यादृशं समरे पूर्वं जम्भवासवयोर्युधि ॥ २५ ॥

उस समय उन दोनोंमें विचित्र, भयानक और महान् युद्ध होने लगा। पूर्वकालमें रणक्षेत्रमें जम्भ और इन्द्रका जैसा युद्ध हुआ था, वैसा ही उन दोनोंका भी हुआ ॥२५॥

तयोस्तत्र शितैर्मुक्तैर्यमदण्डनिभैः शरैः।
समाच्छन्ना धरा सर्वा खं दिशो विदिशस्तथा॥ २६ ॥

उन दोनोंके छोड़े हुए यमदण्डके समान तीखे बाणोंसे सारी पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ और विदिशाएँ आच्छादित हो गयीं ॥ २६ ॥

ततः श्रुतर्वा संक्रुद्धो धनुरादाय सायकैः।
भीमसेनं रणे राजन् बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २७ ॥

राजन्! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए श्रुतर्वाने धनुष लेकर अपने बाणोंसे रणभूमिमें भीमसेनकी दोनों भुजाओं और छातीमें प्रहार किया ॥ २७ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज तव पुत्रेण धन्विना।
भीमः संचुक्षुभे क्रुद्धः पर्वणीव महोदधिः ॥ २८ ॥

महाराज! आपके धनुर्धर पुत्रद्वारा अत्यन्त घायल कर दिये जानेपर भीमसेनका क्रोध भड़क उठा और वे पूर्णिमाके दिन उमड़ते हुए महासागरके समान बहुत ही क्षुब्ध हो उठे॥

ततो भीमो रुषाविष्टः पुत्रस्य तव मारिष।
सारथिं चतुरश्चाश्वाञ्शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २९ ॥

आर्य! फिर रोषसे आविष्ट हुए भीमसेनने अपने बाणोंद्वारा आपके पुत्रके सारथि और चारों घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ २९ ॥

विरथं तं समालक्ष्य विशिखैर्लोमवाहिभिः।
अवाकिरदमेयात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ ३० ॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न भीमसेन श्रुतर्वाको रथहीन हुआ देख अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उसके ऊपर पक्षियोंके पंखसे युक्त होकर उड़नेवाले बाणोंकी वर्षा करने लगे॥

श्रुतर्वा विरथो राजन्नाददे खड्गचर्मणी।
अथास्याददतः खड्गं शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ ३१ ॥
क्षुरप्रेण शिरः कायात् पातयामास पाण्डवः।

राजन्! रथहीन हुए श्रुतर्वाने अपने हाथोंमें ढाल और तलवार ले ली। वह सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढाल तथा अपनी प्रभासे चमकती हुई तलवार ले ही रहा था कि पाण्डुपुत्र भीमसेनने एक क्षुरप्रद्वारा उसके मस्तकको धड़से काट गिराया ॥ ३१½ ॥

छिन्नोत्तमाङ्गस्य ततः क्षुरप्रेण महात्मना ॥ ३२ ॥
पपात कायः स रथाद् वसुधामनुनादयन्।

महामनस्वी भीमसेनके क्षुरप्रसे मस्तक कट जानेपर उसका धड़ वसुधाको प्रतिध्वनित करता हुआ रथसे नीचे गिर पड़ा ॥ ३२½ ॥

तस्मिन् निपतिते वीरे तावका भयमोहिताः ॥ ३३ ॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीमसेनं युयुत्सवः।

उस वीरके गिरते ही आपके सैनिक भयसे व्याकुल होनेपर भी संग्राममें जूझनेकी इच्छासे भीमसेनकी ओर दौड़े ॥

तानापतत एवाशु हतशेषाद् बलार्णवात् ॥ ३४ ॥
दंशितान् प्रतिजग्राह भीमसेनः प्रतापवान्।

मरनेसे बचे हुए सैन्य-समूहसे निकलकर शीघ्रतापूर्वक अपने ऊपर आक्रमण करते हुए उन कवचधारी योद्धाओंको प्रतापी भीमसेनने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३४½ ॥

ते तु तं वै समासाद्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ ३५ ॥
ततस्तु संवृतो भीमस्तावकान् निशितैः शरैः।
पीडयामास तान् सर्वान् सहस्राक्ष इवासुरान् ॥ ३६ ॥

वे योद्धा भीमसेनके पास पहुँचकर उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। तब जैसे इन्द्र असुरोंको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार घिरे हुए भीमसेनने पैने बाणोंद्वारा आपके उन समस्त सैनिकोंको पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ ३५-३६ ॥

ततः पञ्चशतान् हत्वा सवरूथान् महारथान्।
जघान कुञ्जरानीकं पुनः सप्तशतं युधि ॥ ३७ ॥
हत्वा शतसहस्राणि पत्तीनां परमेषुभिः।
वाजिनां च शतान्यष्टौ पाण्डवः स विराजते ॥ ३८ ॥

तदनन्तर भीमसेनने आवरणोंसहित पाँच सौ विशाल रथोंका संहार करके युद्धमें सात सौ हाथियोंकी सेनाको पुनः मार गिराया। फिर उत्तम बाणोंद्वारा एक लाख पैदलों और सवारों-



श्रीकृष्ण दुर्योधनकी ओर संकेत करते हुए उसे मारनेके लिये अर्जुनको प्रेरित कर रहे हैं

सहित आठ सौ घोड़ोंका वध करके पाण्डव भीमसेन विजयश्री-से सुशोभित होने लगे ॥ ३७-३८ ॥

भीमसेनस्तु कौन्तेयो हत्वा युद्धे सुतांस्तव ।
मेने कृतार्थमात्मानं सफलं जन्म च प्रभो ॥ ३९ ॥

प्रभो ! इस प्रकार कुन्तीपुत्र भीमसेनने युद्धमें आपके पुत्रोंका विनाश करके अपने आपको कृतार्थ और जन्मको सफल हुआ समझा ॥ ३९ ॥

तं तथा युद्ध्यमानं च विनिघ्नन्तं च तावकान् ।
ईक्षितुं नोत्सहन्ते स्म तव सैन्या नराधिप ॥ ४० ॥

नरेश्वर ! इस तरह युद्ध और आपके पुत्रोंका वध करते हुए भीमसेनको आपके सैनिक देखनेका भी साहस नहीं कर पाते थे ॥ ४० ॥

विद्राव्य च कुरून् सर्वांस्तांश्च हत्वा पदानुगान् ।
दोर्भ्यां शब्दं ततश्चक्रे त्रासयानो महाद्विपान् ॥ ४१ ॥

समस्त कौरवोंको भगाकर और उनके अनुगामी सैनिकों-का संहार करके भीमसेनने बड़े-बड़े हाथियोंको डराते हुए अपनी दोनों भुजाओंद्वारा ताल ठोंकनेका शब्द किया ॥४१॥

हतभूयिष्ठयोधा तु तव सेना विशाम्पते ।
किंचिच्छेषा महाराज कृपणं समपद्यत ॥ ४२ ॥

प्रजानाथ ! महाराज ! आपकी सेनाके अधिकांश योद्धा मारे गये और बहुत थोड़े सैनिक शेष रह गये; अतः वह सेना अत्यन्त दीन हो गयी थी ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकादशधार्तराष्ट्रवधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका वधविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा सत्यकर्मा, सत्येषु तथा पैंतालीस पुत्रों और सेनासहित सुशर्माका वध तथा भीमके द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शनका अन्त

संजय उवाच

दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः ।
हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस समय आपके पुत्र दुर्योधन और सुदर्शन ये—दो ही बच गये थे। दोनों ही घुड़सवारोंके बीचमें खड़े थे ॥ १ ॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम् ।
उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ २ ॥

तदनन्तर दुर्योधनको घुड़सवारोंके बीचमें खड़ा देख देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कुन्तीकुमार अर्जुनसे इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः ।
गृहीत्वा संजयं चासौ निवृत्तः शिनिपुङ्गवः ॥ ३ ॥
परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत ।
योधयित्वा रणे पापान् धार्तराष्ट्रान् सहानुगान्॥ ४ ॥

'भरतनन्दन ! शत्रुओंके अधिकांश योद्धा मारे गये और अपने कुटुम्बी जनोंकी रक्षा हुई । उधर देखो, वे शिनिप्रवर सात्यकि संजयको कैद करके उसे साथ लिये लौटे आ रहे हैं । रणभूमिमें सेवकोंसहित धृतराष्ट्रके पापी पुत्रोंसे युद्ध करके दोनों भाई नकुल और सहदेव भी बहुत थक गये हैं ॥३-४॥

दुर्योधनमभित्यज्य त्रय एते व्यवस्थिताः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ५ ॥

'उधर कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी अश्वत्थामा—ये तीनों युद्धभूमिमें दुर्योधनको छोड़कर कहीं अन्यत्र स्थित हैं॥

असौ तिष्ठति पाञ्चाल्यः श्रिया परमया युतः ।
दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥ ६ ॥

'इधर, सम्पूर्ण प्रभद्रकोंसहित दुर्योधनकी सेनाका संहार करके पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी सुन्दर कान्तिसे सुशोभित हो रहे हैं ॥ ६ ॥

असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः ।
छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

'पार्थ ! वह रहा दुर्योधन, जो छत्र धारण किये घुड़-सवारोंके बीचमें खड़ा है और बारंबार इधर ही देख रहा है ॥

प्रतिव्यूह्य बलं सर्वं रणमध्ये व्यवस्थितः ।
एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ८ ॥

'वह अपनी सारी सेनाका व्यूह बनाकर युद्धभूमिमें खड़ा है । तुम इसे पैने बाणोंसे मारकर कृतकृत्य हो जाओगे ॥८॥

गजानीकं हतं दृष्ट्वा त्वां च प्राप्तमरिंदम ।
यावन्न विद्रवन्त्येते तावज्जहि सुयोधनम् ॥ ९ ॥

'शत्रुदमन ! गजसेनाका वध और तुम्हारा आगमन हुआ देख ये कौरव-योद्धा जबतक भाग नहीं जाते तभीतक दुर्योधनको मार डालो ॥ ९ ॥

यातु कश्चित्तु पाञ्चाल्यं क्षिप्रमागम्यतामिति ।
परिश्रान्तबलस्तात नैष मुच्येत किल्बिषी ॥ १० ॥

'अपने दलका कोई पुरुष पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नके पास जाय और कहे कि 'आप शीघ्रतापूर्वक चलें ।' तात ! यह पापात्मा दुर्योधन अब बच नहीं सकता, क्योंकि इसकी सारी सेना थक गयी है ॥ १० ॥

हत्वा तव बलं सर्वं संग्रामे धृतराष्ट्रजः ।
जितान् पाण्डुसुतान् मत्वा रूपं धारयते महत्॥ ११ ॥

'दुर्योधन समझता है कि 'संग्रामभूमिमें तुम्हारी सारी सेनाका संहार करके पाण्डवोंको पराजित कर दूँगा ।' इसी-लिये वह अत्यन्त उग्र रूप धारण कर रहा है ॥ ११ ॥

निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पाण्डवैः ।
ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृपः ॥ १२ ॥

'परंतु अपनी सेनाको पाण्डवोंद्वारा पीड़ित एवं मारी गयी देख राजा दुर्योधन निश्चय ही अपने विनाशके लिये ही युद्धस्थलमें पदार्पण करेगा' ॥ १२ ॥

एवमुक्तः फाल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन माधव ॥ १३ ॥
यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यतः ।

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन उनसे इस प्रकार बोले—'माधव ! धृतराष्ट्रके प्रायः सभी पुत्र भीमसेनके हाथसे मारे गये हैं। श्रीकृष्ण ! ये जो दो पुत्र खड़े हैं, इनका भी आज अन्त हो जायगा ॥ १३½ ॥

हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्तनो हतः ॥ १४ ॥
मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः ।

'श्रीकृष्ण ! भीष्म मारे जा चुके, द्रोणका भी अन्त हो गया, वैकर्तन कर्ण भी मार डाला गया, मद्रराज शल्यका भी वध हो गया और जयद्रथ भी यमलोक पहुँच गया ॥१४½॥

हयाः पञ्चशताः शिष्टाः शकुनेः सौबलस्य च ॥ १५ ॥
रथानां तु शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन ।
दन्तिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्राः पदातयः ॥ १६ ॥

'सुबलपुत्र शकुनिके पास पाँच सौ घुड़सवारोंकी सेना अभी शेष है। जनार्दन ! उसके पास दो सौ रथ, सौसे कुछ अधिक हाथी और तीन हजार पैदल सैनिक भी शेष रह गये हैं ॥ १५-१६ ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ।
उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १७ ॥
एतद् बलमभूच्छेषं धार्तराष्ट्रस्य माधव ।

'माधव ! दुर्योधनकी सेनामें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रिगर्तराज सुशर्मा, उलूक, शकुनि और सात्वतवंशी कृतवर्मा— ये थोड़े-से ही वीर सैनिक शेष रह गये हैं ॥ १७½ ॥

मोक्षो न नूनं कालात् तु विद्यते भुवि कस्यचित्॥ १८ ॥
तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम् ।
अद्याह्ना हि महाराजो हतामित्रो भविष्यति ॥ १९ ॥

'निश्चय ही इस पृथ्वीपर किसीको भी कालसे छुटकारा नहीं मिलता, तभी तो इस प्रकार अपनी सेनाका संहार होनेपर भी दुर्योधन युद्धके लिये खड़ा है, उसे देखिये। आजके दिन महाराज युधिष्ठिर शत्रुहीन हो जायँगे ॥ १८-१९ ॥

न हि मे मोक्ष्यते कश्चित् परेषामिह चिन्तये ।
ये त्वद्य समरं कृष्ण न हास्यन्ति मदोत्कटाः ॥ २० ॥
तान् वै सर्वान् हनिष्यामि यद्यपि स्युर्न मानुषाः ।

'श्रीकृष्ण ! मैं सोचता हूँ कि आज शत्रुदलका कोई भी योद्धा यहाँ मेरे हाथसे बचकर नहीं जा सकेगा । जो मदोन्मत्त वीर आज युद्ध छोड़कर भाग नहीं जायँगे, उन सबको, वे मनुष्य न होकर देवता या दैत्य ही क्यों न हों, मैं मार डालूँगा ॥ २०½ ॥

अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञः प्रजागरम् ॥ २१ ॥
अपनेष्यामि गान्धारं घातयित्वा शितैः शरैः ।

'आज मैं अत्यन्त कुपित हो गान्धारराज शकुनिको पैने बाणोंसे मरवाकर राजा युधिष्ठिरके दीर्घकालीन जागरणरूपी रोगको दूर कर दूँगा ॥ २१½ ॥

निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः ॥ २२ ॥
सभायामहरद् द्यूते पुनस्तान्याहराम्यहम् ।

'दुराचारी सुबलपुत्र शकुनिने द्यूतसभामें छल करके जिन रत्नोंको हर लिया था, उन सबको मैं वापस ले लूँगा ॥

अद्य ता अपि रोत्स्यन्ति सर्वा नागपुरे स्त्रियः॥ २३ ॥
श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान् युधि ।

'आज हस्तिनापुरकी वे सारी स्त्रियाँ भी युद्धमें पाण्डवोंके हाथसे अपने पतियों और पुत्रोंको मारा गया सुनकर फूट-फूटकर रोयेंगी ॥ २३½ ॥

समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति ॥ २४ ॥
अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च मोक्ष्यति ।

'श्रीकृष्ण ! आज हमलोगोंका सारा कार्य समाप्त हो जायगा। आज दुर्योधन अपनी उज्ज्वल राजलक्ष्मी और प्राणोंको भी खो बैठेगा ॥ २४½ ॥

नापयाति भयात् कृष्ण संग्रामाद् यदि चेन्मम॥ २५ ॥
निहतं विद्धि वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रं सुबालिशम् ।

'वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! यदि वह मेरे भयसे युद्धसे भाग न जाय, तो मेरेद्वारा उस मूढ़ दुर्योधनको आप मारा गया ही समझें ॥ २५½ ॥

मम ह्येतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिंदम ॥ २६ ॥
सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम् ।

'शत्रुदमन ! यह घुड़सवारोंकी सेना मेरे गाण्डीव धनुष-की टङ्कारको नहीं सह सकेगी। आप घोड़े बढ़ाइये, मैं अभी इन सबको मारे डालता हूँ' ॥ २६½ ॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः पाण्डवेन यशस्विना ॥ २७ ॥
अचोदयद्धयान् राजन् दुर्योधनबलं प्रति ।

राजन् ! यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके ऐसा कहनेपर दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने दुर्योधनकी सेनाकी ओर घोड़े बढ़ा दिये ॥ २७½ ॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः ॥ २८ ॥
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष ।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनजिघांसया ॥ २९ ॥

मान्यवर ! उस सेनाको देखकर तीन महारथी भीमसेन, अर्जुन और सहदेव युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित हो दुर्योधनके वधकी इच्छासे सिंहनाद करते हुए आगे बढ़े ॥ २८-२९ ॥

तान् प्रेक्ष्य सहितान् सर्वाञ्जवेनोद्यतकार्मुकान् ।
सौबलोऽभ्यद्रवद् युद्धे पाण्डवानाततायिनः ॥ ३० ॥

उन सबको बड़े वेगसे धनुष उठाये एक साथ आक्रमण करते देख सुबलपुत्र शकुनि रणभूमिमें आततायी पाण्डवोंकी ओर दौड़ा ॥ ३० ॥

सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं समभ्ययात् ।
सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना ॥ ३१ ॥

आपका पुत्र सुदर्शन भीमका सामना करने लगा। सुशर्मा और शकुनिने किरीटधारी अर्जुनके साथ युद्ध छेड़ दिया॥

सहदेवं तव सुतो हयपृष्ठगतोऽभ्ययात्।
ततो हि यत्नतः क्षिप्रं तव पुत्रो जनाधिप ॥ ३२ ॥
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम्।

नरेश्वर ! घोड़ेकी पीठपर बैठा हुआ आपका पुत्र दुर्योधन सहदेवके सामने आया। उसने बड़े यत्नसे सहदेवके मस्तकपर शीघ्रतापूर्वक प्रासका प्रहार किया ॥ ३२½ ॥

सोपाविशद् रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ॥ ३३ ॥
रुधिराप्लुतसर्वाङ्ग आशीविष इव श्वसन्।

आपके पुत्रद्वारा ताड़ित होकर सहदेव फुफकारते हुए विषधर सर्पके समान लंबी साँस खींचते हुए रथके पिछले भागमें बैठ गये। उनका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया। ३३½।

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां सहदेवो विशाम्पते ॥ ३४ ॥
दुर्योधनं शरैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः समवाकिरत्।

प्रजानाथ ! थोड़ी देरमें सचेत होनेपर क्रोधमें भरे हुए सहदेव दुर्योधनपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३४½ ॥

पार्थोऽपि युधि विक्रम्य कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ३५ ॥
शूराणामश्वपृष्ठेभ्यः शिरांसि निचकर्त ह।

कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी युद्धमें पराक्रम करके घोड़ोंकी पीठोंसे शूरवीरोंके मस्तक काट गिराये ॥ ३५½ ॥

तदनीकं तदा पार्थो व्यधमद् बहुभिः शरैः ॥ ३६ ॥
पातयित्वा हयान् सर्वांस्त्रिगर्तानां रथान् ययौ।

पार्थने अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घुड़सवारोंकी उस सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला तथा समस्त घोड़ोंको धराशायी करके त्रिगर्तदेशीय रथियोंपर चढ़ाई कर दी ॥ ३६½ ॥

ततस्ते सहिता भूत्वा त्रिगर्तानां महारथाः ॥ ३७ ॥
अर्जुनं वासुदेवं च शरवर्षैरवाकिरन्।

तब वे त्रिगर्तदेशीय महारथी एक साथ होकर अर्जुन और श्रीकृष्णको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगे॥

सत्यकर्माणमाक्षिप्य क्षुरप्रेण महायशाः ॥ ३८ ॥
ततोऽस्य स्यन्दनस्येषां चिच्छिदे पाण्डुनन्दनः।
शिलाशितेन च विभो क्षुरप्रेण महायशाः ॥ ३९ ॥
शिरश्चिच्छेद सहसा तप्तकुण्डलभूषणम्।

प्रभो ! उस समय महायशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुनने क्षुरप्रद्वारा सत्यकर्मापर प्रहार करके उसके रथकी ईषा (हरसा) काट डाली। तत्पश्चात् उन महायशस्वी वीरने शिलापर तेज किये हुए क्षुरप्रद्वारा उसके तपाये हुए सुवर्णके कुण्डलोंसे विभूषित मस्तकको सहसा काट लिया ॥३८-३९½॥

सत्येषुमथ चादत्त योधानां मिषतां ततः ॥ ४० ॥
यथा सिंहो वने राजन् मृगं परिबुभुक्षितः।

राजन् ! जैसे वनमें भूखा सिंह किसी मृगको दबोच लेता है, उसी प्रकार अर्जुनने समस्त योद्धाओंके देखते-देखते सत्येषुके भी प्राण हर लिये ॥ ४०½ ॥

तं निहत्य ततः पार्थः सुशर्माणं त्रिभिः शरैः ॥ ४१ ॥
विद्ध्वा तानहनत् सर्वान् रथान् रुक्मविभूषितान्।

सत्येषुका वध करके अर्जुनने सुशर्माको तीन बाणोंसे घायल कर दिया और उन समस्त स्वर्णभूषित रथोंका विध्वंस कर डाला ॥ ४१½ ॥

ततः प्रायात् त्वरन् पार्थो दीर्घकालं सुसंवृतम्॥ ४२ ॥
मुञ्चन् क्रोधविषं तीक्ष्णं प्रस्थलाधिपतिं प्रति।

तत्पश्चात् पार्थ अपने दीर्घकालसे संचित किये हुए तीखे क्रोधरूपी विषको प्रस्थलेश्वर सुशर्मापर छोड़नेके लिये तीव्र गतिसे आगे बढ़े ॥ ४२½ ॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतेन भरतर्षभ ॥ ४३ ॥
पूरयित्वा ततो वाहान् प्राहरत् तस्य धन्विनः।

भरतश्रेष्ठ ! अर्जुनने सौ बाणोंद्वारा उसे आच्छादित करके उस धनुर्धर वीरके घोड़ोंपर घातक प्रहार किया ।४३½।

ततः शरं समादाय यमदण्डोपमं तदा ॥ ४४ ॥
सुशर्माणं समुद्दिश्य चिक्षेपाशु हसन्निव।

इसके बाद यमदण्डके समान भयंकर बाण हाथमें लेकर सुशर्माको लक्ष्य करके हँसते हुए-से शीघ्र ही छोड़ दिया॥

स शरः प्रेषितस्तेन क्रोधदीप्तेन धन्विना ॥ ४५ ॥
सुशर्माणं समासाद्य बिभेद हृदयं रणे।

क्रोधसे तमतमाये हुए धनुर्धर अर्जुनके द्वारा चलाये गये उस बाणने सुशर्मापर चोट करके उसकी छाती छेद डाली॥

स गतासुर्महाराज पपात धरणीतले ॥ ४६ ॥
नन्दयन् पाण्डवान् सर्वान् व्यथयंश्चापि तावकान्।

महाराज ! सुशर्मा आपके पुत्रोंको व्यथित और समस्त पाण्डवोंको आनन्दित करता हुआ प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४६½ ॥

सुशर्माणं रणे हत्वा पुत्रानस्य महारथान् ॥ ४७ ॥
सप्त चाष्टौ च त्रिंशच्च सायकैरनयत् क्षयम्।

रणभूमिमें सुशर्माका वध करके अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा उसके पैंतालीस महारथी पुत्रोंको भी यमलोक पहुँचा दिया॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सर्वान् हत्वा पदानुगान्॥ ४८ ॥
अभ्यगाद् भारतीं सेनां हतशेषां महारथः।

तदनन्तर पैने बाणोंद्वारा उसके सारे सेवकोंका संहार करके महारथी अर्जुनने मरनेसे बची हुई कौरवी सेनापर आक्रमण किया॥

भीमस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रं तव जनाधिप ॥ ४९ ॥
सुदर्शनमदृश्यं तं शरैश्चक्रे हसन्निव।
ततोऽस्य प्रहसन् क्रुद्धः शिरः कायादपाहरत् ॥ ५० ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतः प्रापतद् भुवि।

जनेश्वर ! दूसरी ओर कुपित हुए भीमसेनने हँसते-हँसते बाणोंकी वर्षा करके सुदर्शनको ढक दिया। फिर क्रोधपूर्वक अट्टहास करते हुए उन्होंने उसके मस्तकको तीखे क्षुरप्रद्वारा धड़से काट लिया। सुदर्शन मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥४९-५०½॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे ततस्तस्य पदानुगाः ॥ ५१ ॥
परिवव्रू रणे भीमं किरन्तो विविधाञ्शरान्।

उस वीरके मारे जानेपर उसके सेवकोंने नाना प्रकारके

बाणोंकी वर्षा करते हुए रणभूमिमें भीमसेनको सब ओरसे घेर लिया ॥ ५१½ ॥

ततस्तु निशितैर्बाणैस्तवानीकं वृकोदरः ॥ ५२ ॥
इन्द्राशनिसमस्पर्शैः समन्तात् पर्यवाकिरत् ।

तत्पश्चात् भीमसेनने इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर स्पर्शवाले तीखे बाणोंद्वारा आपकी सेनाको चारों ओरसे ढक दिया॥

ततः क्षणेन तद् भीमो न्यहनद् भरतर्षभ ॥ ५३ ॥
तेषु तूत्सादयमानेषु सेनाध्यक्षा महारथाः ।
भीमसेनं समासाद्य ततोऽयुद्ध्यन्त भारत ॥ ५४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इसके बाद भीमसेनने क्षणभरमें आपकी सेनाका संहार कर डाला । भारत ! जब उन कौरव-सैनिकोंका संहार होने लगा, तब महारथी सेनापतिगण भीमसेनपर आक्रमण करके उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५३-५४ ॥

स तान् सर्वान्शरैर्घोरैरवाकिरत पाण्डवः ।
तथैव तावका राजन् पाण्डवेयान् महारथान् ॥ ५५ ॥
शरवर्षेण महता समन्तात् पर्यवारयन् ।

राजन् ! पाण्डुपुत्र भीमने उन सबपर भयंकर बाणोंकी वृष्टि की । इसी प्रकार आपके सैनिकोंने भी बड़ी भारी बाण-वर्षा करके पाण्डव महारथियोंको सब ओरसे आच्छादित कर दिया ॥ ५५½ ॥

व्याकुलं तदभूत् सर्वं पाण्डवानां परैः सह ॥ ५६ ॥
तावकानां च समरे पाण्डवेयैर्युयुत्सताम् ।

शत्रुओंके साथ जूझनेवाले पाण्डवोंका और पाण्डवोंके साथ युद्धकी इच्छा रखनेवाले आपके सैनिकोंका सारा सैन्यदल समराङ्गणमें परस्पर मिलकर एक-सा हो गया ॥ ५६½ ॥

तत्र योधास्तदा पेतुः परस्परसमाहताः ।
उभयोः सेनयो राजन् संशोचन्तः स्म बान्धवान्॥ ५७ ॥

राजन् ! उस समय वहाँ एक-दूसरेकी मार खाकर दोनों दलोंके योद्धा अपने भाई-बन्धुओंके लिये शोक करते हुए धराशायी हो जाते थे ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सुशर्मवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें सुशर्माका वधविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

सहदेवके द्वारा उलूक और शकुनिका वध एवं बची हुई सेनासहित दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये ।
शकुनिः सौबलो राजन् सहदेवं समभ्ययात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! हाथी-घोड़ों और मनुष्योंका संहार करनेवाले उस युद्धका आरम्भ होनेपर सुबलपुत्र शकुनिने सहदेवपर धावा किया ॥ १ ॥

ततोऽस्यापततस्तूर्णं सहदेवः प्रतापवान् ।
शरौघान् प्रेषयामास पतङ्गानिव शीघ्रगान् ॥ २ ॥

तब प्रतापी सहदेवने भी अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शकुनिपर तुरंत ही बहुत-से शीघ्रगामी बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, जो आकाशमें टिड्डीदलोंके समान छा रहे थे॥

उलूकश्च रणे भीमं विव्याध दशभिः शरैः ।
शकुनिश्च महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ॥ ३ ॥
सायकानां नवत्या वै सहदेवमवाकिरत् ।

महाराज ! शकुनिके साथ उलूक भी था, उसने भीमसेनको दस बाणोंसे बींध डाला । फिर शकुनिने भी तीन बाणोंसे भीमको घायल करके नब्बे बाणोंसे सहदेवको ढक दिया ॥

ते शूराः समरे राजन् समासाद्य परस्परम् ॥ ४ ॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णप्रहितैः शरैः ॥ ५ ॥

राजन् ! वे शूरवीर समराङ्गणमें एक-दूसरेसे टक्कर लेकर कङ्क और मोरके-से पङ्खवाले तीखे बाणोंद्वारा परस्पर आघात-प्रत्याघात करने लगे । उनके वे बाण सुनहरी पाँखोंसे सुशोभित, शिलापर साफ किये हुए और कानोंतक खींचकर छोड़े गये थे ॥ ४-५ ॥

तेषां चापभुजोत्सृष्टा शरवृष्टिर्विशाम्पते ।
आच्छादयद् दिशः सर्वा धारा इव पयोमुचः ॥ ६ ॥

प्रजानाथ ! उन वीरोंके धनुष और बाहुबलसे छोड़े गये बाणोंकी उस वर्षाने सम्पूर्ण दिशाओंको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघकी जलधारा सारी दिशाओंको ढक देती है ॥ ६ ॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः सहदेवश्च भारत ।
चेरतुः कदनं संख्ये कुर्वन्तौ सुमहाबलौ ॥ ७ ॥

भारत ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए भीमसेन और सहदेव दोनों महाबली वीर युद्धस्थलमें भीषण संहार मचाते हुए विचरने लगे ॥ ७ ॥

ताभ्यां शरशतैश्छन्नं तद् बलं तव भारत ।
सान्धकारमिवाकाशमभवत् तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥

भरतनन्दन ! उन दोनोंके सैकड़ों बाणोंसे ढकी हुई आपकी सेना जहाँ-तहाँ अन्धकारपूर्ण आकाशके समान प्रतीत होती थी ॥ ८ ॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः शरच्छन्नैर्विशाम्पते ।
तत्र तत्र वृतो मार्गो विकर्षद्भिर्हतान् बहून् ॥ ९ ॥

प्रजानाथ ! बाणोंसे ढके हुए भागते घोड़ोंने, जो बहुत-से मरे हुए वीरोंको अपने साथ इधर-उधर खींचे लिये जाते थे, यत्र-तत्र जानेका मार्ग अवरुद्ध कर दिया ॥ ९ ॥

निहतानां हयानां च सहैव हयसादिभिः ।
वर्मभिर्विनिकृत्तैश्च प्रासैश्छिन्नैश्च मारिष ॥ १० ॥
ऋष्टिभिः शक्तिभिश्चैव सासिप्रासपरश्वधैः ।
संछन्ना पृथिवी जज्ञे कुसुमैः शबला इव ॥ ११ ॥

मान्यवर नरेश ! घुड़सवारोंसहित मारे गये घोड़ोंके शरीरों, कटे हुए कवचों, टूक-टूक हुए प्रासों, ऋष्टियों, शक्तियों, खड्गों, भालों और फरसोंसे ढकी हुई पृथ्वी बहुरंगी फलोंसे आच्छादित हो चितकबरी हुई-सी जान पड़ती थी ॥

योधास्तत्र महाराज समासाद्य परस्परम् ।
व्यचरन्त रणे क्रुद्धा विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ १२ ॥

महाराज ! वहाँ रणभूमिमें कुपित हुए योद्धा एक-दूसरेसे भिड़कर परस्पर चोट करते हुए घूम रहे थे ॥ १२ ॥

उद्वृत्तनयनै रोषात् संदष्टौष्ठपुटैर्मुखैः ।
सकुण्डलैर्मही च्छन्ना पद्मकिञ्जल्कसंनिभैः ॥ १३ ॥

कमलकेसरकी-सी कान्तिवाले कुण्डलमण्डित कटे हुए मस्तकोंसे यह पृथ्वी ढक गयी थी । उनकी आँखें घूर रही थीं और उन्होंने रोषके कारण अपने ओठोंको दाँतोंसे दबा रक्खा था ॥ १३ ॥

भुजैश्छिन्नैर्महाराज नागराजकरोपमैः ।
साङ्गदैः सतनुत्रैश्च सासिप्रासपरश्वधैः ॥ १४ ॥
कबन्धैरुत्थितैश्छिन्नैर्नृत्यद्भिश्चापरैर्युधि ।
क्रव्यादगणसंछन्ना घोराभूत् पृथिवी विभो ॥ १५ ॥

महाराज ! अङ्गद, कवच, खड्ग, प्रास और फरसोंसहित कटी हुई हाथीकी सूड़के समान भुजाओं, छिन्न-भिन्न एवं खड़े होकर नाचते हुए कबन्धों तथा अन्य लोगोंसे भरी और मांस-भक्षी जीव-जन्तुओंसे आच्छादित हुई यह पृथ्वी बड़ी भयंकर प्रतीत होती थी ॥ १४-१५ ॥

अल्पावशिष्टे सैन्ये तु कौरवेयान् महाहवे ।
प्रहृष्टाः पाण्डवा भूत्वा निन्यिरे यमसादनम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार उस महासमरमें जब कौरवोंके पास बहुत थोड़ी सेना शेष रह गयी, तब हर्ष और उत्साहमें भरकर पाण्डव वीर उन सबको यमलोक पहुँचाने लगे ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरः सौबलेयः प्रतापवान् ।
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम् ॥ १७ ॥

इसी समय प्रतापी वीर सुबलपुत्र शकुनिने अपने प्राससे सहदेवके मस्तकपर गहरी चोट पहुँचायी ॥ १७ ॥

स विह्वलो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
सहदेवं तथा दृष्ट्वा भीमसेनः प्रतापवान् ॥ १८ ॥
सर्वसैन्यानि संक्रुद्धो वारयामास भारत ।
निर्बिभेद च नाराचैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

महाराज ! उस चोटसे व्याकुल होकर सहदेव रथकी बैठकमें धम्मसे बैठ गये । उनकी वैसी अवस्था देख प्रतापी भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे । भारत ! उन्होंने आपकी सारी सेनाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया तथा सैकड़ों और हजारों नाराचोंकी वर्षा करके उन सबको विदीर्ण कर डाला॥

विनिर्भिद्याकरोच्चैव सिंहनादमरिंदमः ।
तेन शब्देन वित्रस्ताः सर्वे सहयवारणाः ॥ २० ॥
प्राद्रवन् सहसा भीताः शकुनेश्च पदानुगाः ।

शत्रुदमन भीमसेनने शत्रुसेनाको विदीर्ण करके बड़े जोरसे सिंहनाद किया । उनकी उस गर्जनासे भयभीत हो शकुनिके पीछे चलनेवाले सारे सैनिक घोड़े और हाथियोंसहित सहसा भाग खड़े हुए ॥ २०½ ॥

प्रभग्नानथ तान् दृष्ट्वा राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ।
इह कीर्तिं समाधाय प्रेत्य लोकान् समश्नुते ॥ २२ ॥
प्राणाञ्जहाति यो धीरो युद्धे पृष्ठमदर्शयन् ।

उन सबको भागते देख राजा दुर्योधनने इस प्रकार कहा—'अरे पापियो ! लौट आओ और युद्ध करो । भागनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? जो धीर वीर रणभूमिमें पीठ न दिखाकर प्राणोंका परित्याग करता है, वह इस लोकमें अपनी कीर्ति स्थापित करके मृत्युके पश्चात् उत्तम लोकोंमें सुख भोगता है' ॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सौबलस्य पदानुगाः ॥ २३ ॥
पाण्डवानभ्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनिके पीछे चलनेवाले सैनिक 'अब हमें मृत्यु ही युद्धसे लौटा सकती है' ऐसा संकल्प लेकर पुनः पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ २३½ ॥

द्रवद्भिस्तत्र राजेन्द्र कृतः शब्दोऽतिदारुणः ॥ २४ ॥
क्षुब्धसागरसंकाशाः क्षुभिताः सर्वतोऽभवन् ।

राजेन्द्र ! वहाँ धावा करते समय उन सैनिकोंने बड़ा भयंकर कोलाहल मचाया । वे विक्षुब्ध समुद्रके समान क्षोभमें भरकर सब ओर छा गये ॥ २४½ ॥

तांस्तथा पुरतो दृष्ट्वा सौबलस्य पदानुगान् ॥ २५ ॥
प्रत्युद्ययुर्महाराज पाण्डवा विजयोद्यताः ।

महाराज ! शकुनिके सेवकोंको इस प्रकार सामने आया देख विजयके लिये उद्यत हुए पाण्डव वीर आगे बढ़े ॥

प्रत्याश्वस्य च दुर्धर्षः सहदेवो विशाम्पते ॥ २६ ॥
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ।
धनुश्चिच्छेद च शरैः सौबलस्य हसन्निव ॥ २७ ॥

प्रजानाथ ! इतनेहीमें स्वस्थ होकर दुर्धर्ष वीर सहदेवने हँसते हुए-से दस बाणोंसे शकुनिको बींध डाला और तीन बाणोंसे उसके घोड़ोंको मारकर हँसते हुए-से अनेक बाणोंद्वारा सुबलपुत्रके धनुषको भी टूक-टूक कर डाला ॥ २६-२७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय शकुनिर्युद्धदुर्मदः ।
विव्याध नकुलं षष्ट्या भीमसेनं च सप्तभिः ॥ २८ ॥

तदनन्तर दूसरा धनुष हाथमें लेकर रणदुर्मद शकुनिने नकुलको साठ और भीमसेनको सात बाणोंसे घायल कर दिया॥

उलूकोऽपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः ।
सहदेवं च सप्तत्या परीप्सन् पितरं रणे ॥ २९ ॥

महाराज ! रणभूमिमें पिताकी रक्षा करते हुए उलूकने भीमसेनको सात और सहदेवको सत्तर बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २९ ॥

तं भीमसेनः समरे विव्याध नवभिः शरैः ।
शकुनिं च चतुःषष्ट्या पार्श्वस्थांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३० ॥

तब भीमसेनने समराङ्गणमें नौ बाणोंसे उलूकको, चौसठ

बाणोंसे शकुनिको और तीन-तीन बाणोंसे उसके पार्श्वरक्षकोंको भी घायल कर दिया ॥ ३० ॥

ते हन्यमाना भीमेन नाराचैस्तैलपायितैः ।
सहदेवं रणे क्रुद्धाश्छादयञ्शरवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
पर्वतं वारिधाराभिः सविद्युत इवाम्बुदाः ।

भीमसेनके नाराचोंको तेल पिलाया गया था । उनके द्वारा भीमसेनके हाथसे मार खाये हुए शत्रु-सैनिकोंने रणभूमिमें कुपित होकर सहदेवको अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया, मानो बिजलीसहित मेघोंने जलकी धाराओंसे पर्वतको आच्छादित कर दिया हो ॥ ३१½ ॥

ततोऽस्यापततः शूरः सहदेवः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥
उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः ।

महाराज ! तब प्रतापी शूरवीर सहदेवने एक भल्ल मारकर अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले उलूकका मस्तक काट डाला ॥ ३२½ ॥

स जगाम रथाद् भूमिं सहदेवेन पातितः ॥ ३३ ॥
रुधिराप्लुतसर्वाङ्गो नन्दयन् पाण्डवान् युधि ।

सहदेवके हाथसे मारा गया उलूक युद्धमें पाण्डवोंको आनन्दित करता हुआ रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा । उस समय उसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो गये थे ॥ ३३½ ॥

पुत्रं तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र भारत ॥ ३४ ॥
साश्रुकण्ठो विनिःश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन् ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं स बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् ॥ ३५ ॥

भारत ! अपने पुत्रको मारा गया देख वहाँ शकुनिका गला भर आया । वह लंबी साँस खींचकर विदुरजीकी बातोंको याद करने लगा । अपनी आँखोंमें आँसू भरकर उच्छ्वास लेता हुआ दो घड़ीतक चिन्तामें डूबा रहा ॥ ३४-३५ ॥

सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः ।
तानपास्य शरान् मुक्ताञ्शरसंघैः प्रतापवान् ॥ ३६ ॥
सहदेवो महाराज धनुश्चिच्छेद संयुगे ।

महाराज ! इसके बाद सहदेवके पास जाकर उसने तीन बाणोंद्वारा उनपर प्रहार किया । उसके छोड़े हुए उन बाणोंका अपने शरसमूहोंसे निवारण करके प्रतापी सहदेवने युद्धस्थलमें उसका धनुष काट डाला ॥ ३६½ ॥

छिन्ने धनुषि राजेन्द्र शकुनिः सौबलस्तदा ॥ ३७ ॥
प्रगृह्य विपुलं खड्गं सहदेवाय प्राहिणोत् ।

राजेन्द्र ! धनुष कट जानेपर उस समय सुबलपुत्र शकुनिने एक विशाल खड्ग लेकर उसे सहदेवपर दे मारा ॥ ३७½ ॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते ॥ ३८ ॥
द्विधा चिच्छेद समरे सौबलस्य हसन्निव ।

प्रजानाथ ! शकुनिके उस घोर खड्गको सहसा आते देख समराङ्गणमें सहदेवने हँसते हुए-से उसके दो टुकड़े कर डाले ॥

असिं दृष्ट्वा तथा च्छिन्नं प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ३९ ॥
प्राहिणोत् सहदेवाय सा मोघा न्यपतद् भुवि ।

उस खड्गको कटा हुआ देख शकुनिने सहदेवपर एक विशाल गदा चलायी; परंतु वह विफल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३९½ ॥

ततः शक्तिं महाघोरां कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥ ४० ॥
प्रेषयामास संक्रुद्धः पाण्डवं प्रति सौबलः ।

यह देख सुबलपुत्र क्रोधसे जल उठा । अबकी बार उसने उठी हुई कालरात्रिके समान एक महाभयंकर शक्ति सहदेवको लक्ष्य करके चलायी ॥ ४०½ ॥

तामापतन्तीं सहसा शरैः कनकभूषणैः ॥ ४१ ॥
त्रिधा चिच्छेद समरे सहदेवो हसन्निव ।

अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा मारकर सहदेवने समराङ्गणमें हँसते हुए-से सहसा उसके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ४१½ ॥

सा पपात त्रिधा च्छिन्ना भूमौ कनकभूषणा ॥ ४२ ॥
शीर्यमाणा यथा दीप्ता गगनाद् वै शतह्रदा ।

तीन टुकड़ोंमें कटी हुई वह सुवर्णभूषित शक्ति आकाशसे गिरनेवाली चमकीली बिजलीके समान पृथ्वीपर बिखर गयी ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा सौबलं च भयार्दितम् ॥ ४३ ॥
दुद्रुवुस्तावकाः सर्वे भये जाते ससौबलाः ।

उस शक्तिको नष्ट हुई देख और सुबलपुत्र शकुनिको भी भयसे पीड़ित जान आपके सभी सैनिक भयभीत हो शकुनिसहित वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ४३½ ॥

अथोत्क्रुष्टं महच्चासीत् पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ ४४ ॥
धार्तराष्ट्रास्ततः सर्वे प्रायशो विमुखाभवन् ।

उस समय विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया । इससे आपके सभी सैनिक प्रायः युद्धसे विमुख हो गये ॥ ४४½ ॥

तान् वै विमनसो दृष्ट्वा माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४५ ॥
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास संयुगे ।

उन सबको युद्धसे उदासीन देख प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने अनेक सहस्र बाणोंकी वर्षा करके उन्हें युद्धस्थलमें ही रोक दिया ॥ ४५½ ॥

ततो गान्धारकैर्गुप्तं पुष्टैरश्वैर्जये धृतम् ॥ ४६ ॥
आससाद रणे यान्तं सहदेवोऽथ सौबलम् ।

इसके बाद गान्धारदेशके हृष्टपुष्ट घोड़ों और घुड़सवारोंसे सुरक्षित तथा विजयके लिये दृढ़संकल्प होकर रणभूमिमें जाते हुए सुबलपुत्र शकुनिपर सहदेवने आक्रमण किया ॥

स्वमंशमवशिष्टं तं संस्मृत्य शकुनिं नृप ॥ ४७ ॥
रथेन काञ्चनाङ्गेन सहदेवः समभ्ययात् ।

नरेश्वर ! शकुनिको अपना अवशिष्ट भाग मानकर सहदेवने सुवर्णमय अङ्गोंवाले रथके द्वारा उसका पीछा किया ॥

अधिज्यं बलवत् कृत्वा व्याक्षिपन् सुमहद् धनुः ॥ ४८ ॥
स सौबलमभिद्रुत्य गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भृशमभ्यहनत् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ४९ ॥

उन्होंने एक विशाल धनुषपर बलपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ाकर शिलापर तेज किये हुए गीधके पंखोंवाले बाणोंद्वारा शकुनिपर

आक्रमण किया और जैसे किसी विशाल गजराजको अङ्कुशोंसे मारा जाय, उसी प्रकार कुपित हो उसको गहरी चोट पहुँचायी॥

उवाच चैनं मेधावी विगृह्य स्मारयन्निव ।
क्षत्रधर्मे स्थिरो भूत्वा युध्यस्व पुरुषो भव ॥ ५० ॥
यत् तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले ।
फलमद्य प्रपश्यस्व कर्मणस्तस्य दुर्मते ॥ ५१ ॥

बुद्धिमान् सहदेवने उसपर आक्रमण करके कुछ याद दिलाते हुए-से इस प्रकार कहा—'ओ मूढ़ ! क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर युद्ध कर और पुरुष बन । खोटी बुद्धिवाले शकुनि ! तू सभामें पासे फेंककर जूआ खेलते समय जो उस दिन बहुत खुश हो रहा था, आज उस दुष्कर्मका महान् फल प्राप्त कर ले ॥ ५०-५१ ॥

निहतास्ते दुरात्मानो येऽस्मानवहसन् पुरा ।
दुर्योधनः कुलाङ्गारः शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः ॥ ५२ ॥
अद्य ते निहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः ।
वृक्षात् फलमिवाविद्धं लगुडेन प्रमाथिना ॥ ५३ ॥

'जिन दुरात्माओंने पूर्वकालमें हमलोगोंकी हँसी उड़ायी थी, वे सब मारे गये । अब केवल कुलाङ्गार दुर्योधन और उसका मामा तू—ये दो ही बच गये हैं । जैसे मथ डालनेवाले डंडेसे मारकर पेड़से फल तोड़ लिया जाता है, उसी प्रकार आज मैं क्षुरके द्वारा तेरा मस्तक काटकर तुझे मौतके हवाले कर दूँगा' ॥ ५२-५३ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सहदेवो महाबलः ।
संक्रुद्धो रणशार्दूलो वेगेनाभिजगाम तम् ॥ ५४ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर रणक्षेत्रमें सिंहके समान पराक्रम दिखानेवाले महाबली सहदेवने अत्यन्त कुपित हो बड़े वेगसे उसपर आक्रमण किया ॥ ५४ ॥

अभिगम्य सुदुर्धर्षः सहदेवो युधां पतिः ।
विकृष्य बलवच्चापं क्रोधेन प्रज्वलन्निव ॥ ५५ ॥
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चास्य वाजिनः ।
छत्रं ध्वजं धनुश्चास्य च्छित्त्वा सिंह इवानदत् ॥ ५६ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ सहदेव अत्यन्त दुर्जय वीर हैं । उन्होंने क्रोधसे जलते हुए-से पास जाकर अपने धनुषको बलपूर्वक खींचा और दस बाणोंसे शकुनिको घायल करके चार बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी बींध डाला । तत्पश्चात् उसके छत्र, ध्वज और धनुषको भी काटकर सिंहके समान गर्जना की॥५५-५६॥

छिन्नध्वजधनुश्छत्रः सहदेवेन सौबलः ।
कृतो विद्धश्च बहुभिः सर्वमर्मसु सायकैः ॥ ५७ ॥

सहदेवने शकुनिके ध्वज, छत्र और धनुषको काट देनेके पश्चात् उसके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥

ततो भूयो महाराज सहदेवः प्रतापवान् ।
शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदाम् ॥ ५८ ॥

महाराज ! तत्पश्चात् प्रतापी सहदेवने पुनः शकुनिपर दुर्जय बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ५८ ॥

ततस्तु क्रुद्धः सुबलस्य पुत्रो
माद्रीसुतं सहदेवं विमर्दे ।
प्रासेन जाम्बूनदभूषणेन
जिघांसुरेकोऽभिपपात शीघ्रम् ॥ ५९ ॥

इससे सुबलपुत्र शकुनिको बड़ा क्रोध हुआ । उसने उस संग्राममें माद्रीकुमार सहदेवको सुवर्णभूषित प्रासके द्वारा मार डालनेकी इच्छासे अकेले ही उनपर तीव्र गतिसे आक्रमण किया॥

माद्रीसुतस्तस्य समुद्यतं तं
प्रासं सुवृत्तौ च भुजौ रणाग्रे ।
भल्लैस्त्रिभिर्युगपत् संचकर्त
ननाद चोच्चैस्तरसाऽऽजिमध्ये ॥ ६० ॥

माद्रीकुमारने शकुनिके उस उठे हुए प्रासको और उसकी दोनों सुन्दर गोल-गोल भुजाओंको भी युद्धके मुहानेपर तीन भल्लोंद्वारा एक साथ ही काट डाला और युद्धस्थलमें उच्चस्वरसे वेगपूर्वक गर्जना की ॥ ६० ॥

तस्याशुकारी सुसमाहितेन
सुवर्णपुङ्खेन दृढायसेन ।
भल्लेन सर्वावरणातिगेन
शिरः शरीरात् प्रममाथ भूयः ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् शीघ्रता करनेवाले सहदेवने अच्छी तरह संधान करके छोड़े गये सुवर्णमय पंखवाले लोहेके बने हुए सुदृढ़ भल्लके द्वारा, जो समस्त आवरणोंको छेद डालनेवाला था, शकुनिके मस्तकको पुनः धड़से काट गिराया ॥ ६१ ॥

शरेण कार्तस्वरभूषितेन
दिवाकराभेण सुसंहितेन ।
हृतोत्तमाङ्गो युधि पाण्डवेन
पपात भूमौ सुबलस्य पुत्रः ॥ ६२ ॥

वह सुवर्णभूषित बाण सूर्यके समान तेजस्वी तथा अच्छी तरह संधान करके चलाया गया था । उसके द्वारा पाण्डुकुमार सहदेवने युद्धस्थलमें जब सुबलपुत्र शकुनिका मस्तक काट डाला, तब वह प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥

स तच्छिरो वेगवता शरेण
सुवर्णपुङ्खेन शिलाशितेन ।
प्रावेरयत् कुपितः पाण्डुपुत्रो
यत्तत् कुरूणामनयस्य मूलम् ॥ ६३ ॥

क्रोधमें भरे हुए पाण्डुपुत्र सहदेवने शिलापर तेज किये हुए और सुवर्णमय पंखवाले वेगवान् बाणसे शकुनिके उस मस्तकको काट गिराया, जो कौरवोंके अन्यायका मूल कारण था॥

भुजौ सुवृत्तौ प्रचकर्त वीरः
पश्चात् कबन्धं रुधिरावसिक्तम् ।
विस्पन्दमानं निपपात घोरं
रथोत्तमात् पार्थिव पार्थिवस्य ॥ ६४ ॥

राजन् ! वीर सहदेवने जब उसकी गोल-गोल सुन्दर दोनों भुजाएँ काट दीं, उसके पश्चात् राजा शकुनिका भयंकर धड़ लहूलुहान होकर श्रेष्ठ रथसे नीचे गिर पड़ा और छटपटाने लगा॥

हृतोत्तमाङ्गं शकुनिं समीक्ष्य
भूमौ शयानं रुधिरार्द्रगात्रम् ।

योधास्त्वदीया भयनष्टसत्त्वा
दिशः प्रजग्मुः प्रगृहीतशस्त्राः ॥ ६५ ॥

शकुनिको मस्तकसे रहित एवं खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा देख आपके योद्धा भयके कारण अपना धैर्य खो बैठे और हथियार लिये हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥

प्रविद्रुताः शुष्कमुखा विसंज्ञा
गाण्डीवघोषेण समाहताश्च ।
भयार्दिता भग्नरथाश्वनागाः
पदातयश्चैव सधार्तराष्ट्राः ॥ ६६ ॥

उनके मुख सूख गये थे । उनकी चेतना लुप्त-सी हो रही थी । वे गाण्डीवकी टंकारसे मृतप्राय हो रहे थे; उनके रथ, घोड़े और हाथी नष्ट हो गये थे; अतः वे भयसे पीड़ित हो आपके पुत्र दुर्योधनसहित पैदल ही भाग चले ॥ ६६ ॥

ततो रथाच्छकुनिं पातयित्वा
मुदान्विता भारत पाण्डवेयाः ।
शङ्खान् प्रदध्मुः समरेऽतिहृष्टाः
सकेशवाः सैनिकान् हर्षयन्तः ॥ ६७ ॥

भरतनन्दन ! रथसे शकुनिको गिराकर समराङ्गणमें श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव अत्यन्त हर्षमें भरकर सैनिकोंका हर्ष बढ़ाते हुए प्रसन्नतापूर्वक शङ्खनाद करने लगे ॥ ६७ ॥

तं चापि सर्वे- प्रतिपूजयन्तो
दृष्ट्वा ब्रुवाणाः सहदेवमाजौ ।
दिष्ट्या हतो नैकृतिको महात्मा
सहात्मजो वीर रणे त्वयेति ॥ ६८ ॥

सहदेवको देखकर युद्धक्षेत्रमें सब लोग उनकी पूजा (प्रशंसा) करते हुए इस प्रकार कहने लगे—'वीर ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने रणभूमिमें कपटद्यूतके विधायक महामना शकुनिको पुत्रसहित मार डाला है' ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शकुन्युलूकवधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शकुनि और उलूकका वधविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

(ह्रदप्रवेशपर्व)

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

बची हुई समस्त कौरवसेनाका वध, संजयका कैदसे छूटना, दुर्योधनका सरोवरमें प्रवेश तथा युयुत्सुका राजमहिलाओंके साथ हस्तिनापुरमें जाना

संजय उवाच

ततः क्रुद्धा महाराज सौबलस्य पदानुगाः ।
त्यक्त्वा जीवितमाक्रन्दे पाण्डवान् पर्यवारयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर शकुनिके अनुचर क्रोधमें भर गये और प्राणोंका मोह छोड़कर उन्होंने उस महासमरमें पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥

तानर्जुनः प्रत्यगृह्णात् सहदेवजये धृतः ।
भीमसेनश्च तेजस्वी क्रुद्धाशीविषदर्शनः ॥ २ ॥

उस समय सहदेवकी विजयको सुरक्षित रखनेका दृढ़ निश्चय लेकर अर्जुनने उन समस्त सैनिकोंको आगे बढ़नेसे रोका । उनके साथ तेजस्वी भीमसेन भी थे, जो कुपित हुए विषधर सर्पके समान दिखायी देते थे ॥ २ ॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सहदेवं जिघांसताम् ।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ ३ ॥

सहदेवको मारनेकी इच्छासे शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथमें लेकर आक्रमण करनेवाले उन समस्त योद्धाओंका संकल्प अर्जुनने गाण्डीव धनुषके द्वारा व्यर्थ कर दिया ॥ ३ ॥

संगृहीतायुधान् बाहून् योधानामभिधावताम् ।
भल्लैश्चिच्छेद बीभत्सुः शिरांस्यपि हयानपि ॥ ४ ॥

सहदेवपर धावा करनेवाले उन योद्धाओंकी अस्त्र-शस्त्र-युक्त भुजाओं, मस्तकों और उनके घोड़ोंको भी अर्जुनने भल्लोंसे काट गिराया ॥ ४ ॥

ते हयाः प्रत्यपद्यन्त वसुधां विगतासवः ।
चरता लोकवीरेण प्रहताः सव्यसाचिना ॥ ५ ॥

रणभूमिमें विचरते हुए विश्वविख्यात वीर सव्यसाची अर्जुनके द्वारा मारे गये वे घोड़े और घुड़सवार प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा स्वबलसंक्षयम् ।
हतशेषान् समानीय क्रुद्धो रथगणान् बहून् ॥ ६ ॥
कुञ्जरांश्च हयांश्चैव पादातांश्च समन्ततः ।
उवाच सहितान् सर्वान् धार्तराष्ट्र इदं वचः ॥ ७ ॥

अपनी सेनाका इस प्रकार संहार होता देख राजा दुर्योधन-को बड़ा क्रोध हुआ । उसने मरनेसे बचे हुए बहुत-से रथियों, हाथीसवारों, घुड़सवारों और पैदलोंको सब ओरसे एकत्र करके उन सबसे इस प्रकार कहा—॥ ६-७ ॥

समासाद्य रणे सर्वान् पाण्डवान् ससुहृद्गणान् ।
पाञ्चाल्यं चापि सबलं हत्वा शीघ्रं न्यवर्तत ॥ ८ ॥

'वीरो ! तुम सब लोग रणभूमिमें समस्त पाण्डवों तथा उनके मित्रोंसे भिड़कर उन्हें मार डालो और पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नको भी सेनासहित संहार करके शीघ्र लौट आओ' ॥

तस्य ते शिरसा गृह्य वचनं युद्धदुर्मदाः ।
अभ्युद्ययू रणे पार्थांस्तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ९ ॥

राजन् ! आपके पुत्रकी आज्ञासे उसके उस वचनको शिरोधार्य करके वे रणदुर्मद योद्धा युद्धके लिये आगे बढ़े ॥

तानभ्यापततः शीघ्रं हतशेषान् महारणे ।
शरैराशीविषाकारैः पाण्डवाः समवाकिरन् ॥ १० ॥

उस महासमरमें शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करनेवाले मरनेसे बचे हुए उन सैनिकोंपर समस्त पाण्डवोंने विषधर सर्पके समान आकारवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १० ॥

तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ मुहूर्तेन महात्मभिः ।
अवध्यत रणं प्राप्य त्रातारं नाभ्यविन्दत ॥ ११ ॥
प्रतिष्ठमानं तु भयान्नावतिष्ठति दंशितम् ।

भरतश्रेष्ठ ! वह सेना युद्धस्थलमें आकर महात्मा पाण्डवोंद्वारा दो ही घड़ीमें मार डाली गयी । उस समय उसे कोई भी अपना रक्षक नहीं मिला । वह युद्धके लिये कवच बाँधकर प्रस्थित तो हुई, किंतु भयके मारे वहाँ टिक न सकी ॥११½॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः सैन्येन रजसा वृते ॥ १२ ॥
न प्राज्ञायन्त समरे दिशः सप्रदिशस्तथा ।

चारों ओर दौड़ते हुए घोड़ों तथा सेनाके द्वारा उड़ायी हुई धूलसे वहाँका सारा प्रदेश छा गया था । अतः समरभूमिमें दिशाओं तथा विदिशाओंका कुछ पता नहीं चलता था॥१२½॥

ततस्तु पाण्डवानीकान्निःसृत्य बहवो जनाः ॥ १३ ॥
अभ्यघ्नंस्तावकान् युद्धे मुहूर्तादिव भारत ।
ततो निःशेषमभवत् तत् सैन्यं तव भारत ॥ १४ ॥

भारत ! पाण्डवसेनासे बहुत-से सैनिकोंने निकलकर युद्धमें एक ही मुहूर्तके भीतर आपके सम्पूर्ण योद्धाओंका संहार कर डाला । भरतनन्दन ! उस समय आपकी वह सेना सर्वथा नष्ट हो गयी । उसमेंसे एक भी योद्धा बच न सका ॥

अक्षौहिण्यः समेतास्तु तव पुत्रस्य भारत ।
एकादश हता युद्धे ताः प्रभो पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १५ ॥

प्रभो ! भरतवंशी नरेश ! आपके पुत्रके पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ थीं; परंतु युद्धमें पाण्डवों और सृंजयोंने उन सबका विनाश कर डाला ॥ १५ ॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु महात्मसु ।
एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः ॥ १६ ॥

राजन् ! आपके दलके उन सहस्रों महामनस्वी राजाओंमें एकमात्र दुर्योधन ही उस समय दिखायी देता था; परंतु वह भी बहुत घायल हो चुका था ॥ १६ ॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वा दृष्ट्वा शून्यां च मेदिनीम् ।
विहीनः सर्वयोधैश्च पाण्डवान् वीक्ष्य संयुगे ॥ १७ ॥
मुदितान् सर्वतः सिद्धान् नर्दमानान् समन्ततः ।
बाणशब्दरवांश्चैव श्रुत्वा तेषां महात्मनाम् ॥ १८ ॥
दुर्योधनो महाराज कश्मलेनाभिसंवृतः ।
अपयाने मनश्चक्रे विहीनबलवाहनः ॥ १९ ॥

उस समय उसे सम्पूर्ण दिशाएँ और सारी पृथ्वी सूनी दिखायी दी । वह अपने समस्त योद्धाओंसे हीन हो चुका था । महाराज ! दुर्योधनने युद्धस्थलमें पाण्डवोंको सर्वथा प्रसन्न, सफलमनोरथ और सब ओरसे सिंहनाद करते देख तथा उन महामनस्वी वीरोंके बाणोंकी सनसनाहट सुनकर शोकसे संतप्त हो वहाँसे भाग जानेका विचार किया । उसके पास न तो सेना थी और न कोई सवारी ही ॥ १७–१९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

निहते मामके सैन्ये निःशेषे शिबिरे कृते ।
पाण्डवानां बले सूत किं नु शेषमभूत् तदा ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! जब मेरी सेना मार डाली गयी और सारी छावनी सूनी कर दी गयी, उस समय पाण्डवोंकी सेनामें कितने सैनिक शेष रह गये थे ? ॥ २० ॥

एतन्मे पृच्छतो ब्रूहि कुशलो ह्यसि संजय ।
यच्च दुर्योधनो मन्दः कृतवांस्तनयो मम ॥ २१ ॥
बलक्षयं तथा दृष्ट्वा स एकः पृथिवीपतिः ।

संजय ! मैं यह बात पूछ रहा हूँ, तुम मुझे बताओ; क्योंकि यह सब बतानेमें तुम कुशल हो । अपनी सेनाका संहार हुआ देखकर अकेले बचे हुए मेरे मूर्ख पुत्र राजा दुर्योधनने क्या किया ? ॥ २१½ ॥

संजय उवाच

रथानां द्वे सहस्रे तु सप्त नागशतानि च ॥ २२ ॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतं शताः ।
एतच्छेषमभूद् राजन् पाण्डवानां महद् बलम् ॥ २३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! पाण्डवोंकी विशाल सेनामेंसे केवल दो हजार रथ, सात सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े और दस हजार पैदल बच गये थे ॥ २२-२३ ॥

परिगृह्य हि यद् युद्धे धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ।
एकाकी भरतश्रेष्ठ ततो दुर्योधनो नृपः ॥ २४ ॥

इन सबको साथ लेकर सेनापति धृष्टद्युम्न युद्धभूमिमें खड़े थे । उधर राजा दुर्योधन अकेला हो गया था ॥ २४ ॥

नापश्यत् समरे कंचित् सहायं रथिनां वरः ।
नर्दमानान् परान् दृष्ट्वा स्वबलस्य च संक्षयम् ॥ २५ ॥
तथा दृष्ट्वा महाराज एकः स पृथिवीपतिः ।
हतं स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद् भयात् ॥ २६ ॥

महाराज ! रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधनने जब समरभूमिमें अपने किसी सहायकको न देखकर शत्रुओंको गर्जते देखा और अपनी सेनाके विनाशपर दृष्टिपात किया, तब वह अकेला भूपाल अपने मरे हुए घोड़ेको वहीं छोड़कर भयके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग चला ॥ २५-२६ ॥

एकादशचमूभर्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो ह्रदम् ॥ २७ ॥

जो किसी समय ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका सेनापति था, वही आपका तेजस्वी पुत्र दुर्योधन अब गदा लेकर पैदल ही सरोवरकी ओर भागा जा रहा था ॥ २७ ॥

नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः ।
सस्मार वचनं क्षत्तुर्धर्मशीलस्य धीमतः ॥ २८ ॥

अपने पैरोंसे ही थोड़ी ही दूर जानेके पश्चात् राजा दुर्योधनको धर्मशील बुद्धिमान् विदुरजीकी कही हुई बातें याद आने लगीं ॥ २८ ॥

इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान् पुरा ।
महद् वैशसमस्माकं क्षत्रियाणां च संयुगे ॥ २९ ॥

वह मन-ही-मन सोचने लगा कि हमारा और इन क्षत्रियों-का जो महान् संहार हुआ है, इसे महाज्ञानी विदुरजीने अवश्य पहले ही देख और समझ लिया था ॥ २९ ॥

एवं विचिन्तयानस्तु प्रविविक्षुर्ह्रदं नृपः ।
दुःखसंतप्तहृदयो दृष्ट्वा राजन् बलक्षयम् ॥ ३० ॥

राजन् ! अपनी सेनाका संहार देखकर इस प्रकार चिन्ता करते हुए राजा दुर्योधनका हृदय दुःख और शोकसे संतप्त हो उठा था । उसने सरोवरमें प्रवेश करनेका विचार किया ॥

पाण्डवास्तु महाराज धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तव राजन् बलं प्रति ॥ ३१ ॥
शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां बलानामभिगर्जताम् ।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ ३२ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवोंने अत्यन्त कुपित होकर आपकी सेनापर धावा किया था तथा शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथमें लेकर गर्जना करनेवाले आपके योद्धाओंका सारा संकल्प अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषसे व्यर्थ कर दिया था॥

तान् हत्वा निशितैर्बाणैः सामात्यान् सह बन्धुभिः ।
रथे श्वेतहये तिष्ठन्नर्जुनो बह्वशोभत ॥ ३३ ॥

अपने पैने बाणोंसे बन्धुओं और मन्त्रियोंसहित उन योद्धाओंका संहार करके श्वेत घोड़ोंवाले रथपर स्थित हुए अर्जुनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ३३ ॥

सुबलस्य हते पुत्रे सवाजिरथकुञ्जरे ।
महावनमिव च्छिन्नमभवत् तावकं बलम् ॥ ३४ ॥

घोड़े, रथ और हाथियोंसहित सुबलपुत्रके मारे जानेपर आपकी सेना कटे हुए विशाल वनके समान प्रतीत होती थी ॥

अनेकशतसाहस्रे बले दुर्योधनस्य ह ।
नान्यो महारथो राजन् जीवमानो व्यदृश्यत ॥ ३५ ॥
द्रोणपुत्रादृते वीरात् तथैव कृतवर्मणः ।
कृपाच्च गौतमाद् राजन् पार्थिवाच्च तवात्मजात् ॥ ३६ ॥

राजन् ! दुर्योधनकी कई लाख सेनामेंसे द्रोणपुत्र वीर अश्वत्थामा, कृतवर्मा, गौतमवंशी कृपाचार्य तथा आपके पुत्र राजा दुर्योधनके अतिरिक्त दूसरा कोई महारथी जीवित नहीं दिखायी देता था ॥ ३५-३६ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु मां दृष्ट्वा हसन् सात्यकिमब्रवीत् ।
किमनेन गृहीतेन नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ ३७ ॥

उस समय मुझे कैदमें पड़ा हुआ देखकर हँसते हुए धृष्टद्युम्नने सात्यकिसे कहा—'इसको कैद करके क्या करना है ? इसके जीवित रहनेसे अपना कोई लाभ नहीं है' ॥ ३७ ॥

धृष्टद्युम्नवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता महारथः ।
उद्यम्य निशितं खड्गं हन्तुं मामुद्यतस्तदा ॥ ३८ ॥

धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर शिनिपौत्र महारथी सात्यकि तीखी तलवार उठाकर उसी क्षण मुझे मार डालनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ३८ ॥

तमागम्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
मुच्यतां संजयो जीवन्न हन्तव्यः कथंचन ॥ ३९ ॥

उस समय महाज्ञानी श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी सहसा आकर बोले—'संजयको जीवित छोड़ दो । यह किसी प्रकार वधके योग्य नहीं है' ॥ ३९ ॥

द्वैपायनवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता कृताञ्जलिः ।
ततो मामब्रवीन्मुक्त्वा स्वस्ति संजय साधय ॥ ४० ॥

हाथ जोड़े हुए शिनिपौत्र सात्यकिने व्यासजीकी वह बात सुनकर मुझे कैदसे मुक्त करके कहा—'संजय ! तुम्हारा कल्याण हो । जाओ, अपना अभीष्ट साधन करो' ॥ ४० ॥

अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः ।
प्रातिष्ठं येन नगरं सायाह्ने रुधिरोक्षितः ॥ ४१ ॥

उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैंने कवच उतार दिया और अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित हो सायंकालके समय नगरकी ओर प्रस्थित हुआ । उस समय मेरा सारा शरीर रक्तसे भीगा हुआ था॥

क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम् ।
एकं दुर्योधनं राजन्नपश्यं भृशविक्षतम् ॥ ४२ ॥

राजन् ! एक कोस आनेपर मैंने भागे हुए दुर्योधनको गदा हाथमें लिये अकेला खड़ा देखा । उसके शरीरपर बहुत-से घाव हो गये थे ॥ ४२ ॥

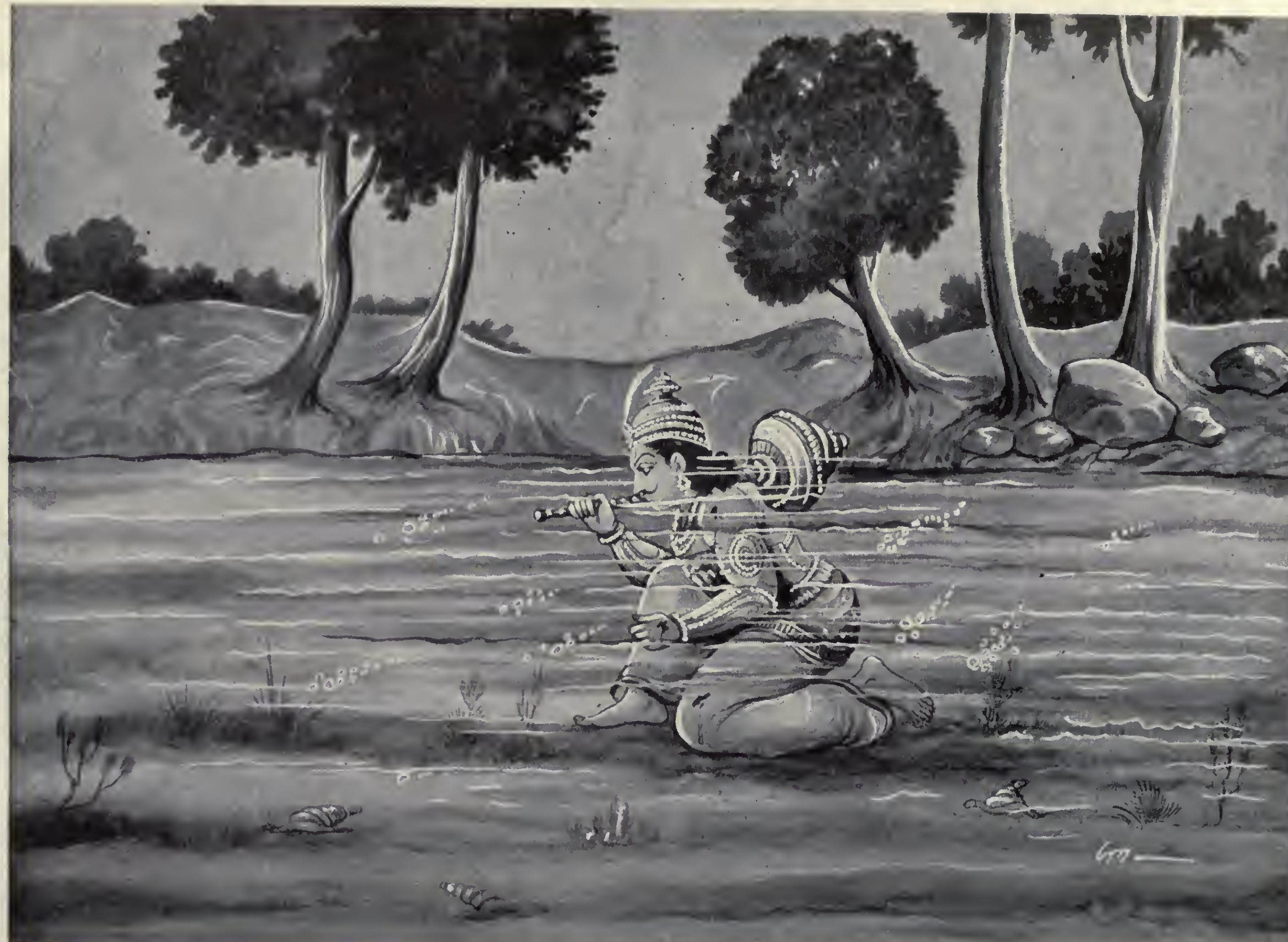
स तु मामश्रुपूर्णाक्षो नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ।
उपप्रैक्षत मां दृष्ट्वा तथा दीनमवस्थितम् ॥ ४३ ॥

मुझपर दृष्टि पड़ते ही उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये । वह अच्छी तरह मेरी ओर देख न सका । मैं उस समय दीन भावसे खड़ा था । वह मेरी उस अवस्थापर दृष्टिपात करता रहा ॥ ४३ ॥

तं चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे ।
मुहूर्तं नाशकं वक्तुमतिदुःखपरिप्लुतः ॥ ४४ ॥

मैं भी युद्धक्षेत्रमें अकेले शोकमग्न हुए दुर्योधनको देखकर अत्यन्त दुःखशोकमें डूब गया और दो घड़ीतक कोई बात मुँहसे न निकाल सका ॥ ४४ ॥

(यस्य मूर्धाभिषिक्तानां सहस्रं मणिमौलिनाम् ।
आहृत्य च करं सर्वे स्वस्य वै वशमागतम् ॥
चतुःसागरपर्यन्ता पृथिवी रत्नभूषिता ।
कर्णेनैकेन यस्यार्थे करमाहारिता पुरा ॥
यस्याज्ञा परराष्ट्रेषु कर्णेनैव प्रसारिता ।
नाभवद् यस्य शस्त्रेषु खेदो राज्ञः प्रशासतः ॥
आसीनो हास्तिनपुरे क्षेमं राज्यमकण्टकम् ।
अन्वपालयदैश्वर्यात् कुबेरमपि नास्मरत् ॥
भवनाद् भवनं राजन् प्रयातुः पृथिवीपते ।
देवालयप्रवेशे च पन्था यस्य हिरण्मयः ॥
आरुह्यैरावतप्रख्यं नागमिन्द्रसमो बली ।
विभूत्या सुमहत्या यः प्रयाति पृथिवीपतिः ॥
तं भृशक्षतमिन्द्राभं पद्भ्यामेव धरातले ।
तिष्ठन्तमेकं दृष्ट्वा तु ममाभूत् क्लेश उत्तमः ॥
तस्य चैवंविधस्यास्य जगन्नाथस्य भूपतेः ।
विपद्प्रतिमाभूद् या बलीयान् विधिरेव हि ॥)



विश्रामके लिये सरोवरमें छिपे हुए दुर्योधन

मस्तकपर मुकुट धारण करनेवाले सहस्रों मूर्धाभिषिक्त नरेश जिसके लिये भेंट लाकर देते थे और वे सब-के-सब जिसकी अधीनता स्वीकार कर चुके थे, पूर्वकालमें एकमात्र वीर कर्णने जिसके लिये चारों समुद्रोंतक फैली हुई इस रत्न-भूषित पृथ्वीसे कर वसूल किया था, कर्णने ही दूसरे राष्ट्रोंमें जिसकी आज्ञाका प्रसार किया था, जिस राजाको राज्य-शासन करते समय कभी हथियार उठानेका कष्ट नहीं सहन करना पड़ा था, जो हस्तिनापुरमें ही रहकर अपने कल्याणमय निष्कण्टक राज्यका निरन्तर पालन करता था, जिसने अपने ऐश्वर्यसे कुबेरको भी भुला दिया था, राजन् ! पृथ्वीनाथ ! एक घरसे दूसरे घरमें जाने अथवा देवालयमें प्रवेश करनेके हेतु जिसके लिये सुवर्णमय मार्ग बनाया गया था, जो इन्द्रके समान बलवान् भूपाल ऐरावतके समान कान्तिमान् गजराजपर आरूढ़ हो महान् ऐश्वर्यके साथ यात्रा करता था, उसी इन्द्र-तुल्य तेजस्वी राजा दुर्योधनको अत्यन्त घायल हो पाँव-पयादे ही पृथ्वीपर अकेला खड़ा देख मुझे महान् क्लेश हुआ । ऐसे प्रतापी और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी इस भूपालको जो अनुपम विपत्ति प्राप्त हुई, उसे देखकर कहना पड़ता है कि 'विधाता ही सबसे बड़ा बलवान् है' ॥

ततोऽस्मै तदहं सर्वमुक्तवान् ग्रहणं तदा ।
द्वैपायनप्रसादाच्च जीवतो मोक्षमाहवे ॥ ४५ ॥

तत्पश्चात् मैंने युद्धमें अपने पकड़े जाने और व्यासजीकी कृपासे जीवित छूटनेका सारा समाचार उससे कह सुनाया ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम् ।
भ्रातॄंश्च सर्वसैन्यानि पर्यपृच्छत मां ततः ॥ ४६ ॥

उसने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर सचेत होनेपर मुझसे अपने भाइयों तथा सम्पूर्ण सेनाओंका समाचार पूछा ॥

तस्मै तदहमाचक्षे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
भ्रातॄंश्च निहतान् सर्वान् सैन्यं च विनिपातितम् ॥ ४७ ॥
त्रयः किल रथाः शिष्टास्तावकानां नराधिप ।
इति प्रस्थानकाले मां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ४८ ॥

मैंने भी जो कुछ आँखों देखा था, वह सब कुछ उसे इस प्रकार बताया—'नरेश्वर ! तुम्हारे सारे भाई मार डाले गये और समस्त सेनाका भी संहार हो गया । रणभूमिसे प्रस्थान करते समय व्यासजीने मुझसे कहा था कि 'तुम्हारे पक्षमें तीन ही महारथी बच गये हैं' ॥ ४७-४८ ॥

स दीर्घमिव निःश्वस्य प्रत्यवेक्ष्य पुनः पुनः ।
असौ मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत ॥ ४९ ॥
त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति संजय ।
द्वितीयं नेह पश्यामि ससहायाश्च पाण्डवाः ॥ ५० ॥

यह सुनकर आपके पुत्रने लंबी साँस खींचकर बारंबार मेरी ओर देखा और हाथसे मेरा स्पर्श करके इस प्रकार कहा—'संजय ! इस संग्राममें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मेरा आत्मीय जन सम्भवतः जीवित नहीं है; क्योंकि मैं यहाँ दूसरे किसी स्वजनको देख नहीं रहा हूँ । उधर पाण्डव अपने सहायकोंसे सम्पन्न हैं ॥ ४९-५० ॥

ब्रूयाः संजय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत ॥ ५१ ॥
सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च ।
पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥ ५२ ॥
आचक्षीथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात् ।
अस्मिंस्तोयह्रदे गुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतम् ॥ ५३ ॥

'संजय ! तुम प्रज्ञाचक्षु ऐश्वर्यशाली महाराजसे कहना कि 'आपका पुत्र दुर्योधन वैसे पराक्रमी सुहृदों, पुत्रों और भ्राताओंसे हीन होकर सरोवरमें प्रवेश कर गया है । जब पाण्डवोंने मेरा राज्य हर लिया, तब इस दयनीय-दशामें मेरे-जैसा कौन पुरुष जीवन धारण कर सकता है ?' संजय ! तुम ये सारी बातें कहना और यह भी बताना कि 'दुर्योधन उस महासंग्रामसे जीवित बचकर पानीसे भरे हुए इस सरोवरमें छिपा है और उसका सारा शरीर अत्यन्त घायल हो गया है'' ॥ ५१–५३ ॥

एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत् तं महाह्रदम् ।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिपः ॥ ५४ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने उस महान् सरोवरमें प्रवेश किया और मायासे उसका पानी बाँध दिया ॥

तस्मिन् ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीन् रथान् श्रान्तवाहनान् ।
अपश्यं सहितानेकस्तं देशं समुपेयुषः ॥ ५५ ॥

जब दुर्योधन सरोवरमें समा गया, उसके बाद अकेले खड़े हुए मैंने अपने पक्षके तीन महारथियोंको वहाँ उपस्थित देखा, जो एक साथ उस स्थानपर आ पहुँचे थे । उन तीनों-के घोड़े थक गये थे ॥ ५५ ॥

कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिं च रथिनां वरम् ।
भोजं च कृतवर्माणं सहिताञ्शरविक्षतान् ॥ ५६ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—शरद्वान्के पुत्र वीर कृपाचार्य, रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमार अश्वत्थामा तथा भोजवंशी कृतवर्मा । ये सब लोग एक साथ थे और बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहे थे ॥ ५६ ॥

ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वाननोदयन् ।
उपायाय तु मामूचुर्दिष्ट्या जीवसि संजय ॥ ५७ ॥

मुझे देखते ही उन तीनोंने शीघ्रतापूर्वक अपने घोड़े बढ़ाये और निकट आकर मुझसे कहा—'संजय ! सौभाग्यकी बात है कि तुम जीवित हो' ॥ ५७ ॥

अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव जनाधिपम् ।
कच्चिद् दुर्योधनो राजा स नो जीवति संजय ॥ ५८ ॥

फिर उन सबने आपके पुत्र राजा दुर्योधनका समाचार पूछा—'संजय ! क्या हमारे राजा दुर्योधन जीवित हैं?' ॥५८॥

आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम् ।
तच्चैव सर्वमाचक्षं यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५९ ॥
ह्रदं चैवाहमाचक्षं यं प्रविष्टो नराधिपः ।

तब मैंने उन लोगोंसे दुर्योधनका कुशल-समाचार बताया तथा दुर्योधनने मुझे जो संदेश दिया था, वह भी सब उनसे

कह सुनाया और जिस सरोवरमें वह घुसा था, उसका भी पता बता दिया ॥ ५९½ ॥

अश्वत्थामा तु तद् राजन् निशम्य वचनं मम ॥ ६० ॥
तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत् ।
अहो धिक् स न जानाति जीवतोऽस्मान् नराधिपः ॥ ६१ ॥
पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान् ।

राजन् ! मेरी बात सुनकर अश्वत्थामाने उस विशाल सरोवरकी ओर देखा और करुण विलाप करते हुए कहा— 'अहो ! धिक्कार है, राजा दुर्योधन नहीं जानते हैं कि हम सब जीवित हैं । उनके साथ रहकर हमलोग शत्रुओंसे जूझनेके लिये पर्याप्त हैं' ॥ ६०-६१½ ॥

ते तु तत्र चिरं कालं विलप्य च महारथाः ॥ ६२ ॥
प्राद्रवन् रथिनां श्रेष्ठा दृष्ट्वा पाण्डुसुतान् रणे ।

तत्पश्चात् वे महारथी दीर्घकाल तक वहाँ विलाप करते रहे । फिर रणभूमिमें पाण्डवोंको आते देख वे रथियोंमें श्रेष्ठ तीनों वीर वहाँसे भाग निकले ॥ ६२½ ॥

ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतम् ॥ ६३ ॥
सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः ।
तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्ये चास्तमिते सति ॥ ६४ ॥
सर्वे विचुक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम् ।

मरनेसे बचे हुए वे तीनों रथी मुझे भी कृपाचार्यके सुसज्जित रथपर बिठाकर छावनीतक ले आये । सूर्य अस्ताचलपर जा चुके थे । वहाँ छावनीके पहरेदार भयसे घबराये हुए थे । आपके पुत्रोंके विनाशका समाचार सुनकर वे सभी फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ६३-६४½ ॥

ततो वृद्धा महाराज योषितां रक्षिणो नराः ॥ ६५ ॥
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ।

महाराज ! तदनन्तर स्त्रियोंकी रक्षामें नियुक्त हुए वृद्ध पुरुषोंने राजकुलकी महिलाओंको साथ लेकर नगरकी ओर प्रस्थान करनेकी तैयारी की ॥ ६५½ ॥

तत्र विक्रोशमानानां रुदतीनां च सर्वशः ॥ ६६ ॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः श्रुत्वा तद् बलसंक्षयम् ।
ततस्ता योषितो राजन् क्रन्दन्त्यो वै मुहुर्मुहुः ॥ ६७ ॥
कुरर्य इव शब्देन नादयन्त्यो महीतलम् ।

उस समय वहाँ अपने पतियोंको पुकारती और रोती-बिलखती हुई राजमहिलाओंका महान् आर्तनाद सब ओर गूँज उठा । राजन् ! अपनी सेना और पतियोंके संहारका समाचार सुनकर वे राजकुलकी युवतियाँ अपने आर्तनादसे भूतलको प्रतिध्वनित करती हुई बारंबार कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं ॥ ६६-६७½ ॥

आजघ्नुः करजैश्चापि पाणिभिश्च शिरांस्युत ॥ ६८ ॥
लुलुचुश्च तदा केशान् क्रोशन्त्यस्तत्र तत्र ह ।
हाहाकारविनादिन्यो विनिघ्नन्त्य उरांसि च ॥ ६९ ॥
शोचन्त्यस्तत्र रुरुदुः क्रन्दमाना विशाम्पते ।

वे जहाँ-तहाँ हाहाकार करती हुई अपने ऊपर नखोंसे आघात करने, हाथोंसे सिर और छाती पीटने तथा केश नोचने लगीं । प्रजानाथ ! शोकमें डूबकर पतिको पुकारती हुई वे रानियाँ करुण स्वरसे क्रन्दन करने लगीं ॥ ६८-६९½ ॥

ततो दुर्योधनामात्याः साश्रुकण्ठा भृशातुराः ॥ ७० ॥
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ।

इससे दुर्योधनके मन्त्रियोंका गला भर आया और वे अत्यन्त व्याकुल हो राजमहिलाओंको साथ ले नगरकी ओर चल दिये ॥ ७०½ ॥

वेत्रव्यासक्तहस्ताश्च द्वाराध्यक्षा विशाम्पते ॥ ७१ ॥
शयनीयानि शुभ्राणि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च ।
समादाय ययुस्तूर्णं नगरं दाररक्षिणः ॥ ७२ ॥

प्रजानाथ ! उनके साथ हाथोंमें बेंतकी छड़ी लिये द्वारपाल भी चल रहे थे । रानियोंकी रक्षामें नियुक्त हुए सेवक शुभ्र एवं बहुमूल्य बिछौने लेकर शीघ्रतापूर्वक नगरकी ओर चलने लगे ॥ ७१-७२ ॥

आस्थायाश्वतरीयुक्तान् स्यन्दनानपरे पुनः ।
स्वान् स्वान् दारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ७३ ॥

अन्य बहुत-से राजकीय पुरुष खच्चरियोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ़ हो अपनी-अपनी रक्षामें स्थित स्त्रियोंको लेकर नगरकी ओर यात्रा करने लगे ॥ ७३ ॥

अदृष्टपूर्वा या नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु ।
ददृशुस्ता महाराज जना याताः पुरं प्रति ॥ ७४ ॥

महाराज ! जिन राजमहिलाओंको महलोंमें रहते समय पहले सूर्यदेवने भी नहीं देखा होगा, उन्हें ही नगरकी ओर जाते हुए साधारण लोग भी देख रहे थे ॥ ७४ ॥

ताः स्त्रियो भरतश्रेष्ठ सौकुमार्यसमन्विताः ।
प्रययुर्नगरं तूर्णं हतस्वजनबान्धवाः ॥ ७५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जिनके स्वजन और बान्धव मारे गये थे, वे सुकुमारी स्त्रियाँ तीव्र गतिसे नगरकी ओर जा रही थीं ॥ ७५ ॥

आगोपालाविपालेभ्यो द्रवन्तो नगरं प्रति ।
ययुर्मनुष्याः सम्भ्रान्ता भीमसेनभयार्दिताः ॥ ७६ ॥

उस समय भीमसेनके भयसे पीड़ित हो सभी मनुष्य गायों और भेड़ोंके चरवाहे तक घबराकर नगरकी ओर भाग रहे थे ॥ ७६ ॥

अपि चैषां भयं तीव्रं पार्थेभ्योऽभूत् सुदारुणम् ।
प्रेक्षमाणास्तदान्योन्यमाधावन्नगरं प्रति ॥ ७७ ॥

उन्हें कुन्तीके पुत्रोंसे दारुण एवं तीव्र भय प्राप्त हुआ था । वे एक दूसरेकी ओर देखते हुए नगरकी ओर भागने लगे ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने विद्रवे भृशदारुणे ।
युयुत्सुः शोकसम्मूढः प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ ७८ ॥

जब इस प्रकार अति भयंकर भगदड़ मची हुई थी, उस समय युयुत्सु शोकसे मूर्छित हो मन-ही-मन समयोचित कर्तव्यका विचार करने लगा— ॥ ७८ ॥

जितो दुर्योधनः संख्ये पाण्डवैर्भीमविक्रमैः ।
एकादशचमूभर्ता भ्रातरश्चास्य सूदिताः ॥ ७९ ॥

'भयंकर पराक्रमी पाण्डवोंने ग्यारह अक्षौहिणीसेनाके स्वामी राजा दुर्योधनको युद्धमें परास्त कर दिया और उसके भाइयोंको भी मार डाला ॥ ७९ ॥

हताश्च कुरवः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः ।
अहमेको विमुक्तस्तु भाग्ययोगाद् यदृच्छया ॥ ८० ॥

'भीष्म और द्रोणाचार्य जिनके अगुआ थे, वे समस्त कौरव मारे गये । अकस्मात् भाग्य-योगसे अकेला मैं ही बच गया हूँ ॥ ८० ॥

विद्रुतानि च सर्वाणि शिबिराणि समन्ततः ।
इतस्ततः पलायन्ते हतनाथा हतौजसः ॥ ८१ ॥

'सारे शिबिरके लोग सब ओर भाग गये । स्वामीके मारे जानेसे हतोत्साह होकर सभी सेवक इधर-उधर पलायन कर रहे हैं ॥ ८१ ॥

अदृष्टपूर्वा दुःखार्ता भयव्याकुललोचनाः ।
हरिणा इव वित्रस्ता वीक्षमाणा दिशो दश ॥ ८२ ॥
दुर्योधनस्य सचिवा ये केचिदवशेषिताः ।
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ८३ ॥

'उन सबकी ऐसी अवस्था हो गयी है, जैसी पहले कभी नहीं देखी गयी । सभी दुःखसे आतुर हैं और सबके नेत्र भयसे व्याकुल हो उठे हैं । सभी लोग भयभीत मृगोंके समान दसों दिशाओंकी ओर देख रहे हैं । दुर्योधनके मन्त्रियोंमेंसे जो कोई बच गये हैं, वे राजमहिलाओंको साथ लेकर नगरकी ओर जा रहे हैं ॥ ८२-८३ ॥

प्राप्तकालमहं मन्ये प्रवेशं तैः सह प्रभुम् ।
युधिष्ठिरमनुज्ञाय वासुदेवं तथैव च ॥ ८४ ॥

'मैं राजा युधिष्ठिर और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर उन मन्त्रियोंके साथ ही नगरमें प्रवेश करूँ, यही मुझे समयोचित कर्तव्य जान पड़ता है' ॥ ८४ ॥

एतमर्थं महाबाहुरुभयोः स न्यवेदयत् ।
तस्य प्रीतोऽभवद् राजा नित्यं करुणवेदिता ॥ ८५ ॥
परिष्वज्य महाबाहुर्वैश्यापुत्रं व्यसर्जयत् ।

ऐसा सोचकर महाबाहु युयुत्सुने उन दोनोंके सामने अपना विचार प्रकट किया । उसकी बात सुनकर निरन्तर करुणाका अनुभव करनेवाले महाबाहु राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने वैश्यकुमारीके पुत्र युयुत्सुको छातीसे लगाकर बिदा कर दिया ॥ ८५½ ॥

ततः स रथमास्थाय द्रुतमश्वानचोदयत् ॥ ८६ ॥
संवाहयितवांश्चापि राजदारान् पुरं प्रति ।

तत्पश्चात् उसने रथपर बैठाकर तुरंत ही अपने घोड़े बढ़ाये और राजकुलकी स्त्रियोंको राजधानीमें पहुँचा दिया ॥

तैश्चैव सहितः क्षिप्रमस्तं गच्छति भास्करे ॥ ८७ ॥
प्रविष्टो हास्तिनपुरं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ।

सूर्यके अस्त होते-होते नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उसने उन सबके साथ हस्तिनापुरमें प्रवेश किया । उस समय उसका गला भर आया था ॥ ८७½ ॥

अपश्यत महाप्राज्ञं विदुरं साश्रुलोचनम् ॥ ८८ ॥
राज्ञः समीपान्निष्क्रान्तं शोकोपहतचेतसम् ।

राजन् ! वहाँ उसने आपके पाससे निकले हुए महाज्ञानी विदुरजीका दर्शन किया, जिनके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे और मन शोकमें डूबा हुआ था ॥ ८८½ ॥

तमब्रवीत् सत्यधृतिः प्रणतं त्वग्रतः स्थितम् ॥ ८९ ॥
दिष्ट्या कुरुक्षये वृत्ते अस्मिंस्त्वं पुत्र जीवसि ।
विना राज्ञः प्रवेशाद् वै किमसि त्वमिहागतः ॥ ९० ॥
एतद् वै कारणं सर्वं विस्तरेण निवेदय ।

सत्यपरायण विदुरने प्रणाम करके सामने खड़े हुए युयुत्सुसे कहा—'बेटा ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि कौरवोंके इस विकट संहारमें भी तुम जीवित बच गये हो; परंतु राजा युधिष्ठिरके हस्तिनापुरमें प्रवेश करनेसे पहले ही तुम यहाँ कैसे चले आये ? यह सारा कारण मुझे विस्तारपूर्वक बताओ' ॥

युयुत्सुरुवाच

निहते शकुनौ तत्र सज्ञातिसुतबान्धवे ॥ ९१ ॥
हतशेषपरीवारो राजा दुर्योधनस्ततः ।
स्वकं स हयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद् भयात् ॥ ९२ ॥

युयुत्सुने कहा—चाचाजी ! जाति, भाई और पुत्र-सहित शकुनिके मारे जानेपर जिसके शेष परिवार नष्ट हो गये थे, वह राजा दुर्योधन अपने घोड़ेको युद्धभूमिमें ही छोड़कर भयके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग गया ॥ ९१-९२ ॥

अपक्रान्ते तु नृपतौ स्कन्धावारनिवेशनात् ।
भयव्याकुलितं सर्वं प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥ ९३ ॥

राजाके छावनीसे दूर भाग जानेपर सब लोग भयसे व्याकुल हो राजधानीकी ओर भाग चले ॥ ९३ ॥

ततो राज्ञः कलत्राणि भ्रातॄणां चास्य सर्वतः ।
वाहनेषु समारोप्य अध्यक्षाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ९४ ॥

तब राजा तथा उनके भाइयोंकी पत्नियोंको सब ओरसे सवारियोंपर बिठाकर अन्तःपुरके अध्यक्ष भी भयके मारे भाग खड़े हुए ॥ ९४ ॥

ततोऽहं समनुज्ञाप्य राजानं सहकेशवम् ।
प्रविष्टो हास्तिनपुरं रक्षँल्लोकान् प्रधावितान् ॥ ९५ ॥

तदनन्तर मैं भगवान् श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर भागे हुए लोगोंकी रक्षाके लिये हस्तिनापुरमें चला आया हूँ ॥ ९५ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वैश्यापुत्रेण भाषितम् ।
प्राप्तकालमिति ज्ञात्वा विदुरः सर्वधर्मवित् ॥ ९६ ॥
अपूजयदमेयात्मा युयुत्सुं वाक्यमब्रवीत् ।
प्राप्तकालमिदं सर्वं ब्रुवता भरतक्षये ॥ ९७ ॥
रक्षितः कुलधर्मश्च सानुक्रोशतया त्वया ।

वैश्यापुत्र युयुत्सुकी कही हुई यह बात सुनकर और इसे समयोचित जानकर सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा अमेय आत्म-बलसे सम्पन्न विदुरजीने युयुत्सुकी भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं इस प्रकार कहा—'भरतवंशियोंके इस विनाशके समय जो यह समयोचित कर्तव्य प्राप्त था, वह सब बताकर अपनी दयालुता-

के कारण तुमने कुल-धर्मकी रक्षा की है ॥ ९६-९७½ ॥

दिष्ट्या त्वामिह संग्रामादस्माद् वीरक्षयात् पुरम् ॥९८॥
समागतमपश्याम ह्यंशुमन्तमिव प्रजाः ।

'वीरोंका विनाश करनेवाले इस संग्रामसे बचकर तुम कुशलपूर्वक नगरमें लौट आये—इस अवस्थामें हमने तुम्हें उसी प्रकार देखा है, जैसे रात्रिके अन्तमें प्रजा भगवान् भास्करका दर्शन करती है ॥ ९८½ ॥

अन्धस्य नृपतेर्यष्टिर्लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥ ९९ ॥
बहुशो याच्यमानस्य दैवोपहतचेतसः ।
त्वमेको व्यसनार्तस्य ध्रियसे पुत्र सर्वथा ॥१००॥

'लोभी, अदूरदर्शी और अन्धे राजाके लिये तुम लाठीके सहारे हो । मैंने उनसे युद्ध रोकनेके लिये बारंबार याचना की थी, परंतु दैवसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी । आज वे संकटसे पीड़ित हैं, बेटा ! इस अवस्थामें एकमात्र तुम्हीं उन्हें सहारा देनेके लिये जीवित हो ॥ ९९-१०० ॥

अद्य त्वमिह विश्रान्तः श्वोऽभिगन्ता युधिष्ठिरम् ।
एतावदुक्त्वा वचनं विदुरः साश्रुलोचनः ॥१०१॥
युयुत्सुं समनुप्राप्य प्रविवेश नृपक्षयम् ।
पौरजानपदैर्दुःखाद्धाहेति भृशनादितम् ॥१०२॥

'आज यहीं विश्राम करो । कल सबेरे युधिष्ठिरके पास चले जाना' ऐसा कहकर नेत्रोंमें आँसू भरे विदुरजीने युयुत्सुको साथ लेकर राजमहलमें प्रवेश किया । वह भवन नगर और जनपदके लोगोंद्वारा दुःखपूर्वक किये जानेवाले हाहाकार एवं भयंकर आर्तनादसे गूँज उठा था ॥ १०१-१०२ ॥

निरानन्दं गतश्रीकं हृतारामभिवाशयम् ।
शून्यरूपमपध्वस्तं दुःखाद् दुःखतरोऽभवत् ॥१०३॥

वहाँ न तो आनन्द था और न वैभवजनित शोभा ही दृष्टिगोचर होती थी । वह राजभवन उस जलाशयके समान जनशून्य और विध्वस्त-सा जान पड़ता था, जिसके तटका उद्यान नष्ट हो गया हो । वहाँ पहुँचकर विदुरजी दुःखसे अत्यन्त खिन्न हो गये ॥ १०३ ॥

विदुरः सर्वधर्मज्ञो विक्लवेनान्तरात्मना ।
विवेश नगरे राजन् निःश्वास शनैः शनैः ॥१०४॥

राजन् ! सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता विदुरजीने व्याकुल अन्तःकरणसे नगरमें प्रवेश किया और धीरे-धीरे वे लंबी साँस खींचने लगे ॥ १०४ ॥

युयुत्सुरपि तां रात्रिं स्वगृहे न्यवसत् तदा ।
वन्द्यमानः स्वकैश्चापि नाभ्यनन्दत् सुदुःखितः ।
चिन्तयानः क्षयं तीव्रं भरतानां परस्परम् ॥१०५॥

युयुत्सु भी उस रातमें अपने घरपर ही रहे । उनके मनमें अत्यन्त दुःख था, इसलिये वे स्वजनोंद्वारा वन्दित होनेपर भी प्रसन्न नहीं हुए । इस पारस्परिक युद्धसे भरतवंशियोंका जो घोर संहार हुआ था, उसीकी चिन्तामें वे निमग्न हो गये थे ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि ह्रदप्रवेशपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत ह्रदप्रवेशपर्वमें उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८ श्लोक मिलाकर कुल ११३ श्लोक हैं)

(गदापर्व)

त्रिंशोऽध्यायः

अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्यका सरोवरपर जाकर दुर्योधनसे युद्ध करनेके विषयमें बातचीत करना, व्याधोंसे दुर्योधनका पता पाकर युधिष्ठिरका सेनासहित सरोवरपर जाना और कृपाचार्य आदिका दूर हट जाना

धृतराष्ट्र उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे ।
मम सैन्यावशिष्टास्ते किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब पाण्डुके पुत्रोंने समराङ्गणमें समस्त सेनाओंका संहार कर डाला, तब मेरी सेनाके शेष वीरोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

कृतवर्मा कृपश्चैव द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ।
दुर्योधनश्च मन्दात्मा राजा किमकरोत् तदा ॥ २ ॥

कृतवर्मा, कृपाचार्य, पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तथा मन्दबुद्धि राजा दुर्योधनने उस समय क्या किया ? ॥ २ ॥

संजय उवाच

सम्प्राद्रवत्सु दारेषु क्षत्रियाणां महात्मनाम् ।
विद्रुते शिबिरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! जब महामनस्वी क्षत्रिय राजाओंकी पत्नियाँ भाग चलीं और सब लोगोंके पलायन करनेसे सारा शिबिर सूना हो गया, उस समय पूर्वोक्त तीनों रथी अत्यन्त उद्विग्न हो गये ॥ ३ ॥

निशम्य पाण्डुपुत्राणां तदा वै जयिनां स्वनम् ।
विद्रुतं शिबिरं दृष्ट्वा सायाह्ने राजगृद्धिनः ॥ ४ ॥
स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः ।

सायंकालमें विजयी पाण्डवोंकी गर्जना सुनकर और अपने सारे शिविरके लोगोंको भागा हुआ देखकर राजा दुर्योधनको चाहनेवाले उन तीनों महारथियोंको वहाँ ठहरना अच्छा न लगा; इसलिये वे उसी सरोवरके तटपर गये ॥ ४½ ॥

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे ॥ ५ ॥
हृष्टः पर्यचरद् राजन् दुर्योधनवधेप्सया ।

राजन् ! इधर धर्मात्मा युधिष्ठिर भी रणभूमिमें दुर्योधनके बधकी इच्छासे बड़े हर्षके साथ भाइयोंसहित विचर रहे थे ॥

मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः ॥ ६ ॥
यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यञ्जनाधिपम् ।

विजयके अभिलाषी पाण्डव अत्यन्त कुपित होकर आपके पुत्रका पता लगाने लगे; परंतु यत्नपूर्वक खोज करनेपर भी उन्हें राजा दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया ॥ ६½ ॥

स हि तीव्रेण वेगेन गदापाणिरपाक्रमत् ॥ ७ ॥
तं ह्रदं प्राविशच्चापि विष्टभ्यापः स्वमायया ।

वह हाथमें गदा लेकर तीव्र वेगसे भागा और अपनी मायासे जलको स्तम्भित करके उस सरोवरके भीतर जा घुसा ॥

यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः ॥ ८ ॥
ततः स्वशिविरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः ।

दुर्योधनकी खोज करते-करते जब पाण्डवोंके वाहन बहुत थक गये, तब सभी पाण्डव सैनिकोंसहित अपने शिविरमें आकर ठहर गये ॥ ८½ ॥

ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ९ ॥
संनिविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः ।

तदनन्तर जब कुन्तीके सभी पुत्र शिविरमें विश्राम करने लगे, तब कृपाचार्य, अश्वत्थामा और सात्वतवंशी कृतवर्मा धीरे-धीरे उस सरोवरके तटपर जा पहुँचे ॥ ९½ ॥

ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः ॥ १० ॥
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि ।
राजन्नुत्तिष्ठ युद्धस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
जित्वा वा पृथिवीं भुङ्क्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।

जिसमें राजा दुर्योधन सो रहा था, उस सरोवरके समीप पहुँचकर, वे जलमें सोये हुए उस दुर्धर्ष नरेशसे इस प्रकार बोले—'राजन् ! उठो और हमारे साथ चलकर युधिष्ठिरसे युद्ध करो। विजयी होकर पृथ्वीका राज्य भोगो अथवा मारे जाकर स्वर्गलोक प्राप्त करो ॥ १०-११½ ॥

तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया ॥ १२ ॥
प्रतिविद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः ।
न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशाम्पते ॥ १३ ॥
अस्माभिरपि गुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत ।

'प्रजानाथ दुर्योधन ! भरतनन्दन ! तुमने भी तो पाण्डवोंकी सारी सेनाका संहार कर डाला है। वहाँ जो सैनिक शेष रह गये हैं, वे भी बहुत घायल हो चुके हैं; अतः जब तुम हमारेद्वारा सुरक्षित होकर उनपर आक्रमण करोगे तो वे तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे; इसलिये तुम युद्धके लिये उठो' ॥

दुर्योधन उवाच

दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात् पुरुषक्षयात् ॥ १४ ॥
पाण्डुकौरवसम्मर्दाज्जीवमानान् नरर्षभान् ।

दुर्योधन बोला—मैं ऐसे जनसंहारकारी पाण्डव-कौरव-संग्रामसे आप सभी नरश्रेष्ठ वीरोंको जीवित बचा हुआ देख रहा हूँ, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ १४½ ॥

विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः ॥ १५ ॥
भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृशविक्षताः ।
उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये ॥ १६ ॥

हम सब लोग विश्राम करके अपनी थकावट दूर कर लें तो अवश्य विजयी होंगे। आप लोग भी बहुत थके हुए हैं और हम भी अत्यन्त घायल हो चुके हैं। उधर पाण्डवोंका बल बढ़ा हुआ है; इसलिये इस समय मेरी युद्ध करनेकी रुचि नहीं हो रही है ॥ १५-१६ ॥

न त्वेतदद्भुतं वीरा यद् वो महदिदं मनः ।
अस्मासु च परा भक्तिर्न तु कालः पराक्रमे ॥ १७ ॥

वीरो ! आपके मनमें जो युद्धके लिये महान् उत्साह बना हुआ है, यह कोई अद्भुत बात नहीं है। आपलोगोंका मुझपर महान् प्रेम भी है, तथापि यह पराक्रम प्रकट करनेका समय नहीं है ॥ १७ ॥

विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे ।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रूञ्छ्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः ॥ १८ ॥

आज एक रात विश्राम करके कल सबेरे रणभूमिमें आप लोगोंके साथ रहकर मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ १८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तोऽब्रवीद् द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम् ।
उत्तिष्ठ राजन् भद्रं ते विजेष्यामो वयं परान् ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर द्रोणकुमारने उस रणदुर्मद राजासे इस प्रकार कहा—'महाराज ! उठो, तुम्हारा कल्याण हो। हम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे ॥

इष्टापूर्तेन दानेन सत्येन च जपेन च ।
शपे राजन् यथा ह्यद्य निहनिष्यामि सोमकान् ॥ २० ॥

'राजन् ! मैं अपने इष्टापूर्त कर्म, दान, सत्य और जपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आज सोमकोंका संहार कर डालूँगा ॥

मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिमाप्नुयां सज्जनोचिताम् ।
यदीमां रजनीं व्युष्टां न हि हन्मि परान् रणे ॥ २१ ॥

'यदि यह रात बीतते ही प्रातःकाल रणभूमिमें शत्रुओंको न मार डालूँ तो मुझे सज्जन पुरुषोंके योग्य और यज्ञकर्ताओंको प्राप्त होनेवाली प्रसन्नता न प्राप्त हो ॥ २१ ॥

नाहत्वा सर्वपञ्चालान् विमोक्ष्ये कवचं विभो ।
इति सत्यं ब्रवीम्येतत्तन्मे शृणु जनाधिप ॥ २२ ॥

'प्रभो ! नरेश्वर ! मैं समस्त पाञ्चालोंका संहार किये बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा, यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ। मेरे इस कथनको तुम ध्यानसे सुनो' ॥ २२ ॥

तेषु सम्भाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः ।
मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया ॥ २३ ॥

वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि मांसके भारसे थके हुए बहुत-से व्याध उस स्थानपर पानी पीनेके लिये अकस्मात् आ पहुँचे ॥ २३ ॥

ते तत्र धिष्ठितास्तेषां सर्वं तद् वचनं रहः ।
दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः संगता मिथः ॥ २४ ॥

उन्होंने वहाँ खड़े होकर उनकी एकान्तमें होनेवाली सारी बातें सुन लीं । परस्पर मिले हुए उन व्याधोंने दुर्योधनकी भी बात सुनी ॥ २४ ॥

तेऽपि सर्वे महेष्वासा अयुद्धार्थिनि कौरवे ।
निर्बन्धं परमं चक्रुस्तदा वै युद्धकाङ्क्षिणः ॥ २५ ॥

कुरुराज दुर्योधन युद्ध नहीं चाहता था तो भी युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वे सभी महाधनुर्धर योद्धा उससे युद्ध छेड़नेके लिये बड़ा आग्रह कर रहे थे ॥ २५ ॥

तांस्तथा समुदीक्ष्याथ कौरवाणां महारथान् ।
अयुद्धमनसं चैव राजानं स्थितमम्भसि ॥ २६ ॥
तेषां श्रुत्वा च संवादं राज्ञश्च सलिले सतः ।
व्याधाभ्यजानन् राजेन्द्र सलिलस्थं सुयोधनम् ॥ २७ ॥

राजन् ! उन कौरवमहारथियोंकी वैसी मनोवृत्ति जानकर जलमें ठहरे हुए राजा दुर्योधनके मनमें युद्धका उत्साह न देखकर और सलिलनिवासी नरेशके साथ उन तीनोंका संवाद सुनकर व्याध यह समझ गये कि 'दुर्योधन इसी सरोवरके जलमें छिपा हुआ है' ॥ २६-२७ ॥

ते पूर्वं पाण्डुपुत्रेण पृष्टा ह्यासन् सुतं तव ।
यदृच्छोपगतास्तत्र राजानं परिमार्गता ॥ २८ ॥

पहले राजा दुर्योधनकी खोज करते हुए पाण्डुकुमार युधिष्ठिरने दैववश अपने पास पहुँचे हुए उन व्याधोंसे आपके पुत्रका पता पूछा था ॥ २८ ॥

ततस्ते पाण्डुपुत्रस्य स्मृत्वा तद् भाषितं तदा ।
अन्योन्यमब्रुवन् राजन् मृगव्याधाः शनैरिव ॥ २९ ॥

राजन् ! उस समय पाण्डुपुत्रकी कही हुई बात याद करके वे व्याध आपसमें धीरे-धीरे बोले—॥ २९ ॥

दुर्योधनं ख्यापयामो धनं दास्यति पाण्डवः ।
सुव्यक्तमिह नः ख्यातो ह्रदे दुर्योधनो नृपः ॥ ३० ॥

'यदि हम दुर्योधनका पता बता दें तो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हमें धन देंगे। हमें तो यहाँ यह स्पष्टरूपसे ज्ञात हो गया कि राजा दुर्योधन इसी सरोवरमें छिपा हुआ है ॥ ३० ॥

तस्माद् गच्छामहे सर्वे यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
आख्यातुं सलिले सुप्तं दुर्योधनममर्षणम् ॥ ३१ ॥

अतः जलमें सोये हुए अमर्षशील दुर्योधनका पता बतानेके लिये हम सब लोग उस स्थानपर चलें, जहाँ राजा युधिष्ठिर मौजूद हैं ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्रात्मजं तस्मै भीमसेनाय धीमते ।
शयानं सलिले सर्वे कथयामो धनुर्भृते ॥ ३२ ॥

'बुद्धिमान् धनुर्धर भीमसेनको हम सब यह बता दें कि धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन जलमें सो रहा है ॥ ३२ ॥

स नो दास्यति सुप्रीतो धनानि बहुलान्युत ।
किं नो मांसेन शुष्केण परिक्लिष्टेन शोषिणा ॥ ३३ ॥

'इससे अत्यन्त प्रसन्न होकर वे हमें बहुत धन देंगे । फिर हमें शरीरका रक्त सुखा देनेवाले इस सूखे मांसको ढोकर व्यर्थ कष्ट उठानेकी क्या आवश्यकता है ?' ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः सम्प्रहृष्टा धनार्थिनः ।
मांसभारानुपादाय प्रययुः शिबिरं प्रति ॥ ३४ ॥

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके धनकी अभिलाषा रखनेवाले वे व्याध बड़े प्रसन्न हुए और मांसके बोझ उठाकर पाण्डव-शिविरकी ओर चल दिये ॥ ३४ ॥

पाण्डवापि महाराज लब्धलक्ष्याः प्रहारिणः ।
अपश्यमानाः समरे दुर्योधनमवस्थितम् ॥ ३५ ॥
निकृतेस्तस्य पापस्य ते पारं गमनेप्सवः ।
चारान् सम्प्रेषयामासुः समन्तात् तद्रणाजिरे ॥ ३६ ॥

महाराज ! प्रहार करनेमें कुशल पाण्डवोंने अपना लक्ष्य सिद्ध कर लिया था; उन्होंने दुर्योधनको समराङ्गणमें खड़ा न देख उस पापीके किये हुए छल-कपटका बदला चुकाकर वैरके पार जानेकी इच्छासे उस संग्रामभूमिमें चारों ओर गुप्तचर भेज रक्खे थे ॥ ३५-३६ ॥

आगम्य तु ततः सर्वे नष्टं दुर्योधनं नृपम् ।
न्यवेदयन्त सहिता धर्मराजस्य सैनिकाः ॥ ३७ ॥

धर्मराजके उन सभी गुप्तचर सैनिकोंने एक साथ लौटकर यह निवेदन किया कि 'राजा दुर्योधन लापता हो गया है' ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा चाराणां भरतर्षभ ।
चिन्तामभ्यगमत् तीव्रां निःशश्वास च पार्थिवः ॥ ३८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन गुप्तचरोंकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर घोर चिन्तामें पड़ गये और लंबी साँस खींचने लगे ॥ ३८ ॥

अथ स्थितानां पाण्डूनां दीनानां भरतर्षभ ।
तस्माद् देशादपक्रम्य त्वरिता लुब्धका विभो ॥ ३९ ॥
आजग्मुः शिबिरं हृष्टा दृष्ट्वा दुर्योधनं नृपम् ।
वार्यमाणाः प्रविष्टाश्च भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ४० ॥

भरतभूषण ! नरेश ! तदनन्तर जब पाण्डव खिन्न होकर बैठे हुए थे, उसी समय वे व्याध राजा दुर्योधनको अपनी आँखों देखकर तुरंत ही उस स्थानसे हट गये और बड़े हर्षके साथ पाण्डव-शिविरमें जा पहुँचे । द्वारपालोंके रोकनेपर भी वे भीमसेनके देखते-देखते भीतर घुस गये ॥ ३९-४० ॥

ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम् ।
तस्मै तत् सर्वमाचख्युर्यद् वृत्तं यच्च वै श्रुतम् ॥ ४१ ॥

महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेनके पास जाकर उन्होंने सरोवरके तटपर जो कुछ हुआ था और जो कुछ सुननेमें आया था, वह सब कह सुनाया ॥ ४१ ॥

ततो वृकोदरो राजन् दत्त्वा तेषां धनं बहु ।

धर्मराजाय तत् सर्वमाचचक्षे परंतपः ॥ ४२ ॥

राजन् ! तब शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमने उन व्याधोंको बहुत धन देकर धर्मराजसे सारा समाचार कहा ॥४२॥

असौ दुर्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः ।
संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे ॥ ४३ ॥

वे बोले—'धर्मराज ! मेरे व्याधोंने राजा दुर्योधनका पता लगा लिया है। आप जिसके लिये संतप्त हैं, वह मायासे पानी बाँधकर सरोवरमें सो रहा है' ॥ ४३ ॥

तद् वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशाम्पते ।
अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोऽभूत् सह सोदरैः ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! भीमसेनका वह प्रिय वचन सुनकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए॥

तं च श्रुत्वा महेष्वासं प्रविष्टं सलिलह्रदे ।
क्षिप्रमेव ततोऽगच्छन् पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ४५ ॥

महाधनुर्धर दुर्योधनको पानीसे भरे सरोवरमें घुसा सुनकर राजा युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णको आगे करके शीघ्र ही वहाँसे चल दिये ॥ ४५ ॥

ततः किलकिलाशब्दः प्रादुरासीद् विशाम्पते ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ ! फिर तो हर्षमें भरे हुए पाण्डव और पाञ्चालोंकी किलकिलाहटका शब्द सब ओर गूँजने लगा ॥ ४६ ॥

सिंहनादांस्ततश्चक्रुः क्ष्वेडाश्च भरतर्षभ ।
त्वरिताः क्षत्रिया राजञ्जग्मुर्द्वैपायनं ह्रदम् ॥ ४७ ॥

भरतभूषण नरेश ! वे सभी क्षत्रिय सिंहनाद एवं गर्जना करने लगे तथा तुरंत ही द्वैपायन नामक सरोवरके पास जा पहुँचे ॥ ४७ ॥

ज्ञातः पापो धार्तराष्ट्रो दृष्टश्चेत्यसकृद्रणे ।
प्राक्रोशन् सोमकास्तत्र हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ ४८ ॥

हर्षमें भरे हुए सोमक वीर रणभूमिमें सब ओर पुकार-पुकारकर कहने लगे 'धृतराष्ट्रके पापी पुत्रका पता लग गया और उसे देख लिया गया' ॥ ४८ ॥

तेषामाशु प्रयातानां रथानां तत्र वेगिनाम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिविस्पृक् पृथिवीपते ॥ ४९ ॥

पृथ्वीनाथ ! वहाँ शीघ्रतापूर्वक यात्रा करनेवाले उनके वेगशाली रथोंका घोर घर्घर शब्द आकाशमें व्याप्त हो गया ॥

दुर्योधनं परीप्सन्तस्तत्र तत्र युधिष्ठिरम् ।
अन्वयुस्त्वरितास्ते वै राजानं श्रान्तवाहनाः ॥ ५० ॥
अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी चापराजितः ॥ ५१ ॥
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिश्च महारथः ।
पञ्चालानां च ये शिष्टा द्रौपदेयाश्च भारत ॥ ५२ ॥
हयाश्च सर्वे नागाश्च शतशश्च पदातयः ।

भारत ! उस समय अर्जुन, भीमसेन, माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव, पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न, अपराजित वीर शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, महारथी सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा पाञ्चालोंमेंसे जो जीवित बच गये थे, वे वीर दुर्योधनको पकड़नेकी इच्छासे अपने वाहनोंके थके होनेपर भी बड़ी उतावलीके साथ राजा युधिष्ठिरके पीछे-पीछे गये। उनके साथ सभी घुड़सवार, हाथीसवार और सैकड़ों पैदल सैनिक भी थे ॥ ५०—५२½ ॥

ततः प्राप्तो महाराज धर्मराजः प्रतापवान् ॥ ५३ ॥
द्वैपायनं ह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत् ।

महाराज ! तत्पश्चात् प्रतापी धर्मराज युधिष्ठिर उस भयंकर द्वैपायनह्रदके तटपर जा पहुँचे, जिसके भीतर दुर्योधन छिपा हुआ था ॥ ५३½ ॥

शीतामलजलं हृद्यं द्वितीयमिव सागरम् ॥ ५४ ॥
मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत् ते स्थितः सुतः ।
अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत ॥ ५५ ॥

उसका जल शीतल और निर्मल था। वह देखनेमें मनोरम और दूसरे समुद्रके समान विशाल था। भारत ! उसीके भीतर मायाद्वारा जलको स्तम्भित करके दैवयोग एवं अद्भुत विधिसे आपका पुत्र विश्राम कर रहा था ॥ ५४-५५ ॥

सलिलान्तर्गतः शेते दुर्दर्शः कस्यचित् प्रभो ।
मानुषस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः ॥ ५६ ॥

प्रभो ! नरेन्द्र ! हाथमें गदा लिये राजा दुर्योधन जलके भीतर सोया था। उस समय किसी भी मनुष्यके लिये उसको देखना कठिन था ॥ ५६ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सलिलान्तर्गतो वसन् ।
शुश्रुवे तुमुलं शब्दं जलदोपमनिःस्वनम् ॥ ५७ ॥

तदनन्तर पानीके भीतर बैठे हुए राजा दुर्योधनने मेघकी गर्जनाके समान भयंकर शब्द सुना ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिरश्च राजेन्द्र तं ह्रदं सह सोदरैः ।
आजगाम महाराज तव पुत्रवधाय वै ॥ ५८ ॥

राजेन्द्र ! महाराज ! आपके पुत्रका वध करनेके लिये राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ उस सरोवरके तटपर आ पहुँचे ॥ ५८ ॥

महता शङ्खनादेन रथनेमिस्वनेन च ।
ऊर्ध्वं धुन्वन् महारेणुं कम्पयंश्चापि मेदिनीम् ॥ ५९ ॥
यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथाः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिदमब्रुवन् ॥ ६० ॥

वे महान् शङ्खनाद तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटसे पृथ्वीको कँपाते और धूलका महान् ढेर ऊपर उड़ाते हुए वहाँ आये थे। युधिष्ठिरकी सेनाका कोलाहल सुनकर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा तीनों महारथी राजा दुर्योधनसे इस प्रकार बोले—॥ ५९-६० ॥

इमे ह्यायान्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान् ॥ ६१ ॥

'ये विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डव बड़े हर्षमें भर-

कर इधर ही आ रहे हैं। अतः हमलोग यहाँसे हट जायँगे। इसके लिये तुम हमें आज्ञा प्रदान करो' ॥ ६१ ॥

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनाम्।
तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययास्तम्भयत् प्रभो ॥ ६२ ॥

प्रभो! उन वेगशाली वीरोंकी वह बात सुनकर दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर उस सरोवरके जलको पुनः मायाद्वारा स्तम्भित कर दिया ॥ ६२ ॥

ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः।
जग्मुर्दूरे महाराज कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६३ ॥

महाराज! राजाकी आज्ञा लेकर अत्यन्त शोकमें डूबे हुए कृपाचार्य आदि महारथी वहाँसे दूर चले गये ॥ ६३ ॥

ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष।
न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति ॥ ६४ ॥

मान्यवर! दूरके मार्गपर जाकर उन्हें एक बरगदका वृक्ष दिखायी दिया। वे अत्यन्त थके होनेके कारण राजा दुर्योधनके विषयमें चिन्ता करते हुए उसीके नीचे बैठ गये॥

विष्टभ्य सलिलं सुप्तो धार्तराष्ट्रो महाबलः।
पाण्डवाश्चापि सम्प्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सवः ॥ ६५ ॥

इधर महाबली धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन पानी बाँधकर सो गया। इतनेहीमें युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले पाण्डव भी वहाँ आ पहुँचे ॥ ६५ ॥

कथं नु युद्धं भविता कथं राजा भविष्यति।
कथं नु पाण्डवा राजन् प्रतिपत्स्यन्ति कौरवम्॥ ६६ ॥
इत्येवं चिन्तयानास्तु रथेभ्योऽश्वान् विमुच्य ते।
तत्रासांचक्रिरे राजन् कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६७ ॥

राजन्! उधर कृपाचार्य आदि महारथी रथोंसे घोड़ोंको खोलकर यह सोचने लगे कि 'अब युद्ध किस तरह होगा? राजा दुर्योधनकी क्या दशा होगी और पाण्डव किस प्रकार कुरुराज दुर्योधनका पता पायेंगे' ऐसी चिन्ता करते हुए वे वहाँ बैठकर आराम करने लगे ॥ ६६-६७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

पाण्डवोंका द्वैपायनसरोवरपर जाना, वहाँ युधिष्ठिर और श्रीकृष्णकी बातचीत तथा तालाबमें छिपे हुए दुर्योधनके साथ युधिष्ठिरका संवाद

संजय उवाच

ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवाः।
ते ह्रदं प्रत्यपद्यन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं——महाराज! उन तीनों रथियोंके हट जानेपर पाण्डव उस सरोवरके तटपर आये, जिसमें दुर्योधन छिपा हुआ था ॥ १ ॥

आसाद्य च कुरुश्रेष्ठ तदा द्वैपायनं ह्रदम्।
स्तम्भितं धार्तराष्ट्रेण दृष्ट्वा तं सलिलाशयम् ॥ २ ॥
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दनः।
पश्येमां धार्तराष्ट्रेण मायामप्सु प्रयोजिताम् ॥ ३ ॥

कुरुश्रेष्ठ! द्वैपायन-कुण्डपर पहुँचकर युधिष्ठिरने देखा कि दुर्योधनने इस जलाशयके जलको स्तम्भित कर दिया है। यह देखकर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने भगवान् वासुदेवसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! देखिये तो सही, दुर्योधनने जलके भीतर इस मायाका कैसा प्रयोग किया है? ॥ २-३ ॥

विष्टभ्य सलिलं शेते नास्य मानुषतो भयम्।
दैवीं मायामिमां कृत्वा सलिलान्तर्गतो ह्ययम् ॥ ४ ॥

'यह पानीको रोककर सो रहा है। इसे यहाँ मनुष्यसे किसी प्रकारका भय नहीं है; क्योंकि यह इस दैवी मायाका प्रयोग करके जलके भीतर निवास करता है ॥ ४ ॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो न मे जीवन् विमोक्ष्यते।
यद्यस्य समरे साह्यं कुरुते वज्रभृत् स्वयम् ॥ ५ ॥
तथाप्येनं हतं युद्धे लोका द्रक्ष्यन्ति माधव।

'माधव! यद्यपि यह छल-कपटकी विद्यामें बड़ा चतुर है, तथापि कपट करके मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकता। यदि समराङ्गणमें साक्षात् वज्रधारी इन्द्र इसकी सहायता करें तो भी युद्धमें इसे सब लोग मरा हुआ ही देखेंगे' ॥ ५½ ॥

वासुदेव उवाच

मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत ॥ ६ ॥
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद् युधिष्ठिर।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा——भारत! मायावी दुर्योधनकी इस मायाको आप मायाद्वारा ही नष्ट कर डालिये! युधिष्ठिर! मायावीका वध मायासे ही करना चाहिये, यह सच्ची नीति है ॥ ६½ ॥

क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्मायामप्सु प्रयोज्य च ॥ ७ ॥
जहि त्वं भरतश्रेष्ठ मायात्मानं सुयोधनम्।

भरतश्रेष्ठ! आप बहुत-से रचनात्मक उपायोंद्वारा जलमें मायाका प्रयोग करके मायामय दुर्योधनका वध कीजिये ॥

क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः ॥ ८ ॥
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्बलिर्बद्धो महात्मना।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्हिरण्याक्षो महासुरः ॥ ९ ॥

रचनात्मक उपायोंसे ही इन्द्रने बहुत-से दैत्य और दानवोंका संहार किया, नाना प्रकारके रचनात्मक उपायोंसे ही महात्मा श्रीहरिने बलिको बाँधा और बहुसंख्यक रचनात्मक उपायोंसे ही उन्होंने महान् असुर हिरण्याक्षका वध किया था ॥ ८-९ ॥

हिरण्यकशिपुश्चैव क्रिययैव निषूदितौ ।
वृत्रश्च निहतो राजन् क्रिययैव न संशयः ॥ १० ॥

क्रियात्मक प्रयत्नके द्वारा ही भगवान्ने हिरण्यकशिपुको भी मारा था । राजन् ! वृत्रासुरका वध भी क्रियात्मक उपायसे ही हुआ था, इसमें संशय नहीं है ॥ १० ॥

तथा पौलस्त्यतनयो रावणो नाम राक्षसः ।
रामेण निहतो राजन् सानुबन्धः सहानुगः ॥ ११ ॥
क्रियया योगमास्थाय तथा त्वमपि विक्रम ।

राजन् ! पुलस्त्यकुमार विश्रवाका पुत्र रावणनामक राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा क्रियात्मक उपाय और युक्ति-कौशलके सहारे ही सम्बन्धियों और सेवकोंसहित मारा गया, उसी प्रकार आप भी पराक्रम प्रकट करें ॥ ११½ ॥

क्रियाभ्युपायैर्निहतौ मया राजन् पुरातनौ ॥ १२ ॥
तारकश्च महादैत्यो विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ।

नरेश्वर ! पूर्वकालके महादैत्य तारक और पराक्रमी विप्रचित्तिको मैंने क्रियात्मक उपायोंसे ही मारा था ॥ १२½ ॥

वातापिरिल्वलश्चैव त्रिशिराश्च तथा विभो ॥ १३ ॥
सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ ।
क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते विभो ॥ १४ ॥

प्रभो ! वातापि, इल्वल, त्रिशिरा तथा सुन्द-उपसुन्द नामक असुर भी कार्यकौशलसे ही मारे गये हैं । क्रियात्मक उपायोंसे ही इन्द्र स्वर्गका राज्य भोगते हैं ॥ १३-१४ ॥

क्रिया बलवती राजन् नान्यत् किंचिद् युधिष्ठिर ।
दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसाः पार्थिवास्तथा ॥ १५ ॥
क्रियाभ्युपायैर्निहताः क्रियां तस्मात् समाचर ।

राजन् ! कार्यकौशल ही बलवान् है, दूसरी कोई वस्तु नहीं । युधिष्ठिर ! दैत्य, दानव, राक्षस तथा बहुत-से भूपाल क्रियात्मक उपायोंसे ही मारे गये हैं; अतः आप भी क्रियात्मक उपायका ही आश्रय लें ॥ १५½ ॥

संजय उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः ॥ १६ ॥
जलस्थं तं महाराज तव पुत्रं महाबलम् ।
अभ्यभाषत कौन्तेयः प्रहसन्निव भारत ॥ १७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! भरतनन्दन ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर उत्तम एवं कठोर व्रतका पालन करनेवाले पाण्डुकुमार कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने जलमें स्थित हुए आपके महाबली पुत्रसे हँसते हुए-से कहा—॥ १६-१७ ॥

सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया ।
सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशाम्पते ॥ १८ ॥
जलाशयं प्रविष्टोऽद्य वाञ्छञ्जीवितमात्मनः ।
उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व सहास्माभिः सुयोधन ॥ १९ ॥

'प्रजानाथ सुयोधन ! तुमने किस लिये पानीमें यह अनुष्ठान आरम्भ किया है । सम्पूर्ण क्षत्रियों तथा अपने कुलका संहार कराकर आज अपनी जान बचानेकी इच्छासे तुम जलाशयमें घुसे बैठे हो । राजा सुयोधन ! उठो और हम लोगोंके साथ युद्ध करो ॥ १८-१९ ॥

स ते दर्पो नरश्रेष्ठ स च मानः क्व ते गतः ।
यस्त्वं संस्तभ्य सलिलं भीतो राजन् व्यवस्थितः॥ २० ॥

'राजन् ! नरश्रेष्ठ ! तुम्हारा वह पहलेका दर्प और अभिमान कहाँ चला गया, जो डरके मारे जलका स्तम्भन करके यहाँ छिपे हुए हो ? ॥ २० ॥

सर्वे त्वां शूर इत्येवं जना जल्पन्ति संसदि ।
व्यर्थं तद् भवतो मन्ये शौर्यं सलिलशायिनः ॥ २१ ॥

'सभामें सब लोग तुम्हें शूरवीर कहा करते हैं । जब तुम भयभीत होकर पानीमें सो रहे हो, तब तुम्हारे उस तथा-कथित शौर्यको मैं व्यर्थ समझता हूँ ॥ २१ ॥

उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व क्षत्रियोऽसि कुलोद्भवः ।
कौरवेयो विशेषेण कुलं जन्म च संस्मर ॥ २२ ॥

'राजन् ! उठो, युद्ध करो; क्योंकि तुम कुलीन क्षत्रिय हो, विशेषतः कुरुकुलकी संतान हो । अपने कुल और जन्मका स्मरण तो करो ॥ २२ ॥

स कथं कौरवे वंशे प्रशंसञ्जन्म चात्मनः ।
युद्धाद् भीतस्ततस्तोयं प्रविश्य प्रतितिष्ठसि ॥ २३ ॥

'तुम तो कौरववंशमें उत्पन्न होनेके कारण अपने जन्मकी प्रशंसा करते थे । फिर आज युद्धसे डरकर पानीके भीतर कैसे घुसे बैठे हो ? ॥ २३ ॥

अयुद्धमव्यवस्थानं नैष धर्मः सनातनः ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन् पलायनम् ॥ २४ ॥

'नरेश्वर ! युद्ध न करना अथवा युद्धमें स्थिर न रहकर वहाँसे पीठ दिखाकर भागना यह सनातन धर्म नहीं है । नीच पुरुष ही ऐसे कुमार्गका आश्रय लेते हैं । इससे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २४ ॥

कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः ।
इमान् निपतितान् दृष्ट्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंस्तथा॥ २५॥
सम्बन्धिनो वयस्यांश्च मातुलान् बान्धवांस्तथा ।
घातयित्वा कथं तात ह्रदे तिष्ठसि साम्प्रतम् ॥ २६ ॥

'युद्धसे पार पाये बिना ही तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा कैसे हो गयी ? तात ! रणभूमिमें गिरे हुए इन पुत्रों, भाइयों और चाचे-ताउओंको देखकर सम्बन्धियों, मित्रों, मामाओं और बन्धु-बान्धवोंका वध कराकर इस समय तालाबमें क्यों छिपे बैठे हो ? ॥ २५-२६ ॥

शूरमानी न शूरस्त्वं मृषा वदसि भारत ।

शूरोऽहमिति दुर्बुद्धे सर्वलोकस्य शृण्वतः ॥ २७ ॥

'तुम अपनेको शूर तो मानते हो, परंतु शूर हो नहीं। भरतवंशके खोटी बुद्धिवाले नरेश ! तुम सब लोगोंके सुनते हुए व्यर्थ ही कहा करते हो कि 'मैं शूरवीर हूँ' ॥ २७ ॥

न हि शूराः पलायन्ते शत्रून् दृष्ट्वा कथञ्चन ।
ब्रूहि वा त्वं यया वृत्त्या शूर त्यजसि संगरम् ॥ २८ ॥

'जो वास्तवमें शूरवीर हैं, वे शत्रुओंको देखकर किसी तरह भागते नहीं हैं। अपनेको शूर कहनेवाले सुयोधन ! बताओ तो सही, तुम किस वृत्तिका आश्रय लेकर युद्ध छोड़ रहे हो ॥ २८ ॥

स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व विनीय भयमात्मनः ।
घातयित्वा सर्वसैन्यं भ्रातॄंश्चैव सुयोधन ॥ २९ ॥
नेदानीं जीविते बुद्धिः कार्या धर्मचिकीर्षया ।
क्षत्रधर्ममुपाश्रित्य त्वद्विधेन सुयोधन ॥ ३० ॥

'अतः तुम अपना भय दूर करके उठो और युद्ध करो। सुयोधन ! भाइयों तथा सम्पूर्ण सेनाको मरवाकर क्षत्रिय-धर्मका आश्रय लिये हुए तुम्हारे-जैसे पुरुषको धर्मसम्पादन-की इच्छासे इस समय केवल अपनी जान बचानेका विचार नहीं करना चाहिये ॥ २९-३० ॥

यत् तु कर्णमुपाश्रित्य शकुनिं चापि सौबलम् ।
अमर्त्य इव सम्मोहात् त्वमात्मानं न बुद्धवान्॥ ३१ ॥
तत् पापं सुमहत् कृत्वा प्रतियुद्ध्यस्व भारत ।
कथं हि त्वद्विधो मोहाद् रोचयेत पलायनम् ॥ ३२ ॥

'तुम जो कर्ण और सुबलपुत्र शकुनिका सहारा लेकर मोहवश अपने आपको अजर-अमर-सा मान बैठे थे, अपनेको मनुष्य समझते ही नहीं थे, वह महान् पाप करके अब युद्ध क्यों नहीं करते ? भारत ! उठो, हमारे साथ युद्ध करो। तुम्हारे-जैसा वीर पुरुष मोहवश पीठ दिखाकर भागना कैसे पसंद करेगा ? ॥ ३१-३२ ॥

क ते तत् पौरुषं यातं क च मानः सुयोधन।
क च विक्रान्तता याता क च विस्फूर्जितं महत्॥ ३३ ॥
क ते कृतास्त्रता याता किञ्च शेषे जलाशये ।
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व क्षत्रधर्मेण भारत ॥ ३४ ॥

'सुयोधन ! तुम्हारा वह पौरुष कहाँ चला गया ? कहाँ है वह तुम्हारा अभिमान ? कहाँ गया पराक्रम ? कहाँ है वह महान् गर्जन-तर्जन ? और कहाँ गया वह अस्त्रविद्याका ज्ञान ? इस समय इस तालाबमें तुम्हें कैसे नींद आ रही है ? भारत ! उठो और क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करो ॥ ३३-३४ ॥

अस्मांस्तु वा पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।
अथवा निहतोऽस्माभिर्भूमौ स्वप्स्यसि भारत ॥ ३५ ॥

'भरतनन्दन ! हम सब लोगोंको परास्त करके इस पृथ्वीका शासन करो अथवा हमारे हाथों मारे जाकर सदाके लिये रणभूमिमें सो जाओ ॥ ३५ ॥

एष ते परमो धर्मः सृष्टो धात्रा महात्मना ।
तं कुरुष्व यथातथ्यं राजा भव महारथ ॥ ३६ ॥

'भगवान् ब्रह्माने तुम्हारे लिये यही उत्तम धर्म बनाया है। उस धर्मका यथार्थरूपसे पालन करो। महारथी वीर ! वास्तवमें राजा बनो (राजोचित पराक्रम प्रकट करो)' ॥३६॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाराज धर्मपुत्रेण धीमता ।
सलिलस्थस्तव सुत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर जलके भीतर स्थित हुए तुम्हारे पुत्रने यह बात कही ॥ ३७ ॥

दुर्योधन उवाच

नैतच्चित्रं महाराज यद्भीः प्राणिनमाविशेत् ।
न च प्राणभयाद् भीतो व्यपयातोऽस्मि भारत॥ ३८ ॥

दुर्योधन बोला—महाराज ! किसी भी प्राणीके मनमें भय समा जाय, यह आश्चर्यकी बात नहीं है; परंतु भरत-नन्दन ! मैं प्राणोंके भयसे भागकर यहाँ नहीं आया हूँ ॥३८॥

अरथश्चानिषङ्गी च निहतः पार्ष्णिसारथिः ।
एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्याश्वासमरोचयम् ॥ ३९ ॥

मेरे पास न तो रथ है और न तरकस। मेरे पार्श्वरक्षक भी मारे जा चुके हैं। मेरी सेना नष्ट हो गयी और मैं युद्ध-स्थलमें अकेला रह गया था; इस दशामें मुझे कुछ देरतक विश्राम करनेकी इच्छा हुई ॥ ३९ ॥

न प्राणहेतोर्न भयान्न विषादाद् विशाम्पते ।
इदमम्भः प्रविष्टोऽस्मि श्रमात् त्विदमनुष्ठितम् ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! मैं न तो प्राणोंकी रक्षाके लिये, न किसी भयसे और न विषादके ही कारण इस जलमें आ घुसा हूँ। केवल थक जानेके कारण मैंने ऐसा किया है ॥ ४० ॥

त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव ।
अहमुत्थाय वः सर्वान् प्रतियोत्स्यामि संयुगे ॥ ४१ ॥

कुन्तीकुमार ! तुम भी कुछ देरतक विश्राम कर लो। तुम्हारे अनुगामी सेवक भी सुस्ता लें। फिर मैं उठकर समराङ्गणमें तुम सब लोगोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आश्वस्ता एव सर्वे स्म चिरं त्वां मृगयामहे ।
तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिरने कहा—सुयोधन ! हम सब लोग तो सुस्ता ही चुके हैं और बहुत देरसे तुम्हें खोज रहे हैं; इस-लिये अब तुम उठो और यहीं युद्ध करो ॥ ४२ ॥

हत्वा वा समरे पार्थान् स्फीतं राज्यमवाप्नुहि ।
निहतो वा रणेऽस्माभिर्वीरलोकमवाप्स्यसि ॥ ४३ ॥

संग्राममें समस्त पाण्डवोंको मारकर समृद्धिशाली राज्य

प्राप्त करो अथवा रणभूमिमें हमारे हाथों मारे जाकर वीरोंको मिलने योग्य पुण्यलोकोंमें चले जाओ ॥ ४३ ॥

दुर्योधन उवाच

यदर्थं राज्यमिच्छामि कुरूणां कुरुनन्दन।
त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर ॥ ४४ ॥
क्षीणरत्नां च पृथिवीं हतक्षत्रियपुङ्गवाम्।
न ह्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम् ॥ ४५ ॥

दुर्योधन बोला—कुरुनन्दन नरेश्वर ! मैं जिनके लिये कौरवोंका राज्य चाहता था, वे मेरे सभी भाई मारे जा चुके हैं। भूमण्डलके सभी क्षत्रियशिरोमणियोंका संहार हो गया है। यहाँके सभी रत्न नष्ट हो गये हैं; अतः विधवा स्त्रीके समान श्रीहीन हुई इस पृथ्वीका उपभोग करनेके लिये मेरे मनमें तनिक भी उत्साह नहीं है ॥ ४४-४५ ॥

अद्यापि त्वहमाशंसे त्वां विजेतुं युधिष्ठिर।
भङ्क्त्वा पाञ्चालपाण्डूनामुत्साहं भरतर्षभ ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! मैं आज भी पाञ्चालों और पाण्डवोंका उत्साह भङ्ग करके तुम्हें जीतनेका हौसला रखता हूँ ॥

न त्विदानीमहं मन्ये कार्यं युद्धेन कर्हिचित्।
द्रोणे कर्णे च संशान्ते निहते च पितामहे ॥ ४७ ॥

किंतु जब द्रोण और कर्ण शान्त हो गये तथा पितामह भीष्म मार डाले गये तो अब मेरी रायमें कभी भी इस युद्धकी कोई आवश्यकता नहीं रही ॥ ४७ ॥

अस्त्विदानीमियं राजन् केवला पृथिवी तव।
असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत् प्रशासितुम् ॥४८॥

राजन् ! अब यह सूनी पृथ्वी तुम्हारी ही रहे। कौन राजा सहायकोंसे रहित होकर राज्य-शासनकी इच्छा करेगा ? ॥

सुहृदस्तादृशान् हित्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि।
भवद्भिश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥ ४९ ॥

वैसे हितैषी सुहृदों, पुत्रों, भाइयों और पिताओंको छोड़कर तुमलोगोंके द्वारा राज्यका अपहरण हो जानेपर कौन मेरे-जैसा पुरुष जीवित रहेगा ? ॥ ४९ ॥

अहं वनं गमिष्यामि ह्यजिनैः प्रतिवासितः।
रतिर्हि नास्ति मे राज्ये हतपक्षस्य भारत ॥ ५० ॥

भरतनन्दन ! मैं मृगचर्म धारण करके वनमें चला जाऊँगा। अपने पक्षके लोगोंके मारे जानेसे अब इस राज्यमें मेरा तनिक भी अनुराग नहीं है ॥ ५० ॥

हतबान्धवभूयिष्ठा हताश्वा हतकुञ्जरा।
एषा ते पृथिवी राजन् भुङ्क्ष्वैनां विगतज्वरः ॥ ५१ ॥

राजन् ! यह पृथ्वी, जहाँ मेरे अधिक-से-अधिक भाई-बन्धु, घोड़े और हाथी मारे गये हैं, अब तुम्हारे ही अधिकारमें रहे। तुम निश्चिन्त होकर इसका उपभोग करो ॥ ५१ ॥

वनमेव गमिष्यामि वसानो मृगचर्मणी।
न हि मे निर्जनस्यास्ति जीवितेऽद्य स्पृहा विभो ॥ ५२ ॥

प्रभो ! मैं तो दो मृगछाला धारण करके वनमें ही चला जाऊँगा, जब मेरे स्वजन ही नहीं रहे, तब मुझे भी इस जीवनको सुरक्षित रखनेकी इच्छा नहीं है ॥ ५२ ॥

गच्छ त्वं भुङ्क्ष्व राजेन्द्र पृथिवीं निहतेश्वराम्।
हतयोधां नष्टरत्नां क्षीणवृत्तिर्यथासुखम् ॥ ५३ ॥

राजेन्द्र ! जाओ, जिसके स्वामीका नाश हो गया है, योद्धा मारे गये हैं और सारे रत्न नष्ट हो गये हैं, उस पृथ्वीका आनन्दपूर्वक उपभोग करो; क्योंकि तुम्हारी जीविका क्षीण हो गयी थी ॥ ५३ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनं तव सुतं सलिलस्थं महायशाः।
श्रुत्वा तु करुणं वाक्यमभाषत युधिष्ठिरः ॥ ५४ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! महायशस्वी युधिष्ठिरने वह करुणायुक्त वचन सुनकर पानीमें स्थित हुए आपके पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा ॥ ५४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आर्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषिथाः।
नैतन्मनसि मे राजन् वाशितं शकुनेरिव ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिर बोले—नरेश्वर ! तुम जलमें स्थित होकर आर्त पुरुषोंके समान प्रलाप न करो। तात ! चिड़ियोंके चहचहानेके समान तुम्हारी यह बात मेरे मनमें कोई अर्थ नहीं रखती है॥

यदि वापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन।
नाहमिच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुम् ॥ ५६ ॥

सुयोधन ! यदि तुम इसे देनेमें समर्थ होते तो भी मैं तुम्हारी दी हुई इस पृथ्वीपर शासन करनेकी इच्छा नहीं रखता ॥ ५६ ॥

अधर्मेण न गृह्णीयां त्वया दत्तां महीमिमाम्।
न हि धर्मः स्मृतो राजन् क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः ॥ ५७ ॥

राजन् ! तुम्हारी दी हुई इस भूमिको मैं अधर्मपूर्वक नहीं ले सकता; क्षत्रियके लिये दान लेना धर्म नहीं बताया गया है॥

त्वया दत्तां न चेच्छेयं पृथिवीमखिलामहम्।
त्वां तु युद्धे विनिर्जित्य भोक्तास्मि वसुधामिमाम्॥५८॥

तुम्हारे देनेपर इस सम्पूर्ण पृथ्वीको भी मैं नहीं लेना चाहता। तुम्हें युद्धमें परास्त करके ही इस वसुधाका उपभोग करूँगा ॥ ५८ ॥

अनीश्वरश्च पृथिवीं कथं त्वं दातुमिच्छसि।
त्वयेयं पृथिवी राजन् किन्न दत्ता तदैव हि ॥ ५९ ॥
धर्मतो याचमानानां प्रशमार्थं कुलस्य नः।

अब तो तुम स्वयं ही इस पृथ्वीके स्वामी नहीं रहे; फिर इसका दान कैसे करना चाहते हो ? राजन् ! जब हम लोग कुलमें शान्ति बनाये रखनेके लिये पहले धर्मके अनुसार अपना ही राज्य माँग रहे थे, उसी समय तुमने हमें यह पृथ्वी क्यों नहीं दे दी ॥ ५९½ ॥

वार्ष्णेयं प्रथमं राजन् प्रत्याख्याय महाबलम् ॥ ६० ॥
किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः।

नरेश्वर ! पहले महाबली भगवान् श्रीकृष्णको हमारे लिये

राज्य देनेसे इन्कार करके इस समय क्यों दे रहे हो ? तुम्हारे चित्तमें यह कैसा भ्रम छा रहा है ? ॥ ६०½ ॥

अभियुक्तस्तु को राजा दातुमिच्छेद्धि मेदिनीम्॥६१ ॥
न त्वमद्य महीं दातुमीशः कौरवनन्दन ।
आच्छेत्तुं वा बलाद् राजन् स कथं दातुमिच्छसि॥६२॥

जो शत्रुओंसे आक्रान्त हो, ऐसा कौन राजा किसीको भूमि देनेकी इच्छा करेगा ? कौरवनन्दन नरेश ! अब न तो तुम किसीको पृथ्वी दे सकते हो और न बलपूर्वक उसे छीन ही सकते हो। ऐसी दशामें तुम्हें भूमि देनेकी इच्छा कैसे हो गयी?॥

मां तु निर्जित्य संग्रामे पालयेमां वसुन्धराम् ।
सूच्यग्रेणापि यद् भूमेरपि भिद्येत भारत ॥ ६३ ॥
तन्मात्रमपि तन्मह्यं न ददाति पुरा भवान् ।
स कथं पृथिवीमेतां प्रददासि विशाम्पते ॥ ६४ ॥

मुझे संग्राममें जीतकर इस पृथ्वीका पालन करो । भारत! पहले तो तुम सूईकी नोकसे जितना छिद सके, भूमिका उतना-सा भाग भी मुझे नहीं दे रहे थे । प्रजानाथ ! फिर आज यह सारी पृथ्वी कैसे दे रहे हो ? ॥ ६३-६४ ॥

सूच्यग्रं नात्यजः पूर्वं स कथं त्यजसि क्षितिम्।
एवमैश्वर्यमासाद्य प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ॥ ६५ ॥
को हि मूढो व्यवस्येत शत्रोर्दातुं वसुन्धराम् ।

पहले तो तुम सूईकी नोक बराबर भी भूमि नहीं छोड़ रहे थे, अब सारी पृथ्वी कैसे त्याग रहे हो ? इस प्रकार ऐश्वर्य पाकर इस वसुधाका शासन करके कौन मूर्ख शत्रुके हाथमें अपनी भूमि देना चाहेगा ? ॥ ६५½ ॥

त्वं तु केवलमौर्ख्येण विमूढो नावबुद्ध्यसे ॥ ६६ ॥
पृथिवीं दातुकामोऽपि जीवितेन विमोक्ष्यसे ।

तुम तो केवल मूर्खतावश विवेक खो बैठे हो; इसीलिये यह नहीं समझते कि आज भूमि देनेकी इच्छा करनेपर भी तुम्हें अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा ॥ ६६½ ॥

अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्॥६७॥
अथवा निहतोऽस्माभिर्व्रज लोकाननुत्तमान् ।

या तो हमलोगोंको परास्त करके तुम्हीं इस पृथ्वीका शासन करो या हमारे हाथों मारे जाकर परम उत्तम लोकोंमें चले जाओ ॥ ६७½ ॥

आवयोर्जीवतो राजन् मयि च त्वयि च ध्रुवम् ॥ ६८ ॥
संशयः सर्वभूतानां विजये नौ भविष्यति ।

राजन् ! मेरे और तुम्हारे दोनोंके जीते-जी हमारी विजयके विषयमें समस्त प्राणियोंको संदेह बना रहेगा ॥ ६८½ ॥

जीवितं तव दुष्प्रज्ञ मयि सम्प्रति वर्तते ॥ ६९ ॥
जीवयेयमहं कामं न तु त्वं जीवितुं क्षमः ।

दुर्मते ! इस समय तुम्हारा जीवन मेरे हाथमें है । मैं इच्छानुसार तुम्हें जीवनदान दे सकता हूँ; परंतु तुम स्वेच्छापूर्वक जीवित रहनेमें समर्थ नहीं हो ॥ ६९½ ॥

दहने हि कृतो यत्नस्त्वयास्मासु विशेषतः ॥ ७० ॥
आशीविषैर्विषैश्चापि जले चापि प्रवेशनैः ।
त्वया विनिकृता राजन् राज्यस्य हरणेन च ॥ ७१ ॥
अप्रियाणां च वचनैर्द्रौपद्याः कर्षणेन च ।
एतस्मात् कारणात् पाप जीवितं ते न विद्यते ॥ ७२ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युध्यस्व युद्धे श्रेयो भविष्यति ।

याद है न, तुमने हमलोगोंको जला डालनेके लिये विशेष प्रयत्न किया था । भीमको विषधर सर्पोंसे डसवाया, विष खिलाकर उन्हें पानीमें डुबाया, हमलोगोंका राज्य छीनकर हमें अपने कपटजालका शिकार बनाया, द्रौपदीको कटु वचन सुनाये और उसके केश खींचे । पापी ! इन सब कारणोंसे तुम्हारा जीवन नष्ट-सा हो चुका है । उठो-उठो, युद्ध करो; इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ७०–७२½ ॥

एवं तु विविधा वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः ।
कीर्तयन्ति स्म ते वीरास्तत्र तत्र जनाधिप ॥ ७३ ॥

नरेश्वर ! वे विजयी वीर पाण्डव इस प्रकार वहाँ बारम्बार नाना प्रकारकी बातें कहने लगे ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि सुयोधनयुधिष्ठिरसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें दुर्योधन-युधिष्ठिरसंवादविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरके कहनेसे दुर्योधनका तालाबसे बाहर होकर किसी एक पाण्डवके साथ गदायुद्धके लिये तैयार होना

धृतराष्ट्र उवाच

एवं संतर्ज्यमानस्तु मम पुत्रो महीपतिः ।
प्रकृत्या मन्युमान् वीरः कथमासीत् परंतपः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! शत्रुओंको संताप देनेवाला मेरा वीर पुत्र राजा दुर्योधन स्वभावसे ही क्रोधी था । जब युधिष्ठिरने उसे इस प्रकार फटकारा, तब उसकी कैसी दशा हुई ? ॥ १ ॥

न हि संतर्जना तेन श्रुतपूर्वा कथञ्चन ।
राजभावेन मान्यश्च सर्वलोकस्य सोऽभवत् ॥ २ ॥

उसने पहले कभी किसी तरह ऐसी फटकार नहीं सुनी थी; क्योंकि राजा होनेके कारण वह सब लोगोंके सम्मानका पात्र था ॥ २ ॥

यस्यातपत्रच्छायापि स्वका भानोस्तथा प्रभा ।
खेदायैवाभिमानित्वात् सहेत् सैवं कथं गिरः ॥ ३ ॥

अभिमानी होनेके कारण जिसके मनमें अपने छत्रकी छाया और सूर्यकी प्रभा भी खेद ही उत्पन्न करती थी, वह ऐसी कठोर बातें कैसे सह सकता था ? ॥ ३ ॥

इयं च पृथिवी सर्वा सम्लेच्छाटविका भृशम् ।
प्रसादाद् ध्रियते यस्य प्रत्यक्षं तव संजय ॥ ४ ॥

संजय ! तुमने तो प्रत्यक्ष ही देखा था कि म्लेच्छों तथा जंगली जातियोंसहित यह सारी पृथ्वी दुर्योधनकी कृपासे ही जीवन धारण करती थी ॥ ४ ॥

स तथा तर्ज्यमानस्तु पाण्डुपुत्रैर्विशेषतः ।
विहीनश्च स्वकैर्भृत्यैर्निर्जने चावृतो भृशम् ॥ ५ ॥
स श्रुत्वा कटुका वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः ।
किमब्रवीत् पाण्डवेयांस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ६ ॥

इस समय वह अपने सेवकोंसे हीन हो चुका था और एकान्त स्थानमें घिर गया था । उस दशामें विशेषतः पाण्डवोंने जब उसे वैसी कड़ी फटकार सुनायी, तब शत्रुओंके विजयसे युक्त उन कटुवचनोंको बारंबार सुनकर दुर्योधनने पाण्डवोंसे क्या कहा ? यह मुझे बताओ ॥ ५-६ ॥

संजय उवाच

तर्ज्यमानस्तदा राजन्नुदकस्थस्तवात्मजः ।
युधिष्ठिरेण राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितेन ह ॥ ७ ॥
श्रुत्वा स कटुका वाचो विषमस्थो नराधिपः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य सलिलस्थः पुनः पुनः ॥ ८ ॥
सलिलान्तर्गतो राजा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः ।
मनश्चकार युद्धाय राजानं चाभ्यभाषत ॥ ९ ॥

संजयने कहा—राजाधिराज ! राजन् ! उस समय भाइयों-सहित युधिष्ठिरने जब इस प्रकार फटकारा, तब जलमें खड़े हुए आपके पुत्रने उन कठोर वचनोंको सुनकर गरम-गरम लंबी साँस छोड़ी । राजा दुर्योधन विषम परिस्थितिमें पड़ गया था और पानीमें स्थित था; इसलिये बारंबार उच्छ्वास लेता रहा । उसने जलके भीतर ही अनेक बार दोनों हाथ हिलाकर मन-ही मन युद्धका निश्चय किया और राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा—॥ ७—९ ॥

यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः ।
अहमेकः परिद्यूनो विरथो हतवाहनः ॥ १० ॥

'तुम सभी पाण्डव अपने हितैषी मित्रोंको साथ लेकर आये हो । तुम्हारे रथ और वाहन भी मौजूद हैं । मैं अकेला थका-मादा, रथहीन और वाहनशून्य हूँ ॥ १० ॥

आत्तशस्त्रै रथोपेतैर्बहुभिः परिवारितः ।
कथमेकः पदातिः सन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे ॥ ११ ॥

'तुम्हारी संख्या अधिक है । तुमने रथपर बैठकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर मुझे घेर रक्खा है । फिर तुम्हारे साथ मैं अकेला पैदल और अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होकर कैसे युद्ध कर सकता हूँ ? ॥ ११ ॥

एकैकेन तु मां यूयं योधयध्वं युधिष्ठिर ।
न ह्येको बहुभिर्वीरैर्न्याय्यो योधयितुं युधि ॥ १२ ॥

'युधिष्ठिर ! तुमलोग एक-एक करके मुझसे युद्ध करो । युद्धमें बहुत-से वीरोंके साथ किसी एकको लड़नेके लिये विवश करना न्यायोचित नहीं है ॥ १२ ॥

विशेषतो विकवचः श्रान्तश्चापत्समाश्रितः ।
भृशं विक्षतगात्रश्च श्रान्तवाहनसैनिकः ॥ १३ ॥

'विशेषतः उस दशामें जिसके शरीरपर कवच नहीं हो, जो थका-माँदा, आपत्तिमें पड़ा और अत्यन्त घायल हो तथा जिसके वाहन और सैनिक भी थक गये हों, उसे युद्धके लिये विवश करना न्यायसंगत नहीं है ॥ १३ ॥

न मे त्वत्तो भयं राजन् न च पार्थाद् वृकोदरात् ।
फाल्गुनाद् वासुदेवाद् वा पञ्चालेभ्योऽथवा पुनः ॥ १४ ॥
यमाभ्यां युयुधानाद् वा ये चान्ये तव सैनिकाः ।
एकः सर्वानहं क्रुद्धो वारयिष्ये युधि स्थितः ॥ १५ ॥

'राजन् ! मुझे न तो तुमसे, न कुन्तीके बेटे भीमसेनसे, न अर्जुनसे, न श्रीकृष्णसे अथवा पाञ्चालोंसे ही कोई भय है । नकुल-सहदेव, सात्यकि तथा अन्य जो-जो तुम्हारे सैनिक हैं, उनसे भी मैं नहीं डरता । युद्धमें क्रोधपूर्वक स्थित होनेपर मैं अकेला ही तुम सब लोगोंको आगे बढ़नेसे रोक दूँगा ॥

धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप ।
धर्मं चैवेह कीर्तिं च पालयन् प्रब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥

'नरेश्वर ! साधु पुरुषोंकी कीर्तिका मूल कारण धर्म ही है । मैं यहाँ उस धर्म और कीर्तिका पालन करता हुआ ही यह बात कह रहा हूँ ॥ १६ ॥

अहमुत्थाय सर्वान् वै प्रतियोत्स्यामि संयुगे ।
अनुगम्यागतान् सर्वानृतून् संवत्सरो यथा ॥ १७ ॥

'मैं उठकर रणभूमिमें एक-एक करके आये हुए तुम सब लोगोंके साथ युद्ध करूँगा, ठीक उसी तरह, जैसे संवत्सर बारी-बारीसे आये हुए सम्पूर्ण ऋतुओंको ग्रहण करता है ॥ १७ ॥

अद्य वः सरथान् साश्वानशस्त्रो विरथोऽपि सन् ।
नक्षत्राणीव सर्वाणि सविता रात्रिसंक्षये ॥ १८ ॥
तेजसा नाशयिष्यामि स्थिरीभवत पाण्डवाः ।

'पाण्डवो ! स्थिर होकर खड़े रहो । आज मैं अस्त्र-शस्त्र एवं रथसे हीन होकर भी घोड़ों और रथोंपर चढ़कर आये हुए तुम सब लोगोंको उसी तरह अपने तेजसे नष्ट कर दूँगा, जैसे रात्रिके अन्तमें सूर्यदेव सम्पूर्ण नक्षत्रोंको अपने तेजसे अदृश्य कर देते हैं ॥ १८½ ॥

अद्यानृण्यं गमिष्यामि क्षत्रियाणां यशस्विनाम् ॥ १९ ॥
बाह्लीकद्रोणभीष्माणां कर्णस्य च महात्मनः ।
जयद्रथस्य शूरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ॥ २० ॥
मद्रराजस्य शल्यस्य भूरिश्रवस एव च ।
पुत्राणां भरतश्रेष्ठ शकुनेः सौबलस्य च ॥ २१ ॥
मित्राणां सुहृदां चैव बान्धवानां तथैव च ।
आनृण्यमद्य गच्छामि हत्वा त्वां भ्रातृभिः सह ॥ २२ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम जनाधिपः ।

'भरतश्रेष्ठ ! आज मैं भाइयोंसहित तुम्हारा वध करके उन यशस्वी क्षत्रियोंके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा । बाह्लीक, द्रोण, भीष्म, महामना कर्ण, शूरवीर जयद्रथ, भगदत्त, मद्रराज-

शल्य, भूरिश्रवा, सुबलकुमार शकुनि तथा पुत्रों, मित्रों, सुहृदों एवं बन्धु-बान्धवोंके ऋणसे भी उऋण हो जाऊँगा।' राजा दुर्योधन इतना कहकर चुप हो गया॥ १९-२२½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

दिष्ट्या त्वमपि जानीषे क्षत्रधर्मं सुयोधन॥ २३॥
दिष्ट्या ते वर्तते बुद्धिर्युद्धायैव महाभुज।
दिष्ट्या शूरोऽसि कौरव्य दिष्ट्या जानासि संगरम्॥

युधिष्ठिर बोले—सुयोधन ! सौभाग्यकी बात है कि तुम भी क्षत्रिय-धर्मको जानते हो। महाबाहो ! यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अभी तुम्हारा विचार युद्ध करनेका ही है। कुरुनन्दन ! तुम शूरवीर हो और युद्ध करना जानते हो—यह हर्ष और सौभाग्यकी बात है॥ २३-२४॥

यस्त्वमेको हि नः सर्वान् संगरे योद्धुमिच्छसि।
एक एकेन संगम्य यत् ते सम्मतमायुधम्॥ २५॥
तत् त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः।

तुम रणभूमिमें अकेले ही एक-एकके साथ भिड़कर हम सब लोगोंसे युद्ध करना चाहते हो तो ऐसा ही सही। जो हथियार तुम्हें पसंद हो, उसीको लेकर हमलोगोंमेंसे एक-एकके साथ युद्ध करो। हम सब लोग दर्शक बनकर खड़े रहेंगे॥

स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्॥ २६॥
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि।

वीर ! मैं स्वयं ही पुनः तुम्हें यह अभीष्ट वर देता हूँ कि 'हममेंसे एकका भी वध कर देनेपर सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा अथवा यदि तुम्हीं मारे गये तो स्वर्गलोक प्राप्त करोगे।'

दुर्योधन उवाच

एकश्चेद् योद्धुमाक्रन्दे शूरोऽद्य मम दीयताम्॥ २७॥
आयुधानामियं चापि वृता त्वत्सम्मते गदा।

दुर्योधन बोला—राजन् ! यदि ऐसी बात है तो इस महासमरमें मेरे साथ लड़नेके लिये आज किसी भी एक शूरवीरको दे दो और तुम्हारी सम्मतिके अनुसार हथियारोंमें मैंने एक मात्र इस गदाका ही वरण किया है॥ २७½ ॥

हन्तैकं भवतामेकः शक्यं मां योऽभिमन्यते॥ २८॥
पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह।

मैं हर्षके साथ कह रहा हूँ कि 'तुममेंसे कोई भी एक वीर जो मुझ अकेलेको जीत सकनेका अभिमान रखता हो, वह रणभूमिमें पैदल ही गदाद्वारा मेरे साथ युद्ध करे'॥ २८½ ॥

वृत्तानि रथयुद्धानि विचित्राणि पदे पदे॥ २९॥
इदमेकं गदायुद्धं भवत्वद्याद्भुतं महत्।

रथके विचित्र युद्ध तो पग-पगपर हुए हैं। आज यह एक अत्यन्त अद्भुत गदायुद्ध भी हो जाय॥ २९½ ॥

अस्त्राणामपि पर्यायं कर्तुमिच्छन्ति मानवाः॥ ३०॥
युद्धानामपि पर्यायो भवत्वनुमते तव।

मनुष्य बारी-बारीसे एक-एक अस्त्रका प्रयोग करना चाहते हैं; परंतु आज तुम्हारी अनुमतिसे युद्ध भी क्रमशः एक-एक योद्धाके साथ ही हो॥ ३०½ ॥

गदया त्वां महाबाहो विजेष्यामि सहानुजम्॥ ३१॥
पञ्चालान् सृंजयांश्चैव ये चान्ये तव सैनिकाः।
न हि मे सम्भ्रमो जातु शक्रादपि युधिष्ठिर॥ ३२॥

महाबाहो ! मैं गदाके द्वारा भाइयोंसहित तुमको, पाञ्चालों और सृञ्जयोंको तथा जो तुम्हारे दूसरे सैनिक हैं, उनको भी जीत लूँगा। युधिष्ठिर ! मुझे इन्द्रसे भी कभी घबराहट नहीं होती॥ ३१-३२॥

युधिष्ठिर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारे मां योधय सुयोधन।
एक एकेन संगम्य संयुगे गदया बली॥ ३३॥
पुरुषो भव गान्धारे युध्यस्व सुसमाहितः।
अद्य ते जीवितं नास्ति यदीन्द्रोऽपि तवाश्रयः॥ ३४॥

युधिष्ठिर बोले—गान्धारीनन्दन ! सुयोधन ! उठो-उठो और मेरे साथ युद्ध करो। बलवान् तो तुम हो ही। युद्धमें गदाके द्वारा अकेले किसी एक वीरके साथ ही भिड़कर अपने पुरुषत्वका परिचय दो। एकाग्रचित्त होकर युद्ध करो। यदि इन्द्र भी तुम्हारे आश्रयदाता हो जायँ तो भी आज तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते॥ ३३-३४॥

संजय उवाच

एतत् स नरशार्दूलो नामृष्यत तवात्मजः।
सलिलान्तर्गतः श्वभ्रे महानाग इव श्वसन्॥ ३५॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युधिष्ठिरके इस कथनको जलमें स्थित हुआ आपका पुत्र पुरुषसिंह दुर्योधन नहीं सह सका। वह बिलमें बैठे हुए विशाल सर्पके समान लंबी साँस खींचने लगा॥ ३५॥

तथासौ वाक्प्रतोदेन तुद्यमानः पुनः पुनः।
वचो न ममृषे राजन्नुत्तमाश्वः कशामिव॥ ३६॥

राजन् ! जैसे अच्छा घोड़ा कोड़ेकी मार नहीं सह सकता है, उसी प्रकार वचनरूपी चाबुकसे बारंबार पीड़ित किया जाता हुआ दुर्योधन युधिष्ठिरकी उस बातको सहन न कर सका॥

संक्षोभ्य सलिलं वेगाद् गदामादाय वीर्यवान्।
अद्रिसारमयीं गुर्वीं काञ्चनाङ्गदभूषणाम्॥ ३७॥
अन्तर्जलात् समुत्तस्थौ नागेन्द्र इव निःश्वसन्।

वह पराक्रमी वीर बड़े वेगसे सोनेके अङ्गदसे विभूषित एवं लोहेकी बनी हुई भारी गदा हाथमें लेकर पानीको चीरता हुआ उसके भीतरसे उठ खड़ा हुआ और सर्पराजके समान लंबी साँस खींचने लगा॥ ३७½ ॥

स भित्त्वा स्तम्भितं तोयं स्कन्धे कृत्वाऽऽयसीं गदाम्॥
उदतिष्ठत पुत्रस्ते प्रतपन् रश्मिवानिव।

कंधेपर लोहेकी गदा रखकर बँधे हुए जलका भेदन करके आपका वह पुत्र प्रतापी सूर्यके समान ऊपर उठा॥ ३८½॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं जातरूपपरिष्कृताम्॥ ३९॥
गदां परामृशद् धीमान् धार्तराष्ट्रो महाबलः।

इसके बाद महाबली बुद्धिमान् दुर्योधनने लोहेकी बनी हुई वह सुवर्णभूषित भारी गदा हाथमें ली ॥ ३९½ ॥

गदाहस्तं तु तं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ॥ ४० ॥
प्रजानामिव संक्रुद्धं शूलपाणिमिव स्थितम् ।

हाथमें गदा लिये हुए दुर्योधनको पाण्डवोंने इस प्रकार देखा, मानो कोई शृङ्गयुक्त पर्वत हो अथवा प्रजापर कुपित होकर हाथमें त्रिशूल लिये हुए रुद्रदेव खड़े हों ॥ ४०½ ॥

सगदो भारतो भाति प्रतपन् भास्करो यथा ॥ ४१ ॥
तमुत्तीर्णं महाबाहुं गदाहस्तमरिंदमम् ।
मेनिरे सर्वभूतानि दण्डपाणिमिवान्तकम् ॥ ४२ ॥

वह गदाधारी भरतवंशी वीर तपते हुए सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। शत्रुओंका दमन करनेवाले महाबाहु दुर्योधनको हाथमें गदा लिये जलसे निकला हुआ देख समस्त प्राणी ऐसा मानने लगे, मानो दण्डधारी यमराज प्रकट हो गये हों ॥ ४१-४२ ॥

वज्रहस्तं यथा शक्रं शूलहस्तं यथा हरम् ।
ददृशुः सर्वपञ्चालाः पुत्रं तव जनाधिप ॥ ४३ ॥

नरेश्वर ! सम्पूर्ण पाञ्चालोंने आपके पुत्रको वज्रधारी इन्द्र और त्रिशूलधारी रुद्रके समान देखा ॥ ४३ ॥

तमुत्तीर्णं तु सम्प्रेक्ष्य समहृष्यन्त सर्वशः ।
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च तेऽन्योन्यस्य तलान् ददुः ॥ ४४ ॥

उसे जलसे बाहर निकला देख समस्त पाञ्चाल और पाण्डव हर्षसे खिल उठे और एक-दूसरेसे हाथ मिलाने लगे ॥

अवहासं तु तं मत्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
उद्वृत्य नयने क्रुद्धो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ४५ ॥

महाराज ! उनके इस हाथ मिलनेको दुर्योधनने अपना उपहास समझा; अतः क्रोधपूर्वक आँखें घुमाकर पाण्डवोंकी ओर इस प्रकार देखा, मानो उन्हें जलाकर भस्म कर देना चाहता हो ॥ ४५ ॥

त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा संदष्टदशनच्छदः ।
प्रत्युवाच ततस्तान् वै पाण्डवान् सहकेशवान् ॥ ४६ ॥

उसने अपनी भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके दाँतोंसे ओठको दबाया और श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा ॥

दुर्योधन उवाच

अस्यावहासस्य फलं प्रतिभोक्ष्यथ पाण्डवाः ।
गमिष्यथ हताः सद्यः सपञ्चाला यमक्षयम् ॥ ४७ ॥

दुर्योधन बोला—पाञ्चालो और पाण्डवो ! इस उपहासका फल तुम्हें अभी भोगना पड़ेगा; मेरे हाथसे मारे जाकर तुम तत्काल यमलोकमें पहुँच जाओगे ॥ ४७ ॥

संजय उवाच

उत्थितश्च जलात् तस्मात् पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अतिष्ठत गदापाणी रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४८ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपका पुत्र दुर्योधन उस जलसे निकलकर हाथमें गदा लिये खड़ा हो गया। वह रक्तसे भीगा हुआ था ॥ ४८ ॥

तस्य शोणितदिग्धस्य सलिलेन समुक्षितम् ।
शरीरं स्म तदा भाति स्रवन्निव महीधरः ॥ ४९ ॥

उस समय खूनसे लथपथ हुए दुर्योधनका शरीर पानीसे भीगकर जलका स्रोत बहानेवाले पर्वतके समान प्रतीत होता था ॥

तमुद्यतगदं वीरं मेनिरे तत्र पाण्डवाः ।
वैवस्वतमिव क्रुद्धं शूलपाणिमिव स्थितम् ॥ ५० ॥

वहाँ हाथमें गदा उठाये हुए वीर दुर्योधनको पाण्डवोंने क्रोधमें भरे हुए यमराज तथा हाथमें त्रिशूल लेकर खड़े हुए रुद्रके समान समझा ॥ ५० ॥

स मेघनिनदो हर्षान्नर्दन्निव च गोवृषः ।
आजुहाव ततः पार्थान् गदया युधि वीर्यवान् ॥ ५१ ॥

उस पराक्रमी वीरने हँकड़ते हुए साँड़के समान मेघके तुल्य गम्भीर गर्जना करते हुए बड़े हर्षके साथ गदायुद्धके लिये पाण्डवोंको ललकारा ॥ ५१ ॥

दुर्योधन उवाच

एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर ।
न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि ॥ ५२ ॥

दुर्योधन बोला—युधिष्ठिर ! तुमलोग एक-एक करके मेरे साथ युद्धके लिये आते जाओ। रणभूमिमें किसी एक वीरको बहुसंख्यक वीरोंके साथ युद्धके लिये विवश करना न्यायसंगत नहीं है ॥ ५२ ॥

न्यस्तवर्मा विशेषेण श्रान्तश्चाप्सु परिप्लुतः ।
भृशं विक्षतगात्रश्च हतवाहनसैनिकः ॥ ५३ ॥

विशेषतः उस वीरको जिसने अपना कवच उतार दिया हो, जो थककर जलमें गोता लगाकर विश्राम कर रहा हो, जिसके सारे अङ्ग अत्यन्त घायल हो गये हों तथा जिसके वाहन और सैनिक मार डाले गये हों, किसी समूहके साथ युद्धके लिये बाध्य करना कदापि उचित नहीं है ॥ ५३ ॥

अवश्यमेव योद्धव्यं सर्वैरेव मया सह ।
युक्तं त्वयुक्तमित्येतद् वेत्सि त्वं चैव सर्वदा ॥ ५४ ॥

मुझे तो तुम सब लोगोंके साथ अवश्य युद्ध करना है; परंतु इसमें क्या उचित है और क्या अनुचित; इसे तुम सदा अच्छी तरह जानते हो ॥ ५४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

मा भूदियं तव प्रज्ञा कथमेवं सुयोधन ।
यदाभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—सुयोधन ! जब तुम बहुत-से महारथियोंने मिलकर युद्धमें अभिमन्युको मारा था, उस समय तुम्हारे मनमें ऐसा विचार क्यों नहीं उत्पन्न हुआ ? ॥ ५५ ॥

क्षत्रधर्मं भृशं क्रूरं निरपेक्षं सुनिर्घृणम् ।
अन्यथा तु कथं हन्युरभिमन्युं तथा गतम् ॥ ५६ ॥
सर्वे भवन्तो धर्मज्ञाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ।

वास्तवमें क्षत्रिय-धर्म बड़ा ही क्रूर, किसीकी भी अपेक्षा

न रखनेवाला तथा अत्यन्त निर्दय है; अन्यथा तुम सब लोग धर्मज्ञ, शूरवीर तथा युद्धमें शरीरका विसर्जन करनेको उद्यत रहनेवाले होकर भी उस असहाय-अवस्थामें अभिमन्युका वध कैसे कर सकते थे ? ॥ ५६½ ॥

न्यायेन युध्यतां प्रोक्ता शक्रलोकगतिः परा ॥ ५७ ॥
यद्येकस्तु न हन्तव्यो बहुभिर्धर्म एव तु ।
तदाभिमन्युं बहवो निजघ्नुस्त्वन्मते कथम् ॥ ५८ ॥

न्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले वीरोंके लिये परम उत्तम इन्द्र-लोककी प्राप्ति बतलायी गयी है । 'बहुत-से योद्धा मिलकर किसी एक वीरको न मारें' यदि यही धर्म है तो तुम्हारी सम्मतिसे अनेक महारथियोंने अभिमन्युका वध कैसे किया ?॥

सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम् ।
पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति ॥ ५९ ॥

प्रायः सभी प्राणी जब स्वयं संकटमें पड़ जाते हैं तो अपनी रक्षाके लिये धर्मशास्त्रकी दुहाई देने लगते हैं और जब अपने उच्च पदपर प्रतिष्ठित होते हैं, उस समय उन्हें परलोकका दरवाजा बंद दिखायी देता है ॥ ५९ ॥

आमुञ्च कवचं वीर मूर्धजान् यमयस्व च ।
यच्चान्यदपि ते नास्ति तदप्यादत्स्व भारत ॥ ६० ॥

वीर भरतनन्दन ! तुम कवच धारण कर लो, अपने केशोंको अच्छी तरह बाँध लो तथा युद्धकी और कोई आवश्यक सामग्री जो तुम्हारे पास न हो, उसे भी ले लो ॥

इममेकं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् ।
पञ्चानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि ॥ ६१ ॥
तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।
ऋते च जीविताद् वीर युद्धे किं कर्म ते प्रियम् ॥ ६२ ॥

वीर ! मैं पुनः तुम्हें एक अभीष्ट वर देता हूँ—'पाँचों पाण्डवोंमेंसे जिसके साथ युद्ध करना चाहो, उस एकका ही वध कर देनेपर तुम राजा हो सकते हो अथवा यदि स्वयं मारे गये तो स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे । शूरवीर ! बताओ, युद्धमें जीवनकी रक्षाके सिवा तुम्हारा और कौन-सा प्रिय कार्य हम कर सकते हैं ? ॥ ६१-६२ ॥

संजय उवाच

ततस्तव सुतो राजन् वर्म जग्राह काञ्चनम् ।
विचित्रं च शिरस्त्राणं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ ६३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आपके पुत्रने सुवर्णमय कवच तथा स्वर्णजटित विचित्र शिरस्त्राण धारण किया॥

सोऽवबद्धशिरस्त्राणः शुभकाञ्चनवर्मभृत् ।
रराज राजन् पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव ॥ ६४ ॥

महाराज ! शिरस्त्राण बाँधकर सुन्दर सुवर्णमय कवच धारण करके आपका पुत्र स्वर्णमय गिरिराज मेरुके समान शोभा पाने लगा ॥ ६४ ॥

संनद्धः सगदो राजन् सज्जः संग्राममूर्धनि ।
अब्रवीत् पाण्डवान् सर्वान् पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ६५ ॥

नरेश्वर ! युद्धके मुहानेपर सुसज्जित हो कवच बाँधे और गदा हाथमें लिये आपके पुत्र दुर्योधनने समस्त पाण्डवोंसे कहा—॥

भ्रातॄणां भवतामेको युध्यतां गदया मया ।
सहदेवेन वा योत्स्ये भीमेन नकुलेन वा ॥ ६६ ॥
अथवा फाल्गुनेनाद्य त्वया वा भरतर्षभ ।

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे भाइयोंमेंसे कोई एक मेरे साथ गदाद्वारा युद्ध करे । मैं सहदेव, नकुल, भीमसेन, अर्जुन अथवा स्वयं तुमसे भी युद्ध कर सकता हूँ ॥ ६६½ ॥

योत्स्येऽहं संगरं प्राप्य विजेष्ये च रणाजिरे ॥ ६७ ॥
अहमद्य गमिष्यामि वैरस्यान्तं सुदुर्गमम् ।
गदया पुरुषव्याघ्र हेमपट्टनिबद्धया ॥ ६८ ॥

'रणक्षेत्रमें पहुँचकर मैं तुममेंसे किसी एकके साथ युद्ध करूँगा और मेरा विश्वास है कि समराङ्गणमें विजय पाऊँगा । पुरुषसिंह ! आज मैं सुवर्णपत्रजटित गदाके द्वारा वैरके उस पार पहुँच जाऊँगा, जहाँ जाना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है ॥ ६७-६८ ॥

गदायुद्धे न मे कश्चित् सदृशोऽस्तीति चिन्तये ।
गदया वो हनिष्यामि सर्वानेव समागतान् ॥ ६९ ॥

'मैं इस बातको सदा याद रखता हूँ कि 'गदायुद्धमें मेरी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ।' गदाके द्वारा सामने आनेपर मैं तुम सभी लोगोंको मार डालूँगा ॥ ६९ ॥

न मे समर्थाः सर्वे वै योद्धुं न्यायेन केचन ।
न युक्तमात्मना वक्तुमेवं गर्वोद्धतं वचः ।
अथवा सफलं ह्येतत् करिष्ये भवतां पुरः ॥ ७० ॥

'तुम सभी लोग अथवा तुममेंसे कोई भी मेरे साथ न्यायपूर्वक युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो । मुझे स्वयं ही अपने विषयमें इस प्रकार गर्वसे उद्धत वचन नहीं कहना चाहिये, तथापि कहना पड़ा है अथवा कहनेकी क्या आवश्यकता ? मैं तुम्हारे सामने ही यह सब सफल कर दिखाऊँगा ॥ ७० ॥

अस्मिन् मुहूर्ते सत्यं वा मिथ्या वैतद् भविष्यति ।
गृह्णातु च गदां यो वै योत्स्यतेऽद्य मया सह ॥ ७१ ॥

'मेरा वचन सत्य है या मिथ्या, यह इसी मुहूर्तमें स्पष्ट हो जायगा । आज मेरे साथ जो भी युद्ध करनेको उद्यत हो, वह गदा उठावे' ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि युधिष्ठिरदुर्योधनसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें युधिष्ठिर और दुर्योधनका संवादविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥३२॥



मित्रावरुणके आश्रममें बलरामजीकी देवर्षि नारदजीसे भेंट

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको फटकारना, भीमसेनकी प्रशंसा तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्ध

संजय उवाच

एवं दुर्योधने राजन् गर्जमाने मुहुर्मुहुः।
युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब यों कहकर दुर्योधन बारंबार गर्जना करने लगा, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित होकर युधिष्ठिरसे बोले—॥ १॥

यदि नाम ह्ययं युद्धे वरयेत् त्वां युधिष्ठिर।
अर्जुनं नकुलं चैव सहदेवमथापि वा॥ २॥

'युधिष्ठिर! यदि यह दुर्योधन युद्धमें तुमको, अर्जुनको अथवा नकुल या सहदेवको ही युद्धके लिये वरण कर ले, तब क्या होगा? ॥ २॥

किमिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमीदृशम्।
एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति॥ ३॥

'राजन्! आपने क्यों ऐसी दुःसाहस पूर्ण बात कह डाली कि 'तुम हममेंसे एकको ही मारकर कौरवोंका राजा हो जाओ'॥

न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे।
एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश॥ ४॥
आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया।

'मैं नहीं मानता कि आपलोग युद्धमें गदाधारी दुर्योधनका सामना करनेमें समर्थ हैं। राजन्! इसने भीमसेनका वध करनेकी इच्छासे उनकी लोहेकी मूर्तिके साथ तेरह वर्षोंतक गदायुद्धका अभ्यास किया है॥ ४½॥

कथं नाम भवेत् कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ॥ ५॥
साहसं कृतवांस्त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम।

'भरतभूषण! अब हमलोग अपना कार्य कैसे सिद्ध कर सकते हैं? नृपश्रेष्ठ! आपने दयावश यह दुःसाहसपूर्ण कार्य कर डाला है॥ ५½॥

नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे॥ ६॥
ऋते वृकोदरात् पार्थात् स च नातिकृतश्रमः।

'मैं कुन्तीपुत्र भीमसेनके सिवा, दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो गदायुद्धमें दुर्योधनका सामना कर सके, परंतु भीमसेनने भी अधिक परिश्रम नहीं किया है॥ ६½॥

तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा॥ ७॥
विषमं शकुनेश्चैव तव चैव विशाम्पते।

'इस समय आपने पहलेके समान ही पुनः यह जूएका खेल आरम्भ कर दिया है। प्रजानाथ! आपका यह जूआ शकुनिके जूएसे कहीं अधिक भयंकर है॥ ७½॥

बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः॥ ८॥
बलवान् वा कृती वेति कृती राजन् विशिष्यते।

'राजन्! माना कि भीमसेन बलवान् और समर्थ हैं, परंतु राजा दुर्योधनने अभ्यास अधिक किया है। एक ओर बलवान् हो और दूसरी ओर युद्धका अभ्यासी, तो उनमें युद्धका अभ्यास करनेवाला ही बड़ा माना जाता है॥ ८½॥

सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः॥ ९॥
न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम्।

'अतः महाराज! आपने अपने शत्रुको समान मार्गपर ला दिया है। अपने आपको तो भारी सङ्कटमें फँसाया ही है, हमलोगोंको भी भारी कठिनाईमें डाल दिया है॥ ९½॥

को नु सर्वान् विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा॥ १०॥
कृच्छ्रप्राप्तेन च तथा हारयेद् राज्यमागतम्।
पणित्वा चैकपाणेन रोचयेदेवमाहवम्॥ ११॥

'भला कौन ऐसा होगा, जो सब शत्रुओंको जीत लेनेके बाद जब एक ही बाकी रह जाय और वह भी सङ्कटमें पड़ा हो तो उसके साथ अपने हाथमें आये हुए राज्यको दाँवपर लगाकर हार जाय और इस प्रकार एकके साथ युद्ध करनेकी शर्त रखकर लड़ना पसंद करे? ॥ १०-११॥

न हि पश्यामि तं लोके योऽद्य दुर्योधनं रणे।
गदाहस्तं विजेतुं वै शक्तः स्यादमरोऽपि हि॥ १२॥

'मैं संसारमें किसी भी शूरवीरको, वह देवता ही क्यों न हो, ऐसा नहीं देखता, जो आज रणभूमिमें गदाधारी दुर्योधनको परास्त करनेमें समर्थ हो॥ १२॥

न त्वं भीमो न नकुलः सहदेवोऽथ फाल्गुनः।
जेतुं न्यायेन शक्तो वै कृती राजा सुयोधनः॥ १३॥

'आप, भीमसेन, नकुल, सहदेव अथवा अर्जुन—कोई भी न्यायपूर्वक युद्ध करके दुर्योधनपर विजय नहीं पा सकते; क्योंकि राजा सुयोधनने गदायुद्धका अधिक अभ्यास किया है॥

स कथं वदसे शत्रुं युध्यस्व गदयेति हि।
एकं च नो निहत्याजौ भव राजेति भारत॥ १४॥

'भारत! जब ऐसी अवस्था है, तब आपने अपने शत्रुसे कैसे यह कह दिया कि 'तुम गदाद्वारा युद्ध करो और हममेंसे किसी एकको मारकर राजा हो जाओ' ॥ १४॥

वृकोदरं समासाद्य संशयो वै जये हि नः।
न्यायतो युध्यमानानां कृती ह्येष महाबलः॥ १५॥

'भीमसेनपर युद्धका भार रक्खा जाय तो भी हमें विजय मिलनेमें संदेह है; क्योंकि न्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले योद्धाओंमें महाबली सुयोधनका अभ्यास सबसे अधिक है।१५।

एकं वास्मान् निहत्य त्वं भव राजेति वै पुनः।
नूनं न राज्यभागेषा पाण्डोः कुन्त्याश्च संततिः॥ १६॥
अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्ष्याय वा पुनः।

'फिर भी आपने बारंबार कहा है कि 'तुम हमलोगोंमेंसे एकको भी मारकर राजा हो जाओ।' निश्चय ही राजा पाण्डु और कुन्तीदेवीकी संतान राज्य भोगनेकी अधिकारिणी नहीं है। विधाताने इसे अनन्त कालतक वनवास करने अथवा भीख माँगनेके लिये ही पैदा किया है' ॥ १६½॥

भीमसेन उवाच

मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन ॥ १७ ॥
अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृशदुर्गमम् ।

यह सुनकर भीमसेन बोले—मधुसूदन ! आप विषाद न करें। यदुनन्दन ! मैं आज वैरकी उस अन्तिम सीमापर पहुँच जाऊँगा, जहाँ जाना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है ॥ १७½ ॥

अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः ॥ १८ ॥
विजयो वै ध्रुवः कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते ।

श्रीकृष्ण ! इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि मैं युद्धमें सुयोधनको मार डालूँगा। मुझे तो धर्मराजकी निश्चय ही विजय दिखायी देती है ॥ १८½ ॥

अध्यर्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरी मम ॥ १९ ॥
न तथा धार्तराष्ट्रस्य मा कार्षीर्माधव व्यथाम् ।
अहमेनं हि गदया संयुगे योद्धुमुत्सहे ॥ २० ॥

मेरी यह गदा दुर्योधनकी गदासे डेढ़गुनी भारी है। ऐसी दुर्योधनकी गदा नहीं है; अतः माधव ! आप व्यथित न हों। मैं समराङ्गणमें इस गदाद्वारा इससे भिड़नेका उत्साह रखता हूँ ॥ १९-२० ॥

भवन्तः प्रेक्षकाः सर्वे मम सन्तु जनार्दन ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन् नानाशस्त्रधरान् युधि ॥२१॥
योधयेयं रणे कृष्ण किमुताद्य सुयोधनम् ।

जनार्दन ! आप सब लोग दर्शक बनकर मेरा युद्ध देखते रहें। श्रीकृष्ण ! मैं रणक्षेत्रमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले देवताओंसहित तीनों लोकोंके साथ युद्ध कर सकता हूँ; फिर इस सुयोधनकी तो बात ही क्या है ? ॥

संजय उवाच

तथा सम्भाषमाणं तु वासुदेवो वृकोदरम् ॥ २२ ॥
हृष्टः सम्पूजयामास वचनं चेदमब्रवीत् ।

संजय कहते हैं—महाराज ! भीमसेनने जब ऐसी बात कही, तब भगवान् श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करने लगे और इस प्रकार बोले— ॥ २२½ ॥

त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥
निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः ।
त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे ॥ २४ ॥

'महाबाहो ! इसमें संदेह नहीं कि धर्मराज युधिष्ठिरने तुम्हारा आश्रय लेकर ही शत्रुओंका संहार करके पुनः अपनी उज्ज्वल राज्यलक्ष्मीको प्राप्त कर लिया है। धृतराष्ट्रके सभी पुत्र तुम्हारे ही हाथसे युद्धमें मारे गये हैं ॥ २३-२४ ॥

राजानो राजपुत्राश्च नागाश्च विनिपातिताः ।
कलिङ्गा मागधाः प्राच्या गान्धाराः कुरवस्तथा ॥२५॥
त्वामासाद्य महायुद्धे निहताः पाण्डुनन्दन ।

'तुमने कितने ही राजाओं, राजकुमारों और गजराजोंको मार गिराया है। पाण्डुनन्दन ! कलिङ्ग, मगध, प्राच्य, गान्धार और कुरुदेशके योद्धा भी इस महायुद्धमें तुम्हारे सामने आकर कालके गालमें चले गये हैं ॥ २५½ ॥

हत्वा दुर्योधनं चापि प्रयच्छोर्वीं ससागराम् ॥ २६ ॥
धर्मराजाय कौन्तेय यथा विष्णुः शचीपतेः ।

'कुन्तीकुमार ! जैसे भगवान् विष्णुने शचीपति इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य प्रदान किया था, उसी प्रकार तुम भी दुर्योधनका वध करके समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी धर्मराज युधिष्ठिरको समर्पित कर दो ॥ २६½ ॥

त्वां च प्राप्य रणे पापो धार्तराष्ट्रो विनङ्क्ष्यति ॥ २७॥
त्वमस्य सक्थिनी भङ्क्त्वा प्रतिज्ञां पालयिष्यसि ।

'अवश्य ही रणभूमिमें तुमसे टक्कर लेकर पापी दुर्योधन नष्ट हो जायगा और तुम उसकी दोनों जाँघें तोड़कर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करोगे ॥ २७½ ॥

यत्नेन तु सदा पार्थ योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः ॥ २८ ॥
कृती च बलवांश्चैव युद्धशौण्डश्च नित्यदा ।

'किंतु पार्थ ! तुम्हें दुर्योधनके साथ सदा प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना चाहिये; क्योंकि वह अभ्यासकुशल, बलवान् और युद्धकी कलामें निरन्तर चतुर है' ॥ २८½ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन् पूजयामास पाण्डवम् ॥ २९ ॥
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराजपुरोगमाः ।
तद् वचो भीमसेनस्य सर्व एवाभ्यपूजयन् ॥ ३० ॥

राजन् ! तदनन्तर सात्यकिने पाण्डुपुत्र भीमसेनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। धर्मराज आदि पाण्डव तथा पाञ्चाल समीने भीमसेनके उस वचनका बड़ा आदर किया॥२९-३०॥

ततो भीमबलो भीमो युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ।
सृंजयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर भयंकर बलशाली भीमसेनने सृंजयोंके साथ खड़े हुए तपते सूर्यके समान तेजस्वी युधिष्ठिरसे कहा—॥३१॥

अहमेतेन संगम्य संयुगे योद्धुमुत्सहे ।
न हि शक्तो रणे जेतुं मामेष पुरुषाधमः ॥ ३२ ॥

'भैया ! मैं रणभूमिमें इस दुर्योधनके साथ भिड़कर लड़नेका उत्साह रखता हूँ। यह नराधम मुझे युद्धमें परास्त नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निहितं हृदये भृशम् ।
सुयोधने धार्तराष्ट्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः ॥ ३३ ॥

'मेरे हृदयमें दीर्घकालसे जो अत्यन्त क्रोध संचित है, उसे आज मैं धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनपर उसी प्रकार छोड़ूँगा, जैसे अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निदेवको छोड़ा था ॥ ३३ ॥

शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम् ।
निहत्य गदया पापमद्य राजन् सुखी भव ॥ ३४ ॥

'पाण्डुनन्दन ! नरेश ! आज मैं गदाद्वारा पापी दुर्योधनका वध करके आपके हृदयका काँटा निकाल दूँगा; अतः आप सुखी होइये ॥ ३४ ॥

अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्ये तवानघ ।
प्राणाञ्छ्रियं च राज्यं च मोक्ष्यतेऽद्य सुयोधनः ॥ ३५ ॥

'अनघ ! आज आपके गलेमें मैं कीर्तिमयी माला

पहनाऊँगा तथा आज यह दुर्योधन अपने राज्यलक्ष्मी और प्राणोंका परित्याग करेगा ॥ ३५ ॥

राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम्।
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत् तच्छकुनिबुद्धिजम् ॥ ३६ ॥

'आज मेरे हाथसे पुत्रको मारा गया सुनकर राजा धृतराष्ट्र शकुनिकी सलाहसे किये हुए अपने अशुभ कर्मोंको याद करेंगे' ॥ ३६ ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्यवान्।
उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ॥ ३७ ॥

ऐसा कहकर भरतवंशी वीरोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी भीमसेन गदा उठाकर युद्धके लिये उठ खड़े हुए और जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको ललकारा था, उसी प्रकार उन्होंने दुर्योधनका आह्वान किया ॥ ३७ ॥

तदाह्वानममृष्यन् वै तव पुत्रोऽतिवीर्यवान्।
प्रत्युपस्थित एवाशु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३८ ॥

महाराज ! उस समय आपका अत्यन्त पराक्रमी पुत्र दुर्योधन भीमसेनकी उस ललकारको न सह सका। वह तुरंत ही उनका सामना करनेके लिये उपस्थित हो गया, मानो एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त गजराजसे भिड़नेको उद्यत हो गया हो ॥ ३८ ॥

गदाहस्तं तव सुतं युद्धाय समुपस्थितम्।
ददृशुः पाण्डवाः सर्वे कैलासमिव शृङ्गिणम् ॥ ३९ ॥

हाथमें गदा लेकर युद्धके लिये उपस्थित हुए आपके पुत्रको समस्त पाण्डवोंने शृङ्गधारी कैलासपर्वतके समान देखा॥

तमेकाकिनमासाद्य धार्तराष्ट्रं महाबलम्।
वियूथमिव मातङ्गं समहृष्यन्त पाण्डवाः ॥ ४० ॥

जैसे कोई मतवाला हाथी अपने यूथसे बिछुड़ गया हो, उसी प्रकार अकेले आये हुए आपके महाबली पुत्र दुर्योधनको पाकर समस्त पाण्डव हर्षसे खिल उठे ॥ ४० ॥

न सम्भ्रमो न च भयं न च ग्लानिर्न च व्यथा।
आसीद् दुर्योधनस्यापि स्थितः सिंह इवाहवे ॥ ४१ ॥

उस समय दुर्योधनके मनमें न घबराहट थी, न भय। न ग्लानि थी, न व्यथा। वह युद्धस्थलमें सिंहके समान निर्भय खड़ा था ॥ ४१ ॥

समुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम्।
भीमसेनस्तदा राजन् दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ४२ ॥

राजन् ! शृङ्गधारी कैलासपर्वतके समान गदा उठाये दुर्योधनको देखकर भीमसेनने उससे कहा—॥ ४२ ॥

राज्ञापि धृतराष्ट्रेण त्वया चास्मासु यत् कृतम्।
स्मर तद् दुष्कृतं कर्म यद् भूतं वारणावते ॥ ४३ ॥

'दुर्योधन ! तूने तथा राजा धृतराष्ट्रने भी हमलोगोंपर जो-जो अत्याचार किया था और वारणावत नगरमें जो कुछ हुआ था, उन सारे पापकर्मोंको याद कर ले ॥ ४३ ॥

द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला।
द्यूते यद् विजितो राजा शकुनेर्बुद्धिनिश्चयात् ॥ ४४ ॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मन् पापानि कृतवानसि।
अनागःसु च पार्थेषु तस्य पश्य महत् फलम् ॥ ४५ ॥

'दुरात्मन् ! तूने भरी सभामें रजस्वला द्रौपदीको क्लेश पहुँचाया, शकुनिकी सलाह लेकर राजा युधिष्ठिरको कपटपूर्वक जूएमें हराया तथा निरपराध कुन्तीपुत्रोंपर दूसरे-दूसरे जो पाप एवं अत्याचार किये थे, उन सबका महान् अशुभ फल आज तू अपनी आँखों देख ले ॥ ४४-४५ ॥

त्वत्कृते निहतः शेते शरतल्पे महायशाः।
गाङ्गेयो भरतश्रेष्ठः सर्वेषां नः पितामहः ॥ ४६ ॥

'तेरे ही कारण हम सब लोगोंके पितामह महायशस्वी गङ्गानन्दन भरतश्रेष्ठ भीष्मजी आज शरशय्यापर पड़े हुए हैं॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च हतः शल्यः प्रतापवान्।
वैरस्य चादिकर्तासौ शकुनिर्निहतो रणे ॥ ४७ ॥

'तेरी ही करतूतोंसे आचार्य द्रोण, कर्ण, प्रतापी शल्य तथा वैरका आदि स्रष्टा वह शकुनि—ये सभी रणभूमिमें मारे गये हैं ॥ ४७ ॥

भ्रातरस्ते हताः शूराः पुत्राश्च सहसैनिकाः।
राजानश्च हताः शूराः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ४८ ॥

'तेरे भाई, शूरवीर पुत्र, सैनिक तथा युद्धमें पीठ न दिखानेवाले अन्य बहुत-से शौर्यसम्पन्न नरेश भी मृत्युके अधीन हो गये हैं ॥ ४८ ॥

एते चान्ये च निहता बहवः क्षत्रियर्षभाः।
प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः ॥ ४९ ॥

'ये तथा दूसरे बहुसंख्यक क्षत्रियशिरोमणि वीर मार डाले गये हैं। द्रौपदीको क्लेश पहुँचानेवाले पापी प्रातिकामीका भी वध हो चुका है ॥ ४९ ॥

अवशिष्टस्त्वमेवैकः कुलघ्नोऽधमपूरुषः।
त्वामप्यद्य हनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥ ५० ॥

'अब इस वंशका नाश करनेवाला नराधम एकमात्र तू ही बच गया है। आज इस गदासे तुझे भी मार डालूँगा; इसमें संशय नहीं है ॥ ५० ॥

अद्य तेऽहं रणे दर्पं सर्वं नाशयिता नृप।
राज्याशां विपुलां राजन् पाण्डवेषु च दुष्कृतम्॥ ५१ ॥

'नरेश्वर ! आज रणभूमिमें मैं तेरा सारा घमंड चूर्ण कर दूँगा। राजन् ! तेरे मनमें राज्य पानेकी जो बड़ी भारी लालसा है, उसका तथा पाण्डवोंपर तेरे द्वारा किये जानेवाले अत्याचारोंका भी अन्त कर डालूँगा' ॥ ५१ ॥

दुर्योधन उवाच

किं कत्थितेन बहुना युद्ध्यस्वाद्य मया सह।
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां वृकोदर ॥ ५२ ॥

दुर्योधन बोला—वृकोदर ! बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनानेसे क्या लाभ ? आज मेरे साथ भिड़ तो सही। मैं युद्धका तेरा सारा हौसला मिटा दूँगा ॥ ५२ ॥

किं न पश्यसि मां पाप गदायुद्धे व्यवस्थितम्।
हिमवच्छिखराकारां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ५३ ॥

पापी ! क्या तू देखता नहीं कि मैं हिमालयके शिखरकी भाँति विशाल गदा हाथमें लेकर युद्धके लिये खड़ा हूँ॥

गदिनं कोऽद्य मां पाप हन्तुमुत्सहते रिपुः।
न्यायतो युद्धयमानश्च देवेष्वपि पुरन्दरः॥ ५४॥

ओ पापी ! आज कौन ऐसा शत्रु है, जो मेरे हाथमें गदा रहते हुए भी मुझे मार सके। न्यायपूर्वक युद्ध करते हुए देवताओंके राजा इन्द्र भी मुझे परास्त नहीं कर सकते॥

मा वृथा गर्ज कौन्तेय शारदाभ्रमिवाजलम्।
दर्शयस्व बलं युद्धे यावत् तत् तेऽद्य विद्यते॥ ५५॥

कुन्तीपुत्र ! शरद् ऋतुके निर्जल मेघकी भाँति व्यर्थ गर्जना न कर। आज तेरे पास जितना बल हो, वह सब युद्धमें दिखा॥ ५५॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा पाण्डवाः सहसृंजयाः।
सर्वे सम्पूजयामासुस्तद्वचो विजिगीषवः॥ ५६॥

दुर्योधनका यह वचन सुनकर विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त पाण्डवों और सृंजयोंने भी उसकी बड़ी सराहना की॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं तलशब्देन मानवाः।
भूयः संहर्षयामासू राजन् दुर्योधनं नृपम्॥ ५७॥

राजन् ! जैसे मतवाले हाथीको मनुष्य ताली बजाकर कुपित कर देते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बारंबार ताल ठोककर राजा दुर्योधनके युद्धविषयक हर्ष और उत्साहको बढ़ाया॥

बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया ह्रेषन्ति चासकृत्।
शस्त्राणि सम्प्रदीप्यन्ते पाण्डवानां जयैषिणाम्॥५८॥

उस समय वहाँ विजयाभिलाषी पाण्डवोंके हाथी बारंबार चिग्घाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे। साथ ही उनके अस्त्र-शस्त्र दीप्तिसे प्रकाशित हो उठे॥ ५८॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि भीमसेनदुर्योधनसंवादे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें भीमसेन और दुर्योधनका संवादविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

बलरामजीका आगमन और स्वागत तथा भीमसेन और दुर्योधनके युद्धका आरम्भ

संजय उवाच

तस्मिन् युद्धे महाराज सुसंवृत्ते सुदारुणे।
उपविष्टेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु॥ १॥
ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते।
श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः॥ २॥

संजय कहते हैं—महाराज ! वह अत्यन्त भयंकर युद्ध जब आरम्भ होने लगा और समस्त महात्मा पाण्डव उसे देखनेके लिये बैठ गये, उस समय अपने दोनों शिष्योंका संग्राम उपस्थित होनेपर उसका समाचार सुन तालचिह्नित ध्वजवाले हलधारी बलरामजी वहाँ आ पहुँचे॥ १-२॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पाण्डवाः सहकेशवाः।
उपगम्योपसंगृह्य विधिवत् प्रत्यपूजयन्॥ ३॥

उन्हें देखकर श्रीकृष्णसहित पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने निकट जाकर उनका चरणस्पर्श किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की॥ ३॥

पूजयित्वा ततः पश्चादिदं वचनमब्रुवन्।
शिष्ययोः कौशलं युद्धे पश्य रामेति पार्थिव॥ ४॥

राजन् ! पूजनके पश्चात् उन्होंने इस प्रकार कहा—'बलरामजी ! अपने दोनों शिष्योंका युद्धकौशल देखिये'॥

अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवम्।
दुर्योधनं च कौरव्यं गदापाणिमवस्थितम्॥ ५॥
चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥ ६॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव।

उस समय बलरामजीने श्रीकृष्ण, पाण्डव तथा हाथमें गदा लेकर खड़े हुए कुरुवंशी दुर्योधनकी ओर देखकर कहा—'माधव ! तीर्थयात्राके लिये निकले हुए आज मुझे बयालीस दिन हो गये। पुष्य नक्षत्रमें चला था और श्रवण नक्षत्रमें पुनः वापस आया हूँ। मैं अपने दोनों शिष्योंका गदायुद्ध देखना चाहता हूँ'॥ ५-६½॥

ततस्तदा गदाहस्तौ दुर्योधनवृकोदरौ॥ ७॥
युद्धभूमिं गतौ वीरावुभावेव रराजतुः।

तदनन्तर गदा हाथमें लेकर दुर्योधन और भीमसेन युद्ध-भूमिमें उतरे। वे दोनों ही वीर वहाँ बड़ी शोभा पा रहे थे॥

ततो युधिष्ठिरो राजा परिष्वज्य हलायुधम्॥ ८॥
स्वागतं कुशलं चास्मै पर्यपृच्छद् यथातथम्।

उस समय राजा युधिष्ठिरने बलरामजीको हृदयसे लगाकर उनका स्वागत किया और यथोचितरूपसे उनका कुशल-समाचार पूछा॥ ८½॥

कृष्णौ चापि महेष्वासावभिवाद्य हलायुधम्॥ ९॥
सस्वजाते परिप्रीतौ प्रीयमाणौ यशस्विनौ।

यशस्वी महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बलरामजीको प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्न हो प्रेमपूर्वक उनके हृदयसे लग गये॥ ९½॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः॥ १०॥
अभिवाद्य स्थिता राजन् रौहिणेयं महाबलम्।

राजन् ! माद्रीके दोनों शूरवीर पुत्र नकुल-सहदेव और द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी रोहिणीनन्दन महाबली बलरामजीको प्रणाम करके उनके पास विनीतभावसे खड़े हो गये॥१०½॥

भीमसेनोऽथ बलवान् पुत्रस्तव जनाधिप॥ ११॥
तथैव चोद्यतगदौ पूजयामासतुर्बलम्।

नरेश्वर ! भीमसेन और आपका बलवान् पुत्र दुर्योधन इन दोनोंने गदाको ऊँचे उठाकर बलरामजीके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया॥ ११½॥



पाण्डवोंद्वारा बलरामजीकी पूजा

स्वागतेन च ते तत्र प्रतिपूज्य समन्ततः ॥ १२ ॥
पश्य युद्धं महाबाहो इति ते राममब्रुवन् ।
एवमूचुर्महात्मानं रौहिणेयं नराधिपाः ॥ १३ ॥

वे सब नरेश सब ओरसे स्वागतपूर्वक समादर करके वहाँ महात्मा रोहिणीपुत्र बलरामजीसे बोले—'महाबाहो ! युद्ध देखिये' ॥ १२-१३ ॥

परिष्वज्य तदा रामः पाण्डवान् सहसृञ्जयान् ।
अपृच्छत् कुशलं सर्वान् पार्थिवांश्चामितौजसः ॥१४॥

उस समय बलरामजीने पाण्डवों, सृंजयों तथा अमित बलशाली सम्पूर्ण भूपालोंको हृदयसे लगाकर उनका कुशल-मङ्गल पूछा ॥ १४ ॥

तथैव ते समासाद्य पप्रच्छुस्तमनामयम् ।
प्रत्यभ्यर्च्य हली सर्वान् क्षत्रियांश्च महात्मनः ॥ १५ ॥
कृत्वा कुशलसंयुक्तां संविदं च यथावयः ।
जनार्दनं सात्यकिं च प्रेम्णा स परिषस्वजे ॥ १६ ॥

उसी प्रकार वे राजा भी उनसे मिलकर उनके आरोग्यका समाचार पूछने लगे । हलधरने सम्पूर्ण महामनस्वी क्षत्रियोंका समादर करके अवस्थाके अनुसार क्रमशः उनसे कुशल-मङ्गलकी जिज्ञासा की और श्रीकृष्ण तथा सात्यकिको प्रेमपूर्वक छातीसे लगा लिया ॥ १५-१६ ॥

मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय कुशलं पर्यपृच्छत ।
तौ च तं विधिवद् राजन् पूजयामासतुर्गुरुम् ॥ १७ ॥
ब्रह्माणमिव देवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदान्वितौ ।

राजन् ! इन दोनोंका मस्तक सूँघकर उन्होंने कुशल-समाचार पूछा और उन दोनोंने भी अपने गुरुजन बलरामजीका विधिपूर्वक पूजन किया । ठीक उसी तरह, जैसे इन्द्र और उपेन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक देवेश्वर ब्रह्माजीकी पूजा की थी ॥

ततोऽब्रवीद् धर्मसुतो रौहिणेयमरिंदमम् ॥ १८ ॥
इदं भ्रात्रोर्महायुद्धं पश्य रामेति भारत ।

भारत ! तत्पश्चात् धर्मपुत्र युधिष्ठिरने शत्रुदमन रोहिणीकुमारसे कहा—'बलरामजी ! दोनों भाइयोंका यह महान् युद्ध देखिये' ॥ १८½ ॥

तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः ॥ १९ ॥
न्यविशत् परमप्रीतः पूज्यमानो महारथैः ।

उनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णके बड़े भ्राता महाबाहु बलवान् श्रीराम उन महारथियोंसे पूजित हो उनके बीचमें अत्यन्त प्रसन्न होकर बैठे ॥ १९½ ॥

स बभौ राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः ॥ २० ॥
दिवीव नक्षत्रगणैः परिकीर्णो निशाकरः ।

राजाओंके मध्यभागमें बैठे हुए नीलाम्बरधारी गौर-कान्ति बलरामजी आकाशमें नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे ॥ २०½ ॥

ततस्तयोः संनिपातस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ २१ ॥
आसीदन्तकरो राजन् वैरस्य तव पुत्रयोः ॥ २२ ॥

राजन् ! तदनन्तर आपके उन दोनों पुत्रोंमें वैरका अन्त कर देनेवाला भयंकर एवं रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवागमने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलरामजीका आगमनविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

बलदेवजीकी तीर्थयात्रा तथा प्रभास-क्षेत्रके प्रभावका वर्णनके प्रसंगमें चन्द्रमाके शापमोचनकी कथा

जनमेजय उवाच

पूर्वमेव यदा रामस्तस्मिन् युद्ध उपस्थिते ।
आमन्त्र्य केशवं यातो वृष्णिभिः सहितः प्रभुः ॥ १ ॥
साहाय्यं धार्तराष्ट्रस्य न च कर्तास्मि केशव ।
न चैव पाण्डुपुत्राणां गमिष्यामि यथागतम् ॥ २ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! जब महाभारतयुद्ध आरम्भ होनेका समय निकट आ गया, उस समय युद्ध प्रारम्भ होनेसे पहले ही भगवान् बलराम श्रीकृष्णकी सम्मति ले, अन्य वृष्णिवंशियोंके साथ तीर्थयात्राके लिये चले गये और जाते समय यह कह गये कि 'केशव ! मैं न तो धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी सहायता करूँगा और न पाण्डवोंकी ही' ॥ १-२ ॥

एवमुक्त्वा तदा रामो यातः क्षत्रनिबर्हणः ।
तस्य चागमनं भूयो ब्रह्मञ्शंसितुमर्हसि ॥ ३ ॥

विप्रवर ! उन दिनों ऐसी बात कहकर जब क्षत्रिय-संहारक बलरामजी चले गये, तब उनका पुनः आगमन कैसे हुआ, यह बतानेकी कृपा करें ॥ ३ ॥

आख्याहि मे विस्तरशः कथं राम उपस्थितः ।
कथं च दृष्टवान् युद्धं कुशलो ह्यसि सत्तम ॥ ४ ॥

साधुशिरोमणे ! आप कथा कहनेमें कुशल हैं; अतः मुझे विस्तारपूर्वक बताइये कि बलरामजी कैसे वहाँ उपस्थित हुए और किस प्रकार उन्होंने युद्ध देखा ? ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
प्रेषितो धृतराष्ट्रस्य समीपं मधुसूदनः ॥ ५ ॥
शमं प्रति महाबाहो हितार्थं सर्वदेहिनाम् ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! जिन दिनों महामनस्वी पाण्डव उपप्लव्य नामक स्थानमें छावनी डालकर ठहरे हुए थे, उन्हीं दिनोंकी बात है । महाबाहो ! पाण्डवोंने समस्त प्राणियोंके हितके लिये सन्धिके उद्देश्यसे भगवान् श्रीकृष्णको धृतराष्ट्रके पास भेजा ॥ ५½ ॥

स गत्वा हास्तिनपुरं धृतराष्ट्रं समेत्य च ॥ ६ ॥
उक्तवान् वचनं तथ्यं हितं चैव विशेषतः ।

भगवान्ने हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्रसे भेंट की और उनसे सबके लिये विशेष हितकारक एवं यथार्थ बातें कहीं ॥

न च तत् कृतवान् राजा यथा ख्यातं हि तत् पुरा॥ ७ ॥
अनवाप्य शमं तत्र कृष्णः पुरुषसत्तमः।
आगच्छत महाबाहुरुपप्लव्यं जनाधिप ॥ ८ ॥

नरेश्वर ! किंतु राजा धृतराष्ट्रने भगवान्का कहना नहीं माना । यह सब बात पहले यथार्थरूपसे बतायी गयी है। महाबाहु पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ संधि करानेमें सफलता न मिलनेपर पुनः उपप्लव्यमें ही लौट आये ॥७-८॥

ततः प्रत्यागतः कृष्णो धार्तराष्ट्रविसर्जितः।
अक्रियायां नरव्याघ्र पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

नरव्याघ्र ! कार्य न होनेपर धृतराष्ट्रसे विदा ले वहाँसे लौटे हुए श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा—॥ ९ ॥

न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालनोदिताः।
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया ॥ १० ॥

'कौरव कालके अधीन हो रहे हैं, इसलिये वे मेरा कहना नहीं मानते हैं । पाण्डवो ! अब तुमलोग मेरे साथ पुष्य नक्षत्रमें युद्धके लिये निकल पड़ो' ॥ १० ॥

ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः।
प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः ॥ ११ ॥

इसके बाद जब सेनाका बटवारा होने लगा, तब बलवानोंमें श्रेष्ठ महामना बलदेवजीने अपने भाई श्रीकृष्णसे कहा–॥

तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन।
क्रियतामिति तत् कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा ॥ १२ ॥

'महाबाहु मधुसूदन ! उनकौरवोंकी भी सहायता करना।' परंतु श्रीकृष्णने उस समय उनकी यह बात नहीं मानी' ॥

ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः॥ १३ ॥

इससे मन-ही-मन कुपित और खिन्न होकर महायशस्वी यदुनन्दन हलधर सरस्वतीके तटपर तीर्थयात्राके लिये चल दिये॥

मैत्रनक्षत्रयोगे स सहितः सर्वयादवैः।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिंदमः ॥ १४ ॥

इसके बाद शत्रुओंका दमन करनेवाले कृतवर्माने सम्पूर्ण यादवोंके साथ अनुराधानक्षत्रमें दुर्योधनका पक्ष ग्रहण किया॥

युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान्।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥ १५ ॥
पाण्डवेयान् पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून्।

सात्यकिसहित भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंका पक्ष लिया। रोहिणीनन्दन शूरवीर बलरामजीके चले जानेपर मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको आगे करके पुष्यनक्षत्रमें कुरुक्षेत्रकी ओर प्रस्थान किया ॥ १५½ ॥

गच्छन्नेव पथिस्थस्तु रामः प्रेष्यानुवाच ह ॥ १६ ॥
सम्भारांस्तीर्थयात्रायां सर्वोपकरणानि च।
आनयध्वं द्वारकायामग्नीन् वै याजकांस्तथा ॥ १७ ॥

यात्रा करते हुए बलरामजीने स्वयं मार्गमें ही रहकर अपने सेवकोंसे कहा—'तुमलोग शीघ्र ही द्वारका जाकर वहाँसे तीर्थयात्रामें काम आनेवाली सब सामग्री, समस्त आवश्यक उपकरण, अग्निहोत्रकी अग्नि तथा पुरोहितोंको ले आओ ॥

सुवर्णं रजतं चैव धेनूर्वासांसि वाजिनः।
कुञ्जरांश्च रथांश्चैव खरोष्ट्रं वाहनानि च ॥ १८ ॥
क्षिप्रमानीयतां सर्वं तीर्थहेतोः परिच्छदम्।

'सोना, चाँदी, दूध देनेवाली गायें, वस्त्र, घोड़े, हाथी, रथ, गदहा और ऊँट आदि वाहन एवं तीर्थोपयोगी सब सामान शीघ्र ले आओ ॥ १८½ ॥

प्रतिस्रोतः सरस्वत्या गच्छध्वं शीघ्रगामिनः ॥ १९ ॥
ऋत्विजश्चानयध्वं वै शतशश्च द्विजर्षभान्।

'शीघ्रगामी सेवको ! तुम सरस्वतीके स्रोतकी ओर चलो और सैकड़ों श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा ऋत्विजोंको ले आओ' ॥१९½॥

एवं संदिश्य तु प्रेष्यान् बलदेवो महाबलः ॥ २० ॥
तीर्थयात्रां ययौ राजन् कुरूणां वैशसे तदा।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतः समन्तादभिजग्मिवान् ॥ २१ ॥
ऋत्विग्भिश्च सुहृद्भिश्च तथान्यैर्द्विजसत्तमैः।
रथैर्गजैस्तथाश्वैश्च प्रेष्यैश्च भरतर्षभ ॥ २२ ॥
गोखरोष्ट्रप्रयुक्तैश्च यानैश्च बहुभिर्वृतः।

राजन् ! महाबली बलदेवजीने सेवकोंको ऐसी आज्ञा देकर उस समय कुरुक्षेत्रमें ही तीर्थयात्रा आरम्भ कर दी। भरतश्रेष्ठ ! वे सरस्वतीके स्रोतकी ओर चलकर उसके दोनों तटोंपर गये। उनके साथ ऋत्विज, सुहृद्, अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मण, रथ, हाथी, घोड़े और सेवक भी थे। बैल, गदहा और ऊँटोंसे जुते हुए बहुसंख्यक रथोंसे बलरामजी घिरे हुए थे॥

श्रान्तानां क्लान्तवपुषां शिशूनां विपुलायुषाम् ॥ २३ ॥
देशे देशे तु देयानि दानानि विविधानि च।
अर्चायै चार्थिनां राजन् क्लृप्तानि बहुशस्तथा॥ २४ ॥

राजन् ! उस समय उन्होंने देश-देशमें थके-माँदे रोगी, बालक और वृद्धोंका सत्कार करनेके लिये नाना प्रकारकी देने योग्य वस्तुएँ प्रचुर मात्रामें तैयार करा रक्खी थीं ॥२३-२४॥

तानि यानीह देशेषु प्रतीक्षन्ति स्म भारत।
बुभुक्षितानामर्थाय क्लृप्तमन्नं समन्ततः ॥ २५ ॥

भारत ! विभिन्न देशोंमें लोग जिन वस्तुओंकी इच्छा रखते थे, उन्हें वे ही दी जाती थीं। भूखोंको भोजन करानेके लिये सर्वत्र अन्नका प्रबन्ध किया गया था ॥ २५ ॥

यो यो यत्र द्विजो भोज्यं भोक्तुं कामयते तदा।
तस्य तस्य तु तत्रैवमुपजह्रुस्तदा नृप ॥ २६ ॥

नरेश्वर ! जिस किसी देशमें जो-जो ब्राह्मण जब कभी भोजनकी इच्छा प्रकट करता, बलरामजीके सेवक उसे वहीं तत्काल खाने-पीनेकी वस्तुएँ अर्पित करते थे ॥ २६ ॥

तत्र तत्र स्थिता राजन् रौहिणेयस्य शासनात्।
भक्ष्यपेयस्य कुर्वन्ति राशींस्तत्र समन्ततः ॥ २७ ॥

राजन् ! रोहिणीकुमार बलरामजीकी आज्ञासे उनके सेवक विभिन्न तीर्थस्थानोंमें खाने-पीनेकी वस्तुओंके ढेर लगाये रखते थे ॥ २७ ॥

वासांसि च महार्हाणि पर्यङ्कास्तरणानि च।

पूजार्थं तत्र क्लृप्तानि विप्राणां सुखमिच्छताम्॥ २८ ॥

सुख चाहनेवाले ब्राह्मणोंके सत्कारके लिये बहुमूल्य वस्त्र, पलंग और बिछौने तैयार रक्खे जाते थे ॥ २८ ॥

यत्र यः स्वपते विप्रो यो वा जागर्ति भारत ।
तत्र तत्र तु तस्यैव सर्वं क्लृप्तमदृश्यत ॥ २९ ॥

भारत ! जो ब्राह्मण जहाँ भी सोता या जागता था, वहाँ-वहाँ उसके लिये सारी आवश्यक वस्तुएँ सदा प्रस्तुत दिखायी देती थीं ॥ २९ ॥

यथासुखं जनः सर्वो याति तिष्ठति वै तदा ।
यातुकामस्य यानानि पानानि तृषितस्य च ॥ ३० ॥
बुभुक्षितस्य चान्नानि स्वादूनि भरतर्षभ ।
उपजह्रुर्नरास्तत्र वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस यात्रामें सब लोग सुखपूर्वक चलते और विश्राम करते थे। यात्रीकी इच्छा हो तो उसे सवारियाँ दी जाती थीं, प्यासेको पानी और भूखेको स्वादिष्ठ अन्न दिये जाते थे। साथ ही वहाँ बलरामजीके सेवक वस्त्र और आभूषण भी भेंट करते थे ॥ ३०-३१ ॥

स पन्थाः प्रबभौ राजन् सर्वस्यैव सुखावहः ।
स्वर्गोपमस्तदा वीर नराणां तत्र गच्छताम् ।
नित्यप्रमुदितोपेतः स्वादुभक्ष्यः शुभान्वितः ॥ ३२ ॥

वीर नरेश ! वहाँ यात्रा करनेवाले सब लोगोंको वह मार्ग स्वर्गके समान सुखदायक प्रतीत होता था। उस मार्गमें सदा आनन्द रहता, स्वादिष्ठ भोजन मिलता और शुभकी ही प्राप्ति होती थी ॥ ३२ ॥

विपण्यापणपण्यानां नानाजनशतैर्वृतः ।
नानाद्रुमलतोपेतो नानारत्नविभूषितः ॥ ३३ ॥

उस पथपर खरीदने-बेचनेकी वस्तुओंका बाजार भी साथ-साथ चलता था, जिसमें नाना प्रकारके सैकड़ों मनुष्य भरे रहते थे। वह हाट भाँति-भाँतिके वृक्षों और लताओंसे सुशोभित तथा अनेकानेक रत्नोंसे विभूषित दिखायी देता था॥

ततो महात्मा नियमे स्थितात्मा
पुण्येषु तीर्थेषु वसूनि राजन् ।
ददौ द्विजेभ्यः क्रतुदक्षिणाश्च
यदुप्रवीरो हलभृत् प्रतीतः ॥ ३४ ॥

राजन् ! यदुकुलके प्रमुख वीर हलधारी महात्मा बलराम नियमपूर्वक रहकर प्रसन्नताके साथ पुण्यतीर्थोंमें ब्राह्मणोंको धन और यज्ञकी दक्षिणाएँ देते थे ॥ ३४ ॥

दोग्ध्रीश्च धेनूश्च सहस्रशो वै
सुवाससः काञ्चनबद्धशृङ्गीः ।
हयांश्च नानाविधदेशजातान्
यानानि दासांश्च शुभान् द्विजेभ्यः॥ ३५ ॥
रत्नानि मुक्तामणिविद्रुमं चा-
प्यग्र्यं सुवर्णं रजतं सुशुद्धम् ।
अयस्मयं ताम्रमयं च भाण्डं
ददौ द्विजातिप्रवरेषु रामः ॥ ३६ ॥

बलरामने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सहस्रों दूध देनेवाली गौएँ दान कीं, जिन्हें सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित करके उनके सींगोंमें सोनेके पत्र जड़े गये थे। साथ ही उन्होंने अनेक देशोंमें उत्पन्न घोड़े, रथ और सुन्दर वेश-भूषावाले दास भी ब्राह्मणोंकी सेवामें अर्पित किये। इतना ही नहीं, बलरामने भाँति-भाँतिके रत्न, मोती, मणि, मूँगा, उत्तम सुवर्ण, विशुद्ध चाँदी तथा लोहे और ताँबेके बर्तन भी बाँटे थे ॥ ३५-३६ ॥

एवं स वित्तं प्रददौ महात्मा
सरस्वतीतीर्थवरेषु भूरि ।
ययौ क्रमेणाप्रतिमप्रभाव-
स्ततः कुरुक्षेत्रमुदारवृत्तिः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार उदार वृत्तिवाले अनुपम प्रभावशाली महात्मा बलरामने सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थोंमें बहुत धन दान किया और क्रमशः यात्रा करते हुए वे कुरुक्षेत्रमें आये ॥ ३७ ॥

जनमेजय उवाच

सारस्वतानां तीर्थानां गुणोत्पत्तिं वदस्व मे ।
फलं च द्विपदां श्रेष्ठ कर्मनिर्वृत्तिमेव च ॥ ३८ ॥
यथाक्रमेण भगवंस्तीर्थानामनुपूर्वशः ।
ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे ॥ ३९ ॥

जनमेजय बोले—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और मनुष्योंमें उत्तम ब्राह्मणदेव ! अब आप मुझे सरस्वती-तटवर्ती तीर्थोंके गुण, प्रभाव और उत्पत्तिकी कथा सुनाइये। भगवन् ! क्रमशः उन तीर्थोंके सेवनका फल और जिस कर्मसे वहाँ सिद्धि प्राप्त होती है, उसका अनुष्ठान भी बताइये, मेरे मनमें यह सब सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥ ३८-३९ ॥

वैशम्पायन उवाच

तीर्थानां च फलं राजन् गुणोत्पत्तिं च सर्वशः ।
मयोच्यमानं वै पुण्यं शृणु राजेन्द्र कृत्स्नशः ॥ ४० ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजेन्द्र ! मैं तुम्हें तीर्थोंके गुण, प्रभाव, उत्पत्ति तथा उनके सेवनका पुण्य-फल बता रहा हूँ। वह सब तुम ध्यानसे सुनो ॥ ४० ॥

पूर्वं महाराज यदुप्रवीर
ऋत्विक्सुहृद्विप्रगणैश्च सार्धम् ।
पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम
यत्रोडुराड् यक्ष्मणा क्लिश्यमानः॥ ४१ ॥
विमुक्तशापः पुनराप्य तेजः
सर्वं जगद् भासयते नरेन्द्र ।
एवं तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां
प्रभासनात् तस्य ततः प्रभासः ॥ ४२ ॥

महाराज ! यदुकुलके प्रमुख वीर बलरामजी सबसे पहले ऋत्विजों, सुहृदों और ब्राह्मणोंके साथ पुण्यमय प्रभासक्षेत्रमें गये, जहाँ राजयक्ष्मासे कष्ट पाते हुए चन्द्रमाको शापसे छुटकारा मिला था। नरेन्द्र ! वे वहीं पुनः अपना तेज प्राप्त करके सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार चन्द्रमाको प्रभासित करनेके कारण ही वह प्रधान तीर्थ इस पृथ्वीपर प्रभास नामसे विख्यात हुआ ॥ ४१-४२ ॥

जनमेजय उवाच

कथं तु भगवन् सोमो यक्ष्मणा समगृह्यत ।
कथं च तीर्थप्रवरे तस्मिश्चन्द्रो न्यमज्जत ॥ ४३ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! चन्द्रमा कैसे राजयक्ष्मासे ग्रस्त हो गये और उस उत्तम तीर्थमें किस प्रकार उन्होंने स्नान किया ? ॥ ४३ ॥

कथमाप्लुत्य तस्मिंस्तु पुनराप्यायितः शशी ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ॥ ४४ ॥

महामुने ! उस तीर्थमें गोता लगाकर चन्द्रमा पुनः किस प्रकार हृष्ट-पुष्ट हुए ? यह सब प्रसंग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥

वैशम्पायन उवाच

दक्षस्य तनयास्तात प्रादुरासन् विशाम्पते ।
स सप्तविंशतिं कन्या दक्षः सोमाय वै ददौ ॥ ४५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—तात ! प्रजानाथ ! प्रजापति दक्षके बहुत-सी संतानें उत्पन्न हुई थीं । उनमेंसे अपनी सत्ताईस कन्याओंका विवाह उन्होंने चन्द्रमाके साथ कर दिया था ॥ ४५ ॥

नक्षत्रयोगनिरताः संख्यानार्थं च ताभवन् ।
पत्न्यो वै तस्य राजेन्द्र सोमस्य शुभकर्मणः ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! शुभ कर्म करनेवाले सोमकी वे पत्नियाँ समयकी गणनाके लिये नक्षत्रोंसे सम्बन्ध रखनेके कारण उसी नामसे विख्यात हुईं ॥ ४६ ॥

तास्तु सर्वा विशालाक्ष्यो रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
अत्यरिच्यत तासां तु रोहिणी रूपसम्पदा ॥ ४७ ॥

वे सब-की-सब विशाल नेत्रोंसे सुशोभित होती थीं । इस भूतलपर उनके रूपकी समानता करनेवाली कोई स्त्री नहीं थी । उनमें भी रोहिणी अपने रूप-वैभवकी दृष्टिसे सबकी अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी थी ॥ ४७ ॥

ततस्तस्यां स भगवान् प्रीतिं चक्रे निशाकरः ।
सास्य हृद्या बभूवाथ तस्मात् तां बुभुजे सदा ॥ ४८ ॥

इसलिये भगवान् चन्द्रमा उससे अधिक प्रेम करने लगे, वही उनकी हृदयवल्लभा हुई; अतः वे सदा उसीका उपभोग करते थे ॥ ४८ ॥

पुरा हि सोमो राजेन्द्र रोहिण्यामवसत् परम् ।
ततस्ताः कुपिताः सर्वा नक्षत्राख्या महात्मनः ॥ ४९ ॥

राजेन्द्र ! पूर्वकालमें चन्द्रमा सदा रोहिणीके ही समीप रहते थे; अतः नक्षत्रनामसे प्रसिद्ध हुई महात्मा सोमकी वे सारी पत्नियाँ उनपर कुपित हो उठीं ॥ ४९ ॥

ता गत्वा पितरं प्राहुः प्रजापतिमतन्द्रिताः ।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ॥ ५० ॥

और आलस्य छोड़कर अपने पिताके पास जाकर बोलीं—'प्रभो ! चन्द्रमा हमारे पास नहीं आते । वे सदा रोहिणीका ही सेवन करते हैं ॥ ५० ॥

ता वयं सहिताः सर्वास्त्वत्सकाशे प्रजेश्वर ।
वत्स्यामो नियताहारास्तपश्चरणतत्पराः ॥ ५१ ॥

'अतः प्रजेश्वर ! हम सब बहिनें एक साथ नियमित आहार करके तपस्यामें संलग्न हो आपके ही पास रहेंगी' ॥

श्रुत्वा तासां तु वचनं दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वाधर्मो महान् स्पृशेत्॥५२॥

उनकी यह बात सुनकर प्रजापति दक्षने चन्द्रमासे कहा—'सोम ! तुम अपनी सभी पत्नियोंके साथ समानतापूर्ण बर्ताव करो, जिससे तुम्हें महान् पाप न लगे' ॥ ५२ ॥

तास्तु सर्वाब्रवीद् दक्षो गच्छध्वं शशिनोऽन्तिकम् ।
समं वत्स्यति सर्वासु चन्द्रमा मम शासनात् ॥ ५३ ॥

फिर दक्षने उन सभी कन्याओंसे कहा—'अब तुमलोग चन्द्रमाके पास ही जाओ । वे मेरी आज्ञासे तुम सब लोगोंके प्रति समान भाव रक्खेंगे' ॥ ५३ ॥

विसृष्टास्तास्तथा जग्मुः शीतांशुभवनं तदा ।
तथापि सोमो भगवान् पुनरेव महीपते ॥ ५४ ॥
रोहिणीं निवसत्येव प्रीयमाणो मुहुर्मुहुः ।

पृथ्वीनाथ ! पिताके विदा करनेपर वे पुनः चन्द्रमाके घरमें लौट गयीं, तथापि भगवान् सोम फिर रोहिणीके पास ही अधिकाधिक प्रेमपूर्वक रहने लगे ॥ ५४½ ॥

ततस्ताः सहिताः सर्वा भूयः पितरमब्रुवन् ॥ ५५ ॥
तव शुश्रूषणे युक्ता वत्स्यामो हि तवान्तिके ।
सोमो वसति नास्मासु नाकरोद् वचनं तव ॥ ५६ ॥

तब वे सब कन्याएँ पुनः एक साथ अपने पिताके पास जाकर बोलीं—'हम सब लोग आपकी सेवामें तत्पर रहकर आपके ही समीप रहेंगी । चन्द्रमा हमारे साथ नहीं रहते । उन्होंने आपकी बात नहीं मानी' ॥ ५५-५६ ॥

तासां तद् वचनं श्रुत्वा दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वां शप्स्ये विरोचन ॥ ५७ ॥

उनकी बात सुनकर दक्षने पुनः सोमसे कहा—'प्रकाशमान चन्द्रदेव ! तुम अपनी सभी पत्नियोंके साथ समान बर्ताव करो, नहीं तो तुम्हे शाप दे दूँगा' ॥ ५७ ॥

अनादृत्य तु तद् वाक्यं दक्षस्य भगवाञ्शशी ।
रोहिण्या सार्धमवसत् ततस्ताः कुपिताः पुनः ॥ ५८ ॥
गत्वा च पितरं प्राहुः प्रणम्य शिरसा तदा ।
सोमो वसति नास्मासु तस्मान्नः शरणं भव ॥ ५९ ॥

दक्षके इतना कहनेपर भी भगवान् चन्द्रमा उनकी बातकी अवहेलना करके केवल रोहिणीके ही साथ रहने लगे । यह देख दूसरी स्त्रियाँ पुनः क्रोधसे जल उठीं और पिताके पास जा उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर प्रणाम करनेके अनन्तर बोलीं—'भगवन् ! सोम हमारे पास नहीं रहते । अतः आप हमें शरण दें ॥ ५८-५९ ॥

रोहिण्यामेव भगवान् सदा वसति चन्द्रमाः ।
न त्वद्वचो गणयति नास्मासु स्नेहमिच्छति ॥ ६० ॥
तस्मान्नस्त्राहि सर्वा वै यथा नः सोम आविशेत् ।

'भगवान् चन्द्रमा सदा रोहिणीके ही समीप रहते हैं । वे आपकी बातको कुछ गिनते ही नहीं हैं । हमलोगोंपर स्नेह

रखना नहीं चाहते हैं; अतः आप हम सब लोगोंकी रक्षा करें, जिससे चन्द्रमा हमारे साथ भी सम्बन्ध रक्खें' ॥ ६०½ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथिवीपते ॥ ६१ ॥
ससर्ज रोषात् सोमाय स चोडुपतिमाविशत् ।

पृथ्वीनाथ ! यह सुनकर भगवान् दक्ष कुपित हो उठे । उन्होंने चन्द्रमाके लिये रोषपूर्वक राजयक्ष्माकी सृष्टि की । वह चन्द्रमाके भीतर प्रविष्ट हो गया ॥ ६१½ ॥

स यक्ष्मणाभिभूतात्माक्षीयताहरहः शशी ॥ ६२ ॥
यत्नं चाप्यकरोद् राजन् मोक्षार्थं तस्य यक्ष्मणः ।

यक्ष्मासे शरीर ग्रस्त हो जानेके कारण चन्द्रमा प्रतिदिन क्षीण होने लगे । राजन् ! उस यक्ष्मासे छूटनेके लिये उन्होंने बड़ा यत्न किया ॥ ६२½ ॥

इष्ट्वेष्टिभिर्महाराज विविधाभिर्निशाकरः ॥ ६३ ॥
न चामुच्यत शापाद् वै क्षयं चैवाभ्यगच्छत ।

महाराज ! नाना प्रकारके यज्ञ-यागोंका अनुष्ठान करके भी चन्द्रमा उस शापसे मुक्त न हो सके और धीरे-धीरे क्षीण होते चले गये ॥ ६३½ ॥

क्षीयमाणे ततः सोमे ओषध्यो न प्रजज्ञिरे ॥ ६४ ॥
निरास्वादरसाः सर्वा हतवीर्याश्च सर्वशः ।

चन्द्रमाके क्षीण होनेसे अन्न आदि ओषधियाँ उत्पन्न नहीं होती थीं । उन सबके स्वाद, रस और प्रभाव नष्ट हो गये ॥

ओषधीनां क्षये जाते प्राणिनामपि संक्षयः ॥ ६५ ॥
कृशाश्चासन् प्रजाः सर्वाः क्षीयमाणे निशाकरे ।

ओषधियोंके क्षीण होनेसे समस्त प्राणियोंका भी क्षय होने लगा । इस प्रकार चन्द्रमाके क्षयके साथ-साथ सारी प्रजा अत्यन्त दुर्बल हो गयी ॥ ६५½ ॥

ततो देवाः समागम्य सोममूचुर्महीपते ॥ ६६ ॥
किमिदं भवतो रूपमीदृशं न प्रकाशते ।
कारणं ब्रूहि नः सर्वं येनेदं ते महद् भयम् ॥ ६७ ॥
श्रुत्वा तु वचनं त्वत्तो विधास्यामस्ततो वयम् ।

पृथ्वीनाथ ! उस समय देवताओंने चन्द्रमासे मिलकर पूछा—'आपका रूप ऐसा कैसे हो गया ? यह प्रकाशित क्यों नहीं होता है ? हमलोगोंसे सारा कारण बताइये, जिससे आपको महान् भय प्राप्त हुआ । आपकी बात सुनकर हमलोग इस संकटके निवारणका कोई उपाय करेंगे' ॥ ६६-६७½ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच सर्वांस्ताञ्शशलक्षणः ॥ ६८ ॥
शापस्य लक्षणं चैव यक्ष्माणं च तथाऽऽत्मनः ।

उनके इस प्रकार पूछनेपर चन्द्रमाने उन सबको उत्तर देते हुए अपनेको प्राप्त हुए शापके कारण राजयक्ष्माकी उत्पत्ति बतलायी ॥ ६८½ ॥

देवास्तथा वचः श्रुत्वा गत्वा दक्षमथाब्रुवन् ॥ ६९ ॥
प्रसीद भगवन् सोमे शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ।

उनका वचन सुनकर देवता दक्षके पास जाकर बोले—'भगवन् ! आप चन्द्रमापर प्रसन्न होइये और यह शाप हटा लीजिये ॥ ६९½ ॥

असौ हि चन्द्रमाः क्षीणः किञ्चिच्छेषो हि लक्ष्यते ॥ ७० ॥
क्षयाच्चैवास्य देवेश प्रजाश्चैव गताः क्षयम् ।
वीरुदोषधयश्चैव बीजानि विविधानि च ॥ ७१ ॥

'चन्द्रमा क्षीण हो चुके हैं और उनका कुछ ही अंश शेष दिखायी देता है । देवेश्वर ! उनके क्षयसे लता, वीरुत्, ओषधियाँ भाँति-भाँतिके बीज और सम्पूर्ण प्रजा भी क्षीण हो गयी है ॥

तेषां क्षये क्षयोऽस्माकं विनास्माभिर्जगच्च किम् ।
इति ज्ञात्वा लोकगुरो प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ७२ ॥

'उन सबके क्षीण होनेपर हमारा भी क्षय हो जायगा । फिर हमारे बिना संसार कैसे रह सकता है ? लोकगुरो ! ऐसा जानकर आपको चन्द्रदेवपर अवश्य कृपा करनी चाहिये' ॥

एवमुक्तस्ततो देवान् प्राह वाक्यं प्रजापतिः ।
नैतच्छक्यं मम वचो व्यावर्तयितुमन्यथा ॥ ७३ ॥
हेतुना तु महाभागा निवर्तिष्यति केनचित् ।

उनके ऐसा कहनेपर प्रजापति दक्ष देवताओंसे इस प्रकार बोले—'महाभाग देवगण ! मेरी बात पलटी नहीं जा सकती । किसी विशेष कारणसे वह स्वतः निवृत्त हो जायगी ॥ ७३½ ॥

समं वर्ततु सर्वासु शशी भार्यासु नित्यशः ॥ ७४ ॥
सरस्वत्या वरे तीर्थे उन्मज्जञ्शशलक्षणः ।
पुनर्वर्धिष्यते देवास्तद् वै सत्यं वचो मम ॥ ७५ ॥

'यदि चन्द्रमा अपनी सभी पत्नियोंके प्रति सदा समान बर्ताव करें और सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थमें गोता लगायें तो वे पुनः बढ़कर पुष्ट हो जायँगे । देवताओ ! मेरी यह बात अवश्य सच होगी ॥ ७४-७५ ॥

मासार्धं च क्षयं सोमो नित्यमेव गमिष्यति ।
मासार्धं तु सदा वृद्धिं सत्यमेतद् वचो मम ॥ ७६ ॥

'सोम आधे मासतक प्रतिदिन क्षीण होंगे और आधे मासतक निरन्तर बढ़ते रहेंगे । मेरी यह बात अवश्य सत्य होगी ॥ ७६ ॥

समुद्रं पश्चिमं गत्वा सरस्वत्यब्धिसङ्गमम् ।
आराधयतु देवेशं ततः कान्तिमवाप्स्यति ॥ ७७ ॥

'पश्चिमी समुद्रके तटपर जहाँ सरस्वती और समुद्रका सङ्गम हुआ है, वहाँ जाकर चन्द्रमा देवेश्वर महादेवजीकी आराधना करें तो पुनः ये अपनी कान्ति प्राप्त कर लेंगे' ॥ ७७ ॥

सरस्वतीं ततः सोमः स जगामर्षिशासनात् ।
प्रभासं प्रथमं तीर्थं सरस्वत्या जगाम ह ॥ ७८ ॥

ऋषि (दक्ष प्रजापति) के इस आदेशसे सोम सरस्वतीके प्रथम तीर्थ प्रभासक्षेत्रमें गये ॥ ७८ ॥

अमावास्यां महातेजास्तत्रोन्मज्जन् महाद्युतिः ।
लोकान् प्रभासयामास शीतांशुत्वमवाप च ॥ ७९ ॥

महातेजस्वी महाकान्तिमान् चन्द्रमाने अमावास्याको उस तीर्थमें गोता लगाया । इससे उन्हें शीतल किरणें प्राप्त हुईं और वे सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करने लगे ॥ ७९ ॥

देवास्तु सर्वे राजेन्द्र प्रभासं प्राप्य पुष्कलम् ।
सोमेन सहिता भूत्वा दक्षस्य प्रमुखेऽभवन् ॥ ८० ॥

राजेन्द्र ! फिर सम्पूर्ण देवता सोमके साथ महान् प्रकाश प्राप्त करके पुनः दक्षप्रजापतिके सामने उपस्थित हुए ॥८०॥

ततः प्रजापतिः सर्वा विससर्जाथ देवताः।
सोमं च भगवान् प्रीतो भूयो वचनमब्रवीत् ॥ ८१ ॥

तब भगवान् प्रजापतिने समस्त देवताओंको विदा कर दिया और सोमसे पुनः प्रसन्नतापूर्वक कहा—॥ ८१ ॥

मावमंस्थाः स्त्रियः पुत्र मा च विप्रान् कदाचन।
गच्छ युक्तः सदा भूत्वा कुरु वै शासनं मम ॥ ८२ ॥

'बेटा ! अपनी स्त्रियों तथा ब्राह्मणोंकी कभी अवहेलना न करना। जाओ, सदा सावधान रहकर मेरी आज्ञाका पालन करते रहो' ॥ ८२ ॥

स विसृष्टो महाराज जगामाथ स्वमालयम्।
प्रजाश्च मुदिता भूत्वा पुनस्तस्थुर्यथा पुरा ॥ ८३ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर प्रजापतिने उन्हें विदा कर दिया। चन्द्रमा अपने स्थानको चले गये और सारी प्रजा पूर्ववत् प्रसन्न रहने लगी ॥ ८३ ॥

एवं ते सर्वमाख्यातं यथा शप्तो निशाकरः।
प्रभासं च यथा तीर्थं तीर्थानां प्रवरं महत् ॥ ८४ ॥

इस प्रकार चन्द्रमाको जैसे शाप प्राप्त हुआ था और महान् प्रभासतीर्थ जिस प्रकार सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ माना गया, वह सारा प्रसङ्ग मैंने तुमसे कह सुनाया ॥ ८४ ॥

अमावास्यां महाराज नित्यशः शशलक्षणः।
स्नात्वा ह्याप्यायते श्रीमान् प्रभासे तीर्थ उत्तमे ॥ ८५ ॥

महाराज ! चन्द्रमा उत्तम प्रभासतीर्थमें प्रत्येक अमावास्याको स्नान करके कान्तिमान् एवं पुष्ट होते हैं ॥ ८५ ॥

अतश्चैतत् प्रजानन्ति प्रभासमिति भूमिप।
प्रभां हि परमां लेभे तस्मिन्नुन्मज्ज्य चन्द्रमाः ॥ ८६ ॥

भूमिपाल ! इसीलिये सब लोग इसे प्रभासतीर्थके नामसे जानते हैं; क्योंकि उसमें गोता लगाकर चन्द्रमाने उत्कृष्ट प्रभा प्राप्त की थी ॥ ८६ ॥

ततस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद् बली।
चमसोद्भेद इत्येवं यं जनाः कथयन्त्युत ॥ ८७ ॥

तदनन्तर भगवान् बलराम चमसोद्भेद नामक तीर्थमें गये। उस तीर्थको सब लोग चमसोद्भेदके नामसे ही पुकारते हैं ॥

तत्र दत्त्वा च दानानि विशिष्टानि हलायुधः।
उषित्वा रजनीमेकां स्नात्वा च विधिवत्तदा ॥ ८८ ॥
उदपानमथागच्छत्त्वरावान् केशवाग्रजः।
आद्यं स्वस्त्ययनं चैव यत्रावाप्य महत् फलम् ॥ ८९ ॥
स्निग्धत्वादोषधीनां च भूमेश्च जनमेजय।
जानन्ति सिद्धा राजेन्द्र नष्टामपि सरस्वतीम् ॥ ९० ॥

श्रीकृष्णके बड़े भाई हलधारी बलरामने वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके उत्तम दान दे एक रात रहकर बड़ी उतावलीके साथ वहाँसे उदपानतीर्थको प्रस्थान किया, जो मङ्गलकारी आदि तीर्थ है। राजेन्द्र जनमेजय ! उदपान वह तीर्थ है, जहाँ उपस्थित होने मात्रसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। सिद्ध पुरुष वहाँ ओषधियों (वृक्षों और लताओं) की स्निग्धता और भूमिकी आर्द्रता देखकर अदृश्य हुई सरस्वतीको भी जान लेते हैं ॥ ८८–९० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां प्रभासोत्पत्तिकथने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें प्रभासतीर्थका वर्णनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

उदपानतीर्थकी उत्पत्तिकी तथा त्रित मुनिके कूपमें गिरने, वहाँ यज्ञ करने और अपने भाइयोंको शाप देनेकी कथा

वैशम्पायन उवाच

तस्मान्नदीगतं चापि ह्युदपानं यशस्विनः।
त्रितस्य च महाराज जगामाथ हलायुधः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! उस चमसोद्भेदतीर्थसे चलकर बलरामजी यशस्वी त्रितमुनिके उदपान तीर्थमें गये, जो सरस्वती नदीके जलमें स्थित है ॥ १ ॥

तत्र दत्त्वा बहु द्रव्यं पूजयित्वा तथा द्विजान्।
उपस्पृश्य च तत्रैव प्रहृष्टो मुसलायुधः ॥ २ ॥

मुसलधारी बलरामजीने वहाँ जलका स्पर्श, आचमन एवं स्नान करके बहुत-सा द्रव्य दान करनेके पश्चात् ब्राह्मणोंका पूजन किया। फिर वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

तत्र धर्मपरो भूत्वा त्रितः स सुमहातपाः।
कूपे च वसता तेन सोमः पीतो महात्मना ॥ ३ ॥

वहाँ महातपस्वी त्रितमुनि धर्मपरायण होकर रहते थे। उन महात्माने कुएँमें रहकर ही सोमपान किया था ॥ ३ ॥

तत्र चैनं समुत्सृज्य भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान्।
ततस्तौ वै शशापाथ त्रितो ब्राह्मणसत्तमः ॥ ४ ॥

उनके दो भाई उस कुएँमें ही उन्हें छोड़कर घरको चले गये थे। इससे ब्राह्मणश्रेष्ठ त्रितने दोनोंको शाप दे दिया था ॥ ४ ॥

जनमेजय उवाच

उदपानं कथं ब्रह्मन् कथं च सुमहातपाः।
पतितः किं च संत्यक्तो भ्रातृभ्यां द्विजसत्तम ॥ ५ ॥
कूपे कथं च हित्वैनं भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान्।
कथं च याजयामास पपौ सोमं च वै कथम् ॥ ६ ॥
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्श्रोतव्यं यदि मन्यसे।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! उदपान तीर्थ कैसे हुआ? वे महातपस्वी त्रितमुनि उसमें कैसे गिर पड़े और द्विजश्रेष्ठ! उनके दोनों भाइयोंने उन्हें क्यों वहीं छोड़ दिया था? क्या कारण था, जिससे वे दोनों भाई उन्हें कुएँमें ही त्यागकर घर चले गये थे? वहाँ रहकर उन्होंने यज्ञ और सोमपान कैसे किया? ब्रह्मन्! यदि यह प्रसङ्ग मेरे सुनने योग्य समझें तो अवश्य मुझे बतावें ॥ ५-६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

आसन् पूर्वयुगे राजन् मुनयो भ्रातरस्त्रयः ॥ ७ ॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसंनिभाः ।
सर्वे प्रजापतिसमाः प्रजावन्तस्तथैव च ॥ ८ ॥
ब्रह्मलोकजितः सर्वे तपसा ब्रह्मवादिनः ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! पहले युगमें तीन सहोदर भाई रहते थे। वे तीनों ही मुनि थे। उनके नाम थे एकत, द्वित और त्रित। वे सभी महर्षि सूर्यके समान तेजस्वी, प्रजापतिके समान संतानवान् और ब्रह्मवादी थे। उन्होंने तपस्याद्वारा ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त की थी ॥ ७-८½ ॥

तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥ ९ ॥
अभवद् गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा ।

उनकी तपस्या, नियम और इन्द्रियनिग्रहसे उनके धर्मपरायण पिता गौतम सदा ही प्रसन्न रहा करते थे ॥ ९½ ॥

स तु दीर्घेण कालेन तेषां प्रीतिमवाप्य च ॥ १० ॥
जगाम भगवान् स्थानमनुरूपमिवात्मनः ।

उन पुत्रोंकी त्याग-तपस्यासे संतुष्ट रहते हुए वे पूजनीय महात्मा गौतम दीर्घकालके पश्चात् अपने अनुरूप स्थान (स्वर्गलोक) में चले गये ॥ १०½ ॥

राजानस्तस्य ये ह्यासन् याज्या राजन् महात्मनः॥११॥
ते सर्वे स्वर्गते तस्मिंस्तस्य पुत्रानपूजयन् ।

राजन्! उन महात्मा गौतमके यजमान जो राजा लोग थे, वे सब उनके स्वर्गवासी हो जानेपर उनके पुत्रोंका ही आदर-सत्कार करने लगे ॥ ११½ ॥

तेषां तु कर्मणा राजंस्तथा चाध्ययनेन च ॥ १२ ॥
त्रितः स श्रेष्ठतां प्राप यथैवास्य पिता तथा ।

नरेश्वर! उन तीनोंमें भी अपने शुभ कर्म और स्वाध्यायके द्वारा महर्षि त्रितने सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया! जैसे उनके पिता सम्मानित थे, वैसे ही वे भी हो गये ॥ १२½ ॥

तथा सर्वे महाभागा मुनयः पुण्यलक्षणाः ॥ १३ ॥
अपूजयन् महाभागं यथास्य पितरं तथा ।

महान् सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा सभी महर्षि भी महाभाग त्रितका उनके पिताके तुल्य ही सम्मान करते थे ॥

कदाचिद्धि ततो राजन् भ्रातरावेकतद्वितौ ॥ १४ ॥
यज्ञार्थं चक्रतुश्चिन्तां तथा वित्तार्थमेव च ।
तयोर्बुद्धिः समभवत् त्रितं गृह्य परंतप ॥ १५ ॥
याज्यान् सर्वानुपादाय प्रतिगृह्य पशूंस्ततः ।
सोमं पास्यामहे हृष्टाः प्राप्य यज्ञं महाफलम् ॥ १६ ॥

राजन्! एक दिनकी बात है, उनके दोनों भाई एकत और द्वित यज्ञ और धनके लिये चिन्ता करने लगे। शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि हमलोग त्रितको साथ लेकर यजमानोंका यज्ञ करावें और दक्षिणाके रूपमें बहुत-से पशु प्राप्त करके महान् फलदायक यज्ञका अनुष्ठान करें और उसीमें प्रसन्नतापूर्वक सोमरसका पान करें ॥ १४—१६ ॥

चक्रुश्चैवं तथा राजन् भ्रातरस्त्रय एव च ।
तथा ते तु परिक्रम्य याज्यान् सर्वान् पशून् प्रति॥१७॥
याजयित्वा ततो याज्याँल्लब्ध्वा तु सुबहून् पशून् ।
याज्येन कर्मणा तेन प्रतिगृह्य विधानतः ॥ १८ ॥
प्राचीं दिशं महात्मान आजग्मुस्ते महर्षयः ।

राजन्! ऐसा विचार करके उन तीनों भाइयोंने वही किया। वे सभी यजमानोंके यहाँ पशुओंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे गये और उनसे विधिपूर्वक यज्ञ करवाकर उस याज्यकर्मके द्वारा उन्होंने बहुतेरे पशु प्राप्त कर लिये। तत्पश्चात् वे महात्मा महर्षि पूर्वदिशाकी ओर चल दिये ॥ १७-१८½ ॥

त्रितस्तेषां महाराज पुरस्ताद् याति हृष्टवत् ॥ १९ ॥
एकतश्च द्वितश्चैव पृष्ठतः कालयन् पशून् ।

महाराज! उनमें त्रित मुनि तो प्रसन्नतापूर्वक आगे-आगे चलते थे और एकत तथा द्वित पीछे रहकर पशुओंको हाँकते जाते थे ॥ १९½ ॥

तयोश्चिन्ता समभवद् दृष्ट्वा पशुगणं महत् ॥ २० ॥
कथं च स्युरिमा गाव आवाभ्यां हि विना त्रितम् ।

पशुओंके उस महान् समुदायको देखकर एकत और द्वितके मनमें यह चिन्ता समायी कि किस उपायसे ये गौएँ त्रितको न मिलकर हम दोनोंके ही पास रह जायँ ॥ २०½ ॥

तावन्योन्यं समाभाष्य एकतश्च द्वितश्च ह ॥ २१ ॥
यदूचतुर्मिथः पापौ तन्निबोध जनेश्वर ।

जनेश्वर! उन एकत और द्वित दोनों पापियोंने एक दूसरेसे सलाह करके परस्पर जो कुछ कहा, वह बताता हूँ, सुनो ॥ २१½ ॥

त्रितो यज्ञेषु कुशलस्त्रितो वेदेषु निष्ठितः ॥ २२ ॥
अन्यास्तु बहुला गावस्त्रितः समुपलप्स्यते ।
तदावां सहितौ भूत्वा गाः प्रकाल्य व्रजावहे ॥ २३ ॥
त्रितोऽपि गच्छतां काममावाभ्यां वै विना कृतः।

'त्रित यज्ञ करानेमें कुशल हैं, त्रित वेदोंके परिनिष्ठित विद्वान् हैं, अतः वे और बहुत-सी गौएँ प्राप्त कर लेंगे। इस समय हम दोनों एक साथ होकर इन गौओंको हाँक ले चलें और त्रित हमसे अलग होकर जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जायँ'॥

तेषामागच्छतां रात्रौ पथिस्थानां वृकोऽभवत् ॥ २४ ॥
तत्र कूपोऽविदूरेऽभूत् सरस्वत्यास्तटे महान् ।

रात्रिका समय था और वे तीनों भाई रास्ता पकड़े चले आ रहे थे। उनके मार्गमें एक भेड़िया खड़ा था। वहाँ पास ही सरस्वतीके तटपर एक बहुत बड़ा कुआँ था ॥ २४½ ॥

अथ त्रितो वृकं दृष्ट्वा पथि तिष्ठन्तमग्रतः ॥ २५ ॥
तद्भयादपसर्पन् वै तस्मिन् कूपे पपात ह ।
अगाधे सुमहाघोरे सर्वभूतभयंकरे ॥ २६ ॥

त्रित अपने आगे रास्तेमें खड़े हुए भेड़ियेको देखकर उसके भयसे भागने लगे । भागते-भागते वे समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर उस महाघोर अगाध कूपमें गिर पड़े ॥२५-२६॥

त्रितस्ततो महाराज कूपस्थो मुनिसत्तमः ।
आर्तनादं ततश्चक्रे तौ तु शुश्रुवतुर्मुनी ॥ २७ ॥

महाराज ! कुएँमें पहुँचनेपर मुनिश्रेष्ठ त्रितने बड़े जोरसे आर्तनाद किया, जिसे उन दोनों मुनियोंने सुना ॥ २७ ॥

तं ज्ञात्वा पतितं कूपे भ्रातरावेकतद्वितौ ।
वृकत्रासाच्च लोभाच्च समुत्सृज्य प्रजग्मतुः ॥ २८ ॥

अपने भाईको कुएँमें गिरा हुआ जानकर भी दोनों भाई एकत और द्वित भेड़ियेके भय और लोभसे उन्हें वहीं छोड़कर चल दिये ॥ २८ ॥

भ्रातृभ्यां पशुलुब्धाभ्यामुत्सृष्टः स महातपाः ।
उदपाने तदा राजन् निर्जले पांसुसंवृते ॥ २९ ॥

राजन् ! पशुओंके लोभमें आकर उन दोनों भाइयोंने उस समय उन महातपस्वी त्रितको धूलिसे भरे हुए उस निर्जल कूपमें ही छोड़ दिया ॥ २९ ॥

त्रित आत्मानमालक्ष्य कूपे वीरुत्तृणावृते ।
निमग्नं भरतश्रेष्ठ नरके दुष्कृती यथा ॥ ३० ॥
स बुद्ध्यागणयत् प्राज्ञो मृत्योर्भीतो ह्यसोमपः।
सोमः कथं तु पातव्य इहस्थेन मया भवेत् ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे पापी मनुष्य अपने-आपको नरकमें डूबा हुआ देखता है, उसी प्रकार तृण, वीरुध और लताओंसे व्याप्त हुए उस कुएँमें अपने आपको गिरा देख मृत्युसे डरे और सोमपानसे वञ्चित हुए विद्वान् त्रित अपनी बुद्धिसे सोचने लगे कि 'मैं इस कुएँमें रहकर कैसे सोमरसका पान कर सकता हूँ ?'॥ ३०-३१ ॥

स एवमभिनिश्चित्य तस्मिन् कूपे महातपाः ।
ददर्श वीरुधं तत्र लम्बमानां यदृच्छया ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते-करते महातपस्वी त्रितने उस कुएँमें एक लता देखी, जो दैवयोगसे वहाँ फैली हुई थी ॥

पांसुग्रस्ते ततः कूपे विचिन्त्य सलिलं मुनिः ।
अग्नीन् संकल्पयामास होतृनात्मानमेव च ॥ ३३ ॥

मुनिने उस बालूभरे कूपमें जलकी भावना करके उसीमें संकल्पद्वारा अग्निकी स्थापना की और होता आदिके स्थानपर अपने आपको ही प्रतिष्ठित किया ॥ ३३ ॥

ततस्तां वीरुधं सोमं संकल्प्य सुमहातपाः ।
ऋचो यजूंषि सामानि मनसा चिन्तयन् मुनिः॥ ३४ ॥
ग्रावाणः शर्कराः कृत्वा प्रचक्रेऽभिषवं नृप ।
आज्यं च सलिलं चक्रे भागांश्च त्रिदिवौकसाम्॥ ३५ ॥
सोमस्याभिषवं कृत्वा चकार विपुलं ध्वनिम् ।

तत्पश्चात् उन महातपस्वी त्रितने उस फैली हुई लतामें सोमकी भावना करके मन-ही-मन ऋग्, यजु और सामका चिन्तन किया । नरेश्वर ! इसके बाद कंकड़ या बालू-कणोंमें सिल और लोढ़ेकी भावना करके उसपर पीसकर लतासे सोमरस निकाला । फिर जलमें घीका संकल्प करके उन्होंने देवताओंके भाग नियत किये और सोमरस तैयार करके उसकी आहुति देते हुए वेद-मन्त्रोंकी गम्भीर ध्वनि की ॥ ३४-३५½ ॥

स चाविशद् दिवं राजन् पुनः शब्दस्त्रितस्य वै॥ ३६ ॥
समवाप्य च तं यज्ञं यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।

राजन् ! ब्रह्मवादियोंने जैसा बताया है, उसके अनुसार ही उस यज्ञका सम्पादन करके की हुई त्रितकी वह वेदध्वनि स्वर्गलोक तक गूँज उठी ॥ ३६½ ॥

वर्तमाने महायज्ञे त्रितस्य सुमहात्मनः ॥ ३७ ॥
आविग्नं त्रिदिवं सर्वं कारणं च न बुद्ध्यते ।

महात्मा त्रितका वह महान् यज्ञ जब चालू हुआ, उस समय सारा स्वर्गलोक उद्विग्न हो उठा, परंतु किसीको इसका कोई कारण नहीं जान पड़ा ॥ ३७½ ॥

ततः सुतुमुलं शब्दं शुश्रावाथ बृहस्पतिः ॥ ३८ ॥
श्रुत्वा चैवाब्रवीत् सर्वान् देवान् देवपुरोहितः ।
त्रितस्य वर्तते यज्ञस्तत्र गच्छामहे सुराः ॥ ३९ ॥

तब देवपुरोहित बृहस्पतिजीने वेदमन्त्रोंके उस तुमुलनादको सुनकर देवताओंसे कहा—'देवगण ! त्रित मुनिका यज्ञ हो रहा है, वहाँ हमलोगोंको चलना चाहिये ॥ ३८-३९ ॥

स हि क्रुद्धः सृजेदन्यान् देवानपि महातपाः ।

'वे महान् तपस्वी हैं । यदि हम नहीं चलेंगे तो वे कुपित होकर दूसरे देवताओंकी सृष्टि कर लेंगे' ॥ ३९½ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सहिताः सर्वदेवताः ॥ ४० ॥
प्रययुस्तत्र यत्रासौ त्रितयज्ञः प्रवर्तते ।

बृहस्पतिजीका यह वचन सुनकर सब देवता एक साथ हो उस स्थानपर गये, जहाँ त्रितमुनिका यज्ञ हो रहा था ॥

ते तत्र गत्वा विबुधास्तं कूपं यत्र स त्रितः ॥ ४१ ॥
ददृशुस्तं महात्मानं दीक्षितं यज्ञकर्मसु ।
दृष्ट्वा चैनं महात्मानं श्रिया परमया युतम् ॥ ४२ ॥
ऊचुश्चैनं महाभागं प्राप्ता भागार्थिनो वयम् ।

वहाँ पहुँचकर देवताओंने उस कूपको देखा, जिसमें त्रित मौजूद थे । साथ ही उन्होंने यज्ञमें दीक्षित हुए महात्मा त्रितमुनिका भी दर्शन किया । वे बड़े तेजस्वी दिखायी दे रहे थे । उन महाभाग मुनिका दर्शन करके देवताओंने उनसे कहा—'हमलोग यज्ञमें अपना भाग लेनेके लिये आये हैं' ॥

अथाब्रवीदृषिर्देवान् पश्यध्वं मा दिवौकसः ॥ ४३ ॥
अस्मिन् प्रतिभये कूपे निमग्नं नष्टचेतसम् ।

उस समय महर्षिने उनसे कहा—'देवताओ ! देखो, मैं किस दशामें पड़ा हूँ । इस भयानक कूपमें गिरकर अपनी सुधबुध खो बैठा हूँ' ॥ ४३½ ॥

ततस्त्रितो महाराज भागांस्तेषां यथाविधि ॥ ४४ ॥
मन्त्रयुक्तान् समददत् ते च प्रीतास्तदाभवन् ।

महाराज ! तदनन्तर त्रितने देवताओंको विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए उनके भाग समर्पित किये। इससे वे उस समय बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४४½ ॥

ततो यथाविधि प्राप्तान् भागान् प्राप्य दिवौकसः॥ ४५॥
प्रीतात्मानो ददुस्तस्मै वरान् यान् मनसेच्छति।

विधिपूर्वक प्राप्त हुए उन भागोंको ग्रहण करके प्रसन्नचित्त हुए देवताओंने उन्हें मनोवाञ्छित वर प्रदान किया ॥

स तु वव्रे वरं देवांस्त्रातुमर्हथ मामितः ॥ ४६ ॥
यश्चेहोपस्पृशेत् कूपे स सोमपगतिं लभेत्।

मुनिने देवताओंसे वर माँगते हुए कहा—'मुझे इस कूपसे आपलोग बचावें तथा जो मनुष्य इसमें आचमन करे, उसे यज्ञमें सोमपान करनेवालोंकी गति प्राप्त हो' ॥ ४६½ ॥

तत्र चोर्मिमती राजन्नुत्पपात सरस्वती ॥ ४७ ॥
तयोत्क्षिप्तः समुत्तस्थौ पूजयंस्त्रिदिवौकसः।

राजन्! मुनिके इतना कहते ही कुएँमें तरङ्गमालाओंसे सुशोभित सरस्वती लहरा उठी। उसने अपने जलके वेगसे मुनिको ऊपर उठा दिया और वे बाहर निकल आये। फिर उन्होंने देवताओंका पूजन किया ॥ ४७½ ॥

तथेति चोक्त्वा विबुधा जग्मू राजन् यथागताः॥ ४८ ॥
त्रितश्चाप्यगमत् प्रीतः स्वमेव निलयं तदा।

नरेश्वर! मुनिके माँगे हुए वरके विषयमें 'तथास्तु' कहकर सब देवता जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। फिर त्रित भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको ही लौट गये ॥ ४८½ ॥

क्रुद्धस्तु स समासाद्य तावृषी भ्रातरौ तदा ॥ ४९ ॥
उवाच परुषं वाक्यं शशाप च महातपाः।
पशुलुब्धौ युवां यस्मान्मामुत्सृज्य प्रधावितौ ॥ ५० ॥
तस्माद् वृकाकृती रौद्रौ दंष्ट्रिणावभितश्चरौ।
भवितारौ मया शप्तौ पापेनानेन कर्मणा ॥ ५१ ॥
प्रसवश्चैव युवयोर्गोलाङ्गूलर्क्षवानराः।

उन महातपस्वीने कुपित हो अपने उन दोनों ऋषि भाइयोंके पास पहुँचकर कठोर वाणीमें शाप देते हुए कहा—'तुम दोनों पशुओंके लोभमें फँसकर मुझे छोड़कर भाग आये। इसलिये इसी पापकर्मके कारण मेरे शापसे तुम दोनों भाई महाभयंकर भेड़ियेका शरीर धारण करके दाढ़ोंसे युक्त हो इधर-उधर भटकते फिरोगे। तुम दोनोंकी संतानके रूपमें गोलाङ्गूल, रीछ और वानर आदि पशुओंकी उत्पत्ति होगी' ॥

इत्युक्तेन तदा तेन क्षणादेव विशाम्पते ॥ ५२ ॥
तथाभूतावदृश्येतां वचनात् सत्यवादिनः।

प्रजानाथ! उनके इतना कहते ही वे दोनों भाई उस सत्यवादीके वचनसे उसी क्षण भेड़ियेकी शकलमें दिखायी देने लगे ॥ ५२½ ॥

तत्राप्यमितविक्रान्तः स्पृष्ट्वा तोयं हलायुधः ॥ ५३ ॥
दत्त्वा च विविधान् दायान् पूजयित्वा च वै द्विजान्।

अमित पराक्रमी बलरामजीने उस तीर्थमें भी जलका स्पर्श किया और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें नाना प्रकारके धन प्रदान किये ॥ ५३½ ॥

उदपानं च तं वीक्ष्य प्रशस्य च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥
नदीगतमदीनात्मा प्राप्तो विनशनं तदा ॥ ५५ ॥

उदार चित्तवाले बलरामजी सरस्वती नदीके अन्तर्गत उदपानतीर्थका दर्शन करके उसकी बारंबार स्तुति-प्रशंसा करते हुए वहाँसे विनशन तीर्थमें चले गये ॥ ५४-५५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां त्रिताख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें त्रितका उपाख्यानविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

विनशन, सुभूमिक, गन्धर्व, गर्गस्रोत, शङ्ख, द्वैतवन तथा नैमिषेय आदि तीर्थोंमें होते हुए बलभद्रजीका सप्त सारस्वततीर्थमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

ततो विनशनं राजन् जगामाथ हलायुधः।
शूद्राभीरान् प्रति द्वेषाद् यत्र नष्टा सरस्वती ॥ १ ॥
तस्मात् तु ऋषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेति च।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उदपानतीर्थसे चलकर हलधारी बलराम विनशनतीर्थमें आये, जहाँ (दुष्कर्मपरायण) शूद्रों और आभीरोंके प्रति द्वेष होनेसे सरस्वती नदी विनष्ट (अदृश्य) हो गयी है। इसीलिये ऋषिगण उसे सदा विनशनतीर्थ कहते हैं ॥ १½ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य बलः सरस्वत्यां महाबलः ॥ २ ॥
सुभूमिकं ततोऽगच्छत् सरस्वत्यास्तटे वरे।

महाबली बलराम वहाँ भी सरस्वतीमें आचमन और स्नान करके उसके सुन्दर तटपर स्थित हुए 'सुभूमिक' तीर्थमें गये॥

तत्र चाप्सरसः शुभ्रा नित्यकालमतन्द्रिताः ॥ ३ ॥
क्रीडाभिर्विमलाभिश्च क्रीडन्ति विमलाननाः।

उस तीर्थमें गौरवर्ण तथा निर्मल मुखवाली सुन्दरी अप्सराएँ आलस्य त्यागकर सदा नाना प्रकारकी विमल क्रीडाओंद्वारा मनोरञ्जन करती हैं ॥ ३½ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा मासि मासि जनेश्वर ॥ ४ ॥
अभिगच्छन्ति तत् तीर्थं पुण्यं ब्राह्मणसेवितम्।

जनेश्वर! वहाँ उस ब्राह्मणसेवित पुण्यतीर्थमें गन्धर्वोंसहित देवता भी प्रतिमास आया करते हैं ॥ ४½ ॥

तत्रादृश्यन्त गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५ ॥
समेत्य सहिता राजन् यथाप्राप्तं यथासुखम्।

राजन्! गन्धर्वगण और अप्सराएँ एक साथ मिलकर वहाँ आती और सुखपूर्वक विचरण करती दिखायी देती हैं ॥

तत्र मोदन्ति देवाश्च पितरश्च सवीरुधः ॥ ६ ॥
पुण्यैः पुष्पैः सदा दिव्यैः कीर्यमाणाः पुनः पुनः ।

वहाँ देवता और पितर लता-वेलोंके साथ आमोदित होते हैं, उनके ऊपर सदा पवित्र एवं दिव्य पुष्पोंकी वर्षा बारंबार होती रहती है ॥ ६½ ॥

आक्रीडभूमिः सा राजंस्तासामप्सरसां शुभा ॥ ७ ॥
सुभूमिकेति विख्याता सरस्वत्यास्तटे वरे ।

राजन्! सरस्वतीके सुन्दर तटपर वह उन अप्सराओंकी मङ्गलमयी क्रीडाभूमि है, इसलिये वह स्थान सुभूमिक नामसे विख्यात है ॥ ७½ ॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसु विप्राय माधवः ॥ ८ ॥
श्रुत्वा गीतं च तद् दिव्यं वादित्राणां च निःस्वनम्।
छायाश्च विपुला दृष्ट्वा देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ ९ ॥
गन्धर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद् रोहिणीसुतः ।

बलरामजीने वहाँ स्नान करके ब्राह्मणोंको धन दान किया और दिव्य गीत एवं दिव्य वाद्योंकी ध्वनि सुनकर देवताओं, गन्धर्वों तथा राक्षसोंकी बहुत-सी मूर्तियोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् रोहिणीनन्दन बलराम गन्धर्वतीर्थमें गये ॥८-९½॥

विश्वावसुमुखास्तत्र गन्धर्वास्तपसान्विताः ॥ १० ॥
नृत्यवादित्रगीतं च कुर्वन्ति सुमनोरमम् ।

वहाँ तपस्यामें लगे हुए विश्वावसु आदि गन्धर्व अत्यन्त मनोरम नृत्य, वाद्य और गीतका आयोजन करते रहते हैं ॥

तत्र दत्त्वा हलधरो विप्रेभ्यो विविधं वसु ॥ ११ ॥
अजाविकं गोखरोष्ट्रं सुवर्णं रजतं तथा ।
भोजयित्वा द्विजान् कामैः संतर्प्य च महाधनैः ॥१२॥
प्रययौ सहितो विप्रैः स्तूयमानश्च माधवः ।

हलधरने वहाँ भी ब्राह्मणोंको भेड़, बकरी, गाय, गदहा, ऊँट और सोना-चाँदी आदि नाना प्रकारके धन देकर उन्हें इच्छानुसार भोजन कराया तथा प्रचुर धनसे संतुष्ट करके ब्राह्मणोंके साथ ही वहाँसे प्रस्थान किया। उस समय ब्राह्मण लोग बलरामजीकी बड़ी स्तुति करते थे ॥ ११-१२½ ॥

तस्माद् गन्धर्वतीर्थाच्च महाबाहुररिंदमः ॥ १३ ॥
गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली ।

उस गन्धर्वतीर्थसे चलकर एक कानमें कुण्डल धारण करनेवाले शत्रुदमन महाबाहु बलराम गर्गस्रोत नामक महातीर्थमें आये ॥ १३½ ॥

तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना ॥ १४ ॥
कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः ।
उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय ॥ १५ ॥
सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विदिता वै महात्मना ।
तस्य नाम्ना च तत् तीर्थं गर्गस्रोत इति स्मृतम् ॥ १६ ॥

जनमेजय! वहाँ तपस्यासे पवित्र अन्तःकरणवाले महात्मा वृद्ध गर्गने सरस्वतीके उस शुभ तीर्थमें कालका ज्ञान, कालकी गति, ग्रहों और नक्षत्रोंके उलट-फेर, दारुण उत्पात तथा शुभ लक्षण—इन सभी बातोंकी जानकारी प्राप्त कर ली थी। उन्हींके नामसे वह तीर्थ गर्गस्रोत कहलाता है।१४-१६।

तत्र गर्गं महाभागमृषयः सुव्रता नृप ।
उपासांचक्रिरे नित्यं कालज्ञानं प्रति प्रभो ॥ १७ ॥

सामर्थ्यशाली नरेश्वर! वहाँ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ऋषियोंने कालज्ञानके लिये सदा महाभाग गर्गमुनिकी उपासना (सेवा) की थी ॥ १७ ॥

तत्र गत्वा महाराज बलः श्वेतानुलेपनः ।
विधिवद्धि धनं दत्त्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ १८ ॥
उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान् विप्रेभ्यो विप्रदाय सः ।
नीलवासास्तदागच्छच्छङ्खतीर्थं महायशाः ॥ १९ ॥

महाराज! वहाँ जाकर श्वेतचन्दनचर्चित, नीलाम्बरधारी महायशस्वी बलरामजी विशुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियोंको विधिपूर्वक धन देकर ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ समर्पित करके वहाँसे शङ्खतीर्थमें चले गये ॥

तत्रापश्यन्महाशङ्खं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
श्वेतपर्वतसंकाशमृषिसंघैर्निषेवितम् ॥ २० ॥
सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली ।

वहाँ तालचिह्नित ध्वजावाले बलवान् बलरामने महाशङ्ख नामक एक वृक्ष देखा, जो महान् मेरुपर्वतके समान ऊँचा और श्वेताचलके समान उज्ज्वल था। उसके नीचे ऋषियोंके समूह निवास करते थे। वह वृक्ष सरस्वतीके तटपर ही उत्पन्न हुआ था ॥ २०½ ॥

यक्षा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः ॥ २१ ॥
पिशाचाश्चामितबला यत्र सिद्धाः सहस्रशः ।

उस वृक्षके आस-पास यक्ष, विद्याधर, अमित तेजस्वी राक्षस, अनन्त बलशाली पिशाच तथा सिद्धगण सहस्रोंकी संख्यामें निवास करते थे ॥ २१½ ॥

ते सर्वे ह्यशनं त्यक्त्वा फलं तस्य वनस्पतेः ॥ २२ ॥
व्रतैश्च नियमैश्चैव काले काले स्म भुञ्जते ।

वे सब-के-सब अन्न छोड़कर व्रत और नियमोंका पालन करते हुए समय-समयपर उस वृक्षका ही फल खाया करते थे॥

प्राप्तैश्च नियमैस्तैस्तैर्विचरन्तः पृथक् पृथक् ॥ २३ ॥
अदृश्यमाना मनुजैर्व्यचरन् पुरुषर्षभ ।
एवं ख्यातो नरव्याघ्र लोकेऽस्मिन् स वनस्पतिः॥ २४ ॥

पुरुषश्रेष्ठ! वे उन स्वीकृत नियमोंके अनुसार पृथक्-पृथक् विचरते हुए मनुष्योंसे अदृश्य रहकर घूमते थे। नरव्याघ्र! इस प्रकार वह वनस्पति इस विश्वमें विख्यात था ॥

ततस्तीर्थं सरस्वत्याः पावनं लोकविश्रुतम् ।
तस्मिंश्च यदुशार्दूलो दत्त्वा तीर्थे पयस्विनीः ॥ २५ ॥
ताम्रायसानि भाण्डानि वस्त्राणि विविधानि च ।
पूजयित्वा द्विजांश्चैव पूजितश्च तपोधनैः ॥ २६ ॥

वह वृक्ष सरस्वतीका लोकविख्यात पावन तीर्थ है। यदुश्रेष्ठ बलराम उस तीर्थमें दूध देनेवाली गौओंका दान करके

ताँबे और लोहेके बर्तन तथा नाना प्रकारके वस्त्र भी ब्राह्मणोंको दिये। ब्राह्मणोंका पूजन करके वे स्वयं भी तपस्वी मुनियोंद्वारा पूजित हुए ॥ २५-२६ ॥

पुण्यं द्वैतवनं राजन्नाजगाम हलायुधः।
तत्र गत्वा मुनीन् दृष्ट्वा नानावेषधरान् बलः ॥ २७ ॥
आप्लुत्य सलिले चापि पूजयामास वै द्विजान्।

राजन्! वहाँसे हलधर बलभद्रजी पवित्र द्वैतवनमें आये और वहाँके नाना वेशधारी मुनियोंका दर्शन करके जलमें गोता लगाकर उन्होंने ब्राह्मणोंका पूजन किया ॥ २७½ ॥

तथैव दत्त्वा विप्रेभ्यः परिभोगान् सुपुष्कलान् ॥ २८ ॥
ततः प्रायाद् बलो राजन् दक्षिणेन सरस्वतीम्।

राजन्! इसी प्रकार विप्रवृन्दको प्रचुर भोगसामग्री अर्पित करके फिर बलरामजी सरस्वतीके दक्षिण तटपर होकर यात्रा करने लगे ॥ २८½ ॥

गत्वा चैवं महाबाहुर्नातिदूरे महायशाः ॥ २९ ॥
धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागमदच्युतः।
यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः संनिवेशनम् ॥ ३० ॥
महाद्युतेर्महाराज बहुभिः पन्नगैर्वृतम्।
ऋषीणां हि सहस्राणि तत्र नित्यं चतुर्दश ॥ ३१ ॥

महाराज! इस प्रकार थोड़ी ही दूर जाकर महाबाहु, महायशस्वी धर्मात्मा भगवान् बलराम नागधन्वा नामक तीर्थमें पहुँच गये, जहाँ महातेजस्वी नागराज वासुकिका बहुसंख्यक सर्पोंसे घिरा हुआ निवासस्थान है। वहाँ सदा चौदह हजार ऋषि निवास करते हैं ॥ २९—३१ ॥

यत्र देवाः समागम्य वासुकिं पन्नगोत्तमम्।
सर्वपन्नगराजानमभ्यषिञ्चन् यथाविधि ॥ ३२ ॥

वहीं देवताओंने आकर सर्पोंमें श्रेष्ठ वासुकिको समस्त सर्पोंके राजाके पदपर विधिपूर्वक अभिषिक्त किया था ॥ ३२ ॥

पन्नगेभ्यो भयं तत्र विद्यते न स्म पौरव।
तत्रापि विधिवद् दत्त्वा विप्रेभ्यो रत्नसंचयान् ॥ ३३ ॥
प्रायात् प्राचीं दिशं तत्र तत्र तीर्थान्यनेकशः।
सहस्रशतसंख्यानि प्रथितानि पदे पदे ॥ ३४ ॥

पौरव! वहाँ किसीको सर्पोंसे भय नहीं होता। उस तीर्थमें भी बलरामजी ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक ढेर-के-ढेर रत्न देकर पूर्वदिशाकी ओर चल दिये, जहाँ पग-पगपर अनेक प्रकारके प्रसिद्ध तीर्थ प्रकट हुए हैं। उनकी संख्या लगभग एक लाख है ॥ ३३-३४ ॥

आप्लुत्य तत्र तीर्थेषु यथोक्तं तत्र चर्षिभिः।
कृत्वोपवासनियमं दत्त्वा दानानि सर्वशः ॥ ३५ ॥
अभिवाद्य मुनींस्तान् वै तत्र तीर्थनिवासिनः।
उद्दिष्टमार्गः प्रययौ यत्र भूयः सरस्वती ॥ ३६ ॥
प्राङ्मुखं वै निववृते वृष्टिर्वातहता यथा।

उन तीर्थोंमें स्नान करके उन्होंने ऋषियोंके बताये अनुसार व्रत-उपवास आदि नियमोंका पालन किया। फिर सब प्रकारके दान करके तीर्थनिवासी मुनियोंको मस्तक नवाकर उनके बताये हुए मार्गसे वे पुनः उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ सरस्वती हवाकी मारी हुई वर्षाके समान पुनः पूर्व दिशाकी ओर लौट पड़ी हैं ॥ ३५-३६½ ॥

ऋषीणां नैमिषेयाणामवेक्षार्थं महात्मनाम् ॥ ३७ ॥
निवृत्तां तां सरिच्छ्रेष्ठां तत्र दृष्ट्वा तु लाङ्गली।
बभूव विस्मितो राजन् बलः श्वेतानुलेपनः ॥ ३८ ॥

राजन्! नैमिषारण्यनिवासी महात्मा मुनियोंके दर्शनके लिये पूर्व दिशाकी ओर लौटी हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका दर्शन करके श्वेत-चन्दनचर्चित हलधारी बलराम आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ३७-३८ ॥

जनमेजय उवाच

कस्मात् सरस्वती ब्रह्मन् निवृत्ता प्राङ्मुखीभवत्।
व्याख्यातमेतदिच्छामि सर्वमध्वर्युसत्तम ॥ ३९ ॥
कस्मिंश्चित् कारणे तत्र विस्मितो यदुनन्दनः।
निवृत्ता हेतुना केन कथमेव सरिद्वरा ॥ ४० ॥

जनमेजयने पूछा—यजुर्वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर! मैं आपके मुँहसे यह सुनना चाहता हूँ कि सरस्वती नदी किस कारणसे पीछे लौटकर पूर्वाभिमुख बहने लगी? क्या कारण था कि वहाँ यदुनन्दन बलरामजीको भी आश्चर्य हुआ? सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती किस कारणसे और किस प्रकार पूर्व दिशाकी ओर लौटी थीं? ॥ ३९-४० ॥

वैशम्पायन उवाच

पूर्वं कृतयुगे राजन् नैमिषेयास्तपस्विनः।
वर्तमाने सुविपुले सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ४१ ॥
ऋषयो बहवो राजंस्तत् सत्रमभिपेदिरे।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, वहाँ बारह वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले एक महान् यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया गया था। उस सत्रमें नैमिषारण्यनिवासी तपस्वी मुनि तथा अन्य बहुत-से ऋषि पधारे थे ॥

उषित्वा च महाभागास्तस्मिन् सत्रे यथाविधि ॥ ४२ ॥
निवृत्ते नैमिषेये वै सत्रे द्वादशवार्षिके।
आजग्मुर्ऋषयस्तत्र बहवस्तीर्थकारणात् ॥ ४३ ॥

नैमिषारण्यवासियोंके उस द्वादशवर्षीय यज्ञमें वे महाभाग ऋषि दीर्घकालतक रहे। जब वह यज्ञ समाप्त हो गया तब बहुत-से महर्षि तीर्थसेवनके लिये वहाँ आये ॥ ४२-४३ ॥

ऋषीणां बहुलत्वात्तु सरस्वत्या विशाम्पते।
तीर्थानि नगरायन्ते कूले वै दक्षिणे तदा ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ! ऋषियोंकी संख्या अधिक होनेके कारण सरस्वतीके दक्षिण तटपर जितने तीर्थ थे, वे सभी नगरोंके समान प्रतीत होने लगे ॥ ४४ ॥

समन्तपञ्चकं यावत्तावत्ते द्विजसत्तमाः।
तीर्थलोभान्नरव्याघ्र नद्यास्तीरं समाश्रिताः ॥ ४५ ॥

पुरुषसिंह! तीर्थसेवनके लोभसे वे ब्रह्मर्षिगण समन्तपञ्चक तीर्थतक सरस्वती नदीके तटपर ठहर गये ॥ ४५ ॥

जुह्वतां तत्र तेषां तु मुनीनां भावितात्मनाम्।

स्वाध्यायेनातिमहता बभूवुः पूरिता दिशः ॥ ४६ ॥

वहाँ होम करते हुए पवित्रात्मा मुनियोंके अत्यन्त गम्भीर स्वरसे किये जानेवाले स्वाध्यायके शब्दसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठी थीं ॥ ४६ ॥

अग्निहोत्रैस्ततस्तेषां क्रियमाणैर्महात्मनाम् ।
अशोभत सरिच्छ्रेष्ठा दीप्यमानैः समन्ततः ॥ ४७ ॥

चारों ओर प्रकाशित हुए उन महात्माओंद्वारा किये जानेवाले यज्ञसे सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ४७ ॥

वालखिल्या महाराज अश्मकुट्टाश्च तापसाः ।
दन्तोलूखलिनश्चान्ये प्रसंख्यानास्तथा परे ॥ ४८ ॥
वायुभक्षा जलाहाराः पर्णभक्षाश्च तापसाः ।
नानानियमयुक्ताश्च तथा स्थण्डिलशायिनः ॥ ४९ ॥
आसन् वै मुनयस्तत्र सरस्वत्याः समीपतः ।
शोभयन्तः सरिच्छ्रेष्ठां गङ्गामिव दिवौकसः ॥ ५० ॥

महाराज ! सरस्वतीके उस निकटवर्ती तटपर सुप्रसिद्ध तपस्वी वालखिल्य, अश्मकुट्ट[1], दन्तोलूखली[2], प्रसंख्यान[3], हवा पीकर रहनेवाले, जलपानपर ही निर्वाह करनेवाले, पत्तोंका ही आहार करनेवाले, भाँति-भाँतिके नियमोंमें संलग्न तथा वेदीपर शयन करनेवाले तपस्वी-मुनि विराजमान थे । वे सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीकी उसी प्रकार शोभा बढ़ा रहे थे, जैसे देवतालोग गङ्गाजीकी ॥ ४८-५० ॥

शतशश्च समापेतुर्ऋषयः सत्रयाजिनः ।
तेऽवकाशं न ददृशुः सरस्वत्या महाव्रताः ॥ ५१ ॥

सत्रयागमें सम्मिलित हुए सैकड़ों महान् व्रतधारी ऋषि वहाँ आये थे; परंतु उन्होंने सरस्वतीके तटपर अपने रहनेके लिये स्थान नहीं देखा ॥ ५१ ॥

ततो यज्ञोपवीतैस्ते तत्तीर्थं निर्मिमाय वै ।
जुहुवुश्चाग्निहोत्रांश्च चक्रुश्च विविधाः क्रियाः ॥ ५२ ॥

तब उन्होंने यज्ञोपवीतसे उस तीर्थका निर्माण करके वहाँ अग्निहोत्र-सम्बन्धी आहुतियाँ दीं और नाना प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान किया ॥ ५२ ॥

ततस्तमृषिसंघातं निराशं चिन्तयान्वितम् ।
दर्शयामास राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ॥ ५३ ॥

राजेन्द्र ! उस समय उस ऋषि-समूहको निराश और चिन्तित जान सरस्वतीने उनकी अभीष्ट-सिद्धिके लिये उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ ५३ ॥

ततः कुञ्जान् बहून् कृत्वा संनिवृत्ता सरस्वती ।
ऋषीणां पुण्यतपसां कारुण्याज्जनमेजय ॥ ५४ ॥

जनमेजय ! तत्पश्चात् बहुत-से कुञ्जोंका निर्माण करती हुई सरस्वती पीछे लौट पड़ीं; क्योंकि उन पुण्यतपस्वी ऋषियोंपर उनके हृदयमें करुणाका संचार हो आया था ॥ ५४ ॥

ततो निवृत्य राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ।
भूयः प्रतीच्यभिमुखी प्रसुस्राव सरिद्वरा ॥ ५५ ॥

राजेन्द्र ! उनके लिये लौटकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती पुनः पश्चिमकी ओर मुड़कर बहने लगीं ॥ ५५ ॥

अमोघागमनं कृत्वा तेषां भूयो व्रजाम्यहम् ।
इत्यद्भुतं महच्चक्रे तदा राजन् महानदी ॥ ५६ ॥

राजन् ! उस महानदीने यह सोच लिया था कि मैं इन ऋषियोंके आगमनको सफल बनाकर पुनः पश्चिम मार्गसे ही लौट जाऊँगी । यह सोचकर ही उसने वह महान् अद्भुत कर्म किया ॥ ५६ ॥

एवं स कुञ्जो राजन् वै नैमिषीय इति स्मृतः ।
कुरुश्रेष्ठ कुरुक्षेत्रे कुरुष्व महतीं क्रियाम् ॥ ५७ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार वह कुञ्ज नैमिषीय नामसे प्रसिद्ध हुआ । कुरुश्रेष्ठ ! तुम भी कुरुक्षेत्रमें महान् कर्म करो ॥

तत्र कुञ्जान् बहून् दृष्ट्वा निवृत्तां च सरस्वतीम् ।
बभूव विस्मयस्तत्र रामस्याथ महात्मनः ॥ ५८ ॥

वहाँ बहुत-से कुञ्जों तथा लौटी हुई सरस्वतीका दर्शन करके महात्मा बलरामजीको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५८ ॥

उपस्पृश्य तु तत्रापि विधिवद् यदुनन्दनः ।
दत्त्वा दायान् द्विजातिभ्यो भाण्डानि विविधानि च ॥ ५९ ॥
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय च ।
ततः प्रायाद् बलो राजन् पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ ६० ॥

यदुनन्दन बलरामने वहाँ विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके ब्राह्मणोंको धन और भाँति-भाँतिके बर्तन दान किये । राजन् ! फिर उन्हें नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ देकर द्विजातियोंद्वारा पूजित होते हुए बलरामजी वहाँसे चल दिये ॥

सरस्वतीतीर्थवरं नानाद्विजगणायुतम् ।
बदरेङ्गुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थविभीतकैः ॥ ६१ ॥
कङ्कोलैश्च पलाशैश्च करीरैः पीलुभिस्तथा ।
सरस्वतीतीर्थरुहैस्तरुभिर्विविधैस्तथा ॥ ६२ ॥
करूषकवरैश्चैव बिल्वैराम्रातकैस्तथा ।
अतिमुक्तकषण्डैश्च पारिजातैश्च शोभितम् ॥ ६३ ॥
कदलीवनभूयिष्ठं दृष्टिकान्तं मनोहरम् ।
वाय्वम्बुफलपर्णादैर्दन्तोलूखलिकैरपि ॥ ६४ ॥
तथाश्मकुट्टैर्वानेयैर्मुनिभिर्बहुभिर्वृतम् ।
स्वाध्यायघोषसंघुष्टं मृगयूथशताकुलम् ॥ ६५ ॥
अहिंस्रैर्धर्मपरमैर्नृभिरत्यर्थसेवितम् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थमाजगाम हलायुधः ॥ ६६ ॥
यत्र मङ्कणकः सिद्धस्तपस्तेपे महामुनिः ॥ ६७ ॥

तदनन्तर हलायुध बलदेवजी सप्तसारस्वत नामक तीर्थमें आये, जो सरस्वतीके तीर्थोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं । वहाँ अनेकानेक ब्राह्मणोंके समुदाय निवास करते थे । बेर, इंगुद, काश्मर्य (गम्भारी), पाकर, पीपल, बहेड़े, कङ्कोल, पलाश, करीर, पीलु, करूष, बिल्व, अमड़ा, अतिमुक्त, पारिजात तथा

१. पत्थरसे फोड़े हुए फलका भोजन करनेवाले ।

२. दाँतसे ही ओखलीका काम लेनेवाले अर्थात् ओखलीमें कूटकर नहीं, दाँतोंसे ही चबाकर खानेवाले ।

३. गिने हुए फल खानेवाले ।

सरस्वतीके तटपर उगे हुए अन्य नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित वह तीर्थ देखनेमें कमनीय और मनको मोह लेनेवाला है। वहाँ केलेके बहुत-से बगीचे हैं। उस तीर्थमें वायु, जल, फल और पत्ते चबाकर रहनेवाले, दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेनेवाले और पत्थरसे फोड़े हुए फल खानेवाले बहुतेरे वानप्रस्थ मुनि भरे हुए थे। वहाँ वेदोंके स्वाध्यायकी गम्भीर ध्वनि गूँज रही थी। मृगोंके सैकड़ों यूथ सब ओर फैले हुए थे। हिंसारहित धर्मपरायण मनुष्य उस तीर्थका अधिक सेवन करते थे। वहीं सिद्ध महामुनि मङ्कणकने बड़ी भारी तपस्या की थी ॥ ६१-६७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

सप्तसारस्वत तीर्थकी उत्पत्ति, महिमा और मङ्कणक मुनिका चरित्र

जनमेजय उवाच

सप्तसारस्वतं कस्मात् कश्च मङ्कणको मुनिः।
कथं सिद्धः स भगवान् कश्चास्य नियमोऽभवत् ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! सप्तसारस्वत तीर्थकी उत्पत्ति किस हेतुसे हुई? पूजनीय मङ्कणक मुनि कौन थे? कैसे उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई और उनका नियम क्या था?॥ १॥

कस्य वंशे समुत्पन्नः किं चाधीतं द्विजोत्तम।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विधिवद् द्विजसत्तम ॥ २ ॥

द्विजश्रेष्ठ! वे किसके वंशमें उत्पन्न हुए थे और उन्होंने किस शास्त्रका अध्ययन किया था? यह सब मैं विधिपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

राजन् सप्त सरस्वत्यो याभिर्व्याप्तमिदं जगत्।
आहूता बलवद्भिर्हि तत्र तत्र सरस्वती ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! सरस्वती नामकी सात नदियाँ और हैं, जो इस सारे जगत्में फैली हुई हैं। तपोबलसम्पन्न महात्माओंने जहाँ-जहाँ सरस्वतीका आवाहन किया है, वहाँ-वहाँ वे गयी हैं ॥ ३ ॥

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला च मनोरमा।
सरस्वती चौघवती सुरेणुर्विमलोदका ॥ ४ ॥

उन सबके नाम इस प्रकार हैं—सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, सरस्वती, ओघवती, सुरेणु और विमलोदका ॥

पितामहस्य महतो वर्तमाने महामखे।
वितते यज्ञवाटे च संसिद्धेषु द्विजातिषु ॥ ५ ॥
पुण्याहघोषैर्विमलैर्वेदानां निनदैस्तथा।
देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन् यज्ञविधौ तदा ॥ ६ ॥

एक समयकी बात है, पुष्करतीर्थमें महात्मा ब्रह्माजीका एक महान् यज्ञ हो रहा था। उनकी विस्तृत यज्ञशालामें सिद्ध ब्राह्मण विराजमान थे। पुण्याहवाचनके निर्दोष घोष तथा वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे सारा यज्ञमण्डप गूँज रहा था और सम्पूर्ण देवता उस यज्ञ-कर्मके सम्पादनमें व्यस्त थे ॥

तत्र चैव महाराज दीक्षिते प्रपितामहे।
यजतस्तस्य सत्रेण सर्वकामसमृद्धिना ॥ ७ ॥

महाराज! साक्षात् ब्रह्माजीने उस यज्ञकी दीक्षा ली थी। उनके यज्ञ करते समय सबकी समस्त इच्छाएँ उस यज्ञद्वारा परिपूर्ण होती थीं ॥ ७ ॥

मनसा चिन्तिता ह्यर्था धर्मार्थकुशलैस्तदा।
उपतिष्ठन्ति राजेन्द्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥

राजेन्द्र! धर्म और अर्थमें कुशल मनुष्य मनमें जिन पदार्थोंका चिन्तन करते थे, वे उनके पास वहाँ तत्काल उपस्थित हो जाते थे ॥ ८ ॥

जगुश्च तत्र गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरञ्जसा ॥ ९ ॥

उस यज्ञमें गन्धर्व गीत गाते और अप्सराएँ नृत्य करती थीं। वहाँ दिव्य बाजे बजाये जा रहे थे ॥ ९ ॥

तस्य यज्ञस्य सम्पत्त्या तुतुषुर्देवता अपि।
विस्मयं परमं जग्मुः किमु मानुषयोनयः ॥ १० ॥

उस यज्ञके वैभवसे देवता भी संतुष्ट थे और अत्यन्त आश्चर्यमें निमग्न हो रहे थे; फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?॥

वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे।
अब्रुवन्नृषयो राजन्नायं यज्ञो महागुणः ॥ ११ ॥
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती।

राजन्! इस प्रकार जब पितामह ब्रह्मा पुष्करमें रहकर यज्ञ कर रहे थे, उस समय ऋषियोंने उनसे कहा—'भगवन्! आपका यह यज्ञ अभी महान् गुणसे सम्पन्न नहीं है; क्योंकि यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती नहीं दिखायी देती हैं' ॥ ११½॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम् ॥ १२॥
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै।

यह सुनकर भगवान् ब्रह्माने प्रसन्नतापूर्वक सरस्वती देवीकी आराधना करके पुष्करमें यज्ञ करते समय उनका आवाहन किया॥

सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती ॥ १३ ॥
तां दृष्ट्वा मुनयस्तुष्टास्त्वरायुक्तां सरस्वतीम्।
पितामहं मानयन्तीं क्रतुं ते बहु मेनिरे ॥ १४ ॥

राजेन्द्र! तब वहाँ सरस्वती सुप्रभा नामसे प्रकट हुई। बड़ी उतावलीके साथ आकर ब्रह्माजीका सम्मान करती हुई सरस्वतीका दर्शन करके ऋषिगण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उस यज्ञको बहुत सम्मान दिया ॥ १३-१४ ॥

एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती।

पितामहार्थं सम्भूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती पुष्करतीर्थमें ब्रह्माजी तथा मनीषी महात्माओंके संतोषके लिये प्रकट हुई ॥

नैमिषे मुनयो राजन् समागम्य समासते ।
तत्र चित्राः कथा ह्यासन् वेदं प्रति जनेश्वर ॥ १६ ॥

राजन् ! जनेश्वर ! नैमिषारण्यमें बहुत-से मुनि आकर रहते थे। वहाँ वेदके विषयमें विचित्र कथा-वार्ता होती रहती थी॥

यत्र ते मुनयो ह्यासन् नानास्वाध्यायवेदिनः ।
ते समागम्य मुनयः सस्मरुर्वै सरस्वतीम् ॥ १७ ॥

जहाँ वे नाना प्रकारके स्वाध्यायोंका ज्ञान रखनेवाले मुनि रहते थे, वहीं उन्होंने परस्पर मिलकर सरस्वती देवीका स्मरण किया ॥ १७ ॥

सा तु ध्याता महाराज ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ।
समागतानां राजेन्द्र साहाय्यार्थं महात्मनाम् ॥ १८ ॥
आजगाम महाभागा तत्र पुण्या सरस्वती ।

महाराज ! राजाधिराज ! उन सत्रयाजी (ज्ञानयज्ञ करनेवाले) ऋषियोंके ध्यान लगानेपर महाभागा पुण्यसलिला सरस्वतीदेवी उन समागत महात्माओंकी सहायताके लिये वहाँ आयीं ॥ १८½ ॥

नैमिषे काञ्चनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम् ॥ १९ ॥
आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारत पूजिता ।

भारत ! नैमिषारण्य तीर्थमें उन सत्रयाजी मुनियोंके समक्ष आयी हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती काञ्चनाक्षी नामसे सम्मानित हुई ॥ १९½ ॥

गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम् ॥ २० ॥
आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती ।
विशालां तु गयस्याहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥ २१ ॥

राजा गय गयदेशमें ही एक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। उनके यज्ञमें भी सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका आवाहन किया गया था । कठोर व्रतका पालन करनेवाले महर्षि गयके यज्ञमें आयी हुई सरस्वतीको विशाला कहते हैं ॥ २०-२१ ॥

सरित् सा हिमवत्पार्श्वात् प्रस्रुता शीघ्रगामिनी ।
औद्दालकेस्तथा यज्ञे यजतस्तस्य भारत ॥ २२ ॥

भरतनन्दन ! यज्ञपरायण उद्दालक ऋषिके यज्ञमें भी सरस्वतीका आवाहन किया गया । वे शीघ्रगामिनी सरस्वती हिमालयसे निकलकर उस यज्ञमें आयी थीं ॥ २२ ॥

समेते सर्वतः स्फीते मुनीनां मण्डले तदा ।
उत्तरे कोसलाभागे पुण्ये राजन् महात्मना ॥ २३ ॥
उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती ।
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात् ॥ २४ ॥

राजन् ! उन दिनों समृद्धिशाली एवं पुण्यमय उत्तर कोसल प्रान्तमें सब ओरसे मुनिमण्डली एकत्र हुई थी । उसमें यज्ञ करते हुए महात्मा उद्दालकने पूर्वकालमें सरस्वती देवीका ध्यान किया । तब मुनिका कार्य सिद्ध करनेके लिये सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती उस देशमें आयीं ॥ २३-२४ ॥

पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः ।
मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता ॥ २५ ॥

वहाँ वल्कल और मृगचर्मधारी मुनियोंसे पूजित होनेवाली सरस्वतीका नाम हुआ मनोरमा; क्योंकि उन्होंने मनके द्वारा उनका चिन्तन किया था ॥ २५ ॥

सुरेणुर्ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षिसेविते ।
कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः ॥ २६ ॥
आजगाम महाभागा सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती ।

राजर्षियोंसे सेवित पुण्यमय ऋषभद्वीप तथा कुरुक्षेत्रमें जब महात्मा राजा कुरु यज्ञ कर रहे थे, उस समय सरिताओंमें श्रेष्ठ महाभागा सरस्वती वहाँ आयी थीं; उनका नाम हुआ सुरेणु ॥ २६½ ॥

ओघवत्यपि राजेन्द्र वसिष्ठेन महात्मना ॥ २७ ॥
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोया सरस्वती ।
दक्षेण यजता चापि गङ्गाद्वारे सरस्वती ॥ २८ ॥
सुरेणुरिति विख्याता प्रस्रुता शीघ्रगामिनी ।

गङ्गाद्वारमें यज्ञ करते समय दक्षप्रजापतिने जब सरस्वतीका स्मरण किया था, उस समय भी शीघ्रगामिनी सरस्वती वहाँ बहती हुई सुरेणु नामसे ही विख्यात हुई । राजेन्द्र ! इसी प्रकार महात्मा वसिष्ठने भी कुरुक्षेत्रमें दिव्यसलिला सरस्वतीका आवाहन किया था, जो ओघवतीके नामसे प्रसिद्ध हुई॥ २७-२८½ ॥

विमलोदा भगवती ब्रह्मणा यजता पुनः ॥ २९ ॥
समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ ।

ब्रह्माजीने एक बार फिर पुण्यमय हिमालयपर्वतपर यज्ञ किया था । उस समय उनके आवाहन करनेपर भगवती सरस्वतीने विमलोदका नामसे प्रसिद्ध होकर वहाँ पदार्पण किया था ॥ २९½ ॥

एकीभूतास्ततस्तास्तु तस्मिंस्तीर्थे समागताः ॥ ३० ॥
सप्तसारस्वतं तीर्थं ततस्तु प्रथितं भुवि ।

फिर ये सातों सरस्वतियाँ एकत्र होकर उस तीर्थमें आयी थीं, इसीलिये इस भूतलपर 'सप्तसारस्वत तीर्थके नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई ॥ ३०½ ॥

इति सप्तसरस्वत्यो नामतः परिकीर्तिताः ॥ ३१ ॥
सप्तसारस्वतं चैव तीर्थं पुण्यं तथा स्मृतम् ।

इस प्रकार सात सरस्वती नदियोंका नामोल्लेखपूर्वक वर्णन किया गया है । इन्हींसे सप्तसारस्वत नामक परम पुण्यमय तीर्थका प्रादुर्भाव बताया गया है ॥ ३१½ ॥

शृणु मङ्कणकस्यापि कौमारब्रह्मचारिणः ॥ ३२ ॥
आपगामवगाढस्य राजन् प्रक्रीडितं महत् ।

राजन् ! कुमारावस्थासे ही ब्रह्मचर्यव्रतका पालन तथा प्रतिदिन सरस्वती नदीमें स्नान करनेवाले मङ्कणक मुनिका महान् लीलामय चरित्र सुनो ॥ ३२½ ॥

दृष्ट्वा यदृच्छया तत्र स्त्रियमम्भसि भारत ॥ ३३ ॥
जायन्तीं रुचिरापाङ्गीं दिग्वाससमनिन्दिताम् ।

सरस्वत्यां महाराज चस्कन्दे वीर्यमम्भसि ॥ ३४ ॥

भरतनन्दन ! महाराज ! एक समयकी बात है, कोई सुन्दर नेत्रोंवाली अनिन्द्य सुन्दरी रमणी सरस्वतीके जलमें नंगी नहा रही थी । दैवयोगसे मङ्कणक मुनिकी दृष्टि उसपर पड़ गयी और उनका वीर्य स्खलित होकर जलमें गिर पड़ा ॥

तद् रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः ।
सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह ॥ ३५ ॥

महातपस्वी मुनिने उस वीर्यको एक कलशमें ले लिया । कलशमें स्थित होनेपर वह वीर्य सात भागोंमें विभक्त हो गया ॥

तत्रर्षयः सप्त जाता जज्ञिरे मरुतां गणाः ।
वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ॥ ३६ ॥
वायुज्वालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्यवान् ।
एवमेते समुत्पन्ना मरुतां जनयिष्णवः ॥ ३७ ॥

उस कलशमें सात ऋषि उत्पन्न हुए, जो मूलभूत मरुद्गण थे । उनके नाम इस प्रकार हैं—वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता और शक्तिशाली वायुचक्र । ये उनचास मरुद्गणोंके जन्मदाता 'मरुत्' उत्पन्न हुए थे* ॥

इदमत्यद्भुतं राजञ्छृण्वाश्चर्यतरं भुवि ।
महर्षेश्चरितं यादृक् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ३८ ॥

राजन् ! महर्षि मङ्कणकका यह तीनों लोकोंमें विख्यात अद्भुत चरित्र जैसा सुना गया है, इसे तुम भी श्रवण करो । वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है ॥ ३८ ॥

पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति नः श्रुतम् ।
क्षतः किल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! हमारे सुननेमें आया है कि पहले कभी सिद्ध मङ्कणक मुनिका हाथ किसी कुशके अग्रभागसे छिद गया था, उससे रक्तके स्थानपर शाकका रस चूने लगा था ॥३९॥

स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् ।
ततस्तस्मिन् प्रनृत्ते वै स्थावरं जङ्गमं च यत् ॥ ४० ॥
प्रनृत्तमुभयं वीर तेजसा तस्य मोहितम् ।

वह शाकका रस देखकर मुनि हर्षके आवेशसे मतवाले हो नृत्य करने लगे । वीर ! उनके नृत्यमें प्रवृत्त होते ही स्थावर और जङ्गम दोनों प्रकारके प्राणी उनके तेजसे मोहित होकर नाचने लगे ॥ ४०½ ॥

ब्रह्मादिभिः सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः ॥ ४१ ॥
विज्ञप्तो वै महादेव ऋषेरर्थे नराधिप ।
नायं नृत्येद् यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ४२ ॥

राजन् ! नरेश्वर ! तब ब्रह्मा आदि देवताओं तथा तपोधन महर्षियोंने ऋषिके विषयमें महादेवजीसे निवेदन किया—'देव ! आप ऐसा कोई उपाय करें, जिससे ये मुनि नृत्य न करें' ॥ ४१-४२ ॥

* इन्हीं ऋषियोंकी तपस्यासे कल्पान्तरमें दितिके गर्भसे उनचास मरुद्गणोंका आविर्भाव हुआ । ये ही दितिके उदरमें एक गर्भके रूपमें प्रकट हुए, फिर इन्द्रके वज्रसे कटकर उनचास अमर शरीरोंके रूपमें उत्पन्न हुए—ऐसा समझना चाहिये ।

ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव ह ।
सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ॥ ४३ ॥

मुनिको हर्षके आवेशसे अत्यन्त मतवाला हुआ देख महादेवजीने (ब्राह्मणका रूप धारण करके) देवताओंके हितके लिये उनसे इस प्रकार कहा—॥ ४३ ॥

भो भो ब्राह्मण धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान् ।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदमधिकं मुने ॥ ४४ ॥
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ।

'धर्मज्ञ ब्राह्मण ! आप किसलिये नृत्य कर रहे हैं ? मुने ! आपके लिये अधिक हर्षका कौन-सा कारण उपस्थित हो गया है ? द्विजश्रेष्ठ ! आप तो तपस्वी हैं, सदा धर्मके मार्गपर स्थित रहते हैं, फिर आप क्यों हर्षसे उन्मत्त हो रहे हैं?'॥

ऋषिरुवाच

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्रुतम् ॥ ४५ ॥
यं दृष्ट्वा सम्प्रनृत्तो वै हर्षेण महता विभो ।

ऋषिने कहा—ब्रह्मन् ! क्या आप नहीं देखते कि मेरे हाथसे शाकका रस चू रहा है । प्रभो ! उसीको देखकर मैं महान् हर्षसे नाचने लगा हूँ ॥ ४५½ ॥

तं प्रहस्याब्रवीद् देवो मुनिं रागेण मोहितम् ॥ ४६ ॥
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीति प्रपश्य माम् ।

यह सुनकर महादेवजी ठठाकर हँस पड़े और उन आसक्तिसे मोहित हुए मुनिसे बोले—'विप्रवर ! मुझे तो यह देखकर विस्मय नहीं हो रहा है । मेरी ओर देखो' ॥४६½॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं महादेवेन धीमता ॥ ४७ ॥
अङ्गुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वङ्गुष्ठस्ताडितोऽभवत् ।
ततो भस्म क्षताद् राजन् निर्गतं हिमसंनिभम् ॥ ४८ ॥

राजेन्द्र ! मुनिश्रेष्ठ मङ्कणकसे ऐसा कहकर बुद्धिमान् महादेवजीने अपनी अङ्गुलिके अग्रभागसे अँगूठेमें घाव कर दिया । उस घावसे बर्फके समान सफेद भस्म झड़ने लगा ॥

तद् दृष्ट्वा व्रीडितो राजन् स मुनिः पादयोर्गतः ।
मेने देवं महादेवमिदं चोवाच विस्मितः ॥ ४९ ॥

राजन् ! यह देखकर मुनि लजा गये और महादेवजीके चरणोंमें गिर पड़े । उन्होंने महादेवजीको पहचान लिया और विस्मित होकर कहा—॥ ४९ ॥

नान्यं देवादहं मन्ये रुद्रात् परतरं महत् ।
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृत् ॥ ५० ॥

'भगवन् ! मैं रुद्रदेवके सिवा दूसरे किसी देवताको परम महान् नहीं मानता । आप ही देवताओं तथा असुरों-सहित सम्पूर्ण जगत्के आश्रयभूत त्रिशूलधारी महादेव हैं ॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्तीह मनीषिणः ।
त्वामेव सर्वं व्रजति पुनरेव युगक्षये ॥ ५१ ॥

'मनीषी पुरुष कहते हैं कि आपने ही इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि की है । प्रलयके समय यह सारा जगत् आपमें ही विलीन हो जाता है ॥ ५१ ॥

देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो मया ।

त्वयि सर्वेस्म दृश्यन्ते भावा ये जगति स्थिताः ॥ ५२ ॥

'सम्पूर्ण देवता भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जान सकते, फिर मैं कैसे जान सकूँगा ? संसारमें जो-जो पदार्थ स्थित हैं, वे सब आपमें देखे जाते हैं ॥ ५२ ॥

त्वामुपासन्त वरदं देवा ब्रह्मादयोऽनघ ।
सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता च ह ॥ ५३ ॥
त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्तीहाकुतोभयाः ।

'अनघ ! ब्रह्मा आदि देवता आप वरदायक प्रभुकी ही उपासना करते हैं । आप सर्वस्वरूप हैं । देवताओंके कर्ता और कारयिता भी आप ही हैं । आपके प्रसादसे ही सम्पूर्ण देवता यहाँ निर्भय हो आनन्दका अनुभव करते हैं ॥ ५३½ ॥

(त्वं प्रभुः परमैश्वर्यादधिकं भासि शङ्कर ।
त्वयि ब्रह्मा च शक्रश्च लोकान् संधार्य तिष्ठतः ॥

'शङ्कर ! आप सबके प्रभु हैं । अपने उत्कृष्ट ऐश्वर्यसे आपकी अधिक शोभा हो रही है । ब्रह्मा और इन्द्र सम्पूर्ण लोकोंको धारण करके आपमें ही स्थित हैं ॥

त्वन्मूलं च जगत् सर्वं त्वदन्तं हि महेश्वर ।
त्वया हि वितता लोकाः सप्तेमे सर्वसम्भव ॥

'महेश्वर ! सम्पूर्ण जगत्के मूलकारण आप ही हैं। इसका अन्त भी आपमें ही होता है । सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत परमेश्वर ! ये सातों लोक आपसे ही उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डमें फैले हुए हैं ॥

सर्वथा सर्वभूतेश त्वामेवार्चन्ति देवताः ।
त्वन्मयं हि जगत् सर्वं भूतं स्थावरजङ्गमम् ॥

'सर्वभूतेश्वर ! देवता सब प्रकारसे आपकी ही पूजा-अर्चा करते हैं । सम्पूर्ण विश्व तथा चराचर भूतोंके उपादान कारण भी आप ही हैं ॥

स्वर्गं च परमं स्थानं नृणामभ्युदयार्थिनाम् ।
ददासि कर्मिणां कर्म भावयन् ध्यानयोगतः ॥

'आप ही अभ्युदयकी इच्छा रखनेवाले सत्कर्मपरायण मनुष्योंको ध्यानयोगसे उनके कर्मोंका विचार करके उत्तम पद—स्वर्गलोक प्रदान करते हैं ॥

न वृथास्ति महादेव प्रसादस्ते महेश्वर ।
यस्मात् त्वयोपकरणात् करोमि कमलेक्षण ॥
प्रपद्ये शरणं शम्भुं सर्वदा सर्वतः स्थितम् ।)

'महादेव ! महेश्वर ! कमलनयन ! आपका कृपाप्रसाद कभी व्यर्थ नहीं होता ! आपकी दी हुई सामग्रीसे ही मैं कार्य कर पाता हूँ, अतः सर्वदा सब ओर स्थित हुए सर्वव्यापी आप भगवान् शङ्करकी मैं शरणमें आता हूँ' ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोऽभवत् ॥ ५४ ॥
यदिदं चापलं देव कृतमेतत् स्मयादिकम् ।
ततः प्रसादयामि त्वां तपो मे न क्षरेदिति ॥ ५५ ॥

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके वे महर्षि नतमस्तक हो गये और इस प्रकार बोले—'देव ! मैंने जो यह अहंकार आदि प्रकट करनेकी चपलता की है, उसके लिये क्षमा माँगते हुए आपसे प्रसन्न होनेकी मैं प्रार्थना करता हूँ । मेरी तपस्या नष्ट न हो' ॥ ५४-५५ ॥

ततो देवः प्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत् ।
तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा ॥ ५६ ॥
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्धमहं सदा ।
सप्तसारस्वते चास्मिन् यो मामर्चिष्यते नरः ॥ ५७ ॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् भवितेह परत्र वा ।
सारस्वतं च ते लोकं गमिष्यन्ति न संशयः ॥ ५८ ॥

यह सुनकर महादेवजीका मन प्रसन्न हो गया । वे उन महर्षिसे पुनः बोले—'विप्रवर ! मेरे प्रसादसे तुम्हारी तपस्या सहस्रगुनी बढ़ जाय । मैं इस आश्रममें सदा तुम्हारे साथ निवास करूँगा । जो इस सप्तसारस्वत तीर्थमें मेरी पूजा करेगा, उसके लिये इहलोक या परलोकमें कुछ भी दुर्लभ न होगा । वे सारस्वत लोकमें जायँगे—इसमें संशय नहीं है'॥

एतन्मङ्कणकस्यापि चरितं भूरितेजसः ।
स हि पुत्रः सुकन्यायामुत्पन्नो मातरिश्वना ॥ ५९ ॥

यह महातेजस्वी मङ्कणक मुनिका चरित्र बताया गया है । वे वायुके औरस पुत्र थे । वायुदेवताने सुकन्याके गर्भसे उन्हें उत्पन्न किया था ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्यानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५½ श्लोक मिलाकर कुल ६४½ श्लोक हैं)

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

औशनस एवं कपालमोचन तीर्थकी माहात्म्यकथा तथा रुषङ्गुके आश्रम पृथूदक तीर्थकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

उषित्वा तत्र रामस्तु सम्पूज्याश्रमवासिनः ।
तथा मङ्कणके प्रीतिं शुभां चक्रे हलायुधः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उस सप्तसारस्वत तीर्थमें रहकर हलधर बलरामजीने आश्रमवासी ऋषियोंका पूजन किया और मङ्कणक मुनिपर अपनी उत्तम प्रीतिका परिचय दिया॥

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो रजनीं तामुपोष्य च ।
पूजितो मुनिसङ्घैश्च प्रातरुत्थाय लाङ्गली ॥ २ ॥
अनुज्ञाप्य मुनीन् सर्वान् स्पृष्ट्वा तोयं च भारत ।
प्रययौ त्वरितो रामस्तीर्थहेतोर्महाबलः ॥ ३ ॥

भरतनन्दन ! वहाँ ब्राह्मणोंको दान दे उस रात्रिमें निवास करनेके पश्चात् प्रातःकाल उठकर मुनिमण्डलीसे सम्मानित हो महाबली लाङ्गलधारी बलरामने पुनः तीर्थके जलमें स्नान किया और सम्पूर्ण ऋषि-मुनियोंकी आज्ञा ले

अन्य तीर्थोंमें जानेके लिये वहाँसे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर दिया ॥ २-३ ॥

ततस्त्वौशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः ।
कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः ॥ ४ ॥
महता शिरसा राजन् ग्रस्तजङ्घो महोदरः ।
राक्षसस्य महाराज रामक्षिप्तस्य वै पुरा ॥ ५ ॥

तदनन्तर हलधारी बलराम औशनस तीर्थमें आये, जिसका दूसरा नाम कपालमोचन तीर्थ भी है । महाराज ! पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामने एक राक्षसको मारकर उसे दूर फेंक दिया था । उसका विशाल सिर महामुनि महोदरकी जाँघमें चपक गया था । वे महामुनि इस तीर्थमें स्नान करनेपर उस कपालसे मुक्त हुए थे ॥ ४-५ ॥

तत्र पूर्वं तपस्तप्तं काव्येन सुमहात्मना ।
यत्रास्य नीतिरखिला प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ ६ ॥

महात्मा शुक्राचार्यने वहीं पहले तप किया था, जिससे उनके हृदयमें सम्पूर्ण नीति-विद्या स्फुरित हुई थी ॥ ६ ॥

यत्रस्थश्चिन्तयामास दैत्यदानवविग्रहम् ।
तत् प्राप्य च बलो राजंस्तीर्थप्रवरमुत्तमम् ॥ ७ ॥
विधिवद् वै ददौ वित्तं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।

वहीं रहकर उन्होंने दैत्यों अथवा दानवोंके युद्धके विषयमें विचार किया था । राजन् ! उस श्रेष्ठ तीर्थमें पहुँचकर बलरामजीने महात्मा ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक धनका दान दिया था ॥ ७½ ॥

जनमेजय उवाच

कपालमोचनं ब्रह्मन् कथं यत्र महामुनिः ॥ ८ ॥
मुक्तः कथं चास्य शिरो लग्नं केन च हेतुना ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! उस तीर्थका नाम कपालमोचन कैसे हुआ, जहाँ महामुनि महोदरको छुटकारा मिला था ? उनकी जाँघमें वह सिर कैसे और किस कारणसे चिपक गया था ? ॥ ८½ ॥

वैशम्पायन उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना ॥ ९ ॥
वसता राजशार्दूल राक्षसान् शमयिष्यता ।
जनस्थाने शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ १० ॥
क्षुरेण शितधारेण उत्पपात महावने ।
महोदरस्य तल्लग्नं जंघायां वै यदृच्छया ॥ ११ ॥
वने विचरतो राजन्नस्थि भित्त्वास्फुरत् तदा ।

वैशम्पायनजीने कहा—नृपश्रेष्ठ ! पूर्वकालकी बात है, रघुकुलतिलक महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने दण्डकारण्यमें रहते समय जब राक्षसोंके संहारका विचार किया, तब तीखी धारवाले क्षुरसे जनस्थानमें उस दुरात्मा राक्षसका मस्तक काट दिया । वह कटा हुआ मस्तक उस महान् वनमें ऊपरको उछला और दैवयोगसे वनमें विचरते हुए महोदर मुनिकी जाँघमें जा लगा । नरेश्वर ! उस समय उनकी हड्डी छेदकर वह भीतर तक घुस गया ॥ ९—११½ ॥

स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह ॥ १२ ॥
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च ।

उस मस्तकके चिपक जानेसे वे महाबुद्धिमान् ब्राह्मण किसी तीर्थ या देवालयमें सुगमतापूर्वक आ-जा नहीं सकते थे॥

स पूतिना विस्रवता वेदनार्तो महामुनिः ॥ १३ ॥
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां चेति नः श्रुतम् ।

उस मस्तकसे दुर्गन्धयुक्त पीब बहती रहती थी और महामुनि महोदर वेदनासे पीड़ित हो गये थे । हमने सुना है कि मुनिने किसी तरह भूमण्डलके सभी तीर्थोंकी यात्रा की ॥

स गत्वा सरितः सर्वाः समुद्रांश्च महातपाः ॥ १४ ॥
कथयामास तत् सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।
आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु न च मोक्षमवाप्तवान् ॥ १५ ॥

उन महातपस्वी महर्षिने सम्पूर्ण सरिताओं और समुद्रोंकी यात्रा करके वहाँ रहनेवाले पवित्रात्मा मुनियोंसे वह सब वृत्तान्त कह सुनाया । सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके भी वे उस कपालसे छुटकारा न पा सके ॥ १४-१५ ॥

स तु शुश्राव विप्रेन्द्र मुनीनां वचनं महत् ।
सरस्वत्यास्तीर्थवरं ख्यातमौशनसं तदा ॥ १६ ॥
सर्वपापप्रशमनं सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम् ।

विप्रवर ! उन्होंने मुनियोंके मुखसे यह महत्त्वपूर्ण बात सुनी कि 'सरस्वतीका श्रेष्ठ तीर्थ जो औशनस नामसे विख्यात है, सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला तथा परम उत्तम सिद्धि-क्षेत्र है' ॥ १६½ ॥

स तु गत्वा ततस्तत्र तीर्थमौशनसं द्विजः ॥ १७ ॥
तत औशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा ।
तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले तदा ॥ १८ ॥

तदनन्तर वे ब्रह्मर्षि वहाँ औशनस तीर्थमें गये और उसके जलसे आचमन एवं स्नान किया । उसी समय वह कपाल उनके चरण (जाँघ) को छोड़कर पानीके भीतर गिर पड़ा॥

विमुक्तस्तेन शिरसा परं सुखमवाप ह ।
स चाप्यन्तर्जले मूर्धा जगामादर्शनं विभो ॥ १९ ॥

प्रभो ! उस मस्तक या कपालसे मुक्त होनेपर महोदर मुनिको बड़ा सुख मिला । साथ ही वह मस्तक भी (जो उनकी जाँघसे छूटकर गिरा था) पानीके भीतर अदृश्य हो गया॥

ततः स विशिरा राजन् पूतात्मा वीतकल्मषः ।
आजगामाश्रमं प्रीतः कृतकृत्यो महोदरः ॥ २० ॥

राजन् ! उस कपालसे मुक्त हो निष्पाप एवं पवित्र अन्तःकरणवाले महोदर मुनि कृतकृत्य हो प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमपर लौट आये ॥ २० ॥

सोऽथ गत्वाऽऽश्रमं पुण्यं विप्रमुक्तो महातपाः ।
कथयामास तत् सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ॥ २१ ॥

संकटसे मुक्त हुए उन महातपस्वी मुनिने अपने पवित्र आश्रमपर जाकर वहाँ रहनेवाले पवित्रात्मा ऋषियोंसे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २१ ॥

ते श्रुत्वा वचनं तस्य ततस्तीर्थस्य मानद ।

कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः ॥ २२ ॥

मानद ! तदनन्तर वहाँ आये हुए महर्षियोंने महोदर मुनिकी बात सुनकर उस तीर्थका नाम कपालमोचन रख दिया ॥

स चापि तीर्थप्रवरं पुनर्गत्वा महानृषिः ।
पीत्वा पयः सुविपुलं सिद्धिमायात् तदा मुनिः ॥२३॥

इसके बाद महर्षि महोदर पुनः उस श्रेष्ठ तीर्थमें गये और वहाँका प्रचुर जल पीकर उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए ॥

तत्र दत्त्वा बहून् दायान् विप्रान् सम्पूज्य माधवः ।
जगाम वृष्णिप्रवरो रुषङ्गोराश्रमं तदा ॥ २४ ॥

वृष्णिवंशावतंस बलरामजीने वहाँ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बहुत धनका दान किया । इसके बाद वे रुषङ्गु मुनिके आश्रमपर गये ॥ २४ ॥

यत्र तप्तं तपो घोरमार्ष्टिषेणेन भारत ।
ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥ २५ ॥

भरतनन्दन ! वहीं आर्ष्टिषेण मुनिने घोर तपस्या की थी और वहीं महामुनि विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥

सर्वकामसमृद्धं च तदाश्रमपदं महत् ।
मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव सेवितं सर्वदा विभो ॥ २६ ॥

प्रभो ! वह महान् आश्रम सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे सम्पन्न है । वहाँ बहुत-से मुनि और ब्राह्मण सदा निवास करते हैं ॥ २६ ॥

ततो हलधरः श्रीमान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।
जगाम तत्र राजेन्द्र रुषङ्गुस्तनुमत्यजत् ॥ २७ ॥

राजेन्द्र ! तत्पश्चात् श्रीमान् हलधर ब्राह्मणोंसे घिरकर उस स्थानपर गये, जहाँ रुषङ्गुने अपना शरीर छोड़ा था ॥

रुषङ्गुर्ब्राह्मणो वृद्धस्तपोनित्यश्च भारत ।
देहन्यासे कृतमना विचिन्त्य बहुधा तदा ॥ २८ ॥
ततः सर्वानुपादाय तनयान् वै महातपाः ।
रुषङ्गुरब्रवीत् तत्र नयध्वं मां पृथूदकम् ॥ २९ ॥

भारत ! बूढ़े ब्राह्मण रुषङ्गु सदा तपस्यामें संलग्न रहते थे । एक समय उन महातपस्वी रुषङ्गु मुनिने शरीर त्याग देनेका विचार करके बहुत कुछ सोचकर अपने सभी पुत्रोंको बुलाया और उनसे कहा—'मुझे पृथूदक तीर्थमें ले चलो' ॥

विज्ञायातीतवयसं रुषङ्गुं ते तपोधनाः ।
तं च तीर्थमुपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम् ॥ ३० ॥

उन तपस्वी पुत्रोंने तपोधन रुषङ्गुको अत्यन्त वृद्ध जानकर उन्हें सरस्वतीके उस उत्तम तीर्थमें पहुँचा दिया।३०।

स तैः पुत्रैस्तदा धीमानानीतो वै सरस्वतीम् ।
पुण्यां तीर्थशतोपेतां विप्रसङ्घैर्निषेविताम् ॥ ३१ ॥
स तत्र विधिना राजन्नाप्लुत्य सुमहातपाः ।
ज्ञात्वा तीर्थगुणांश्चैव प्राहेदमृषिसत्तमः ॥ ३२ ॥
सुप्रीतः पुरुषव्याघ्र सर्वान् पुत्रानुपासतः ।

राजन् ! नरव्याघ्र ! वे पुत्र जब उन बुद्धिमान् मुनिको ब्राह्मणसमूहोंसे सेवित तथा सैकड़ों तीर्थोंसे सुशोभित पुण्य-सलिला सरस्वतीके तटपर ले आये, तब वे महातपस्वी महर्षि वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके तीर्थके गुणोंको जानकर अपने पास बैठे हुए सभी पुत्रोंसे प्रसन्नतापूर्वक बोले—॥३१-३२½॥

सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥ ३३ ॥
पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वोमरणं तपेत् ।

'जो सरस्वतीके उत्तर तटपर पृथूदक तीर्थमें जप करते हुए अपने शरीरका परित्याग करता है, उसे भविष्यमें पुनः मृत्युका कष्ट नहीं भोगना पड़ता' ॥ ३३½ ॥

तत्राप्लुत्य स धर्मात्मा उपस्पृश्य हलायुधः ॥ ३४ ॥
दत्त्वा चैव बहून् दायान् विप्राणां विप्रवत्सलः ।

धर्मात्मा विप्रवत्सल हलधर बलरामजीने उस तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको बहुत धनका दान किया ॥ ३४½ ॥

ससर्ज यत्र भगवाँल्लोकाँल्लोकपितामहः ॥ ३५ ॥
यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः ।
तपसा महता राजन् प्राप्तवानृषिसत्तमः ॥ ३६ ॥
सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः ।
ब्रह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः ॥ ३७ ॥
महातपस्वी भगवानुग्रतेजा महायशाः ।
तत्राजगाम बलवान् बलभद्रः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥

कुरुवंशी नरेश ! तत्पश्चात् बलवान् एवं प्रतापी बलभद्रजी उस तीर्थमें आ गये, जहाँ लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने सृष्टि की थी, जहाँ कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ आर्ष्टिषेणने बड़ी भारी तपस्या करके ब्राह्मणत्व पाया था तथा जहाँ राजर्षि सिन्धुद्वीप, महान् तपस्वी देवापि और महायशस्वी, उग्रतेजस्वी एवं महातपस्वी भगवान् विश्वामित्र मुनिने भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥ ३५–३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें सारस्वतोपाख्यानविषयक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

आर्ष्टिषेण एवं विश्वामित्रकी तपस्या तथा वरप्राप्ति

जनमेजय उवाच

कथमार्ष्टिषेणो भगवान् विपुलं तप्तवांस्तपः ।
सिन्धुद्वीपः कथं चापि ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तदा ॥ १ ॥
देवापिश्च कथं ब्रह्मन् विश्वामित्रश्च सत्तम ।
तन्ममाचक्ष्व भगवन् परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! मुनिश्रेष्ठ ! पूज्य आर्ष्टिषेण-

ने वहाँ किस प्रकार बड़ी भारी तपस्या की थी तथा सिन्धुद्वीप, देवापि और विश्वामित्रजीने किस तरह ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ? भगवन् ! यह सब मुझे बताइये। इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी भारी उत्सुकता है ॥ १-२ ॥

वैशम्पायन उवाच

पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः।
वसन् गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! प्राचीन कालकी सत्ययुगकी बात है, द्विजश्रेष्ठ आर्ष्टिषेण सदा गुरुकुलमें निवास करते हुए निरन्तर वेद-शास्त्रोंके अध्ययनमें लगे रहते थे ॥३॥

तस्य राजन् गुरुकुले वसतो नित्यमेव च।
समाप्तिं नागमद् विद्या नापि वेदा विशाम्पते॥ ४ ॥

प्रजानाथ ! नरेश्वर ! गुरुकुलमें सर्वदा रहते हुए भी न तो उनकी विद्या समाप्त हुई और न वे सम्पूर्ण वेद ही पढ़ सके॥

स निर्विण्णस्ततो राजंस्तपस्तेपे महातपाः।
ततो वै तपसा तेन प्राप्य वेदाननुत्तमान्॥ ५ ॥
स विद्वान् वेदयुक्तश्च सिद्धश्चाप्यृषिसत्तमः।
तत्र तीर्थे वरान् प्रादात् त्रीनेव सुमहातपाः॥ ६ ॥

नरश्वर ! इससे महातपस्वी आर्ष्टिषेण खिन्न एवं विरक्त हो उठे, फिर उन्होंने सरस्वतीके उसी तीर्थमें जाकर बड़ी भारी तपस्या की। उस तपके प्रभावसे उत्तम वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके वे ऋषिश्रेष्ठ विद्वान् वेदज्ञ और सिद्ध हो गये। तदनन्तर उन महातपस्वीने उस तीर्थको तीन वर प्रदान किये—॥

अस्मिंस्तीर्थे महानद्या अद्यप्रभृति मानवः।
आप्लुतो वाजिमेधस्य फलं प्राप्स्यति पुष्कलम्॥ ७ ॥
अद्यप्रभृति नैवात्र भयं व्यालाद् भविष्यति।
अपि चाल्पेन कालेन फलं प्राप्स्यति पुष्कलम्॥ ८ ॥

'आजसे जो मनुष्य महानदी सरस्वतीके इस तीर्थमें स्नान करेगा, उसे अश्वमेध यज्ञका सम्पूर्ण फल प्राप्त होगा। आजसे इस तीर्थमें किसीको सर्पसे भय नहीं होगा। थोड़े समय तक ही इस तीर्थके सेवनसे मनुष्यको बहुत अधिक फल प्राप्त होगा' ॥ ७-८ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा जगाम त्रिदिवं मुनिः।
एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान्॥ ९ ॥

ऐसा कहकर वे महातेजस्वी मुनि स्वर्गलोकको चले गये। इस प्रकार पूजनीय एवं प्रतापी आर्ष्टिषेण ऋषि उस तीर्थमें सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ॥ ९ ॥

तस्मिन्नेव तदा तीर्थे सिन्धुद्वीपः प्रतापवान्।
देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत्॥ १० ॥

महाराज ! उन्हीं दिनों उसी तीर्थमें प्रतापी सिन्धुद्वीप तथा देवापिने वहाँ तप करके महान् ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था॥

तथा च कौशिकस्तात तपोनित्यो जितेन्द्रियः।
तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान्॥ ११ ॥

तात ! कुशिकवंशी विश्वामित्र भी वहीं निरन्तर इन्द्रिय-संयमपूर्वक तपस्या करते थे। उस भारी तपस्याके प्रभावसे उन्हें ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हुई ॥ ११ ॥

गाधिर्नाम महानासीत् क्षत्रियः प्रथितो भुवि।
तस्य पुत्रोऽभवद् राजन् विश्वामित्रः प्रतापवान्॥ १२॥

राजन् ! पहले इस भूतलपर गाधिनामसे विख्यात महान् क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। प्रतापी विश्वामित्र उन्हींके पुत्र थे ॥ १२ ॥

स राजा कौशिकस्तात महायोग्यभवत् किल।
स पुत्रमभिषिच्याथ विश्वामित्रं महातपाः॥ १३ ॥
देहन्यासे मनश्चक्रे तमूचुः प्रणताः प्रजाः।
न गन्तव्यं महाप्राज्ञ त्राहि चास्मान् महाभयात्॥ १४ ॥

तात ! लोग कहते हैं कि कुशिकवंशी राजा गाधि महान् योगी और बड़े भारी तपस्वी थे। उन्होंने अपने पुत्र विश्वामित्रको राज्यपर अभिषिक्त करके शरीरको त्याग देनेका विचार किया। तब सारी प्रजा उनसे नतमस्तक होकर बोली—'महाबुद्धिमान् नरेश ! आप कहीं न जायँ, यहीं रहकर हमारी इस जगत्के महान् भयसे रक्षा करते रहें' ॥१३-१४॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच ततो गाधिः प्रजास्ततः।
विश्वस्य जगतो गोप्ता भविष्यति सुतो मम॥ १५ ॥

उनके ऐसा कहनेपर गाधिने सम्पूर्ण प्रजाओंसे कहा—'मेरा पुत्र सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाला होगा (अतः तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये)' ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा तु ततो गाधिर्विश्वामित्रं निवेश्य च।
जगाम त्रिदिवं राजन् विश्वामित्रोऽभवन्नृपः॥ १६ ॥

राजन् ! यों कहकर राजा गाधि विश्वामित्रको राजसिंहासनपर बिठाकर स्वर्गलोकको चले गये। तत्पश्चात् विश्वामित्र राजा हुए ॥ १६ ॥

न स शक्नोति पृथिवीं यत्नवानपि रक्षितुम्।
ततः शुश्राव राजा स राक्षसेभ्यो महाभयम्॥ १७॥

वे प्रयत्नशील होनेपर भी सम्पूर्ण भूमण्डलकी रक्षा नहीं कर पाते थे। एक दिन राजा विश्वामित्रने सुना कि 'प्रजाको राक्षसोंसे महान् भय प्राप्त हुआ है' ॥ १७ ॥

निर्ययौ नगराच्चापि चतुरङ्गबलान्वितः।
स गत्वा दूरमध्वानं वसिष्ठाश्रममभ्ययात्॥ १८॥

तब वे चतुरंगिणी सेना लेकर नगरसे निकल पड़े और दूर तकका रास्ता तय करके वसिष्ठके आश्रमके पास जा पहुँचे॥

तस्य ते सैनिका राजंश्चक्रुस्तत्रानयान् बहून्।
ततस्तु भगवान् विप्रो वसिष्ठोऽऽश्रममभ्ययात्॥ १९॥

राजन् ! उनके उन सैनिकोंने वहाँ बहुत-से अन्याय एवं अत्याचार किये। तदनन्तर पूज्य ब्रह्मर्षि वसिष्ठ कहींसे अपने आश्रमपर आये ॥ १९ ॥

ददृशेऽथ ततः सर्वं भज्यमानं महावनम्।
तस्य क्रुद्धो महाराज वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥ २० ॥

आकर उन्होंने देखा कि वह सारा विशाल वन उजाड़ होता जा रहा है। महाराज ! यह देखकर मुनिवर वसिष्ठ राजा विश्वामित्रपर कुपित हो उठे ॥ २० ॥

सृजस्व शबरान् घोरानिति स्वां गामुवाच ह।
तथोक्ता साऽसृजद् धेनुः पुरुषान् घोरदर्शनान् ॥ २१ ॥

फिर उन्होंने अपनी गौ नन्दिनीसे कहा—'तुम भयंकर भील जातिके सैनिकोंकी सृष्टि करो' । उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उनकी होमधेनुने ऐसे पुरुषोंको उत्पन्न किया, जो देखनेमें बड़े भयानक थे ॥ २१ ॥

ते तु तद्‌बलमासाद्य बभञ्जुः सर्वतोदिशम्।
तच्छ्रुत्वा विद्रुतं सैन्यं विश्वामित्रस्तु गाधिजः ॥ २२ ॥
तपः परं मन्यमानस्तपस्येव मनो दधे।

उन्होंने विश्वामित्रकी सेनापर आक्रमण करके उनके सैनिकोंको सम्पूर्ण दिशाओंमें मार भगाया । गाधिनन्दन विश्वामित्रने जब यह सुना कि मेरी सेना भाग गयी तो तपको ही अधिक प्रबल मानकर तपस्यामें ही मन लगाया ॥२२½॥

सोऽस्मिंस्तीर्थवरे राजन् सरस्वत्याः समाहितः ॥ २३ ॥
नियमैश्चोपवासैश्च कर्षयन् देहमात्मनः।

राजन् ! उन्होंने सरस्वतीके उस श्रेष्ठ तीर्थमें चित्तको एकाग्र करके नियमों और उपवासोंके द्वारा अपने शरीरको सुखाना आरम्भ किया ॥ २३½ ॥

जलाहारो वायुभक्षः पर्णाहारश्च सोऽभवत् ॥ २४ ॥
तथा स्थण्डिलशायी च ये चान्ये नियमाः पृथक्।

वे कभी जल पीकर रहते, कभी वायुको ही आहार बनाते और कभी पत्ते चबाकर रहते थे । सदा भूमिकी वेदी बनाकर उसपर सोते और तपस्यासम्बन्धी जो अन्य सारे नियम हैं, उनका भी पृथक्-पृथक् पालन करते थे ॥ २४½ ॥

असकृत्तस्य देवास्तु व्रतविघ्नं प्रचक्रिरे ॥ २५ ॥
न चास्य नियमाद् बुद्धिरपयाति महात्मनः।

देवताओंने उनके व्रतमें बारंबार विघ्न डाला; परंतु उन महात्माकी बुद्धि कभी नियमसे विचलित नहीं होती थी॥

ततः परेण यत्नेन तप्त्वा बहुविधं तपः ॥ २६ ॥
तेजसा भास्कराकारो गाधिजः समपद्यत।

तदनन्तर महान् प्रयत्नके द्वारा नाना प्रकारकी तपस्या करके गाधिनन्दन विश्वामित्र अपने तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २६½ ॥

तपसा तु तथा युक्तं विश्वामित्रं पितामहः ॥ २७ ॥
अमन्यत महातेजा वरदो वरमस्य तत्।

विश्वामित्रको ऐसी तपस्यासे युक्त देख महातेजस्वी एवं वरदायक ब्रह्माजीने उन्हें वर देनेका विचार किया ॥२७½॥

स तु वव्रे वरं राजन् स्यामहं ब्राह्मणस्त्विति ॥ २८ ॥
तथेति चाब्रवीद् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।

राजन् ! तब उन्होंने यह वर माँगा कि 'मैं ब्राह्मण हो जाऊँ।' सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने उन्हें 'तथास्तु' कहकर वह वर दे दिया ॥ २८½ ॥

स लब्ध्वा तपसोग्रेण ब्राह्मणत्वं महायशाः ॥ २९ ॥
विचचार महीं कृत्स्नां कृतकामः सुरोपमः।

उस उग्र तपस्याके द्वारा ब्राह्मणत्व पाकर सफलमनोरथ हुए महायशस्वी विश्वामित्र देवताके समान समस्त भूमण्डलमें विचरने लगे ॥ २९½ ॥

तस्मिंस्तीर्थवरे रामः प्रदाय विविधं वसु ॥ ३० ॥
पयस्विनीस्तथा धेनूर्यानानि शयनानि च।
अथ वस्त्राण्यलङ्कारं भक्ष्यं पेयं च शोभनम् ॥ ३१ ॥
अददान्मुदितो राजन् पूजयित्वा द्विजोत्तमान्।
ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात्।
यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥ ३२ ॥

राजन् ! बलरामजीने उस श्रेष्ठ तीर्थमें उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें दूध देनेवाली गौएँ, वाहन, शय्या, वस्त्र, अलङ्कार तथा खाने-पीनेके सुन्दर पदार्थ प्रसन्नतापूर्वक दिये । फिर वहाँसे वे बकके आश्रमके निकट गये, जहाँ दल्भपुत्र बकने तीव्र तपस्या की थी ॥ ३०-३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें सारस्वतोपाख्यानविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अवाकीर्ण और यायात तीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें दाल्भ्यकी कथा और ययातिके यज्ञका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मयोनेरवाकीर्णं जगाम यदुनन्दनः।
यत्र दाल्भ्यो बको राजन्नाश्रमस्थो महातपाः ॥ १ ॥
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं वैचित्रवीर्यिणः।
तपसा घोररूपेण कर्षयन् देहमात्मनः ॥ २ ॥
क्रोधेन महताऽऽविष्टो धर्मात्मा वै प्रतापवान्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति करानेवाले उस तीर्थसे प्रस्थित होकर यदुनन्दन बलरामजी 'अवाकीर्ण' तीर्थमें गये, जहाँ आश्रममें रहते हुए महातपस्वी धर्मात्मा एवं प्रतापी दल्भपुत्र बकने महान् क्रोधमें भरकर घोर तपस्याद्वारा अपने शरीरको सुखाते हुए विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रके राष्ट्रका होम कर दिया था ॥ १-२½ ॥

पुरा हि नैमिषीयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ३ ॥
वृत्ते विश्वजितोऽन्ते वै पञ्चालानृषयोऽगमन्।
तत्रेश्वरमयाचन्त दक्षिणार्थं मनस्विनः ॥ ४ ॥

पूर्वकालमें नैमिषारण्यनिवासी ऋषियोंने बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाले एक सत्रका आरम्भ किया था । जब वह पूरा हो गया, तब वे सब ऋषि विश्वजित् नामक यज्ञके अन्तमें पाञ्चाल देशमें गये । वहाँ जाकर उन मनस्वी मुनियोंने उस देशके राजासे दक्षिणाके लिये धनकी याचना की ॥ ३-४ ॥

(तत्र ते लेभिरे राजन् पञ्चालेभ्यो महर्षयः)
बलान्वितान् वत्सतरान् निर्व्याधीनेकविंशतिम् ।
तानब्रवीद् बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति ॥ ५ ॥
पशूनेतानहं त्यक्त्वा भिक्षिष्ये राजसत्तमम् ।

राजन् ! वहाँ महर्षियोंने पाञ्चालोंसे इक्कीस बलवान् और नीरोग बछड़े प्राप्त किये । तब उनमेंसे दल्भपुत्र बकने अन्य सब ऋषियोंसे कहा—'आपलोग इन पशुओंको बाँट लें । मैं इन्हें छोड़कर किसी श्रेष्ठ राजासे दूसरे पशु माँग लूँगा'॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्नृषीन् सर्वान् प्रतापवान्॥
जगाम धृतराष्ट्रस्य भवनं ब्राह्मणोत्तमः ।

नरेश्वर ! उन सब ऋषियोंसे ऐसा कहकर वे प्रतापी उत्तम ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्रके घरपर गये ॥ ६½ ॥

स समीपगतो भूत्वा धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ७ ॥
अयाचत पशून् दाल्भ्यः स चैनं रुषितोऽब्रवीत् ।
यदृच्छया मृता दृष्ट्वा गास्तदा नृपसत्तमः ॥ ८ ॥
एतान् पशून् नय क्षिप्रं ब्रह्मबन्धो यदीच्छसि ।

निकट जाकर दाल्भ्यने कौरवनरेश धृतराष्ट्रसे पशुओंकी याचना की । यह सुनकर नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्र कुपित हो उठे । उनके यहाँ कुछ गौएँ दैवेच्छासे मर गयी थीं । उन्हींको लक्ष्य करके राजाने क्रोधपूर्वक कहा—'ब्रह्मबन्धो ! यदि पशु चाहते हो तो इन मरे हुए पशुओंको ही शीघ्र ले जाओ' ॥

ऋषिस्तथा वचः श्रुत्वा चिन्तयामास धर्मवित्॥ ९ ॥
अहो बत नृशंसं वै वाक्यमुक्तोऽस्मि संसदि ।

उनकी वैसी बात सुनकर धर्मज्ञ ऋषिने चिन्तामग्न होकर सोचा—'अहो ! बड़े खेदकी बात है कि इस राजाने भरी सभामें मुझसे ऐसा कठोर वचन कहा है' ॥ ९½ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तेन रोषाविष्टो द्विजोत्तमः ॥ १० ॥
मतिं चक्रे विनाशाय धृतराष्ट्रस्य भूपतेः ।

दो घड़ीतक इस प्रकार चिन्ता करके रोषमें भरे हुए द्विजश्रेष्ठ दाल्भ्यने राजा धृतराष्ट्रके विनाशका विचार किया ॥

स तूत्कृत्य मृतानां वै मांसानि मुनिसत्तमः ॥ ११ ॥
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा ।

वे मुनिश्रेष्ठ उन मृत पशुओंके ही मांस काट-काटकर उनके द्वारा राजा धृतराष्ट्रके राष्ट्रकी ही आहुति देने लगे ॥

अवाकीर्णे सरस्वत्यास्तीर्थे प्रज्वाल्य पावकम् ॥ १२ ॥
बको दाल्भ्यो महाराज नियमं परमं स्थितः ।
स तैरेव जुहावास्य राष्ट्रं मांसैर्महातपाः ॥ १३ ॥

महाराज ! सरस्वतीके अवाकीर्ण तीर्थमें अग्नि प्रज्वलित करके महातपस्वी दल्भपुत्र बक उत्तम नियमका आश्रय ले उन मृत पशुओंके मांसोंद्वारा ही उनके राष्ट्रका हवन करने लगे॥

तस्मिंस्तु विधिवत् सत्रे सम्प्रवृत्ते सुदारुणे ।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव ॥ १४ ॥

राजन् ! वह भयंकर यज्ञ जब विधिपूर्वक आरम्भ हुआ, तबसे धृतराष्ट्रका राष्ट्र क्षीण होने लगा ॥ १४ ॥

ततः प्रक्षीयमाणं तद् राज्यं तस्य महीपतेः ।
छिद्यमानं यथानन्तं वनं परशुना विभो ॥ १५ ॥
बभूवापद्गतं तच्च व्यवकीर्णमचेतनम् ।

प्रभो ! जैसे बड़ा भारी वन कुल्हाड़ीसे काटा जा रहा हो, उसी प्रकार उस राजाका राज्य क्षीण होता हुआ भारी आफतमें फँस गया; वह संकटग्रस्त होकर अचेत हो गया ॥

दृष्ट्वा तथावकीर्णं तु राष्ट्रं स मनुजाधिपः ॥ १६ ॥
बभूव दुर्मना राजंश्चिन्तयामास च प्रभुः ।
मोक्षार्थमकरोद् यत्नं ब्राह्मणैः सहितः पुरा ॥ १७ ॥

राजन् ! अपने राष्ट्रको इस प्रकार सङ्कटमग्न हुआ देख वे नरेश मन-ही-मन बहुत दुखी हुए और गहरी चिन्तामें डूब गये । फिर ब्राह्मणोंके साथ अपने देशको सङ्कटसे बचानेका प्रयत्न करने लगे ॥ १६-१७ ॥

न च श्रेयोऽध्यगच्छत्तु क्षीयते राष्ट्रमेव च ।
यदा स पार्थिवः खिन्नस्ते च विप्रास्तदानघ ॥ १८ ॥

अनघ ! जब किसी प्रकार भी वे भूपाल अपने राष्ट्रका कल्याण साधन न कर सके और वह दिन-प्रतिदिन क्षीण होता ही चला गया, तब राजा और उन ब्राह्मणोंको बड़ा खेद हुआ ॥ १८ ॥

यदा चापि न शक्नोति राष्ट्रं मोक्षयितुं नृप ।
अथ वै प्राश्निकांस्तत्र पप्रच्छ जनमेजय ॥ १९ ॥

नरेश्वर जनमेजय ! जब धृतराष्ट्र अपने राष्ट्रको उस विपत्तिसे छुटकारा दिलानेमें समर्थ न हो सके, तब उन्होंने प्राश्निकों (प्रश्न पूछनेपर भूत, वर्तमान और भविष्यकी बातें बतानेवालों) को बुलाकर उनसे इसका कारण पूछा ॥

ततो वै प्राश्निकाः प्राहुः पशोर्विप्रकृतस्त्वया ।
मांसैरभिजुहोतीदं तव राष्ट्रं मुनिर्बकः ॥ २० ॥

तब उन प्राश्निकोंने कहा—'आपने पशुके लिये याचना करनेवाले बक मुनिका तिरस्कार किया है; इसलिये वे मृत पशुओंके मांसोंद्वारा आपके इस राष्ट्रका विनाश करनेकी इच्छासे होम कर रहे हैं ॥ २० ॥

तेन ते हूयमानस्य राष्ट्रस्यास्य क्षयो महान् ।
तस्यैतत् तपसः कर्म येन तेऽद्य लयो महान् ॥ २१ ॥

'उनके द्वारा आपके राष्ट्रकी आहुति दी जा रही है; इसलिये इसका महान् विनाश हो रहा है । यह सब उनकी तपस्याका प्रभाव है, जिससे आपके इस देशका इस समय महान् विलय होने लगा है ॥ २१ ॥

अपां कुञ्जे सरस्वत्यास्तं प्रसादय पार्थिव ।
सरस्वतीं ततो गत्वा स राजा बकमब्रवीत् ॥ २२ ॥

'भूपाल ! सरस्वतीके कुञ्जमें जलके समीप वे मुनि विराजमान हैं, आप उन्हें प्रसन्न कीजिये ।' तब राजाने सरस्वतीके तटपर जाकर बक मुनिसे इस प्रकार कहा ॥ २२ ॥

निपत्य शिरसा भूमौ प्राञ्जलिर्भरतर्षभ ।
प्रसादये त्वां भगवन्नपराधं क्षमस्व मे ॥ २३ ॥
मम दीनस्य लुब्धस्य मौर्ख्येण हतचेतसः ।
त्वं गतिस्त्वं च मे नाथः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे पृथ्वीपर माथा टेक हाथ जोड़कर बोले—'भगवन् ! मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ । आप मुझ दीन, लोभी और मूर्खतासे हतबुद्धि हुए अपराधीके अपराधको क्षमा कर दें । आप ही मेरी गति हैं । आप ही मेरे रक्षक हैं । आप मुझपर अवश्य कृपा करें' ॥ २३-२४ ॥

तं तथा विलपन्तं तु शोकोपहतचेतसम् ।
दृष्ट्वा तस्य कृपा जज्ञे राष्ट्रं तस्य व्यमोचयत् ॥ २५ ॥

राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार शोकसे अचेत होकर विलाप करते देख उनके मनमें दया आ गयी और उन्होंने राजाके राज्यको सङ्कटसे मुक्त कर दिया ॥ २५ ॥

ऋषिः प्रसन्नस्तस्याभूत् संरम्भं च विहाय सः ।
मोक्षार्थं तस्य राज्यस्य जुहाव पुनराहुतिम् ॥ २६ ॥

ऋषि क्रोध छोड़कर राजापर प्रसन्न हुए और पुनः उनके राज्यको सङ्कटसे बचानेके लिये आहुति देने लगे ॥२६॥

मोक्षयित्वा ततो राष्ट्रं प्रतिगृह्य पशून् बहून् ।
हृष्टात्मा नैमिषारण्यं जगाम पुनरेव सः ॥ २७ ॥

इस प्रकार राज्यको विपत्तिसे छुड़ाकर राजासे बहुत-से पशु ले प्रसन्नचित्त हुए महर्षि दाल्भ्य पुनः नैमिषारण्यको ही चले गये ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्रोऽपि धर्मात्मा स्वस्थचेता महामनाः ।
स्वमेव नगरं राजन् प्रतिपेदे महर्द्धिमत् ॥ २८ ॥

राजन् ! फिर महामनस्वी धर्मात्मा धृतराष्ट्र भी स्वस्थचित्त हो अपने समृद्धिशाली नगरको ही लौट आये ॥२८॥

तत्र तीर्थे महाराज बृहस्पतिरुदारधीः ।
असुराणामभावाय भवाय च दिवौकसाम् ॥ २९ ॥
मांसैरभिजुहावेष्टिमक्षीयन्त ततोऽसुराः ।
दैवतैरपि सम्भग्ना जितकाशिभिराहवे ॥ ३० ॥

महाराज ! उसी तीर्थमें उदारबुद्धि बृहस्पतिजीने असुरोंके विनाश और देवताओंकी उन्नतिके लिये मांसोंद्वारा आभिचारिक यज्ञका अनुष्ठान किया था । इससे वे असुर क्षीण हो गये और युद्धमें विजयसे सुशोभित होनेवाले देवताओंने उन्हें मार भगाया ॥ २९-३० ॥

तत्रापि विधिवद् दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ।
वाजिनः कुञ्जरांश्चैव रथांश्चाश्वतरीयुतान् ॥ ३१ ॥
रत्नानि च महार्हाणि धनं धान्यं च पुष्कलम् ।
ययौ तीर्थं महाबाहुर्यायातं पृथिवीपते ॥ ३२ ॥

पृथ्वीनाथ ! महायशस्वी महाबाहु बलरामजी उस तीर्थमें भी ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक हाथी, घोड़े, खच्चरियोंसे जुते हुए रथ, बहुमूल्य रत्न तथा प्रचुर धन-धान्यका दान करके वहाँसे यायात तीर्थमें गये ॥ ३१-३२ ॥

तत्र यज्ञे ययातेश्च महाराज सरस्वती ।
सर्पिः पयश्च सुस्राव नाहुषस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥

महाराज ! वहाँ पूर्वकालमें नहुषनन्दन महात्मा ययातिने यज्ञ किया था, जिसमें सरस्वतीने उनके लिये दूध और घीका स्रोत बहाया था ॥ ३३ ॥

तत्रेष्ट्वा पुरुषव्याघ्रो ययातिः पृथिवीपतिः ।
अक्रामदूर्ध्वं मुदितो लेभे लोकांश्च पुष्कलान् ॥ ३४ ॥

पुरुषसिंह भूपाल ययाति वहाँ यज्ञ करके प्रसन्नतापूर्वक ऊर्ध्वलोकमें चले गये और वहाँ उन्हें बहुत-से पुण्यलोक प्राप्त हुए ॥

पुनस्तत्र च राज्ञस्तु ययातेर्यजतः प्रभोः ।
औदार्यं परमं कृत्वा भक्तिं चात्मनि शाश्वतीम् ॥३५॥
ददौ कामान् ब्राह्मणेभ्यो यान् यान् यो मनसेच्छति ।

शक्तिशाली राजा ययाति जब वहाँ यज्ञ कर रहे थे, उस समय उनकी उत्कृष्ट उदारताको दृष्टिमें रखकर और अपने प्रति उनकी सनातन भक्ति देख सरस्वतीने उस यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणोंको, जिसने अपने मनसे जिन-जिन भोगोंको चाहा, वे सभी मनोवाञ्छित भोग प्रदान किये ॥ ३५½ ॥

यो यत्र स्थित एवेह आहूतो यज्ञसंस्तरे ॥ ३६ ॥
तस्य तस्य सरिच्छ्रेष्ठा गृहादिशयनादिकम् ।
षड्रसं भोजनं चैव दानं नानाविधं तथा ॥ ३७ ॥

राजाके यज्ञमण्डपमें बुलाकर आया हुआ जो ब्राह्मण जहाँ कहीं ठहर गया, वहीं उसके लिये सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने पृथक्-पृथक् गृह, शय्या, आसन, षड्रस भोजन तथा नाना प्रकारके दानकी व्यवस्था की ॥ ३६-३७ ॥

ते मन्यमाना राज्ञस्तु सम्प्रदानमनुत्तमम् ।
राजानं तुष्टुवुः प्रीता दत्त्वा चैवाशिषः शुभाः ॥ ३८ ॥

उन ब्राह्मणोंने यह समझकर कि राजाने ही वह उत्तम दान दिया है, अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा ययातिको शुभाशीर्वाद दे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ३८ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः प्रीता यज्ञस्य सम्पदा ।
विस्मिता मानुषाश्चासन् दृष्ट्वा तां यज्ञसम्पदम् ॥ ३९ ॥

उस यज्ञकी सम्पत्तिसे देवता और गन्धर्व भी बड़े प्रसन्न हुए थे । मनुष्योंको तो वह यज्ञ-वैभव देखकर महान् आश्चर्य हुआ था ॥ ३९ ॥

ततस्तालकेतुर्महाधर्मकेतु-
र्महात्मा कृतात्मा महादाननित्यः ।
वसिष्ठापवाहं महाभीमवेगं
धृतात्मा जितात्मा समभ्याजगाम ॥ ४० ॥

तदनन्तर महान् धर्म ही जिनकी ध्वजा है और जिनकी पताकापर ताड़का चिह्न सुशोभित है, वे महात्मा, कृतात्मा, धृतात्मा तथा जितात्मा बलरामजी, जो प्रतिदिन बड़े-बड़े दान किया करते थे, वहाँसे वसिष्ठापवाह नामक तीर्थमें गये, जहाँ सरस्वतीका वेग बड़ा भयङ्कर है ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें सारस्वतोपाख्यानविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४०½ श्लोक हैं)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

वसिष्ठापवाह तीर्थकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें विश्वामित्रका क्रोध और वसिष्ठजीकी सहनशीलता

जनमेजय उवाच

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ भीमवेगः कथं नु सः।
किमर्थं च सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत्॥ १॥
कथमस्याभवद् वैरं कारणं किं च तत् प्रभो।
शंस पृष्टो महाप्राज्ञ न हि तृप्यामि ते वचः॥ २॥

जनमेजयने पूछा—प्रभो! वसिष्ठापवाह तीर्थमें सरस्वतीके जलका भयंकर वेग कैसे हुआ? सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने उन महर्षिको किस लिये बहाया? उनके साथ उसका वैर कैसे हुआ? उस वैरका कारण क्या है? महामते! मैंने जो पूछा है, वह बताइये। मैं आपके वचनोंको सुनते-सुनते तृप्त नहीं होता हूँ॥ १-२॥

वैशम्पायन उवाच

विश्वामित्रस्य विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य च भारत।
भृशं वैरमभूद् राजंस्तपःस्पर्धाकृतं महत्॥ ३॥

वैशम्पायनजीने कहा—भारत! तपस्यामें होड़ लग जानेके कारण विश्वामित्र तथा ब्रह्मर्षि वसिष्ठमें बड़ा भारी वैर हो गया था॥ ३॥

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेऽभवन्महान्।
पूर्वतः पार्श्वतश्चासीद् विश्वामित्रस्य धीमतः॥ ४॥

सरस्वतीके स्थाणुतीर्थमें पूर्वतटपर वसिष्ठका बहुत बड़ा आश्रम था और पश्चिम तटपर बुद्धिमान् विश्वामित्र मुनिका आश्रम बना हुआ था॥ ४॥

यत्र स्थाणुर्महाराज तप्तवान् परमं तपः।
तत्रास्य कर्म तद् घोरं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ५॥

महाराज! जहाँ भगवान् स्थाणुने बड़ी भारी तपस्या की थी, वहाँ मनीषी पुरुष उनके घोर तपका वर्णन करते हैं॥ ५॥

यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम्।
स्थापयामास तत् तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो॥ ६॥

प्रभो! जहाँ भगवान् स्थाणु (शिव) ने सरस्वतीका पूजन और यज्ञ करके तीर्थकी स्थापना की थी, वहाँ वह तीर्थ स्थाणुतीर्थके नामसे विख्यात हुआ॥ ६॥

तत्र तीर्थे सुराः स्कन्दमभ्यषिञ्चन्नराधिप।
सैनापत्येन महता सुरारिविनिबर्हणम्॥ ७॥

नरेश्वर! उसी तीर्थमें देवताओंने देवशत्रुओंका विनाश करनेवाले स्कन्दको महान् सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया था।

तस्मिन् सारस्वते तीर्थे विश्वामित्रो महामुनिः।
वसिष्ठं चालयामास तपसोग्रेण तच्छृणु॥ ८॥

उसी सारस्वत तीर्थमें महामुनि विश्वामित्रने अपनी उग्र तपस्यासे वसिष्ठमुनिको विचलित कर दिया था। वह प्रसंग सुनाता हूँ, सुनो॥ ८॥

विश्वामित्रवसिष्ठौ तावहन्यहनि भारत।
स्पर्धां तपःकृतां तीव्रां चक्रतुस्तौ तपोधनौ॥ ९॥

भारत! विश्वामित्र और वसिष्ठ दोनों ही तपस्याके धनी थे, वे प्रतिदिन होड़ लगाकर अत्यन्त कठोर तप किया करते थे॥ ९॥

तत्राप्यधिकसंतापो विश्वामित्रो महामुनिः।
दृष्ट्वा तेजो वसिष्ठस्य चिन्तामभिजगाम ह॥ १०॥

उनमें भी महामुनि विश्वामित्रको ही अधिक संताप होता था, वे वसिष्ठका तेज देखकर चिन्तामग्न हो गये थे॥ १०॥

तस्य बुद्धिरियं ह्यासीद् धर्मनित्यस्य भारत।
इयं सरस्वती तूर्णं मत्समीपं तपोधनम्॥ ११॥
आनयिष्यति वेगेन वसिष्ठं तपतां वरम्।
इहागतं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः॥ १२॥

भरतनन्दन! सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले विश्वामित्र मुनिके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह सरस्वती तपोधन वसिष्ठको अपने जलके वेगसे तुरंत ही मेरे समीप ला देगी और यहाँ आ जानेपर तपस्वी मुनियोंमें श्रेष्ठ विप्रवर वसिष्ठका मैं वध कर डालूँगा; इसमें संशय नहीं है॥ ११-१२॥

एवं निश्चित्य भगवान् विश्वामित्रो महामुनिः।
सस्मार सरितां श्रेष्ठां क्रोधसंरक्तलोचनः॥ १३॥

ऐसा निश्चय करके पूज्य महामुनि विश्वामित्रके नेत्र क्रोधसे रक्त-वर्ण हो गये। उन्होंने सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका स्मरण किया॥ १३॥

सा ध्याता मुनिना तेन व्याकुलत्वं जगाम ह।
जज्ञे चैनं महावीर्यं महाकोपं च भाविनी॥ १४॥

उन मुनिके चिन्तन करनेपर विचारशीला सरस्वती व्याकुल हो उठी। उसे ज्ञात हो गया कि ये महान् शक्तिशाली महर्षि इस समय बड़े भारी क्रोधसे भरे हुए हैं॥ १४॥

तत एनं वेपमाना विवर्णा प्राञ्जलिस्तदा।
उपतस्थे मुनिवरं विश्वामित्रं सरस्वती॥ १५॥

इससे सरस्वतीकी कान्ति फीकी पड़ गयी और वह हाथ जोड़ थर-थर काँपती हुई मुनिवर विश्वामित्रकी सेवामें उपस्थित हुई॥ १५॥

हतवीरा यथा नारी साभवद् दुःखिता भृशम्।
ब्रूहि किं करवाणीति प्रोवाच मुनिसत्तमम्॥ १६॥

जिसका पति मारा गया हो उस विधवा नारीके समान वह अत्यन्त दुखी हो गयी और उन मुनिश्रेष्ठसे बोली—'प्रभो! बताइये, मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ?'॥

तामुवाच मुनिः क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय।
यावदेनं निहन्म्यद्य तच्छ्रुत्वा व्यथिता नदी॥ १७॥

तब कुपित हुए मुनिने उससे कहा—'वसिष्ठको शीघ्र यहाँ बहाकर ले आओ, जिससे आज मैं इनका वध कर डालूँ।' यह सुनकर सरस्वती नदी व्यथित हो उठी॥ १७॥

प्राञ्जलिं तु ततः कृत्वा पुण्डरीकनिभेक्षणा।

प्राकम्पत भृशं भीता वायुनेवाहता लता ॥ १८ ॥

वह कमलनयना अबला हाथ जोड़कर वायुके झकोरेसे हिलायी गयी लताके समान अत्यन्त भयभीत हो जोर-जोरसे काँपने लगी ॥ १८ ॥

तथारूपां तु तां दृष्ट्वा मुनिराह महानदीम् ।
अविचारं वसिष्ठं त्वमानयस्वान्तिकं मम ॥ १९ ॥

उसकी ऐसी अवस्था देखकर मुनिने उस महानदीसे कहा— 'तुम बिना कोई विचार किये वसिष्ठको मेरे पास ले आओ' ॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा पापं चिकीर्षितम् ।
वसिष्ठस्य प्रभावं च जानन्त्यप्रतिमं भुवि ॥ २० ॥
साभिगम्य वसिष्ठं च इदमर्थमचोदयत् ।
यदुक्ता सरितां श्रेष्ठा विश्वामित्रेण धीमता ॥ २१ ॥

विश्वामित्रकी बात सुनकर और उनकी पापपूर्ण चेष्टा जानकर वसिष्ठके भूतलपर विख्यात अनुपम प्रभावको जानती हुई उस नदीने उनके पास जाकर बुद्धिमान् विश्वामित्रने जो कुछ कहा था, वह सब उनसे कह सुनाया ॥ २०-२१ ॥

उभयोः शापयोर्भीता वेपमाना पुनः पुनः ।
चिन्तयित्वा महाशापमृषिवित्रासिता भृशम् ॥ २२ ॥

वह दोनोंके शापसे भयभीत हो बारंबार काँप रही थी । महान् शापका चिन्तन करके विश्वामित्र ऋषिके डरसे बहुत डर गयी थी ॥ २२ ॥

तां कृशां च विवर्णां च दृष्ट्वा चिन्तासमन्विताम् ।
उवाच राजन् धर्मात्मा वसिष्ठो द्विपदां वरः ॥ २३ ॥

राजन्! उसे दुर्बल, उदास और चिन्तामग्न देख मनुष्योंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा वसिष्ठने कहा ॥ २३ ॥

वसिष्ठ उवाच

पाह्यात्मानं सरिच्छ्रेष्ठे वह मां शीघ्रगामिनी ।
विश्वामित्रः शपेद्धि त्वां मा कृथास्त्वं विचारणाम् ॥ २४ ॥

वसिष्ठ बोले—सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती ! तुम शीघ्र गतिसे प्रवाहित होकर मुझे बहा ले चलो और अपनी रक्षा करो, अन्यथा विश्वामित्र तुम्हें शाप दे देंगे; इसलिये तुम कोई दूसरा विचार मनमें न लाओ ॥ २४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित् ।
चिन्तयामास कौरव्य किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥ २५ ॥

कुरुनन्दन ! उन कृपाशील महर्षिका वह वचन सुनकर सरस्वती सोचने लगी, 'क्या करनेसे शुभ होगा ?' ॥ २५ ॥

तस्याश्चिन्ता समुत्पन्ना वसिष्ठो मय्यतीव हि ।
कृतवान् हि दयां नित्यं तस्य कार्यं हितं मया ॥ २६ ॥

उसके मनमें यह विचार उठा कि 'वसिष्ठने मुझपर बड़ी भारी दया की है । अतः सदा मुझे इनका हित साधन करना चाहिये' ॥ २६ ॥

अथ कूले स्वके राजन् जपन्तमृषिसत्तमम् ।
जुह्वानं कौशिकं प्रेक्ष्य सरस्वत्यभ्यचिन्तयत् ॥ २७ ॥
इदमन्तरमित्येवं ततः सा सरितां वरा ।
कूलापहारमकरोत् स्वेन वेगेन सा सरित् ॥ २८ ॥

राजन् ! तदनन्तर ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्रको अपने तटपर जप और होम करते देख सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने सोचा, यही अच्छा अवसर है, फिर तो उस नदीने पूर्वतटको तोड़कर उसे अपने वेगसे बहाना आरम्भ किया ॥ २७-२८ ॥

तेन कूलापहारेण मैत्रावरुणिरौह्यत ।
उह्यमानः स तुष्टाव तदा राजन् सरस्वतीम् ॥ २९ ॥

उस बहते हुए किनारेके साथ मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठजी भी बहने लगे । राजन् ! बहते समय वसिष्ठजी सरस्वतीकी स्तुति करने लगे—॥ २९ ॥

पितामहस्य सरसः प्रवृत्तासि सरस्वति ।
व्याप्तं चेदं जगत् सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः ॥ ३० ॥

'सरस्वती ! तुम पितामह ब्रह्माजीके सरोवरसे प्रकट हुई हो, इसीलिये तुम्हारा नाम सरस्वती है । तुम्हारे उत्तम जलसे ही यह सारा जगत् व्याप्त है ॥ ३० ॥

त्वमेवाकाशगा देवि मेघेषु सृजसे पयः ।
सर्वाश्चापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहि ॥ ३१ ॥

'देवि! तुम्हीं आकाशमें जाकर मेघोंमें जलकी सृष्टि करती हो, तुम्हीं सम्पूर्ण जल हो; तुमसे ही हम ऋषिगण वेदोंका अध्ययन करते हैं ॥ ३१ ॥

पुष्टिर्द्युतिस्तथा कीर्तिः सिद्धिर्बुद्धिरुमा तथा ।
त्वमेव वाणी स्वाहा त्वं तवायत्तमिदं जगत् ॥ ३२ ॥
त्वमेव सर्वभूतेषु वससीह चतुर्विधा ।

'तुम्हीं पुष्टि, कीर्ति, द्युति, सिद्धि, बुद्धि, उमा, वाणी और स्वाहा हो । यह सारा जगत् तुम्हारे अधीन है । तुम्हीं समस्त प्राणियोंमें चार* प्रकारके रूप धारण करके निवास करती हो' ॥ ३२½ ॥

एवं सरस्वती राजन् स्तूयमाना महर्षिणा ॥ ३३ ॥
वेगेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
न्यवेदयत चाभीक्ष्णं विश्वामित्राय तं मुनिम् ॥ ३४ ॥

राजन् ! महर्षिके मुखसे इस प्रकार स्तुति सुनती हुई सरस्वतीने उन ब्रह्मर्षिको अपने वेगद्वारा विश्वामित्रके आश्रमपर पहुँचा दिया और विश्वामित्रसे बारंबार निवेदन किया कि 'वसिष्ठ मुनि उपस्थित हैं' ॥ ३३-३४ ॥

तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ।
अथान्वेषत् प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा ॥ ३५ ॥

सरस्वतीद्वारा लाये हुए वसिष्ठको देखकर विश्वामित्र कुपित हो उठे और उनके जीवनका अन्त कर देनेके लिये कोई हथियार ढूँढ़ने लगे ॥ ३५ ॥

तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्मवध्याभयान्नदी ।
अपोवाह वसिष्ठं तु प्राचीं दिशमतन्द्रिता ॥ ३६ ॥
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम् ।

उन्हें कुपित देख सरस्वती नदी ब्रह्महत्याके भयसे आलस्य छोड़ दोनोंकी आज्ञाका पालन करती हुई विश्वामित्रको धोखा देकर वसिष्ठ मुनिको पुनः पूर्व दिशाकी ओर बहा ले गयी ॥

* परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—यह चार प्रकारकी वाणी ही सरस्वतीका चतुर्विध रूप है ।

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ३७ ॥
अब्रवीद् दुःखसंक्रुद्धो विश्वामित्रो ह्यमर्षणः ।
यस्मान्मां त्वं सरिच्छ्रेष्ठे वञ्चयित्वा पुनर्गता॥ ३८ ॥
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसम्मतम् ।

मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको पुनः अपनेसे दूर बहाया गया देख अमर्षशील विश्वामित्र दुःखसे अत्यन्त कुपित हो बोले—'सरिताओंमें श्रेष्ठ कल्याणमयी सरस्वती ! तुम मुझे धोखा देकर फिर चली गयी, इसलिये अब जलकी जगह रक्त बहाओ, जो राक्षसोंके समूहको अधिक प्रिय है ॥ ३७-३८½ ॥

ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता ॥ ३९ ॥
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा ।

बुद्धिमान् विश्वामित्रके इस प्रकार शाप देनेपर सरस्वती नदी एक सालतक रक्तमिश्रित जल बहाती रही ॥ ३९½ ॥

अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा ॥ ४० ॥
सरस्वतीं तथा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः ।

तदनन्तर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सरा सरस्वतीको उस अवस्थामें देखकर अत्यन्त दुखी हो गये ॥ ४०½ ॥

एवं वसिष्ठापवाहो लोके ख्यातो जनाधिप ॥ ४१ ॥
आगच्छच्च पुनर्मार्गं स्वमेव सरितां वरा ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार वह स्थान जगत्‌में वसिष्ठापवाहके नामसे विख्यात हुआ । वसिष्ठजीको बहानेके पश्चात् सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती फिर अपने पूर्व मार्गपर ही बहने लग गयी ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

ऋषियोंके प्रयत्नसे सरस्वतीके शापकी निवृत्ति, जलकी शुद्धि तथा अरुणासङ्गममें स्नान करनेसे राक्षसों और इन्द्रका संकटमोचन

वैशम्पायन उवाच

सा शप्ता तेन क्रुद्धेन विश्वामित्रेण धीमता ।
तस्मिंस्तीर्थवरे शुभ्रे शोणितं समुपावहत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! कुपित हुए बुद्धिमान् विश्वामित्रने जब सरस्वती नदीको शाप दे दिया, तब वह नदी उस उज्ज्वल एवं श्रेष्ठ तीर्थमें रक्तकी धारा बहाने लगी ॥ १ ॥

अथाजग्मुस्ततो राजन् राक्षसास्तत्र भारत ।
तत्र ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते ॥ २ ॥

भारत ! तदनन्तर वहाँ बहुत-से राक्षस आ पहुँचे । वे सब-के-सब उस रक्तको पीते हुए वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥

तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः ।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥ ३ ॥

उस रक्तसे अत्यन्त तृप्त, सुखी और निश्चिन्त हो वे राक्षस वहाँ नाचने और हँसने लगे, मानो उन्होंने स्वर्गलोकको जीत लिया हो ॥ ३ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य ऋषयः सुतपोधनाः ।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां महीपते ॥ ४ ॥

पृथ्वीनाथ ! कुछ कालके पश्चात् बहुत-से तपोधन मुनि सरस्वतीके तटपर तीर्थयात्राके लिये पधारे ॥ ४ ॥

तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्वाप्लुत्य मुनिपुङ्गवाः ।
प्राप्य प्रीतिं परां चापि तपोलुब्धा विशारदाः ॥ ५ ॥
प्रययुर्हि ततो राजन् येन तीर्थमसृग्वहम् ।

पूर्वोक्त सभी तीर्थोंमें गोता लगाकर वे तपस्याके लोभी विज्ञ मुनिवर पूर्ण प्रसन्न हो उसी ओर गये, जिधर रक्तकी धारा बहानेवाला पूर्वोक्त तीर्थ था ॥ ५½ ॥

अथागम्य महाभागास्तत् तीर्थं दारुणं तदा ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्याः शोणितेन परिप्लुतम् ।
पीयमानं च रक्षोभिर्बहुभिर्नृपसत्तम ॥ ७ ॥

नृपश्रेष्ठ ! वहाँ आकर उन महाभाग मुनियोंने देखा कि उस तीर्थकी दारुण दशा हो गयी है, वहाँ सरस्वतीका जल रक्तसे ओतप्रोत है और बहुत-से राक्षस उसका पान कर रहे हैं ॥

तान् दृष्ट्वा राक्षसान् राजन् मुनयः संशितव्रताः ।
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥ ८ ॥

राजन् ! उन राक्षसोंको देखकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनियोंने सरस्वतीके उस तीर्थकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न किया ॥ ८ ॥

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः ।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥ ९ ॥

उन सभी महान् व्रतधारी महाभाग ऋषियोंने मिलकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीको बुलाकर पूछा—॥ ९ ॥

कारणं ब्रूहि कल्याणि किमर्थं ते ह्रदो ह्ययम् ।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा ध्यास्यामहे वयम् ॥ १० ॥

'कल्याणि ! तुम्हारा यह कुण्ड इस प्रकार रक्तसे मिश्रित क्यों हो गया ? इसका क्या कारण है ? बताओ । उसे सुनकर हमलोग कोई उपाय सोचेंगे' ॥ १० ॥

ततः सा सर्वमाचष्ट यथावृत्तं प्रवेपती ।
दुःखितामथ तां दृष्ट्वा ऊचुस्ते वै तपोधनाः ॥ ११ ॥

तब काँपती हुई सरस्वतीने सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे कह सुनाया । उसे दुखी देख वे तपोधन महर्षि उससे बोले—॥

कारणं श्रुतमस्माभिः शापश्चैव श्रुतोऽनघे ।
करिष्यन्ति तु यत् प्राप्तं सर्व एव तपोधनाः ॥ १२ ॥

'निष्पाप सरस्वती ! हमने शाप और उसका कारण सुन

लिया । ये सभी तपोधन इस विषयमें समयोचित कर्तव्यका पालन करेंगे' ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा सरिच्छ्रेष्ठामूचुस्तेऽथ परस्परम् ।
विमोचयामहे सर्वे शापादेतां सरस्वतीम् ॥ १३ ॥

सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीसे ऐसा कहकर वे आपसमें बोले—'हम सब लोग मिलकर इस सरस्वतीको शापसे छुटकारा दिलावें' ॥ १३ ॥

ते सर्वे ब्राह्मणा राजंस्तपोभिर्नियमैस्तथा ।
उपवासैश्च विविधैर्यमैः कष्टव्रतैस्तथा ॥ १४ ॥
आराध्य पशुभर्तारं महादेवं जगत्पतिम् ।
तां देवीं मोक्षयामासुः सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् ॥ १५ ॥

राजन् ! उन सभी ब्राह्मणोंने तप, नियम, उपवास, नाना प्रकारके संयम तथा कष्टसाध्य व्रतोंके द्वारा पशुपति विश्वनाथ महादेवजीकी आराधना करके सरिताओंमें श्रेष्ठ उस सरस्वती देवीको शापसे छुटकारा दिलाया ॥ १४-१५ ॥

तेषां तु सा प्रभावेण प्रकृतिस्था सरस्वती ।
प्रसन्नसलिला जज्ञे यथापूर्वं तथैव हि ॥ १६ ॥

उनके प्रभावसे सरस्वती प्रकृतिस्थ हुई, उसका जल पूर्ववत् स्वच्छ हो गया ॥ १६ ॥

निर्मुक्ता च सरिच्छ्रेष्ठा विबभौ सा यथा पुरा ।
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या मुनिभिस्तैस्तथा कृतम् ॥ १७ ॥
तानेव शरणं जग्मू राक्षसाः क्षुधितास्तथा ।

शापमुक्त हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती पहलेकी भाँति शोभा पाने लगी । उन मुनियोंके द्वारा सरस्वतीका जल वैसा शुद्ध कर दिया गया—यह देखकर वे भूखे हुए राक्षस उन्हीं महर्षियोंकी शरणमें गये ॥ १७½ ॥

कृत्वाञ्जलिं ततो राजन् राक्षसाः क्षुधयार्दिताः ॥ १८ ॥
ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् कृपायुक्तान् पुनः पुनः ।
वयं च क्षुधिताश्चैव धर्माद्धीनाश्च शाश्वतात् ॥ १९ ॥

राजन् ! तदनन्तर वे भूखसे पीड़ित हुए राक्षस उन सभी कृपालु मुनियोंसे बारंबार हाथ जोड़कर कहने लगे—'महात्माओ ! हम भूखे हैं । सनातन धर्मसे भ्रष्ट हो गये हैं ॥

न च नः कामकारोऽयं यद् वयं पापकारिणः ।
युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ॥ २० ॥
यत् पापं वर्धतेऽस्माकं ततः स्मो ब्रह्मराक्षसाः ।

'हमलोग जो पापाचार करते हैं, यह हमारा स्वेच्छाचार नहीं है । आप-जैसे महात्माओंकी हमलोगोंपर कभी कृपा नहीं हुई और हम सदा दुष्कर्म ही करते चले आये । इससे हमारे पापकी निरन्तर वृद्धि होती रहती है और हम ब्रह्मराक्षस हो गये हैं ॥ २०½ ॥

योषितां चैव पापेन योनिदोषकृतेन च ॥ २१ ॥
एवं हि वैश्यशूद्राणां क्षत्रियाणां तथैव च ।
ये ब्राह्मणान् प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ २२ ॥

'स्त्रियाँ अपने योनिदोषजनित पाप (व्यभिचार) से राक्षसी हो जाती हैं । इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें से जो लोग ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, वे भी इस जगत्में राक्षस होते हैं ॥ २१-२२ ॥

आचार्यमृत्विजं चैव गुरुं वृद्धजनं तथा ।
प्राणिनो येऽवमन्यन्ते ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ २३ ॥

'जो प्राणधारी मानव आचार्य, ऋत्विज, गुरु और वृद्ध पुरुषोंका अपमान करते हैं, वे भी यहाँ राक्षस होते हैं ॥२३॥

तत् कुरुध्वमिहास्माकं तारणं द्विजसत्तमाः ।
शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे ॥ २४ ॥

'अतः विप्रवरो ! आप यहाँ हमारा उद्धार करें, क्योंकि आपलोग सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं' ॥ २४ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा तुष्टुवुस्तां महानदीम् ।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषामूचुः प्रयतमानसाः ॥ २५ ॥

उन राक्षसोंका वचन सुनकर एकाग्रचित्त महर्षियोंने उनकी मुक्तिके लिये महानदी सरस्वतीका स्तवन किया और इस प्रकार कहा—॥ २५ ॥

क्षुतं कीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाचितं भवेत् ।
सकेशमवधूतं च रुदितोपहतं च यत् ॥ २६ ॥
श्वभिः संसृष्टमन्नं च भागोऽसौ रक्षसामिह ।
तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वानेतान् यत्नाद् विवर्जयेत्॥२७॥
राक्षसान्नमसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते ह्यन्नमीदृशम्।

'जिस अन्नपर थूक पड़ गयी हो, जिसमें कीड़े पड़े हों, जो जूठा हो, जिसमें बाल गिरा हो, जो तिरस्कारपूर्वक प्राप्त हुआ हो, जो अश्रुपातसे दूषित हो गया हो तथा जिसे कुत्तोंने छू दिया हो, वह सारा अन्न इस जगत्में राक्षसोंका भाग है । अतः विद्वान् पुरुष सदा समझ-बूझकर इन सब प्रकारके अन्नोंका प्रयत्नपूर्वक परित्याग करे । जो ऐसे अन्नको खाता है, वह मानो राक्षसोंका अन्न खाता है' ॥ २६-२७½ ॥

शोधयित्वा ततस्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः ॥ २८ ॥
मोक्षार्थं राक्षसानां च नदीं तां प्रत्यचोदयन् ।

तदनन्तर उन तपोधन महर्षियोंने उस तीर्थकी शुद्धि करके उन राक्षसोंकी मुक्तिके लिये सरस्वती नदीसे अनुरोध किया।

महर्षीणां मतं ज्ञात्वा ततः सा सरितां वरा ॥ २९ ॥
अरुणामानयामास स्वां तनूं पुरुषर्षभ ।
तस्यां ते राक्षसाः स्नात्वा तनूस्त्यक्त्वा दिवं गताः॥३०॥
अरुणायां महाराज ब्रह्मवध्यापहा हि सा ।

नरश्रेष्ठ ! महर्षियोंका यह मत जानकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती अपनी ही स्वरूपभूता अरुणाको ले आयी । महाराज ! उस अरुणामें स्नान करके वे राक्षस अपना शरीर छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये; क्योंकि वह ब्रह्महत्याका निवारण करनेवाली है ॥

एतमर्थमभिज्ञाय देवराजः शतक्रतुः ॥ ३१ ॥
तस्मिंस्तीर्थे वरे स्नात्वा विमुक्तः पाप्मना किल ।

राजन् ! कहते हैं, इस बातको जानकर देवराज इन्द्र उसी श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करके ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हुए थे ॥

जनमेजय उवाच

किमर्थं भगवान् शक्रो ब्रह्मवध्यामवाप्तवान् ॥ ३२ ॥

कथमस्मिंश्च तीर्थे वै आप्लुत्याकल्मषोऽभवत् ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! भगवान् इन्द्रको ब्रह्महत्याका पाप कैसे लगा तथा वे किस प्रकार इस तीर्थमें स्नान करके पाप मुक्त हुए थे ? ॥ ३२½ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वैतदुपाख्यानं यथावृत्तं जनेश्वर ॥ ३३ ॥
यथा बिभेद समयं नमुचेर्वासवः पुरा ।

वैशम्पायनजीने कहा—जनेश्वर ! पूर्वकालमें इन्द्रने नमुचिके साथ अपनी की हुई प्रतिज्ञाको जिस प्रकार तोड़ डाला था, वह सारी कथा जैसे घटित हुई थी, तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥ ३३½ ॥

नमुचिर्वासवाद् भीतः सूर्यरश्मिं समाविशत् ॥ ३४ ॥
तेनेन्द्रः सख्यमकरोत् समयं चेदमब्रवीत् ।
न चार्द्रेण न शुष्केण न रात्रौ नापि चाहनि ॥ ३५ ॥
वधिष्याम्यसुरश्रेष्ठ सखे सत्येन ते शपे ।

पहलेकी बात है, नमुचि इन्द्रके भयसे डरकर सूर्यकी किरणोंमें समा गया था । तब इन्द्रने उसके साथ मित्रता कर ली और यह प्रतिज्ञा की 'असुरश्रेष्ठ ! मैं न तो तुम्हें गीले हथियारसे मारूँगा न सूखेसे । न दिनमें मारूँगा न रातमें । सखे ! मैं सत्यकी सौगन्ध खाकर यह बात तुमसे कहता हूँ' ॥

एवं स कृत्वा समयं दृष्ट्वा नीहारमीश्वरः ॥ ३६ ॥
चिच्छेदास्य शिरो राजन्नपां फेनेन वासवः ।

राजन् ! इस प्रकार प्रतिज्ञा करके भी देवराज इन्द्रने चारों ओर कुहासा छाया हुआ देख पानीके फेनसे नमुचिका सिर काट लिया ॥ ३६½ ॥

तच्छिरो नमुचेश्छिन्नं पृष्ठतः शक्रमन्वियात् ॥ ३७ ॥
भो भो मित्रघ्न पापेति ब्रुवाणं शक्रमन्तिकात् ।

नमुचिका वह कटा हुआ मस्तक इन्द्रके पीछे लग गया । वह उनके पास जाकर बारंबार कहने लगा, 'ओ मित्रघाती पापात्मा इन्द्र ! तू कहाँ जाता है ?' ॥ ३७½ ॥

एवं स शिरसा तेन चोद्यमानः पुनः पुनः ॥ ३८ ॥
पितामहाय संतप्त एतमर्थं न्यवेदयत् ।

इस प्रकार उस मस्तकके द्वारा बारंबार पूर्वोक्त बात पूछी जानेपर अत्यन्त संतप्त हुए इन्द्रने ब्रह्माजीसे यह सारा समाचार निवेदन किया ॥ ३८½ ॥

तमब्रवील्लोकगुरुररुणायां यथाविधि ॥ ३९ ॥
इष्ट्वोपस्पृश देवेन्द्र तीर्थे पापभयापहे ।

तब लोकगुरु ब्रह्माने उनसे कहा—'देवेन्द्र ! अरुणा तीर्थ पाप-भयको दूर करनेवाला है । तुम वहाँ विधिपूर्वक यज्ञ करके अरुणाके जलमें स्नान करो ॥ ३९½ ॥

एषा पुण्यजला शक्र कृता मुनिभिरेव तु ॥ ४० ॥
निगूढमस्यागमनमिहासीत् पूर्वमेव तु ।
ततोऽभ्येत्यारुणां देवीं प्लावयामास वारिणा ॥ ४१ ॥

'शक्र ! महर्षियोंने इस अरुणाके जलको परम पवित्र बना दिया है । इस तीर्थमें पहले ही गुप्तरूपसे उसका आगमन हो चुका था, फिर सरस्वतीने निकट आकर अरुणादेवीको अपने जलसे आप्लावित कर दिया ॥ ४०-४१ ॥

सरस्वत्यारुणायाश्च पुण्योऽयं संगमो महान् ।
इह त्वं यज देवेन्द्र दद दानान्यनेकशः ॥ ४२ ॥
अत्राप्लुत्य सुघोरात् त्वं पातकाद् विप्रमोक्ष्यसे ।

'देवेन्द्र ! सरस्वती और अरुणाका यह संगम महान् पुण्यदायक तीर्थ है । तुम यहाँ यज्ञ करो और अनेक प्रकारके दान दो । फिर उसमें स्नान करके तुम भयानक पातकसे मुक्त हो जाओगे' ॥ ४२½ ॥

इत्युक्तः स सरस्वत्याः कुञ्जे वै जनमेजय ॥ ४३ ॥
इष्ट्वा यथावद् बलभिदरुणायामुपास्पृशत् ।
स मुक्तः पाप्मना तेन ब्रह्मवध्याकृतेन च ॥ ४४ ॥
जगाम संहृष्टमनास्त्रिदिवं त्रिदशेश्वरः ।

जनमेजय ! उनके ऐसा कहनेपर इन्द्रने सरस्वतीके कुञ्जमें विधिपूर्वक यज्ञ करके अरुणामें स्नान किया । फिर ब्रह्महत्याजनित पापसे मुक्त हो देवराज इन्द्र हर्षोत्फुल्ल हृदयसे स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ४३-४४½ ॥

शिरस्तच्चापि नमुचेस्तत्रैवाप्लुत्य भारत ।
लोकान् कामदुघान् प्राप्तमक्षयान् राजसत्तम ॥ ४५ ॥

भारत ! नृपश्रेष्ठ ! नमुचिका वह मस्तक भी उसी तीर्थमें गोता लगाकर मनोवाञ्छित फल देनेवाले अक्षय लोकोंमें चला गया ॥ ४५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तत्राप्युपस्पृश्य बलो महात्मा
दत्त्वा च दानानि पृथग्विधानि ।
अवाप्य धर्मं परमार्थकर्मा
जगाम सोमस्य महत् सुतीर्थम् ॥ ४६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! पारमार्थिक कार्य करनेवाले महात्मा बलरामजी उस तीर्थमें भी स्नान करके नाना प्रकारकी वस्तुओंका दान करके धर्मका फल पाकर सोमके महान् एवं उत्तम तीर्थमें गये ॥ ४६ ॥

यत्रायजद् राजसूयेन सोमः
साक्षात् पुरा विधिवत् पार्थिवेन्द्रः ।
अत्रिर्धीमान् विप्रमुख्यो बभूव
होता यस्मिन् क्रतुमुख्ये महात्मा ॥ ४७ ॥

जहाँ पूर्वकालमें साक्षात् राजाधिराज सोमने विधिपूर्वक राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था । उस श्रेष्ठ यज्ञमें बुद्धिमान् विप्रवर महात्मा अत्रिने होताका कार्य किया था ॥ ४७ ॥

यस्यान्तेऽभूत् सुमहद् दानवानां
दैतेयानां राक्षसानां च देवैः ।
यस्मिन् युद्धं तारकाख्यं सुतीव्रं
यत्र स्कन्दस्तारकाख्यं जघान ॥ ४८ ॥

उस यज्ञके अन्तमें देवताओंके साथ दानवों, दैत्यों तथा राक्षसोंका महान् एवं भयंकर तारकामय संग्राम हुआ था, जिसमें स्कन्दने तारकासुरका वध किया था ॥ ४८ ॥

सैनापत्यं लब्धवान् देवतानां
महासेनो यत्र दैत्यान्तकर्ता ।
साक्षाच्चैवं न्यवसत् कार्तिकेयः
सदा कुमारो यत्र स प्लक्षराजः ॥ ४९ ॥

उसीमें दैत्यविनाशक महासेन कार्तिकेयने देवताओंका सेनापतित्व ग्रहण किया था । जहाँ वह पाकड़का श्रेष्ठ वृक्ष है, वहाँ साक्षात् कुमार कार्तिकेय इस तीर्थमें सदा निवास करते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यान विषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कुमार कार्तिकेयका प्राकट्य और उनके अभिषेककी तैयारी

जनमेजय उवाच

सरस्वत्याः प्रभावोऽयमुक्तस्ते द्विजसत्तम ।
कुमारस्याभिषेकं तु ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! आपने सरस्वतीका यह प्रभाव बताया है । ब्रह्मन् ! अब कुमार कार्तिकेयके अभिषेकका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

यस्मिन् देशे च काले च यथा च वदतां वर ।
यैश्चाभिषिक्तो भगवान् विधिना येन च प्रभुः ॥ २ ॥

वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! किस देश और कालमें किन लोगोंने किस विधिसे किस प्रकार शक्तिशाली भगवान् स्कन्दका अभिषेक किया ? ॥ २ ॥

स्कन्दो यथा च दैत्यानामकरोत् कदनं महत् ।
तथा मे सर्वमाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

स्कन्दने जिस प्रकार दैत्योंका महान् संहार किया हो, वह सब उसी तरह मुझे बताइये; क्योंकि मेरे मनमें इसे सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

कुरुवंशस्य सदृशं कौतूहलमिदं तव ।
हर्षमुत्पादयत्येव वचो मे जनमेजय ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय ! तुम्हारा यह कौतूहल कुरुवंशके योग्य ही है । तुम्हारा वचन मेरे मनमें बड़ा भारी हर्ष उत्पन्न कर रहा है ॥ ४ ॥

हन्त ते कथयिष्यामि शृण्वानस्य नराधिप ।
अभिषेकं कुमारस्य प्रभावं च महात्मनः ॥ ५ ॥

नरेश्वर ! तुम ध्यान देकर सुन रहे हो, इसलिये मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक महात्मा कुमार कार्तिकेयके अभिषेक और प्रभावका वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥

तेजो माहेश्वरं स्कन्नमग्नौ प्रपतितं पुरा ।
तत् सर्वभक्षो भगवान् नाशकद् दग्धुमक्षयम् ॥ ६ ॥

पूर्वकालकी बात है, भगवान् शिवका तेजोमय वीर्य अग्निमें गिर पड़ा । भगवान् अग्नि सर्वभक्षी हैं तो भी उस अक्षय वीर्यको वे भस्म न कर सके ॥ ६ ॥

तेनासीदतितेजस्वी दीप्तिमान् हव्यवाहनः ।
न चैव धारयामास गर्भं तेजोमयं तदा ॥ ७ ॥
स गङ्गामभिसंगम्य नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभुः ।
गर्भमाहितवान् दिव्यं भास्करोपमतेजसम् ॥ ८ ॥

उस वीर्यके कारण अग्निदेव दीप्तिमान्, तेजस्वी तथा शक्तिसम्पन्न होकर भी कष्टका अनुभव करने लगे । वे उस समय उस तेजोमय गर्भको जब धारण न कर सके, तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन भगवान् अग्निदेवने सूर्यके समान तेजस्वी उस दिव्य गर्भको गङ्गाजीमें डाल दिया ॥ ७-८ ॥

अथ गङ्गापि तं गर्भमसहन्ती विधारणे ।
उत्ससर्ज गिरौ रम्ये हिमवत्यमरार्चिते ॥ ९ ॥

तदनन्तर गङ्गाने भी उस गर्भको धारण करनेमें असमर्थ होकर उसे देवपूजित सुरम्य हिमालय पर्वतके शिखरपर सरकण्डोंमें छोड़ दिया ॥ ९॥

स तत्र ववृधे लोकानावृत्य ज्वलनात्मजः ।
ददृशुर्ज्वलनाकारं तं गर्भमथ कृत्तिकाः ॥ १० ॥
शरस्तम्बे महात्मानमनलात्मजमीश्वरम् ।
ममायमिति ताः सर्वाः पुत्रार्थिन्योऽभिचुक्रुशुः ॥ ११ ॥

अग्निका वह पुत्र अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंको व्याप्त करके वहाँ बढ़ने लगा । सरकण्डोंके समूहमें अग्निके समान प्रकाशित होते हुए उस सर्वसमर्थ महात्मा अग्निपुत्रको, जो नवजात शिशुके रूपमें उपस्थित था, छहों कृत्तिकाओंने देखा । उसे देखते ही पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाली वे सभी कृत्तिकाएँ पुकार-पुकारकर कहने लगीं 'यह मेरा पुत्र है' ॥ १०-११ ॥

तासां विदित्वा भावं तं मातॄणां भगवान् प्रभुः ।
प्रस्नुतानां पयः षड्भिर्वदनैरपिबत् तदा ॥ १२ ॥

उन माताओंके उस वात्सल्यभावको जानकर प्रभावशाली भगवान् स्कन्द छः मुख प्रकट करके उनके स्तनोंसे झरते हुए दूधको पीने लगे ॥ १२ ॥

तं प्रभावं समालक्ष्य तस्य बालस्य कृत्तिकाः ।
परं विस्मयमापन्ना देव्यो दिव्यवपुर्धराः ॥ १३ ॥

वे दिव्य रूपधारिणी छहों कृत्तिका देवियाँ उस बालकका वह प्रभाव देखकर अत्यन्त आश्चर्यसे चकित हो उठीं ॥

यत्रोत्सृष्टः स भगवान् गङ्गया गिरिमूर्धनि ।
स शैलः काञ्चनः सर्वः सम्बभौ कुरुसत्तम ॥ १४ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! गङ्गाजीने पर्वतके जिस शिखरपर स्कन्दको छोड़ा था, वह सारा-का-सारा सुवर्णमय हो गया ॥ १४ ॥

वर्धता चैव गर्भेण पृथिवी तेन रञ्जिता ।
अतश्च सर्वे संवृत्ता गिरयः काञ्चनाकराः ॥ १५ ॥

उस बढ़ते हुए शिशुने वहाँकी भूमिको रंजित (प्रकाशित)

कर दिया था । इसलिये वहाँके सभी पर्वत सोनेकी खान बन गये ॥ १५ ॥

कुमारः सुमहावीर्यः कार्तिकेय इति स्मृतः ।
गाङ्गेयः पूर्वमभवन्महायोगबलान्वितः ॥ १६ ॥

वह महान् शक्तिशाली कुमार कार्तिकेयके नामसे विख्यात हुआ । वह महान् योगबलसे सम्पन्न बालक पहले गङ्गाजीका पुत्र था ॥ १६ ॥

शमेन तपसा चैव वीर्येण च समन्वितः ।
ववृधेऽतीव राजेन्द्र चन्द्रवत् प्रियदर्शनः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! शम, तपस्या और पराक्रमसे युक्त वह कुमार अत्यन्त वेगसे बढ़ने लगा । वह देखनेमें चन्द्रमाके समान प्रिय लगता था ॥ १७ ॥

स तस्मिन् काञ्चने दिव्ये शरस्तम्बे श्रिया वृतः ।
स्तूयमानः सदा शेते गन्धर्वैर्मुनिभिस्तथा ॥ १८ ॥

उस दिव्य सुवर्णमय प्रदेशमें सरकण्डोंके समूहपर स्थित हुआ वह कान्तिमान् बालक निरन्तर गन्धर्वों एवं मुनियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ सो रहा था ॥ १८ ॥

तथैतमन्वनृत्यन्त देवकन्याः सहस्रशः ।
दिव्यवादित्रनृत्यज्ञाः स्तुवन्त्यश्चारुदर्शनाः ॥ १९ ॥

तदनन्तर दिव्य वाद्य और नृत्यकी कला जाननेवाली सहस्रों सुन्दरी देवकन्याएँ उस कुमारकी स्तुति करती हुई उसके समीप नृत्य करने लगीं ॥ १९ ॥

अन्वास्ते च नदी देवं गङ्गा वै सरितां वरा ।
दधार पृथिवी चैनं बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २० ॥

सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा भी उस दिव्य बालकके पास आ बैठीं । पृथ्वीदेवीने उत्तम रूप धारण करके उसे अपने अङ्कमें धारण किया ॥ २० ॥

जातकर्मादिकास्तत्र क्रियाश्चक्रे बृहस्पतिः ।
वेदश्चैनं चतुर्मूर्तिरुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥ २१ ॥

बृहस्पतिजीने वहाँ उस बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये और चार स्वरूपोंमें अभिव्यक्त होनेवाला वेद हाथ जोड़कर उसकी सेवामें उपस्थित हुआ ॥ २१ ॥

धनुर्वेदश्चतुष्पादः शस्त्रग्रामः ससंग्रहः ।
तत्रैनं समुपातिष्ठत् साक्षाद् वाणी च केवला ॥ २२ ॥

चारों चरणोंसे युक्त धनुर्वेद, संग्रहसहित शस्त्र-समूह तथा केवल साक्षात् वाणी—ये सभी कुमारकी सेवामें उपस्थित हुए॥

स ददर्श महावीर्यं देवदेवमुमापतिम् ।
शैलपुत्र्या समासीनं भूतसंघशतैर्वृतम् ॥ २३ ॥

कुमारने देखा कि सैकड़ों भूतसङ्घोंसे घिरे हुए महापराक्रमी देवाधिदेव उमापति गिरिराजनन्दिनी उमाके साथ पास ही बैठे हुए हैं ॥ २३ ॥

निकाया भूतसंघानां परमाद्भुतदर्शनाः ।
विकृता विकृताकारा विकृताभरणध्वजाः ॥ २४ ॥

उनके साथ आये हुए भूतसङ्घोंके शरीर देखनेमें बड़े ही अद्भुत, विकृत और विकराल थे । उनके आभूषण और ध्वज भी बड़े विकट थे ॥ २४ ॥

व्याघ्रसिंहर्क्षवदना बिडालमकराननाः ।
वृषदंशमुखाश्चान्ये गजोष्ट्रवदनास्तथा ॥ २५ ॥
उलूकवदनाः केचिद् गृध्रगोमायुदर्शनाः ।
क्रौञ्चपारावतनिभैर्वदनै राङ्कवैरपि ॥ २६ ॥

उनमेंसे किन्हींके मुँह बाघ और सिंहके समान थे तो किन्हींके रीछ, बिल्ली और मगरके समान । कितनोंके मुख वन-बिलावोंके तुल्य थे । कितने ही हाथी, ऊँट और उल्लूके समान मुखवाले थे । बहुत-से गीधों और गीदड़ोंके समान दिखायी देते थे । किन्हीं-किन्हींके मुख क्रौञ्च पक्षी, कबूतर और रङ्कु मृगके समान थे ॥ २५-२६ ॥

श्वाविच्छल्यकगोधानामजैडकगवां तथा ।
सदृशानि वपूंष्यन्ते तत्र तत्र व्यधारयन् ॥ २७ ॥

बहुतेरे भूत जहाँ-तहाँ हिंसक जन्तु, साही, गोह, बकरी, भेड़ और गायोंके समान शरीर धारण करते थे ॥ २७ ॥

केचिच्छैलाम्बुदप्रख्याश्चक्रोद्यतगदायुधाः ।
केचिदञ्जनपुञ्जाभाः केचिच्छ्वेताचलप्रभाः ॥ २८ ॥

कितने ही मेघों और पर्वतोंके समान जान पड़ते थे । उन्होंने अपने हाथोंमें चक्र और गदा आदि आयुध ले रक्खे थे । कोई अंजन-पुञ्जके समान काले और कोई श्वेत गिरिके समान गौर कान्तिसे सुशोभित होते थे ॥ २८ ॥

सप्त मातृगणाश्चैव समाजग्मुर्विशाम्पते ।
साध्या विश्वेऽथ मरुतो वसवः पितरस्तथा ॥ २९ ॥
रुद्रादित्यास्तथा सिद्धा भुजगा दानवाः खगाः ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सपुत्रः सह विष्णुना ॥ ३० ॥
शक्रस्तथाभ्ययाद् द्रष्टुं कुमारवरमच्युतम् ।

प्रजानाथ ! वहाँ सात मातृकाएँ[1] आ गयी थीं । साध्य, विश्व, मरुद्गण, वसुगण, पितर, रुद्र, आदित्य, सिद्ध, भुजङ्ग, दानव, पक्षी, पुत्रसहित स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, श्रीविष्णु तथा इन्द्र अपने नियमोंसे च्युत न होनेवाले उस श्रेष्ठ कुमारको देखनेके लिये पधारे थे ॥ २९-३०½ ॥

नारदप्रमुखाश्चापि देवगन्धर्वसत्तमाः ॥ ३१ ॥
देवर्षयश्च सिद्धाश्च बृहस्पतिपुरोगमाः ।
पितरो जगतः श्रेष्ठा देवानामपि देवताः ॥ ३२ ॥
तेऽपि तत्र समाजग्मुर्यामा धामाश्च सर्वशः ।

देवताओं और गन्धर्वोंमें श्रेष्ठ नारद आदि देवर्षि, बृहस्पति आदि सिद्ध, सम्पूर्ण जगत्से श्रेष्ठ तथा देवताओंके भी देवता पितृ-गण, सम्पूर्ण यामगण और धामगण भी वहाँ आये थे ॥ ३१-३२½ ॥

स तु बालोऽपि बलवान् महायोगबलान्वितः ॥३३॥
अभ्याजगाम देवेशं शूलहस्तं पिनाकिनम् ।

बालक होनेपर भी बलशाली एवं महान् योगबलसे सम्पन्न कुमार त्रिशूल और पिनाक धारण करनेवाले देवेश्वर भगवान् शिवकी ओर चले ॥ ३३½ ॥

तमाव्रजन्तमालक्ष्य शिवस्यासीन्मनोगतम् ॥ ३४ ॥
युगपच्छैलपुत्र्याश्च गङ्गायाः पावकस्य च ।

---

१. ब्राह्मी, माहेश्वरी, वैष्णवी, कौमारी, इन्द्राणी, वाराही तथा चामुण्डा—ये सात मातृकाएँ हैं ।

कं नु पूर्वमयं बालो गौरवादभ्युपैष्यति ॥ ३५ ॥
अपि मामिति सर्वेषां तेषामासीन्मनोगतम् ।

उन्हें आते देख एक ही समय भगवान् शङ्कर, गिरिराजनन्दिनी उमा, गङ्गा और अग्निदेवके मनमें यह संकल्प उठा कि देखें यह बालक पिता-माताका गौरव प्रदान करनेके लिये पहले किसके पास जाता है ? क्या यह मेरे पास आयेगा ? यह प्रश्न उन सबके मनमें उठा ॥ ३४-३५½ ॥

तेषामेतमभिप्रायं चतुर्णामुपलक्ष्य सः ॥ ३६ ॥
युगपद् योगमास्थाय ससर्ज विविधास्तनूः ।

तब उन सबके अभिप्रायको लक्ष्य करके कुमारने एक ही साथ योगबलका आश्रय ले अपने अनेक शरीर बना लिये॥

ततोऽभवच्चतुर्मूर्तिः क्षणेन भगवान् प्रभुः ॥ ३७ ॥
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः ।

तदनन्तर प्रभावशाली भगवान् स्कन्द क्षणभरमें चार रूपोंमें प्रकट हो गये । पीछे जो उनकी मूर्तियाँ प्रकट हुईं, उनका नाम क्रमशः शाख, विशाख और नैगमेय हुआ ॥

एवं स कृत्वा ह्यात्मानं चतुर्धा भगवान् प्रभुः ॥ ३८ ॥
यतो रुद्रस्ततः स्कन्दो जगामाद्भुतदर्शनः ।
विशाखस्तु ययौ येन देवी गिरिवरात्मजा ॥ ३९ ॥

इस प्रकार अपने आपको चार स्वरूपोंमें प्रकट करके अद्भुत दिखायी देनेवाले प्रभावशाली भगवान् स्कन्द जहाँ रुद्र थे, उधर ही गये । विशाख उस ओर चल दिये, जिस ओर गिरिराजनन्दिनी उमा देवी बैठी थीं॥ ३८-३९ ॥

शाखो ययौ स भगवान् वायुमूर्तिर्विभावसुम् ।
नैगमेयोऽगमद् गङ्गां कुमारः पावकप्रभः ॥ ४० ॥

वायुमूर्ति भगवान् शाख अग्निके पास और अग्नितुल्य तेजस्वी नैगमेय गङ्गाजीके निकट गये ॥ ४० ॥

सर्वे भासुरदेहास्ते चत्वारः समरूपिणः ।
तान् समभ्ययुरव्यग्रास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

उन चारोंके रूप एक समान थे । उन सबके शरीर तेजसे उद्भासित हो रहे थे । वे चारों कुमार उन चारोंके पास एक साथ जा पहुँचे । वह एक अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥४१॥

हाहाकारो महानासीद् देवदानवरक्षसाम् ।
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥४२ ॥

वह महान् आश्चर्यमय, अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी घटना देखकर देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ४२ ॥

ततो रुद्रश्च देवी च पावकश्च पितामहम् ।
गङ्गया सहिताः सर्वे प्रणिपेतुर्जगत्पतिम् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर भगवान् रुद्र, देवी पार्वती, अग्निदेव तथा गङ्गाजी—इन सबने एक साथ लोकनाथ ब्रह्माजीको प्रणाम किया॥

प्रणिपत्य ततस्ते तु विधिवद् राजपुङ्गव ।
इदमूचुर्वचो राजन् कार्तिकेयप्रियेप्सया ॥ ४४ ॥

राजन् ! नृपश्रेष्ठ ! विधिपूर्वक प्रणाम करके वे सब कार्तिकेयका प्रिय करनेकी इच्छासे यह वचन बोले—॥ ४४ ॥

अस्य बालस्य भगवन्नाधिपत्यं यथेप्सितम् ।
अस्मत्प्रियार्थं देवेश सदृशं दातुमर्हसि ॥ ४५ ॥

'देवेश्वर ! भगवन् ! आप हमलोगोंका प्रिय करनेके लिये इस बालकको यथायोग्य मनकी इच्छाके अनुरूप कोई आधिपत्य प्रदान कीजिये' ॥ ४५ ॥

ततः स भगवान् धीमान् सर्वलोकपितामहः ।
मनसा चिन्तयामास किमयं लभतामिति ॥ ४६ ॥

तदनन्तर सर्वलोकपितामह बुद्धिमान् भगवान् ब्रह्माने मन-ही-मन चिन्तन किया कि 'यह बालक कौन-सा आधिपत्य ग्रहण करे' ॥ ४६ ॥

ऐश्वर्याणि च सर्वाणि देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
भूतयक्षविहङ्गानां पन्नगानां च सर्वशः ॥ ४७ ॥
पूर्वमेवादिदेशासौ निकायेषु महात्मनाम् ।
समर्थं च तमैश्वर्ये महामतिरमन्यत ॥ ४८ ॥

महामति ब्रह्माने जगत्के भिन्न-भिन्न पदार्थोंके ऊपर देवता, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, भूत, नाग और पक्षियोंका आधिपत्य पहलेसे ही निर्धारित कर रक्खा था । साथ ही वे कुमारको भी आधिपत्य करनेमें समर्थ मानते थे ॥ ४७-४८ ॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा देवानां श्रेयसि स्थितः ।
सैनापत्यं ददौ तस्मै सर्वभूतेषु भारत ॥ ४९ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर देवगणोंके मङ्गल सम्पादनमें तत्पर हुए ब्रह्माने दो घड़ी तक चिन्तन करनेके पश्चात् सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ कार्तिकेयको सम्पूर्ण देवताओंका सेनापति पद प्रदान किया ॥ ४९ ॥

सर्वदेवनिकायानां ये राजानः परिश्रुताः ।
तान् सर्वान् व्यादिदेशास्मै सर्वभूतपितामहः ॥ ५० ॥

जो सम्पूर्ण देवसमूहोंके राजारूपमें विख्यात थे, उन सबको सर्वभूतपितामह ब्रह्माने कुमारके अधीन रहनेका आदेश दिया ॥ ५० ॥

ततः कुमारमादाय देवा ब्रह्मपुरोगमाः ।
अभिषेकार्थमाजग्मुः शैलेन्द्रं सहितास्ततः ॥ ५१ ॥
पुण्यां हैमवतीं देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् ।
समन्तपञ्चके या वै त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ५२ ॥

तब ब्रह्मा आदि देवता अभिषेकके लिये कुमारको लेकर एक साथ गिरिराज हिमालयपर वहाँसे निकली हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ पुण्यसलिला सरस्वती देवीके तटपर गये, जो समन्तपञ्चक तीर्थमें प्रवाहित होकर तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥

तत्र तीरे सरस्वत्याः पुण्ये सर्वगुणान्विते ।
निषेदुर्देवगन्धर्वाः सर्वे सम्पूर्णमानसाः ॥ ५३ ॥

वहाँ वे सभी देवता और गन्धर्व पूर्ण मनोरथ हो सरस्वतीके सर्वगुणसम्पन्न पावन तटपर विराजमान हुए ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने कुमाराभिषेकोपक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानके प्रसङ्गमें कुमारके अभिषेककी तैयारीविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

स्कन्दका अभिषेक और उनके महापार्षदोंके नाम, रूप आदिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ततोऽभिषेकसम्भारान् सर्वान् सम्भृत्य शास्त्रतः।
बृहस्पतिः समिद्धेऽग्नौ जुहावाग्निं यथाविधि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर बृहस्पतिजीने सम्पूर्ण अभिषेकसामग्रीका संग्रह करके शास्त्रीय पद्धतिसे प्रज्वलित की हुई अग्निमें विधिपूर्वक होम किया ॥ १ ॥

ततो हिमवता दत्ते मणिप्रवरशोभिते।
दिव्यरत्नाचिते पुण्ये निषण्णं परमासने ॥ २ ॥
सर्वमङ्गलसम्भारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।
आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् हिमवान्‌के दिये हुए उत्तम मणियोंसे सुशोभित तथा दिव्य रत्नोंसे जटित पवित्र सिंहासनपर कुमार कार्तिकेय विराजमान हुए। उस समय उनके पास सम्पूर्ण माङ्गलिक उपकरणोंके साथ विधि एवं मन्त्रोच्चारणपूर्वक अभिषेक-द्रव्य लेकर समस्त देवता वहाँ पधारे ॥ २-३ ॥

इन्द्राविष्णू महावीर्यौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा।
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥ ४ ॥
पूष्णा भगेनार्यम्णा च अंशेन च विवस्वता।
रुद्रश्च सहितो धीमान् मित्रेण वरुणेन च ॥ ५ ॥
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः।

महापराक्रमी इन्द्र और विष्णु, सूर्य और चन्द्रमा, धाता और विधाता, वायु और अग्नि, पूषा, भग, अर्यमा, अंश, विवस्वान्, मित्र और वरुणके साथ बुद्धिमान् रुद्रदेव, एकादश रुद्रगण, आठ वसु, बारह आदित्य और दोनों अश्विनीकुमार—ये सब-के-सब प्रभावशाली कुमार कार्तिकेयको घेरकर खड़े हुए ॥ ४-५½ ॥

विश्वेदेवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥ ६ ॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः।
देवर्षिभिरसंख्यातैस्तथा ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥ ७ ॥
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः ।
भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च यतिभिश्च महात्मभिः ॥ ८ ॥
सर्पैर्विद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धैस्तथा वृतः।

विश्वेदेव, मरुद्गण, साध्यगण, पितृगण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, नाग, असंख्य देवर्षि, ब्रह्मर्षि, वनवासी मुनि, वालखिल्य, वायु पीकर रहनेवाले ऋषि, सूर्यकी किरणोंका पान करनेवाले मुनि, भृगु और अङ्गिराके वंशमें उत्पन्न महर्षि, महात्मा यतिगण, सर्प, विद्याधर तथा पुण्यात्मा योगसिद्ध मुनि भी कार्तिकेयको घेरकर खड़े हुए ॥ ६–८½ ॥

पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥ ९ ॥
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च।
क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ॥ १० ॥
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च विशाम्पते।
मूर्तिमत्यश्च सरितो वेदाश्चैव सनातनाः ॥ ११ ॥
समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च।
पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च जनाधिप ॥ १२ ॥
अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती।
उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥ १३ ॥
राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम्।
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥ १४ ॥
ऐरावतः सानुचरः कलाः काष्ठास्तथैव च।
मासार्धमासा ऋतवस्तथा रात्र्यहनी नृप ॥ १५ ॥
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वासुकिः।
अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥ १६ ॥
धर्मश्च भगवान् देवः समाजग्मुर्हि सङ्गताः।
कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥ १७ ॥

प्रजानाथ ! ब्रह्माजी, पुलस्त्य, महातपस्वी पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, वरुण, मनु, दक्ष, ऋतु, ग्रह, नक्षत्र, मूर्तिमती सरिताएँ, मूर्तिमान् सनातन वेद, समुद्र, सरोवर, नाना प्रकारके तीर्थ, पृथिवी, द्युलोक, दिशा, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती, उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू, राका, धिषणा, देवताओंकी अन्यान्य पत्नियाँ, हिमवान्, विन्ध्य, अनेक शिखरोंसे सुशोभित मेरुगिरि, अनुचरोंसहित ऐरावत, कला, काष्ठा, मास, पक्ष, ऋतु, रात्रि, दिन, अश्वोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, नागराज वासुकि, अरुण, गरुड, ओषधियोंसहित वृक्ष, भगवान् धर्मदेव, काल, यम, मृत्यु तथा यमके अनुचर—ये सब-के-सब वहाँ एक साथ पधारे थे ॥ ९–१७ ॥

बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः।
ते कुमाराभिषेकार्थं समाजग्मुस्ततस्ततः ॥ १८ ॥

संख्यामें अधिक होनेके कारण जिनके नाम यहाँ नहीं बताये गये हैं, वे सभी नाना प्रकारके देवता कुमार कार्तिकेयका अभिषेक करनेके लिये इधर-उधरसे वहाँ आ पहुँचे थे ॥

जगृहुस्ते तदा राजन् सर्व एव दिवौकसः।
आभिषेचनिकं भाण्डं मङ्गलानि च सर्वशः ॥ १९ ॥

राजन् ! उस समय उन सभी देवताओंने अभिषेकके पात्र और सब प्रकारके माङ्गलिक द्रव्य हाथोंमें ले रक्खे थे॥

दिव्यसम्भारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्नृप।
सरस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव तु ॥ २० ॥
अभ्यषिञ्चन् कुमारं वै सम्प्रहृष्टा दिवौकसः।
सेनापतिं महात्मानमसुराणां भयंकरम् ॥ २१ ॥

नरेश्वर! हर्षसे उत्फुल्ल देवता पवित्र एवं दिव्य जलवाली सातों सरस्वती नदियोंके जलसे भरे हुए, दिव्य सामग्रियोंसे सम्पन्न, सुवर्णमय कलशोंद्वारा असुर-भयंकर महामनस्वी कुमार कार्तिकेयका सेनापतिके पदपर अभिषेक करने लगे ॥

पुरा यथा महाराज वरुणं वै जलेश्वरम् ।
तथाभ्यषिञ्चद् भगवान् सर्वलोकपितामहः ॥ २२ ॥
कश्यपश्च महातेजा ये चान्ये लोकविश्रुताः ।

महाराज ! जैसे पूर्वकालमें जलके स्वामी वरुणका अभिषेक किया गया था, उसी प्रकार सर्वलोकपितामह भगवान् ब्रह्मा, महातेजस्वी कश्यप तथा दूसरे विश्वविख्यात महर्षियोंने कार्तिकेयका अभिषेक किया ॥ २२½ ॥

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो बलिनो वातरंहसः ॥ २३ ॥
कामवीर्यधरान् सिद्धान् महापारिषदान् प्रभुः ।
नन्दिसेनं लोहिताक्षं घण्टाकर्णं च सम्मतम् ॥ २४ ॥
चतुर्थमस्यानुचरं ख्यातं कुमुदमालिनम् ।

उस समय भगवान् ब्रह्माने संतुष्ट होकर कार्तिकेयको वायुके समान वेगशाली, इच्छानुसार शक्तिधारी, बलवान् और सिद्ध चार महान् अनुचर प्रदान किये, जिनमें पहला नन्दिसेन, दूसरा लोहिताक्ष, तीसरा परम प्रिय घंटाकर्ण और उनका चौथा अनुचर कुमुदमालीके नामसे विख्यात था ॥ २३-२४½ ॥

तत्र स्थाणुर्महातेजा महापारिषदं प्रभुः ॥ २५ ॥
मायाशतधरं कामं कामवीर्यं बलान्वितम् ।
ददौ स्कन्दाय राजेन्द्र सुरारिविनिबर्हणम् ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! फिर वहाँ महातेजस्वी भगवान् शङ्करने स्कन्दको एक महान् असुर समर्पित किया, जो सैकड़ों मायाओंको धारण करनेवाला, इच्छानुसार बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ था ॥ २५-२६ ॥

स हि देवासुरे युद्धे दैत्यानां भीमकर्मणाम् ।
जघान दोर्भ्यां संक्रुद्धः प्रयुतानि चतुर्दश ॥ २७ ॥

उसने देवासुरसंग्राममें अत्यन्त कुपित होकर भयानक कर्म करनेवाले चौदह प्रयुत[1] दैत्योंका केवल अपनी दोनों भुजाओंसे वध कर डाला था ॥ २७ ॥

तथा देवा ददुस्तस्मै सेनां नैर्ऋतसंकुलाम् ।
देवशत्रुक्षयकरीमजय्यां विष्णुरूपिणीम् ॥ २८ ॥

इसी प्रकार देवताओंने उन्हें देव-शत्रुओंका विनाश करनेवाली, अजेय एवं विष्णुरूपिणी सेना प्रदान की, जो नैर्ऋतोंसे भरी हुई थी ॥ २८ ॥

जयशब्दं तथा चक्रुर्देवाः सर्वे सवासवाः ।
गन्धर्वा यक्षरक्षांसि मुनयः पितरस्तथा ॥ २९ ॥

उस समय इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, मुनियों तथा पितरोंने जय-जयकार किया ॥ २९ ॥

ततः प्रादादनुचरौ यमः कालोपमावुभौ ।
उन्माथश्च प्रमाथश्च महावीर्यौ महाद्युती ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् यमराजने उन्हें दो अनुचर प्रदान किये, जिनके नाम थे उन्माथ और प्रमाथ । वे दोनों कालके समान महापराक्रमी और महातेजस्वी थे ॥ ३० ॥

सुभ्राजो भास्वरश्चैव यौ तौ सूर्यानुयायिनौ ।
तौ सूर्यः कार्तिकेयाय ददौ प्रीतः प्रतापवान् ॥ ३१ ॥

सुभ्राज और भास्वर—जो सूर्यके अनुचर थे, उन्हें प्रतापी सूर्यने प्रसन्न होकर कार्तिकेयकी सेवामें दे दिया ॥ ३१ ॥

कैलासशृङ्गसंकाशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ ।
सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सुमणिमेव च ॥ ३२ ॥

चन्द्रमाने भी कैलास-शिखरके समान श्वेतवर्णवाले तथा श्वेत माला और श्वेत चन्दन धारण करनेवाले दो अनुचर प्रदान किये, जिनके नाम थे मणि और सुमणि ॥ ३२ ॥

ज्वालाजिह्वं तथा ज्योतिरात्मजाय हुताशनः ।
ददावनुचरौ शूरौ परसैन्यप्रमाथिनौ ॥ ३३ ॥

अग्निदेवने भी अपने पुत्र स्कन्दको ज्वालाजिह्व तथा ज्योति नामक दो शूर सेवक प्रदान किये, जो शत्रुसेनाको मथ डालनेवाले थे ॥ ३३ ॥

परिघं च वटं चैव भीमं च सुमहाबलम् ।
दहतिं दहनं चैव प्रचण्डौ वीर्यसम्मतौ ॥ ३४ ॥
अंशोऽप्यनुचरान् पञ्च ददौ स्कन्दाय धीमते ।

अंशने भी बुद्धिमान् स्कन्दको पाँच अनुचर प्रदान किये, जिनके नाम इस प्रकार हैं—परिघ, वट, महाबली भीम तथा दहति और दहन । इनमेंसे दहति और दहन बड़े प्रचण्ड तथा बल-पराक्रमकी दृष्टिसे सम्मानित थे ॥ ३४½ ॥

उत्क्रोशं पञ्चकं चैव वज्रदण्डधरावुभौ ॥ ३५ ॥
ददावनलपुत्राय वासवः परवीरहा ।
तौ हि शत्रून् महेन्द्रस्य जघ्नतुः समरे बहून् ॥ ३६ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रने अग्निकुमार स्कन्दको उत्क्रोश और पञ्चक नामक दो अनुचर प्रदान किये । वे दोनों क्रमशः वज्र और दण्ड धारण करनेवाले थे । उन दोनोंने समराङ्गणमें इन्द्रके बहुत-से शत्रुओंका संहार कर डाला था ॥

चक्रं विक्रमकं चैव संक्रमं च महाबलम् ।
स्कन्दाय त्रीननुचरान् ददौ विष्णुर्महायशाः ॥ ३७ ॥

महायशस्वी भगवान् विष्णुने स्कन्दको चक्र, विक्रम और महाबली संक्रम—ये तीन अनुचर दिये ॥ ३७ ॥

वर्धनं नन्दनं चैव सर्वविद्याविशारदौ ।
स्कन्दाय ददतुः प्रीतावश्विनौ भिषजां वरौ ॥ ३८ ॥

सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण चिकित्सकचूड़ामणि अश्विनीकुमारोंने प्रसन्न होकर स्कन्दको वर्धन और नन्दन नामक दो सेवक दिये ॥ ३८ ॥

कुन्दं च कुसुमं चैव कुमुदं च महायशाः ।
डम्बराडम्बरौ चैव ददौ धाता महात्मने ॥ ३९ ॥

महायशस्वी धाताने महात्मा स्कन्दको कुन्द, कुसुम, कुमुद, डम्बर और आडम्बर—ये पाँच सेवक प्रदान किये ॥

चक्रानुचक्रौ बलिनौ मेघचक्रौ बलोत्कटौ ।
ददौ त्वष्टा महामायौ स्कन्दायानुचरावुभौ ॥ ४० ॥

प्रजापति त्वष्टाने बलवान्, बलोन्मत्त, महामायावी और मेघचक्रधारी चक्र और अनुचक्र नामक दो अनुचर स्कन्दकी सेवामें उपस्थित किये ॥ ४० ॥

सुव्रतं सत्यसंधं च ददौ मित्रो महात्मने ।

१. एक प्रयुत दस लाखके बराबर होता है ।

कुमाराय महात्मानौ तपोविद्याधरौ प्रभुः ॥ ४१ ॥
सुदर्शनीयौ वरदौ त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ।

भगवान् मित्रने महात्मा कुमारको सुव्रत और सत्यसंध नामक दो सेवक प्रदान किये। वे दोनों ही तप और विद्या धारण करनेवाले तथा महामनस्वी थे। इतना ही नहीं, वे देखनेमें बड़े ही सुन्दर, वर देनेमें समर्थ तथा तीनों लोकोंमें विख्यात थे ॥ ४१½ ॥

सुव्रतं च महात्मानं शुभकर्माणमेव च ॥ ४२ ॥
कार्तिकेयाय सम्प्रादाद् विधाता लोकविश्रुतौ ।

विधाताने कार्तिकेयको महामना सुव्रत और सुकर्मा—ये दो लोक-विख्यात सेवक प्रदान किये ॥ ४२½ ॥

पाणीतकं कालिकं च महामायाविनावुभौ ॥ ४३ ॥
पूषा च पार्षदौ प्रादात् कार्तिकेयाय भारत ।

भरतनन्दन ! पूषाने कार्तिकेयको पाणीतक और कालिक नामक दो पार्षद प्रदान किये। वे दोनों ही बड़े भारी मायावी थे॥

बलं चातिबलं चैव महावक्त्रौ महाबलौ ॥ ४४ ॥
प्रददौ कार्तिकेयाय वायुर्भरतसत्तम ।

भरतश्रेष्ठ ! वायु देवताने कृत्तिकाकुमारको महान् बल-शाली एवं विशाल मुखवाले बल और अतिबल नामक दो सेवक प्रदान किये ॥ ४४½ ॥

यमं चातियमं चैव तिमिवक्त्रौ महाबलौ ॥ ४५ ॥
प्रददौ कार्तिकेयाय वरुणः सत्यसङ्गरः ।

सत्यप्रतिज्ञ वरुणने कृत्तिकानन्दन स्कन्दको यम और अतियम नामक दो महाबली पार्षद दिये, जिनके मुख तिमि नामक महामत्स्यके समान थे ॥ ४५½ ॥

सुवर्चसं महात्मानं तथैवाप्यतिवर्चसम् ॥ ४६ ॥
हिमवान् प्रददौ राजन् हुताशनसुताय वै ।

राजन् ! हिमवान्‌ने अग्निकुमारको महामना सुवर्चा और अतिवर्चा नामक दो पार्षद प्रदान किये ॥ ४६½ ॥

काञ्चनं च महात्मानं मेघमालिनमेव च ॥ ४७ ॥
ददावनुचरो मेरुरग्निपुत्राय भारत ।

भारत ! मेरुने अग्निपुत्र स्कन्दको महामना काञ्चन और मेघमाली नामक दो अनुचर अर्पित किये ॥ ४७½ ॥

स्थिरं चातिस्थिरं चैव मेरुरेवापरौ ददौ ॥ ४८ ॥
महात्मा त्वग्निपुत्राय महाबलपराक्रमौ ।

महामना मेरुने ही अग्निपुत्र कार्तिकेयको स्थिर और अतिस्थिर नामक दो पार्षद और दिये। वे दोनों महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे ॥ ४८½ ॥

उच्छ्रृङ्गं चातिश्रृङ्गं च महापाषाणयोधिनौ ॥ ४९ ॥
प्रददावग्निपुत्राय विन्ध्यः पारिषदावुभौ ।

विन्ध्य पर्वतने भी अग्निकुमारको दो पार्षद प्रदान किये, जिनके नाम थे उच्छ्रृङ्ग और अतिश्रृङ्ग। वे दोनों ही बड़े-बड़े पत्थरोंकी चट्टानोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल थे ॥ ४९½ ॥

संग्रहं विग्रहं चैव समुद्रोऽपि गदाधरौ ॥ ५० ॥
प्रददावग्निपुत्राय महापारिषदावुभौ ।

समुद्रने भी अग्निपुत्रको दो गदाधारी महापार्षद दिये, जिनके नाम थे—संग्रह और विग्रह ॥ ५०½ ॥

उन्मादं शङ्कुकर्णं च पुष्पदन्तं तथैव च ॥ ५१ ॥
प्रददावग्निपुत्राय पार्वती शुभदर्शना ।

शुभदर्शना पार्वती देवीने अग्निपुत्रको तीन पार्षद दिये—उन्माद, शङ्कुकर्ण तथा पुष्पदन्त ॥ ५१½ ॥

जयं महाजयं चैव नागौ ज्वलनसूनवे ॥ ५२ ॥
प्रददौ पुरुषव्याघ्र वासुकिः पन्नगेश्वरः ।

पुरुषसिंह ! नागराज वासुकिने अग्निकुमारको पार्षदरूपसे जय और महाजय नामक दो नाग भेंट किये ॥ ५२½ ॥

एवं साध्याश्च रुद्राश्च वसवः पितरस्तथा ॥ ५३ ॥
सागराः सरितश्चैव गिरयश्च महाबलाः ।
ददुः सेनागणाध्यक्षान् शूलपट्टिशधारिणः ॥ ५४ ॥
दिव्यप्रहरणोपेतान् नानावेषविभूषितान् ।

इस प्रकार साध्य, रुद्र, वसु, पितृगण, समुद्र, सरिताओं और महाबली पर्वतोंने उन्हें विभिन्न सेनापति अर्पित किये, जो शूल, पट्टिश और नाना प्रकारके दिव्य आयुध धारण किये हुए थे। वे सब-के-सब भाँति-भाँतिकी वेश-भूषासे विभूषित थे ॥ ५३-५४½ ॥

श्रृणु नामानि चाप्येषां येऽन्ये स्कन्दस्य सैनिकाः॥ ५५॥
विविधायुधसम्पन्नाश्चित्राभरणभूषिताः ।

स्कन्दके जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न और विचित्र आभूषणोंसे विभूषित अन्य सैनिक थे, उनके नाम सुनो ॥

शङ्कुकर्णो निकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ॥ ५६ ॥
अनन्तो द्वादशभुजस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ ।
घ्राणश्रवाः कपिस्कन्धः काञ्चनाक्षो जलन्धमः ॥ ५७ ॥
अक्षः संतर्जनो राजन् कुनदीकस्तमोऽन्तकृत् ।
एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजटः प्रभुः ॥ ५८ ॥
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ।
पुण्यनामा सुनामा च सुचक्रः प्रियदर्शनः ॥ ५९ ॥
परिश्रुतः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः ।
अजोदरो गजशिराः स्कन्धाक्षः शतलोचनः ॥ ६० ॥
ज्वालाजिह्वः करालाक्षः शितिकेशो जटी हरिः ।
परिश्रुतः कोकनदः कृष्णकेशो जटाधरः ॥ ६१ ॥
चतुर्दंष्ट्रोऽष्टजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः ।
विद्युताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः ॥ ६२ ॥
उदाराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभः ।
समुद्रवेगो राजेन्द्र शैलकम्पी तथैव च ॥ ६३ ॥
वृषो मेषः प्रवाहश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ।
धूम्रः श्वेतः कलिङ्गश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा ॥ ६४ ॥
प्रियकश्चैव नन्दश्च गोनन्दश्च प्रतापवान् ।
आनन्दश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा ॥ ६५ ॥
क्षेमवाहः सुवाहश्च सिद्धपात्रश्च भारत ।
गोव्रजः कनकापीडो महापारिषदेश्वरः ॥ ६६ ॥
गायनो हसनश्चैव बाणः खड्गश्च वीर्यवान् ।

वैताली गतितालो च तथा कथकवातिकौ ॥ ६७ ॥
हंसजः पङ्कदिग्धाङ्गः समुद्रोन्मादनश्च ह ।
रणोत्कटः प्रहासश्च श्वेतसिद्धश्च नन्दनः ॥ ६८ ॥
कालकण्ठः प्रभासश्च तथा कुम्भाण्डकोदरः ।
कालकक्षः सितश्चैव भूतानां मथनस्तथा ॥ ६९ ॥
यज्ञवाहः सुवाहश्च देवयाजी च सोमपः ।
मज्जानश्च महातेजाः क्रथक्राथौ च भारत ॥ ७० ॥
तुहरश्च तुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ।
मधुरः सुप्रसादश्च किरीटी च महाबलः ॥ ७१ ॥
वत्सलो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ।
धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥ ७२ ॥
श्वेतवक्त्रः सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ।
दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ॥ ७३ ॥
अचलः कनकाक्षश्च बालानामपि यः प्रभुः ।
संचारकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः ॥ ७४ ॥
लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च कुम्भकः ।
स्वर्णग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च चन्द्रभः ॥ ७५ ॥
पाणिकूर्चश्च शम्बूकः पञ्चवक्त्रश्च शिक्षकः ।
चाषवक्त्रश्च जम्बूकः शाकवक्त्रश्च कुण्डलः ॥ ७६ ॥

शङ्कुकर्ण, निकुम्भ, पद्म, कुमुद, अनन्त, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्ण, घ्राणश्रवा, कपिस्कन्ध, काञ्चनाक्ष, जलन्धम, अक्ष, संतर्जन, कुनदीक, तमोऽन्तकृत्, एकाक्ष, द्वादशाक्ष, एकजट, प्रभु, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन, पुण्यनामा, सुनामा, सुचक्र, प्रियदर्शन, परिश्रुत, कोकनद, प्रियमाल्यानुलेपन, अजोदर, गजशिरा, स्कन्धाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व, करालाक्ष, शितिकेश, जटी, हरि, परिश्रुत, कोकनद, कृष्णकेश, जटाधर, चतुर्दंष्ट्र, अष्टजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रवा, विद्युताक्ष, धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन, उदाराक्ष, रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभ, समुद्रवेग, शैलकम्पी, वृष, मेष, प्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्र, श्वेत, कलिङ्ग, सिद्धार्थ, वरद, प्रियक, नन्द, प्रतापी गोनन्द, आनन्द, प्रमोद, स्वस्तिक, ध्रुवक, क्षेमवाह, सुवाह, सिद्धपात्र, गोव्रज, कनकापीड, महापरिषदेश्वर, गायन, हसन, बाण, पराक्रमी खड्ग, वैताली, गतिताली, कथक, वातिक, हंसज, पङ्कदिग्धाङ्ग, समुद्रोन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, श्वेतसिद्ध, नन्दन, कालकण्ठ, प्रभास, कुम्भाण्डकोदर, कालकक्ष, सित, भूतमथन, यज्ञवाह, सुवाह, देवयाजी, सोमप, मज्जान, महातेजा, क्रथ, क्राथ, तुहर, तुहार, पराक्रमी चित्रदेव, मधुर, सुप्रसाद, किरीटी, महाबल, वत्सल, मधुवर्ण, कलशोदर, धर्मद, मन्मथकर, शक्तिशाली सूचीवक्त्र, श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, चारुवक्त्र, पाण्डुर, दण्डबाहु, सुबाहु, रज, कोकिलक, अचल, कनकाक्ष, बालस्वामी, संचारक, कोकनद, गृध्रपत्र, जम्बुक, लोहवक्त्र, अजवक्त्र, जवन, कुम्भवक्त्र, कुम्भक, स्वर्णग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र, चन्द्रभ, पाणिकूर्च, शम्बूक, पञ्चवक्त्र, शिक्षक, चाषवक्त्र, जम्बूक, शाकवक्त्र और कुण्डल ॥ ५६—७६ ॥

योगयुक्ता महात्मानः सततं ब्राह्मणप्रियाः ।
पैतामहा महात्मानो महापारिषदाश्च ये ॥ ७७ ॥
यौवनस्थाश्च बालाश्च वृद्धाश्च जनमेजय ।
सहस्रशः पारिषदाः कुमारमवतस्थिरे ॥ ७८ ॥

जनमेजय! ये सब पार्षद योगयुक्त, महामना तथा निरन्तर ब्राह्मणोंसे प्रेम रखनेवाले हैं। इनके सिवा, पितामह ब्रह्माजीके दिये हुए जो महामना महापार्षद हैं, वे तथा दूसरे बालक, तरुण एवं वृद्ध सहस्रों पार्षद कुमारकी सेवामें उपस्थित हुए॥

वक्त्रैर्नानाविधैर्ये तु शृणु ताञ्जनमेजय ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥ ७९ ॥
खरोष्ट्रवदनाश्चान्ये वराहवदनास्तथा ।

जनमेजय! उन सबके नाना प्रकारके मुख थे। किनके कैसे मुख थे? यह बताता हूँ, सुनो। कुछ पार्षदोंके मुख कछुओं और मुर्गोंके समान थे, कितनोंके मुख खरगोश, उल्लू, गदहा, ऊँट और सूअरके समान थे ॥ ७९½ ॥

मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च भारत ॥ ८० ॥
नकुलोलूकवक्त्राश्च काकवक्त्रास्तथा परे ।
आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ॥ ८१ ॥

भारत! बहुतोंके मुख बिल्ली और खरगोशके समान थे। किन्हींके मुख बहुत बड़े थे और किन्हींके नेवले, उल्लू, कौए, चूहे, बभ्रु तथा मयूरके मुखोंके समान थे ॥८०-८१॥

मत्स्यमेषाननाश्चान्ये अजाविमहिषाननाः ।
ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ॥ ८२ ॥

किन्हीं-किन्हींके मुख मछली, मेढे, बकरी, भेड़, भैंसे, रीछ, व्याघ्र, भेड़िये तथा सिंहोंके समान थे ॥ ८२ ॥

भीमा गजाननाश्चैव तथा नक्रमुखाश्च ये ।
गरुडाननाः कङ्कमुखा वृककाकमुखास्तथा ॥ ८३ ॥

किन्हींके मुख हाथीके समान थे, इसलिये वे बड़े भयानक जान पड़ते थे। कुछ पार्षदोंके मुख मगर, गरुड़, कङ्क, भेड़ियों और कौओंके समान जान पड़ते थे ॥ ८३ ॥

गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ।
महाजठरपादाङ्गास्तारकाक्षाश्च भारत ॥ ८४ ॥

भारत! कुछ पार्षद गाय, गदहा, ऊँट और वनबिलावके समान मुख धारण करते थे। किन्हींके पेट, पैर और दूसरे-दूसरे अङ्ग भी विशाल थे। उनकी आँखें तारोंके समान चमकती थीं ॥ ८४ ॥

पारावतमुखाश्चान्ये तथा वृषमुखाः परे ।
कोकिलाभाननाश्चान्ये श्येनतित्तिरिकाननाः ॥ ८५ ॥

कुछ पार्षदोंके मुख कबूतर, बैल, कोयल, बाज और तीतरोंके समान थे ॥ ८५ ॥

कृकलासमुखाश्चैव विरजोऽम्बरधारिणः ।
व्यालवक्त्राः शूलमुखाश्चण्डवक्त्राः शुभाननाः ॥८६॥

किन्हीं-किन्हींके मुख गिरगिटके समान जान पड़ते थे। कुछ बहुत ही श्वेत वस्त्र धारण करते थे। किन्हींके मुख सर्पोंके समान थे तो किन्हींके शूलके समान। किन्हींके मुखसे

अत्यन्त क्रोध टपकता था और किन्हींके मुखपर सौम्यभाव छा रहा था ॥ ८६ ॥

आशीविषाश्चीरधरा गोनासावदनास्तथा।
स्थूलोदराः कृशाङ्गाश्च स्थूलाङ्गाश्च कृशोदराः ॥ ८७ ॥

कुछ विषधर सर्पोंके समान जान पड़ते थे। कोई चीर धारण करते थे और किन्हीं-किन्हींके मुख गायके नथुनोंके समान प्रतीत होते थे। किन्हींके पेट बहुत मोटे थे और किन्हींके अत्यन्त कृश। कोई शरीरसे बहुत दुबले-पतले थे तो कोई महास्थूलकाय दिखायी देते थे ॥ ८७ ॥

ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणाः।
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥ ८८ ॥

किन्हींकी गर्दन छोटी और कान बड़े-बड़े थे। नाना प्रकारके सर्पोंको उन्होंने आभूषणके रूपमें धारण कर रक्खा था। कोई अपने शरीरमें हाथीकी खाल लपेटे हुए थे तो कोई काला मृगछाला धारण करते थे ॥ ८८ ॥

स्कन्धेमुखा महाराज तथाप्युदरतोमुखाः।
पृष्ठेमुखा हनुमुखास्तथा जङ्घामुखा अपि ॥ ८९ ॥

महाराज! किन्हींके मुख कंधोंपर थे तो किन्हींके पेटमें। कोई पीठमें, कोई दाढ़ीमें और कोई जाँघोंमें ही मुख धारण करते थे ॥ ८९ ॥

पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा।
तथा कीटपतङ्गानां सदृशास्या गणेश्वराः ॥ ९० ॥

बहुत-से ऐसे भी थे, जिनके मुख पार्श्वभागमें स्थित थे। शरीरके विभिन्न प्रदेशोंमें मुख धारण करनेवाले पार्षदोंकी संख्या भी कम नहीं थी। भिन्न-भिन्न गणोंके अधिपति कीट-पतङ्गोंके समान मुख धारण करते थे ॥ ९० ॥

नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः।
नानावृक्षभुजाः केचित् कटिशीर्षास्तथा परे ॥ ९१ ॥

किन्हींके अनेक और सर्पाकार मुख थे। किन्हीं-किन्हींके बहुत-सी भुजाएँ और गर्दनें थीं। किन्हींकी बहुसंख्यक भुजाएँ नाना प्रकारके वृक्षोंके समान जान पड़ती थीं। किन्हीं-किन्हींके मस्तक उनके कटि-प्रदेशमें ही दिखायी देते थे ॥ ९१ ॥

भुजङ्गभोगवदना नानागुल्मनिवासिनः।
चीरसंवृतगात्राश्च नानाकनकवाससः ॥ ९२ ॥

किन्हींके सर्पाकार मुख थे। कोई नाना प्रकारके गुल्मों और लताओंसे अपनेको आच्छादित किये हुए थे। कोई चीर वस्त्रसे ही अपनेको ढके हुए थे और कोई नाना प्रकारके सुनहरे वस्त्र धारण करते थे ॥ ९२ ॥

नानावेषधराश्चैव नानामाल्यानुलेपनाः।
नानावस्त्रधराश्चैव चर्मवासस एव च ॥ ९३ ॥

वे नाना प्रकारके वेश, भाँति-भाँतिकी माला और चन्दन तथा अनेक प्रकारके वस्त्र धारण करते थे। कोई-कोई चमड़ेका ही वस्त्र पहनते थे ॥ ९३ ॥

उष्णीषिणो मुकुटिनः सुग्रीवाश्च सुवर्चसः।
किरीटिनः पञ्चशिखास्तथा काञ्चनमूर्धजाः ॥ ९४ ॥

किन्हींके मस्तकपर पगड़ी थी तो किन्हींके सिरपर मुकुट शोभा पाते थे। किन्हींकी गर्दन और अङ्गकान्ति बड़ी ही सुन्दर थी। कोई किरीट धारण करते और कोई सिरपर पाँच शिखाएँ रखते थे। किन्हींके सिरके बाल सुनहरे रंगके थे ॥

त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखाः परे।
शिखण्डिनो मुकुटिनो मुण्डाश्च जटिलास्तथा ॥ ९५ ॥

कोई दो, कोई तीन और कोई सात शिखाएँ रखते थे। कोई माथेपर मोरपंख और कोई मुकुट धारण करते थे। कोई मूँड़ मुड़ाये और कोई जटा बढ़ाये हुए थे ॥ ९५ ॥

चित्रमालाधराः केचित् केचिद् रोमाननास्तथा।
विग्रहैकरसा नित्यमजेयाः सुरसत्तमैः ॥ ९६ ॥

कोई विचित्र माला धारण किये हुए थे और किन्हींके मुखपर बहुत-से रोयें जमे हुए थे। उन सबको लड़ाई-झगड़ेमें ही रस आता था। वे सदा श्रेष्ठ देवताओंके लिये भी अजेय थे॥

कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठास्तनूदराः।
स्थूलपृष्ठा ह्रस्वपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ॥ ९७ ॥

कोई काले थे, किन्हींके मुखपर मांसरहित हड्डियोंका ढाँचा मात्र था। किन्हींकी पीठ बहुत बड़ी थी और पेट भीतरको धँसा हुआ था। किन्हींकी पीठ मोटी और किन्हींकी छोटी थी। किन्हींके पेट और मूत्रेन्द्रिय दोनों बड़े थे ॥९७॥

महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः।
कुब्जाश्च ह्रस्वजङ्घाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ॥ ९८ ॥

किन्हींकी भुजाएँ विशाल थीं तो किन्हींकी बहुत छोटी। कोई छोटे-छोटे अङ्गोंवाले और बौने थे। कोई कुबड़े थे तो किन्हीं-किन्हींकी जाँघें बहुत छोटी थीं। कोई हाथीके समान कान और गर्दन धारण करते थे ॥ ९८ ॥

हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथा परे।
दीर्घोच्छ्वासा दीर्घजङ्घा विकराला ह्यधोमुखाः॥ ९९ ॥

किन्हींकी नाक हाथी-जैसी, किन्हींकी कछुओंके समान और किन्हींकी भेड़ियों-जैसी थी। कोई लंबी साँस लेते थे। किन्हींकी जाँघें बहुत बड़ी थीं। किन्हींका मुख नीचेकी ओर था और वे विकराल दिखायी देते थे॥ ९९ ॥

महादंष्ट्रा ह्रस्वदंष्ट्राश्चतुर्दंष्ट्रास्तथा परे।
वारणेन्द्रनिभाश्चान्ये भीमा राजन् सहस्रशः ॥१००॥

किन्हींकी दाढ़ें बड़ी, किन्हींकी छोटी और किन्हींकी चार थीं। राजन्! दूसरे भी सहस्रों पार्षद गजराजके समान विशालकाय एवं भयंकर थे ॥ १०० ॥

सुविभक्तशरीराश्च दीप्तिमन्तः स्वलंकृताः।
पिङ्गाक्षाः शङ्कुकर्णाश्च रक्तनासाश्च भारत ॥१०१॥

उनके शरीरके सभी अङ्ग सुन्दर विभागपूर्वक देखे जाते थे। वे दीप्तिमान् तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित थे। भारत! उनके नेत्र पिंगलवर्णके थे, कान शङ्कुके समान जान पड़ते थे और नासिका लाल रंगकी थी॥ १०१ ॥

पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलौष्ठा हरिमूर्धजाः।
नानापादौष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ॥१०२॥

किन्हींकी दाढ़ें बड़ी और किन्हींकी मोटी थीं। किन्हींके ओठ मोटे और सिरके बाल नीले थे। किन्हींके पैर, ओठ, दाढ़ें, हाथ और गर्दनें नाना प्रकारकी और अनेक थीं ॥ १०२॥

नानाचर्मभिराच्छन्ना नानाभाषाश्च भारत।
कुशला देशभाषासु जल्पन्तोऽन्योन्यमीश्वराः ॥१०३॥

भारत! कुछ लोग नाना प्रकारके चर्ममय वस्त्रोंसे आच्छादित, नाना प्रकारकी भाषाएँ बोलनेवाले, देशकी सभी भाषाओंमें कुशल एवं परस्पर बातचीत करनेमें समर्थ थे ॥

हृष्टाः परिपतन्ति स्म महापारिषदास्तथा।
दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः ॥१०४॥

वे महापार्षदगण हर्षमें भरकर चारों ओरसे दौड़े चले आ रहे थे। उनकी ग्रीवा, मस्तक, हाथ, पैर और नख सभी बड़े-बड़े थे ॥ १०४ ॥

पिङ्गाक्षा नीलकण्ठाश्च लम्बकर्णाश्च भारत।
वृकोदरनिभाश्चैव केचिदञ्जनसंनिभाः ॥१०५॥

भरतनन्दन! उनकी आँखें भूरी थीं, कण्ठमें नीले रङ्गका चिह्न था और कान लंबे लंबे थे। किन्हींका रङ्ग भेड़ियोंके उदरके समान था तो कोई काजलके समान काले थे ॥१०५॥

श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिङ्गाक्षाश्च तथा परे।
कल्माषा बहवो राजंश्चित्रवर्णाश्च भारत ॥१०६॥

किन्हींकी आँखें सफेद और गर्दन लाल थीं। कुछ लोगोंके नेत्र पिङ्गल वर्णके थे। भरतवंशी नरेश! बहुत-से पार्षद विचित्र वर्णवाले और चितकबरे थे ॥ १०६ ॥

चामरापीडकनिभाः श्वेतलोहितराजयः।
नानावर्णाः सवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ॥१०७॥

कितने ही पार्षदोंके शरीरका रङ्ग चँवर तथा फूलोंके मुकुट-सा सफेद था। कुछ लोगोंके अङ्गोंमें श्वेत और लाल रङ्गोंकी पङ्क्तियाँ दिखायी देती थीं। कुछ पार्षद एक दूसरे-से भिन्न रङ्गके थे और बहुत-से समान रङ्गवाले भी थे। किन्हीं-किन्हींकी कान्ति मोरोंके समान थी ॥ १०७ ॥

पुनः प्रहरणान्येषां कीर्त्यमानानि मे शृणु।
शेषैः कृतः पारिषदैरायुधानां परिग्रहः ॥१०८॥

अब शेष पार्षदोंने जिन आयुधोंको ग्रहण किया था, उनके नाम बता रहा हूँ, सुनो ॥ १०८ ॥

पाशोद्यतकराः केचिद् व्यादितास्याः खराननाः।
पृष्ठाक्षा नीलकण्ठाश्च तथा परिघबाहवः ॥१०९॥

कुछ पार्षद हाथोंमें पाश लिये हुए थे, कोई मुँह बाये खड़े थे, किन्हींके मुख गदहोंके समान थे, कितनोंकी आँखें पृष्ठभागमें थीं और कितनोंके कण्ठोंमें नील रङ्गका चिह्न था। बहुत-से पार्षदोंकी भुजाएँ ही परिघके समान थीं ॥ १०९ ॥

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः।
असिमुद्गरहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥११०॥

भरतनन्दन! किन्हींके हाथोंमें शतघ्नी थी तो किन्हींके चक्र। कोई हाथमें मुसल लिये हुए थे तो कोई तलवार, मुद्गर और डंडे लेकर खड़े थे ॥ ११० ॥

गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः।
आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महाजवाः ॥१११॥

किन्हींके हाथोंमें गदा, तोमर और भुशुण्डि शोभा पा रहे थे। वे महावेगशाली महामनस्वी पार्षद नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे ॥ १११ ॥

महाबला महावेगा महापारिषदास्तथा।
अभिषेकं कुमारस्य दृष्ट्वा हृष्टा रणप्रियाः ॥११२॥

उनका बल और वेग महान् था। वे युद्धप्रेमी महा-पार्षदगण कुमारका अभिषेक देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥११२॥

घण्टाजालपिनद्धाङ्गा ननृतुस्ते महौजसः।
एते चान्ये च बहवो महापारिषदा नृप ॥११३॥
उपतस्थुर्महात्मानं कार्तिकेयं यशस्विनम्।

वे अपने अङ्गोंमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त जालीदार वस्त्र पहने हुए थे। उनमें महान् ओज भरा था। नरेश्वर! वे हर्षमें भरकर नृत्य कर रहे थे। ये तथा और भी बहुत-से महापार्षदगण यशस्वी महात्मा कार्तिकेयकी सेवामें उपस्थित हुए थे ॥ ११३½ ॥

दिव्याश्चाप्यान्तरिक्षाश्च पार्थिवाश्चानिलोपमाः ॥११४॥
व्यादिष्टा दैवतैः शूराः स्कन्दस्यानुचराभवन्।

देवताओंकी आज्ञा पाकर देवलोक, अन्तरिक्षलोक तथा भूलोकके वायुतुल्य वेगशाली शूरवीर पार्षद स्कन्दके अनुचर हुए थे ॥ ११४½ ॥

तादृशानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
अभिषिक्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥११५॥

ऐसे-ऐसे सहस्रों, लाखों और अरबों पार्षद अभिषेक-के पश्चात् महात्मा स्कन्दको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलरामतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने स्कन्दाभिषेके पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलरामजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानके प्रसङ्गमें स्कन्दका अभिषेकविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

मातृकाओंका परिचय तथा स्कन्ददेवकी रणयात्रा और उनके द्वारा तारकासुर, महिषासुर आदि दैत्योंका सेनासहित संहार

वैशम्पायन उवाच

शृणु मातृगणान् राजन् कुमारानुचरानिमान्।
कीर्त्यमानान् मया वीर सपत्नगणसूदनान् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—वीर नरेश! अब मैं उन

मातृकाओंके नाम बता रहा हूँ, जो शत्रुओंका संहार करनेवाली तथा कुमार कार्तिकेयकी अनुचरी हैं ॥ १ ॥

यशस्विनीनां मातॄणां शृणु नामानि भारत ।
याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्च भागशः ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! तुम उन यशस्वी मातृकाओंके नाम सुनो, जिन कल्याणकारिणी देवियोंने विभागपूर्वक तीनों लोकोंको व्याप्त कर रक्खा है ॥ २ ॥

प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोस्तनी तथा ।
श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ॥ ३ ॥
अप्सु जाता च गोपाली बृहदम्बालिका तथा ।
जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयंकरी ॥ ४ ॥
वसुदामा च दामा च विशोका नन्दिनी तथा ।
एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्च भारत ॥ ५ ॥
उत्तेजनी जयत्सेना कमलाक्ष्यथ शोभना ।
शत्रुंजया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ॥ ६ ॥
माधवी शुभवक्त्रा च तीर्थनेमिश्च भारत ।
गीतप्रिया च कल्याणी रुद्ररोमामिताशना ॥ ७ ॥
मेघस्वना भोगवती सुभ्रुश्च कनकावती ।
अलाताक्षी वीर्यवती विद्युज्जिह्वा च भारत ॥ ८ ॥
पद्मावती सुनक्षत्रा कन्दरा बहुयोजना ।
संतानिका च कौरव्य कमला च महाबला ॥ ९ ॥
सुदामा बहुदामा च सुप्रभा च यशस्विनी ।
नृत्यप्रिया च राजेन्द्र शतोलूखलमेखला ॥ १० ॥
शतघण्टा शतानन्दा भगनन्दा च भाविनी ।
वपुष्मती चन्द्रसीता भद्रकाली च भारत ॥ ११ ॥
ऋक्षाम्बिका निष्कुटिका वामा चत्वरवासिनी ।
सुमङ्गला स्वस्तिमती बुद्धिकामा जयप्रिया ॥ १२ ॥
धनदा सुप्रसादा च भवदा च जलेश्वरी ।
एडी भेडी समेडी च वेतालजननी तथा ॥ १३ ॥
कण्डूतिः कालिका चैव देवमित्रा च भारत ।
वसुश्रीः कोटरा चैव चित्रसेना तथाचला ॥ १४ ॥
कुक्कुटिका शङ्खलिका तथा शकुनिका नृप ।
कुण्डारिका कौकुलिका कुम्भिकाथ शतोदरी ॥ १५ ॥
उत्क्राथिनी जलेला च महावेगा च कङ्कणा ।
मनोजवा कण्टकिनी प्रघसा पूतना तथा ॥ १६ ॥
केशयन्त्री त्रुटिर्वामा क्रोशनाथ तडित्प्रभा ।
मन्दोदरी च मुण्डी च कोटरा मेघवाहिनी ॥ १७ ॥
सुभगा लम्बनी लम्बा ताम्रचूडा विकाशिनी ।
ऊर्ध्ववेणीधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥ १८ ॥
पृथुवस्त्रा मधुलिका मधुकुम्भा तथैव च ।
पक्षालिका मत्कुलिका जरायुर्जर्जरानना ॥ १९ ॥
ख्याता दहदहा चैव तथा धमधमा नृप ।
खण्डखण्डा च राजेन्द्र पूषणा मणिकुट्टिका ॥ २० ॥
अमोघा चैव कौरव्य तथा लम्बपयोधरा ।
वेणुवीणाधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥ २१ ॥
शशोलूकमुखी कृष्णा खरजङ्घा महाजवा ।
शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा ॥ २२ ॥
जटालिका कामचरी दीर्घजिह्वा बलोत्कटा ।
कालेहिका वामनिका मुकुटा चैव भारत ॥ २३ ॥
लोहिताक्षी महाकाया हरिपिण्डा च भूमिप ।
एकत्वचा सुकुसुमा कृष्णकर्णी च भारत ॥ २४ ॥
क्षुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा तथा ।
चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिषानना ॥ २५ ॥
खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वनमहास्वना ।
शङ्खकुम्भश्रवाश्चैव भगदा च महाबला ॥ २६ ॥
गणा च सुगणा चैव तथाभीत्यथ कामदा ।
चतुष्पथरता चैव भूतितीर्थान्यगोचरी ॥ २७ ॥
पशुदा वित्तदा चैव सुखदा च महायशाः ।
पयोदा गोमहिषदा सुविशाला च भारत ॥ २८ ॥
प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना सुरोचना ।
नौकर्णी मुखकर्णी च विशिरा मन्थिनी तथा ॥ २९ ॥
एकचन्द्रा मेघकर्णा मेघमाला विरोचना ।

कुरुवंशी ! भरतकुलनन्दन ! राजेन्द्र ! वे नाम इस प्रकार हैं—प्रभावती, विशालाक्षी, पालिता, गोस्तनी, श्रीमती, बहुला, बहुपुत्रिका, अप्सु जाता, गोपाली, बृहदम्बालिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, भयंकरी, वसुदामा, दामा, विशोका, नन्दिनी, एकचूडा, महाचूडा, चक्रनेमि, उत्तेजनी, जयत्सेना, कमलाक्षी, शोभना, शत्रुंजया, क्रोधना, शलभी, खरी, माधवी, शुभवक्त्रा, तीर्थनेमि, गीतप्रिया, कल्याणी, रुद्ररोमा, अमिताशना, मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलाताक्षी, वीर्यवती, विद्युज्जिह्वा, पद्मावती, सुनक्षत्रा, कन्दरा, बहुयोजना, संतानिका, कमला, महाबला, सुदामा, बहुदामा, सुप्रभा, यशस्विनी, नृत्यप्रिया, शतोलूखलमेखला, शतघण्टा, शतानन्दा, भगनन्दा, भाविनी, वपुष्मती, चन्द्रसीता, भद्रकाली, ऋक्षाम्बिका, निष्कुटिका, वामा, चत्वरवासिनी, सुमङ्गला, स्वस्तिमती, बुद्धिकामा, जयप्रिया, धनदा, सुप्रसादा, भवदा, जलेश्वरी, एडी, भेडी, समेडी, वेतालजननी, कण्डूतिकालिका, देवमित्रा, वसुश्री, कोटरा, चित्रसेना, अचला, कुक्कुटिका, शङ्खलिका, शकुनिका, कुण्डारिका, कौकुलिका, कुम्भिका, शतोदरी, उत्क्राथिनी, जलेला, महावेगा, कङ्कणा, मनोजवा, कण्टकिनी, प्रघसा, पूतना, केशयन्त्री, त्रुटि, वामा, क्रोशना, तडित्प्रभा, मन्दोदरी, मुण्डी, कोटरा, मेघवाहिनी, सुभगा, लम्बिनी, लम्बा, ताम्रचूड़ा, विकाशिनी, ऊर्ध्ववेणीधरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला, पृथुवस्त्रा, मधुलिका, मधुकुम्भा, पक्षालिका, मत्कुलिका, जरायु, जर्जरानना, ख्याता, दहदहा, धमधमा, खण्डखण्डा, पूषणा, मणिकुट्टिका, अमोघा, लम्बपयोधरा, वेणुवीणाधरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला, शशोलूकमुखी, कृष्णा, खरजंघा, महाजवा, शिशुमारमुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, विभीषणा, जटालिका, कामचरी, दीर्घजिह्वा, बलोत्कटा,

कालेहिका, वामनिका, मुकुटा, लोहिताक्षी, महाकाया, हरिपिण्डा, एकत्वचा, सुकुसुमा, कृष्णकर्णी, क्षुरकर्णी, चतुष्कर्णी, कर्णप्रावरणा, चतुष्पथनिकेता, गोकर्णी, महिषानना, खरकर्णी, महाकर्णी, भेरीस्वना, महास्वना, शङ्खश्रवा, कुम्भश्रवा, भगदा, महाबला, गणा, सुगणा, अभीति, कामदा, चतुष्पथरता, भूतितीर्था, अन्यगोचरी, पशुदा, वित्तदा, सुखदा, महायशा, पयोदा, गोदा, महिषदा, सुविशाला, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, रोचमाना, सुरोचना, नौकर्णी, मुखकर्णी, विशिरा, मन्थिनी, एकचन्द्रा, मेघकर्णा, मेघमाला और विरोचना ॥ ३—२९½ ॥

एताश्चान्याश्च बहवो मातरो भरतर्षभ ॥ ३० ॥
कार्तिकेयानुयायिन्यो नानारूपाः सहस्रशः ।

भरतश्रेष्ठ ! ये तथा और भी नाना रूपधारिणी बहुत-सी सहस्रों मातृकाएँ हैं, जो कुमार कार्तिकेयका अनुसरण करती हैं॥

दीर्घनख्यो दीर्घदन्त्यो दीर्घतुण्ड्यश्च भारत ॥ ३१ ॥
सबला मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः ।
माहात्म्येन च संयुक्ताः कामरूपधरास्तथा ॥ ३२ ॥

भरतनन्दन ! इनके नख, दाँत और मुख सभी विशाल हैं । ये सबला, मधुरा (सुन्दरी), युवावस्थासे सम्पन्न तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हैं । इनकी बड़ी महिमा है । ये अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाली हैं ॥३१-३२॥

निर्मांसगात्र्यः श्वेताश्च तथा काञ्चनसंनिभाः ।
कृष्णमेघनिभाश्चान्या धूम्राश्च भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

इनमेंसे कुछ मातृकाओंके शरीर केवल हड्डियोंके ढाँचे हैं । उनमें मांसका पता नहीं है । कुछ श्वेत वर्णकी हैं और कितनोंकी ही अङ्गकान्ति सुवर्णके समान है । भरतश्रेष्ठ ! कुछ मातृकाएँ कृष्णमेघके समान काली तथा कुछ धूम्रवर्णकी हैं॥

अरुणाभा महाभोगा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः ।
ऊर्ध्ववेणीधराश्चैव पिङ्गाक्ष्यो लम्बमेखलाः ॥ ३४ ॥

कितनोंकी कान्ति अरुण वर्णकी है । वे सभी महान् भोगोंसे सम्पन्न हैं । उनके केश बड़े-बड़े और वस्त्र उज्ज्वल हैं । वे ऊपरकी ओर वेणी धारण करनेवाली, भूरी आँखोंसे सुशोभित तथा लम्बी मेखलासे अलंकृत हैं ॥ ३४ ॥

लम्बोदर्यो लम्बकर्णास्तथा लम्बपयोधराः ।
ताम्राक्ष्यस्ताम्रवर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथा पराः ॥ ३५ ॥

उनमेंसे किन्हींके उदर, किन्हींके कान तथा किन्हींके दोनों स्तन लंबे हैं । कितनोंकी आँखें ताँबेके समान लाल रङ्गकी हैं । कुछ मातृकाओंके शरीरकी कान्ति भी ताम्रवर्णकी हैं । बहुतोंकी आँखें काले रङ्गकी हैं ॥ ३५ ॥

वरदाः कामचारिण्यो नित्यं प्रमुदितास्तथा ।
याम्या रौद्रास्तथा सौम्याः कौबेर्योऽथ महाबलाः ॥३६॥
वारुण्योऽथ च माहेन्द्र्यस्तथाऽऽग्नेय्यः परंतप ।
वायव्यश्चाथ कौमार्यो ब्राह्मयश्च भरतर्षभ ॥ ३७ ॥
वैष्णव्यश्च तथा सौर्यो वाराहाश्च महाबलाः ।
रूपेणाप्सरसां तुल्या मनोहार्यो मनोरमाः ॥ ३८ ॥

वे वर देनेमें समर्थ, अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाली और सदा आनन्दमें निमग्न रहनेवाली हैं । शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतश्रेष्ठ ! उन मातृकाओंमेंसे कुछ यमकी शक्तियाँ हैं, कुछ रुद्रकी । कुछ सोमकी शक्तियाँ हैं और कुछ कुबेरकी । वे सबकी सब महान् बलसे सम्पन्न हैं । इसी तरह कुछ वरुणकी, कुछ देवराज इन्द्रकी, कुछ अग्नि, वायु, कुमार, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा भगवान् वराहकी महाबलशालिनी शक्तियाँ हैं, जो रूपमें अप्सराओंके समान मनोहारिणी और मनोरमा हैं ॥ ३६—३८ ॥

परपुष्टोपमा वाक्ये तथर्द्ध्या धनदोपमाः ।
शक्रवीर्योपमा युद्धे दीप्त्या वह्निसमास्तथा ॥ ३९ ॥

वे मीठी वाणी बोलनेमें कोयल और धनसमृद्धिमें कुबेरके समान हैं । युद्धमें इन्द्रके सदृश पराक्रम प्रकट करनेवाली तथा अग्निके समान तेजस्विनी हैं ॥ ३९ ॥

शत्रूणां विग्रहे नित्यं भयदास्ता भवन्त्युत ।
कामरूपधराश्चैव जवे वायुसमास्तथा ॥ ४० ॥

युद्ध छिड़ जानेपर वे सदा शत्रुओंके लिये भयदायिनी होती हैं । वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली तथा वायुके समान वेगशालिनी हैं ॥ ४० ॥

अचिन्त्यबलवीर्याश्च तथाचिन्त्यपराक्रमाः ।
वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिकेतनाः ॥ ४१ ॥

उनके बल, वीर्य और पराक्रम अचिन्त्य हैं । वे वृक्षों, चबूतरों और चौराहोंपर निवास करती हैं ॥ ४१ ॥

गुहाश्मशानवासिन्यः शैलप्रस्रवणालयाः ।
नानाभरणधारिण्यो नानामाल्याम्बरास्तथा ॥ ४२ ॥

गुफाएँ, श्मशान, पर्वत और झरने भी उनके निवासस्थान हैं । वे नाना प्रकारके आभूषण, पुष्पहार और वस्त्र धारण करती हैं ॥ ४२ ॥

नानाविचित्रवेषाश्च नानाभाषास्तथैव च ।
एते चान्ये च बहवो गणाः शत्रुभयंकराः ॥ ४३ ॥
अनुजग्मुर्महात्मानं त्रिदशेन्द्रस्य सम्मते ।

उनके वेश नाना प्रकारके और विचित्र हैं । वे अनेक प्रकारकी भाषाएँ बोलती हैं । ये तथा और भी बहुत-से शत्रुओंको भयभीत करनेवाले गण देवेन्द्रकी सम्मतिसे महात्मा स्कन्दका अनुसरण करने लगे ॥ ४३½ ॥

ततः शक्त्यस्त्रमददद् भगवान् पाकशासनः ॥ ४४ ॥
गुहाय राजशार्दूल विनाशाय सुरद्विषाम् ।
महास्वनां महाघण्टां द्योतमानां सितप्रभाम् ॥ ४५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर भगवान् पाकशासनने देवद्रोहियोंके विनाशके लिये कुमार कार्तिकेयको शक्ति नामक अस्त्र प्रदान किया । साथ ही उन्होंने बड़े जोरसे आवाज करनेवाला एक विशाल घंटा भी दिया, जो अपनी उज्ज्वल प्रभासे प्रकाशित हो रहा था ॥ ४४-४५ ॥

अरुणादित्यवर्णां च पताकां भरतर्षभ ।
ददौ पशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भगवान् पशुपतिने उन्हें अरुण और सूर्यके समान प्रकाशमान एक पताका और अपने सम्पूर्ण भूतगणोंकी विशाल सेना भी प्रदान की ॥ ४६ ॥

उग्रां नानाप्रहरणां तपोवीर्यबलान्विताम् ।
अजेयां स्वगणैर्युक्तां नाम्ना सेनां धनंजयाम् ॥ ४७॥
रुद्रतुल्यबलैर्युक्तां योधानामयुतैस्त्रिभिः ।
न सा विजानाति रणात् कदाचिद् विनिवर्तितुम्॥ ४८॥

वह भयंकर सेना धनंजय नामसे विख्यात थी । उसमें सभी सैनिक नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, तपस्या, बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे । रुद्रके समान बलशाली तीस हजार रुद्रगणोंसे युक्त वह सेना शत्रुओंके लिये अजेय थी । वह कभी भी युद्धसे पीछे हटना जानती ही नहीं थी ॥ ४७-४८ ॥

विष्णुर्ददौ वैजयन्तीं मालां बलविवर्धिनीम् ।
उमा ददौ विरजसी वाससी रविसप्रभे ॥ ४९ ॥

भगवान् विष्णुने कुमारको बल बढ़ानेवाली वैजयन्ती माला दी और उमाने सूर्यके समान चमकीले दो निर्मल वस्त्र प्रदान किये ॥ ४९ ॥

गङ्गा कमण्डलुं दिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् ।
ददौ प्रीत्या कुमाराय दण्डं चैव बृहस्पतिः ॥ ५० ॥

गङ्गाने कुमारको प्रसन्नतापूर्वक एक दिव्य और उत्तम कमण्डलु दिया, जो अमृत प्रकट करनेवाला था । बृहस्पतिजीने दण्ड प्रदान किया ॥ ५० ॥

गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् ।
अरुणस्ताम्रचूडं च प्रददौ चरणायुधम् ॥ ५१ ॥

गरुडने विचित्र पङ्खोंसे सुशोभित अपना प्रिय पुत्र मयूर भेंट किया । अरुणने लाल शिखावाले अपने पुत्र ताम्रचूड (मुर्गे) को समर्पित किया, जिसका पैर ही आयुध था ॥ ५१ ॥

नागं तु वरुणो राजा बलवीर्यसमन्वितम् ।
कृष्णाजिनं ततो ब्रह्मा ब्रह्मण्याय ददौ प्रभुः ॥ ५२ ॥
समरेषु जयं चैव प्रददौ लोकभावनः ।

राजा वरुणने बल और वीर्यसे सम्पन्न एक नाग भेंट किया और लोकस्रष्टा भगवान् ब्रह्माने ब्राह्मणहितैषी कुमारको काला मृगचर्म तथा युद्धमें विजयका आशीर्वाद प्रदान किया॥

सैनापत्यमनुप्राप्य स्कन्दो देवगणस्य ह ॥ ५३ ॥
शुशुभे ज्वलितोऽर्चिष्मान् द्वितीय इव पावकः ।

देवताओंका सेनापतित्व पाकर तेजस्वी स्कन्द अपने तेजसे प्रज्वलित हो दूसरे अग्निदेवके समान सुशोभित होने लगे॥

ततः पारिषदैश्चैव मातृभिश्च समन्वितः ॥ ५४ ॥
ययौ दैत्यविनाशाय ह्लादयन् सुरपुङ्गवान् ।

तदनन्तर अपने पार्षदों तथा मातृकागणोंके साथ कुमार कार्तिकेयने देवेश्वरोंको आनन्द प्रदान करते हुए दैत्योंके विनाशके लिये प्रस्थान किया ॥ ५४½ ॥

सा सेना नैर्ऋती भीमा सघण्टोच्छ्रितकेतना ॥ ५५ ॥
सभेरीशङ्खमुरजा सायुधा सपताकिनी ।
शारदी द्यौरिवाभाति ज्योतिर्भिरिव शोभिता ॥ ५६ ॥

नैर्ऋतों (भूतगणों) की वह भयंकर सेना घंटा, भेरी, शङ्ख और मृदङ्गकी ध्वनिसे गूँज रही थी । उसकी ऊँचे उठी हुई पताकाएँ फहरा रही थीं । अस्त्र-शस्त्रों और पताकाओंसे सम्पन्न वह विशाल वाहिनी नक्षत्रोंसे सुशोभित शरत् कालके आकाशकी भाँति शोभा पा रही थी ॥५५-५६॥

ततो देवनिकायास्ते नानाभूतगणास्तथा ।
वादयामासुरव्यग्रा भेरीः शङ्खांश्च पुष्कलान् ॥ ५७ ॥
पटहाञ्झर्झरांश्चैव क्रकचान् गोविषाणकान्।
आडम्बरान् गोमुखांश्च डिण्डिमांश्च महास्वनान् ॥५८॥

तदनन्तर वे देवसमूह तथा नाना प्रकारके भूतगण शान्त-चित्त हो भेरी, बहुत-से शङ्ख, पटह, झाँझ, क्रकच, गोशृङ्ग, आडम्बर, गोमुख और भारी आवाज करनेवाले नगाड़े बजाने लगे ॥ ५७-५८ ॥

तुष्टुवुस्ते कुमारं तु सर्वे देवाः सवासवाः ।
जगुश्च देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५९ ॥

फिर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता कुमारकी स्तुति करने लगे । देव-गन्धर्व गाने और अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ५९ ॥

ततः प्रीतो महासेनस्त्रिदशेभ्यो वरं ददौ ।
रिपून् हन्तास्मि समरे ये वो वधचिकीर्षवः ॥ ६० ॥

इससे प्रसन्न होकर कुमार महासेनने देवताओंको यह वर दिया कि 'जो आपलोगोंका वध करना चाहते हैं, आपके उन समस्त शत्रुओंका मैं समराङ्गणमें संहार कर डालूँगा' ॥

प्रतिगृह्य वरं देवास्तस्माद् विबुधसत्तमात् ।
प्रीतात्मानो महात्मानो मेनिरे निहतान् रिपून् ॥ ६१ ॥

उन सुरश्रेष्ठ कुमारसे वह वर पाकर महामनस्वी देवता बड़े प्रसन्न हुए और अपने शत्रुओंको मरा हुआ ही मानने लगे॥

सर्वेषां भूतसंघानां हर्षान्नादः समुत्थितः ।
अपूरयत लोकांस्त्रीन् वरे दत्ते महात्मना ॥ ६२ ॥

महात्मा कुमारके वर देनेपर सम्पूर्ण भूत-समुदायोंने जो हर्षनाद किया, वह तीनों लोकोंमें गूँज उठा ॥ ६२ ॥

स निर्ययौ महासेनो महत्या सेनया वृतः ।
वधाय युधि दैत्यानां रक्षार्थं च दिवौकसाम् ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् विशाल सेनासे घिरे हुए स्वामी महासेन युद्धमें दैत्योंका वध और देवताओंकी रक्षा करनेके लिये आगे बढ़े॥

व्यवसायो जयो धर्मः सिद्धिर्लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः ।
महासेनस्य सैन्यानामग्रे जग्मुर्नराधिप ॥ ६४ ॥

नरेश्वर ! उस समय व्यवसाय (दृढ़ निश्चय), विजय, धर्म, सिद्धि, लक्ष्मी, धृति और स्मृति—ये सब-के-सब महासेनके सैनिकोंके आगे-आगे चलने लगे ॥ ६४ ॥

स तया भीमया देवः शूलमुद्गरहस्तया ।
ज्वलितालातधारिण्या चित्राभरणवर्मया ॥ ६५ ॥
गदामुसलनाराचशक्तितोमरहस्तया ।
दृप्तसिंहनिनादिन्या विनद्य प्रययौ गुहः ॥ ६६ ॥

वह सेना बड़ी भयंकर थी । उसने हाथोंमें शूल, मुद्गर,

जलते हुए काठ, गदा, मुसल, नाराच, शक्ति और तोमर धारण कर रक्खे थे। सारी सेना विचित्र आभूषणों और कवचोंसे सुसज्जित थी तथा दर्पयुक्त सिंहके समान दहाड़ रही थी, उस सेनाके साथ सिंहनाद करके कुमार कार्तिकेय युद्धके लिये प्रस्थित हुए ॥ ६५-६६ ॥

तं दृष्ट्वा सर्वदैतेया राक्षसा दानवास्तथा ।
व्यद्रवन्त दिशः सर्वा भयोद्विग्नाः समन्ततः॥ ६७ ॥

उन्हें देखकर सम्पूर्ण दैत्य, दानव और राक्षस भयसे उद्विग्न हो सारी दिशाओंमें सब ओर भाग गये ॥ ६७ ॥

अभ्यद्रवन्त देवास्तान् विविधायुधपाणयः ।
दृष्ट्वा च स ततः क्रुद्धः स्कन्दस्तेजोबलान्वितः ॥ ६८ ॥
शक्त्यस्त्रं भगवान् भीमं पुनः पुनरवाकिरत् ।
आदधच्चात्मनस्तेजो हविषेद्ध इवानलः ॥ ६९ ॥

देवता अपने हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र ले उन दैत्योंका पीछा करने लगे । यह सब देखकर तेज और बलसे सम्पन्न भगवान् स्कन्द कुपित हो उठे और शक्ति नामक भयानक अस्त्रका बारंबार प्रयोग करने लगे । उन्होंने उसमें अपना तेज स्थापित कर दिया था और वे उस समय घीसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥६८-६९॥

अभ्यस्यमाने शक्त्यस्त्रे स्कन्देनामिततेजसा ।
उल्काज्वाला महाराज पपात वसुधातले ॥ ७० ॥

महाराज ! अमित तेजस्वी स्कन्दके द्वारा शक्तिका बारंबार प्रयोग होनेसे पृथ्वीपर प्रज्वलित उल्का गिरने लगी॥

संह्लादयन्तश्च तथा निर्घाताश्चापतन् क्षितौ ।
यथान्तकालसमये सुघोराः स्युस्तथा नृप ॥ ७१ ॥

नरेश्वर ! जैसे प्रलयके समय अत्यन्त भयंकर वज्र भारी गड़गड़ाहटके साथ पृथ्वीपर गिरने लगते हैं, उसी प्रकार उस समय भी भीषण गर्जनाके साथ वज्रपात होने लगा॥७१॥

क्षिप्ता ह्येका यदा शक्तिः सुघोरानलसूनुना ।
ततः कोट्यो विनिष्पेतुः शक्तीनां भरतर्षभ ॥ ७२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अग्निकुमारने जब एक बार अत्यन्त भयंकर शक्ति छोड़ी, तब उससे करोड़ों शक्तियाँ प्रकट होकर गिरने लगीं ॥ ७२ ॥

ततः प्रीतो महासेनो जघान भगवान् प्रभुः ।
दैत्येन्द्रं तारकं नाम महाबलपराक्रमम् ॥ ७३ ॥
वृतं दैत्यायुतैर्वीरैर्बलिभिर्दशभिर्नृप ।

इससे प्रभावशाली भगवान् महासेन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने महान् बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न उस दैत्यराज तारकको मार गिराया, जो एक लाख बलवान् एवं वीर दैत्योंसे घिरा हुआ था ॥ ७३½ ॥

महिषं चाष्टभिः पद्मैर्वृतं संख्ये निजघ्निवान् ॥ ७४ ॥
त्रिपादं चायुतशतैर्जघान दशभिर्वृतम् ।
ह्रदोदरं निखर्वैश्च वृतं दशभिरीश्वरः ॥ ७५ ॥
जघानानुचरैः सार्धं विविधायुधपाणिभिः ।

साथ ही उन्होंने युद्धस्थलमें आठ पद्म दैत्योंसे घिरे हुए महिषासुरका, दस लाख असुरोंसे सुरक्षित त्रिपादका और दस निखर्व दैत्य-योद्धाओंसे घिरे हुए ह्रदोदरका भी नाना प्रकारके आयुधधारी अनुचरोंसहित वध कर डाला॥७४-७५½॥

तथाकुर्वन्त विपुलं नादं वध्यत्सु शत्रुषु ॥ ७६ ॥
कुमारानुचरा राजन् पूरयन्तो दिशो दश ।
ननृतुश्च ववल्गुश्च जहसुश्च मुदान्विताः ॥ ७७ ॥

राजन् ! जब शत्रु मारे जाने लगे, उस समय कुमारके अनुचर दसों दिशाओंको गुँजाते हुए बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे । इतना ही नहीं, वे आनन्दमग्न होकर नाचने, कूदने तथा जोर-जोरसे हँसने भी लगे ॥ ७६-७७ ॥

शक्त्यस्त्रस्य तु राजेन्द्र ततोऽर्चिर्भिः समन्ततः ।
त्रैलोक्यं त्रासितं सर्वं जृम्भमाणाभिरेव च ॥ ७८ ॥

राजेन्द्र ! उस शक्तिनामक अस्त्रकी सब ओर फैलती हुई ज्वालाओंसे सारी त्रिलोकी थर्रा उठी ॥ ७८ ॥

दग्धाः सहस्रशो दैत्या नादैः स्कन्दस्य चापरे ।
पताकयावधूताश्च हताः केचित् सुरद्विषः ॥ ७९ ॥

सहस्रों दैत्य उस शक्तिकी आगमें जलकर भस्म हो गये । कितने ही स्कन्दके सिंहनादोंसे ही डरकर अपने प्राण खो बैठे तथा कुछ देवद्रोही उनकी पताकासे ही कम्पित होकर मर गये ॥ ७९ ॥

केचिद् घण्टारवत्रस्ता निपेतुर्वसुधातले ।
केचित् प्रहरणैश्छिन्ना विनिष्पेतुर्गतायुषः ॥ ८० ॥

कुछ दैत्य उनके घंटानादसे संत्रस्त होकर धरतीपर बैठ गये और कुछ उनके आयुधोंसे छिन्न-भिन्न हो गतायु होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८० ॥

एवं सुरद्विषोऽनेकान् बलवानाततायिनः ।
जघान समरे वीरः कार्तिकेयो महाबलः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार महाबली शक्तिशाली वीर कार्तिकेयने समराङ्गणमें अनेक आततायी देवद्रोहियोंका संहार कर डाला॥

बाणो नामाथ दैतेयो बलेः पुत्रो महाबलः ।
क्रौञ्चं पर्वतमाश्रित्य देवसंघानबाधत ॥ ८२ ॥

राजा बलिका महाबली पुत्र बाणासुर क्रौञ्च पर्वतका आश्रय लेकर देवसमूहोंको कष्ट पहुँचाया करता था ॥ ८२ ॥

तमभ्ययान्महासेनः सुरशत्रुमुदारधीः ।
स कार्तिकेयस्य भयात् क्रौञ्चं शरणमीयिवान् ॥ ८३ ॥

उदारबुद्धि महासेनने उस दैत्यपर भी आक्रमण किया । तब वह कार्तिकेयके भयसे क्रौञ्च पर्वतकी शरणमें जा छिपा ॥

ततः क्रौञ्चं महामन्युः क्रौञ्चनादनिनादितम् ।
शक्त्या बिभेद भगवान् कार्तिकेयोऽग्निदत्तया ॥ ८४ ॥

इससे भगवान् कार्तिकेयको महान् क्रोध हुआ । उन्होंने अग्निकी दी हुई शक्तिसे क्रौञ्च पक्षियोंके कोलाहलसे गूँजते हुए क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण कर डाला ॥ ८४ ॥

स शालस्कन्धशबलं त्रस्तवानरवारणम् ।
प्रोड्डीनोद्भ्रान्तविहगं विनिष्पतितपन्नगम् ॥ ८५ ॥
गोलाङ्गूलर्क्षसंघैश्च द्रवद्भिरनुनादितम् ।

कुरङ्गमविनिर्घोषनिनादितवनान्तरम् ॥ ८६ ॥
विनिष्पतद्भिः शरभैः सिंहैश्च सहसा द्रुतैः ।
शोच्यामपि दशां प्राप्तो रराजेव स पर्वतः ॥ ८७ ॥

क्रौञ्च पर्वत शालवृक्षके तनोंसे भरा हुआ था । वहाँके वानर और हाथी संत्रस्त हो उठे थे, पक्षी भयसे व्याकुल होकर उड़ चले थे, सर्प धराशायी हो गये थे, गोलाङ्गूल जातिके वानरों और रीछोंके समुदाय भाग रहे थे तथा उनके चीत्कारसे वह पर्वत गूँज उठा था, हरिणोंके आर्तनादसे उस पर्वतका वनप्रान्त प्रतिध्वनित हो रहा था, गुफासे निकलकर सहसा भागनेवाले सिंहों और शरभोंके कारण वह पर्वत बड़ी शोचनीय दशामें पड़ गया था तो भी वह सुशोभित-सा ही हो रहा था ॥ ८५–८७ ॥

विद्याधराः समुत्पेतुस्तस्य शृङ्गनिवासिनः ।
किन्नराश्च समुद्विग्नाः शक्तिपातरवोद्धताः ॥ ८८ ॥

उस पर्वतके शिखरपर निवास करनेवाले विद्याधर और किन्नर शक्तिके आघातजनित शब्दसे उद्विग्न होकर आकाशमें उड़ गये ॥ ८८ ॥

ततो दैत्या विनिष्पेतुः शतशोऽथ सहस्रशः ।
प्रदीप्तात् पर्वतश्रेष्ठाद् विचित्राभरणस्रजः ॥ ८९ ॥

तत्पश्चात् उस जलते हुए श्रेष्ठ पर्वतसे विचित्र आभूषण और माला धारण करनेवाले सैकड़ों और हजारों दैत्य निकल पड़े॥

तान् निजघ्नुरतिक्रम्य कुमारानुचरा मृधे ।
स चैव भगवान् क्रुद्धो दैत्येन्द्रस्य सुतं तदा ॥ ९० ॥
सहानुजं जघानाशु वृत्रं देवपतिर्यथा ।

कुमारके पार्षदोंने युद्धमें आक्रमण करके उन सब दैत्योंको मार गिराया । साथ ही भगवान् कार्तिकेयने कुपित होकर वृत्रासुरको मारनेवाले देवराज इन्द्रके समान दैत्यराजके उस पुत्रको उसके छोटे भाईसहित शीघ्र ही मार डाला ॥

बिभेद क्रौञ्चं शक्त्या च पावकिः परवीरहा ॥ ९१ ॥
बहुधा चैकधा चैव कृत्वाऽऽत्मानं महाबलः ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबली अग्निपुत्र कार्तिकेयने अपने आपको एक और अनेक रूपोंमें प्रकट करके शक्तिद्वारा क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण कर डाला ॥ ९१½ ॥

शक्तिः क्षिप्ता रणे तस्य पाणिमेति पुनः पुनः ॥ ९२ ॥
एवंप्रभावो भगवांस्ततो भूयश्च पावकिः ।
शौर्याद्द्विगुणयोगेन तेजसा यशसा श्रिया ॥ ९३ ॥
क्रौञ्चस्तेन विनिर्भिन्नो दैत्याश्च शतशो हताः ।

रणभूमिमें बार-बार चलायी हुई उनकी शक्ति शत्रुका संहार करके पुनः उनके हाथमें लौट आती थी । अग्निपुत्र कार्तिकेयका ऐसा ही प्रभाव है, बल्कि इससे भी बढ़कर है । वे शौर्यकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दुगुने तेज, यश और श्रीसे सम्पन्न हैं । उन्होंने क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण करके सैकड़ों दैत्योंको मार गिराया ॥ ९२-९३½ ॥

ततः स भगवान् देवो निहत्य विबुधद्विषः ॥ ९४ ॥
सभाज्यमानो विबुधैः परं हर्षमवाप ह ।

तदनन्तर भगवान् स्कन्ददेव देवशत्रुओंका संहार करके देवताओंसे सेवित हो अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ९४½ ॥

ततो दुन्दुभयो राजन् नेदुः शङ्खाश्च भारत ॥ ९५ ॥
मुमुचुर्देवयोषाश्च पुष्पवर्षमनुत्तमम् ।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९६ ॥

भरतवंशी नरेश ! तत्पश्चात् दुन्दुभियाँ बज उठीं, शङ्खोंकी ध्वनि होने लगी, सैकड़ों और हजारों देवाङ्गनाएँ योगीश्वर स्कन्ददेवपर उत्तम फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥

दिव्यगन्धमुपादाय ववौ पुण्यश्च मारुतः ।
गन्धर्वास्तुष्टुवुश्चैनं यज्वानश्च महर्षयः ॥ ९७ ॥

दिव्य फूलोंकी सुगन्ध लेकर पवित्र वायु चलने लगी । गन्धर्व और यज्ञपरायण महर्षि उनकी स्तुति करने लगे॥९७॥

केचिदेनं व्यवस्यन्ति पितामहसुतं प्रभुम् ।
सनत्कुमारं सर्वेषां ब्रह्मयोनिं तमग्रजम् ॥ ९८ ॥

कोई उनके विषयमें यह निश्चय करने लगे कि 'ये ब्रह्माजीके पुत्र, सबके अग्रज एवं ब्रह्मयोनि सनत्कुमार हैं' ॥

केचिन्महेश्वरसुतं केचित् पुत्रं विभावसोः ।
उमायाः कृत्तिकानां च गङ्गायाश्च वदन्त्युत ॥ ९९ ॥

कोई उन्हें महादेवजीका, कोई अग्निका, कोई पार्वतीका, कोई कृत्तिकाओंका और कोई गङ्गाजीका पुत्र बताने लगे ॥

एकधा च द्विधा चैव चतुर्धा च महाबलम् ।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः ॥१००॥

उन महाबली योगेश्वर स्कन्ददेवको लोग एक, दो, चार, सौ तथा सहस्रों रूपोंमें देखते और जानते हैं ॥१००॥

एतत् ते कथितं राजन् कार्तिकेयाभिषेचनम् ।
शृणु चैव सरस्वत्यास्तीर्थवर्यस्य पुण्यताम् ॥१०१॥

राजन् ! यह मैंने तुम्हें कार्तिकेयके अभिषेकका प्रसङ्ग सुनाया है । अब तुम सरस्वतीके उस श्रेष्ठ तीर्थकी पावनताका वर्णन सुनो ॥ १०१ ॥

बभूव तीर्थप्रवरं हतेषु सुरशत्रुषु ।
कुमारेण महाराज त्रिविष्टपमिवापरम् ॥ १०२॥

महाराज ! कुमार कार्तिकेयके द्वारा देवशत्रुओंके मारे जानेपर वह श्रेष्ठ तीर्थ दूसरे स्वर्गके समान सुखदायक हो गया॥

ऐश्वर्याणि च तत्रस्थो ददावीशः पृथक् पृथक् ।
ददौ नैर्ऋतमुख्येभ्यस्त्रैलोक्यं पावकात्मजः ॥१०३॥

वहीं रहकर स्वामी स्कन्दने पृथक्-पृथक् ऐश्वर्य प्रदान किये । अग्निकुमारने अपनी सेनाके मुख्य-मुख्य अधिकारियोंको तीनों लोक सौंप दिये ॥ १०३ ॥

एवं स भगवांस्तस्मिंस्तीर्थे दैत्यकुलान्तकः ।
अभिषिक्तो महाराज देवसेनापतिः सुरैः ॥१०४॥

महाराज ! इस प्रकार दैत्यकुलविनाशक देवसेनापति भगवान् स्कन्दका उस तीर्थमें देवताओंद्वारा अभिषेक किया गया ॥ १०४ ॥

तैजसं नाम तत् तीर्थं यत्र पूर्वमपां पतिः ।
अभिषिक्तः सुरगणैर्वरुणो भरतर्षभ ॥१०५॥

भरतश्रेष्ठ ! वह तैजस नामका तीर्थ है, जहाँ पहले जलके स्वामी वरुणदेवका देवताओंद्वारा अभिषेक किया गया था ॥

अस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा स्कन्दं चाभ्यर्च्य लाङ्गली ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ रुक्मं वासांस्याभरणानि च ॥१०६॥

उस श्रेष्ठ तीर्थमें हलधारी बलरामने स्नान करके स्कन्द देवका पूजन किया और ब्राह्मणोंको सुवर्ण, वस्त्र एवं आभूषण दिये ॥ १०६ ॥

उषित्वा रजनीं तत्र माधवः परवीरहा ।
पूज्य तीर्थवरं तच्च स्पृष्ट्वा तोयं च लाङ्गली ॥१०७॥
हृष्टः प्रीतमनाश्चैव ह्यभवन्माधवोत्तमः ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मधुवंशी हलधर वहाँ रात-भर रहे और उस श्रेष्ठ तीर्थका पूजन एवं उसके जलमें स्नान करके हर्षसे खिल उठे । उन यदुश्रेष्ठ बलरामका मन वहाँ प्रसन्न हो गया था ॥ १०७½ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यथाभिषिक्तो भगवान् स्कन्दो देवैः समागतैः ॥१०८॥
(सेनानीश्च कृतो राजन् बाल एव महाबलः ।)

राजन् ! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, वह सब प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कह सुनाया । समागत देवताओंद्वारा किस प्रकार भगवान् स्कन्दका अभिषेक हुआ और किस प्रकार बाल्यावस्थामें ही वे महाबली कुमार सेनापति बना दिये गये, यह सब कुछ बता दिया गया ॥ १०८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने तारकवधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा एवं सारस्वतोपाख्यानके प्रसङ्गमें तारकासुरका वधविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल १०८½ श्लोक हैं)

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

वरुणका अभिषेक तथा अग्नितीर्थ, ब्रह्मयोनि और कुबेरतीर्थकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग

जनमेजय उवाच

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् श्रुतवानस्मि तत्त्वतः ।
अभिषेकं कुमारस्य विस्तरेण यथाविधि ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! आज मैंने आपके मुखसे कुमारके विधिपूर्वक अभिषेकका यह अद्भुत वृत्तान्त यथार्थरूपसे और विस्तारपूर्वक सुना है ॥ १ ॥

यच्छ्रुत्वा पूतमात्मानं विजानामि तपोधन ।
प्रहृष्टानि च रोमाणि प्रसन्नं च मनो मम ॥ २ ॥

तपोधन ! उसे सुनकर मैं अपने आपको पवित्र हुआ समझता हूँ । हर्षसे मेरे रोयें खड़े हो गये हैं और मेरा मन प्रसन्नतासे भर गया है ॥ २ ॥

अभिषेकं कुमारस्य दैत्यानां च वधं तथा ।
श्रुत्वा मे परमा प्रीतिर्भूयः कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

कुमारके अभिषेक और उनके द्वारा दैत्योंके वधका वृत्तान्त सुनकर मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है और पुनः मेरे मनमें इस विषयको सुननेकी उत्कण्ठा जाग्रत् हो गयी है ॥

अपां पतिः कथं ह्यस्मिन्नभिषिक्तः पुरा सुरैः ।
तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ कुशलो ह्यसि सत्तम ॥ ४ ॥

साधुशिरोमणे ! महाप्राज्ञ ! इस तीर्थमें देवताओंने पहले जलके स्वामी वरुणका अभिषेक किस प्रकार किया था, यह सब मुझे बताइये; क्योंकि आप प्रवचन करनेमें कुशल हैं ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन्निदं चित्रं पूर्वकल्पे यथातथम् ।
आदौ कृतयुगे राजन् वर्तमाने यथाविधि ॥ ५ ॥
वरुणं देवताः सर्वा समेत्येदमथाब्रुवन् ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! इस विचित्र प्रसङ्गको यथार्थरूपसे सुनो । पूर्वकल्पकी बात है, जब आदि कृतयुग चल रहा था, उस समय सम्पूर्ण देवताओंने वरुणके पास जाकर इस प्रकार कहा— ॥ ५½ ॥

यथास्मान् सुरराट् छक्रो भयेभ्यः पाति सर्वदा ॥ ६ ॥
तथा त्वमपि सर्वासां सरितां वै पतिर्भव ।

'जैसे देवराज इन्द्र सदा भयसे हमलोगोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी समस्त सरिताओंके अधिपति हो जाइये (और हमारी रक्षा कीजिये) ॥ ६½ ॥

वासश्च ते सदा देव सागरे मकरालये ॥ ७ ॥
समुद्रोऽयं तव वशे भविष्यति नदीपतिः ।
सोमेन सार्धं च तव हानिवृद्धी भविष्यतः ॥ ८ ॥

'देव ! मकरालय समुद्रमें आपका सदा निवासस्थान होगा और यह नदीपति समुद्र सदा आपके वशमें रहेगा । चन्द्रमाके साथ आपकी भी हानि और वृद्धि होगी' ॥ ७-८ ॥

एवमस्त्विति तान् देवान् वरुणो वाक्यमब्रवीत् ।
समागम्य ततः सर्वे वरुणं सागरालयम् ॥ ९ ॥
अपां पतिं प्रचक्रुर्हि विधिदृष्टेन कर्मणा ।

तब वरुणने उन देवताओंसे कहा—'एवमस्तु' । इस प्रकार उनकी अनुमति पाकर सब देवता इकट्ठे होकर उन्होंने समुद्रनिवासी वरुणको शास्त्रीय विधिके अनुसार जलका राजा बना दिया ॥ ९½ ॥

अभिषिच्य ततो देवा वरुणं यादसां पतिम् ॥ १० ॥
जग्मुः स्वान्येव स्थानानि पूजयित्वा जलेश्वरम् ।

जलजन्तुओंके स्वामी जलेश्वर वरुणका अभिषेक और पूजन करके सम्पूर्ण देवता अपने-अपने स्थानको ही चले गये ॥

अभिषिक्तस्ततो देवैर्वरुणोऽपि महायशाः ॥ ११ ॥
सरितः सागरांश्चैव नदांश्चापि सरांसि च ।
पालयामास विधिना यथा देवाञ्शतक्रतुः ॥ १२ ॥

देवताओंद्वारा अभिषिक्त होकर महायशस्वी वरुण देवगणोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्रके समान सरिताओं, सागरों, नदों और सरोवरोंका भी विधिपूर्वक पालन करने लगे ॥

ततस्तत्राप्युपस्पृश्य दत्त्वा च विविधं वसु ।
अग्नितीर्थं महाप्राज्ञो जगामाथ प्रलम्बहा ॥ १३ ॥

प्रलम्बासुरका वध करनेवाले महाज्ञानी बलरामजी उस तीर्थमें स्नान और भाँति-भाँतिके धनका दान करके अग्नितीर्थमें गये ॥ १३ ॥

नष्टो न दृश्यते यत्र शमीगर्भे हुताशनः ।
लोकालोकविनाशे च प्रादुर्भूते तदानघ ॥ १४ ॥
उपतस्थुः सुरा यत्र सर्वलोकपितामहम् ।
अग्निः प्रणष्टो भगवान् कारणं च न विद्महे ॥१५॥
सर्वभूतक्षयो मा भूत् सम्पादय विभोऽनलम् ।

निष्पाप नरेश ! जब शमीके गर्भमें छिप जानेके कारण कहीं अग्निदेवका दर्शन नहीं हो रहा था और सम्पूर्ण जगत्के प्रकाश अथवा दृष्टिशक्तिके विनाशकी घड़ी उपस्थित हो गयी, तब सब देवता सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले—'प्रभो ! भगवान् अग्निदेव अदृश्य हो गये हैं । इसका क्या कारण है, यह हमारी समझमें नहीं आता । सम्पूर्ण भूतोंका विनाश न हो जाय, इसके लिये अग्निदेवको प्रकट कीजिये' ॥ १४-१५½ ॥

जनमेजय उवाच

किमर्थं भगवानग्निः प्रणष्टो लोकभावनः ॥ १६ ॥
विज्ञातश्च कथं देवैस्तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! लोकभावन भगवान् अग्नि क्यों अदृश्य हो गये थे और देवताओंने कैसे उनका पता लगाया ? यह यथार्थरूपसे बताइये ॥ १६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

भृगोः शापाद् भृशं भीतो जातवेदाः प्रतापवान् ॥ १७ ॥
शमीगर्भमथासाद्य ननाश भगवांस्ततः ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! एक समयकी बात है कि प्रतापी भगवान् अग्निदेव महर्षि भृगुके शापसे अत्यन्त भयभीत हो शमीके भीतर जाकर अदृश्य हो गये ॥ १७½ ॥

प्रणष्टे तु तदा वह्नौ देवाः सर्वे सवासवाः ॥ १८ ॥
अन्वैषन्त तदा नष्टं ज्वलनं भृशदुःखिताः ।

उस समय अग्निदेवके दिखायी न देनेपर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता बहुत दुखी हो उनकी खोज करने लगे ।१८½।

ततोऽग्नितीर्थमासाद्य शमीगर्भस्थमेव हि ॥ १९ ॥
ददृशुर्ज्वलनं तत्र वसमानं यथाविधि ।

तत्पश्चात् अग्नितीर्थमें आकर देवताओंने अग्निको शमीके गर्भमें विधिपूर्वक निवास करते देखा ॥ १९½ ॥

देवाः सर्वे नरव्याघ्र बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ २० ॥
ज्वलनं तं समासाद्य प्रीताभूवन् सवासवाः ।

नरव्याघ्र ! इन्द्रसहित सब देवता बृहस्पतिको आगे करके अग्निदेवके समीप आये और उन्हें देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ २०½ ॥

पुनर्यथागतं जग्मुः सर्वभक्षश्च सोऽभवत् ॥ २१ ॥
भृगोः शापान्महाभाग यदुक्तं ब्रह्मवादिना ।

महाभाग ! फिर वे जैसे आये थे, वैसे लौट गये और अग्निदेव महर्षि भृगुके शापसे सर्वभक्षी हो गये । उन ब्रह्मवादी मुनिने जैसा कहा था, वैसा ही हुआ ॥ २१½ ॥

तत्राप्याप्लुत्य मतिमान् ब्रह्मयोनिं जगाम ह ॥ २२ ॥
ससर्ज भगवान् यत्र सर्वलोकपितामहः ।

उस तीर्थमें गोता लगाकर बुद्धिमान् बलरामजी ब्रह्मयोनि तीर्थमें गये; जहाँ सर्वलोकपितामह ब्रह्माने सृष्टि की थी॥

तत्राप्लुत्य ततो ब्रह्मा सह देवैः प्रभुः पुरा ॥ २३ ॥
ससर्ज तीर्थानि तथा देवतानां यथाविधि ।

पूर्वकालमें देवताओंसहित भगवान् ब्रह्माने वहाँ स्नान करके विधिपूर्वक देवतीर्थोंकी रचना की थी ॥ २३½ ॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसूनि विविधानि च ॥ २४ ॥
कौबेरं प्रययौ तीर्थं तत्र तप्त्वा महत्तपः ।
धनाधिपत्यं सम्प्राप्तो राजन्नैलविलः प्रभुः ॥ २५ ॥

राजन् ! उस तीर्थमें स्नान और नाना प्रकारके धनका दान करके बलरामजी कुबेर-तीर्थमें गये, जहाँ बड़ी भारी तपस्या करके भगवान् कुबेरने धनाध्यक्षका पद प्राप्त किया था ॥

तत्रस्थमेव तं राजन् धनानि निधयस्तथा ।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठ तत् तीर्थं लाङ्गली बलः ॥ २६ ॥
गत्वा स्नात्वा च विधिवद् ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ।

नरेश्वर ! वहीं उनके पास धन और निधियाँ पहुँच गयी थीं । नरश्रेष्ठ ! हलधारी बलरामने उस तीर्थमें जाकर स्नानके पश्चात् ब्राह्मणोंके लिये विधिपूर्वक धनका दान किया ॥२६½॥

ददृशे तत्र तत् स्थानं कौबेरे काननोत्तमे ॥ २७ ॥
पुरा यत्र तपस्तप्तं विपुलं सुमहात्मना ।
यक्षराज्ञा कुबेरेण वरा लब्धाश्च पुष्कलाः ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने वहाँके एक उत्तम वनमें कुबेरके उस स्थानका दर्शन किया, जहाँ पूर्वकालमें महात्मा यक्षराज कुबेरने बड़ी भारी तपस्या की और बहुत-से वर प्राप्त किये ॥२७-२८॥

धनाधिपत्यं सख्यं च रुद्रेणामिततेजसा ।
सुरत्वं लोकपालत्वं पुत्रं च नलकूबरम् ॥ २९ ॥
यत्र लेभे महाबाहो धनाधिपतिरञ्जसा ।

महाबाहो ! धनपति कुबेरने वहाँ अमिततेजस्वी रुद्रके साथ मित्रता, धनका स्वामित्व, देवत्व, लोकपालत्व और नलकूबर नामक पुत्र अनायास ही प्राप्त कर लिये ॥ २९½ ॥

अभिषिक्तश्च तत्रैव समागम्य मरुद्गणैः ॥ ३० ॥
वाहनं चास्य तद् दत्तं हंसयुक्तं मनोजवम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यं नैर्ऋतैश्वर्यमेव च ॥ ३१ ॥

वहीं आकर देवताओंने उनका अभिषेक किया तथा उनके लिये हंसोंसे जुता हुआ और मनके समान वेगशाली वाहन दिव्य पुष्पक विमान दिया । साथ ही उन्हें यक्षोंका राजा बना दिया ॥ ३०-३१ ॥

तत्राप्लुत्य बलो राजन् दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् ।

जगाम त्वरितो रामस्तीर्थं श्वेतानुलेपनः ॥ ३२ ॥
निषेवितं सर्वसत्त्वैर्नाम्ना बदरपाचनम् ।
नानर्तुकवनोपेतं सदापुष्पफलं शुभम् ॥ ३३ ॥

राजन् ! उस तीर्थमें स्नान और प्रचुर दान करके श्वेत चन्दनधारी बलरामजी शीघ्रतापूर्वक बदरपाचन नामक शुभ तीर्थमें गये, जो सब प्रकारके जीव-जन्तुओंसे सेवित, नाना ऋतुओंकी शोभासे सम्पन्न वनस्थलियोंसे युक्त तथा निरन्तर फूलों और फलोंसे भरा रहनेवाला था ॥ ३२-३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

बदरपाचन तीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें श्रुतावती और अरुन्धतीके तपकी कथा

वैशम्पायन उवाच

ततस्तीर्थवरं रामो ययौ बदरपाचनम् ।
तपस्विसिद्धचरितं यत्र कन्या धृतव्रता ॥ १ ॥
भरद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! पहले कहा गया है कि वहाँसे बलरामजी वदरपाचन नामक श्रेष्ठ तीर्थमें गये, जहाँ तपस्वी और सिद्ध पुरुष विचरण करते हैं तथा जहाँ पूर्वकालमें उत्तम व्रत धारण करनेवाली भरद्वाजकी ब्रह्मचारिणी पुत्री कुमारी कन्या श्रुतावती, जिसके रूप और सौन्दर्यकी भूमण्डलमें कहीं तुलना नहीं थी, निवास करती थी ॥ १-२ ॥

तपश्चचार सात्युग्रं नियमैर्बहुभिर्वृता ।
भर्ता मे देवराजः स्यादिति निश्चित्य भामिनी ॥ ३ ॥

वह भामिनी बहुत-से नियमोंको धारण करके वहाँ अत्यन्त उग्र तपस्या कर रही थी । उसने अपनी तपस्याका यही उद्देश्य निश्चित कर लिया था कि देवराज इन्द्र मेरे पति हों ॥ ३ ॥

समास्तस्या व्यतिक्रान्ता बह्व्यः कुरुकुलोद्वह ।
चरन्त्या नियमांस्तांस्तान् स्त्रीभिस्तीव्रान् सुदुश्चरान् ४

कुरुकुलभूषण ! स्त्रियोंके लिये जिनका पालन अत्यन्त दुष्कर और दुःसह है, उन-उन कठोर नियमोंका पालन करती हुई श्रुतावतीके वहाँ अनेक वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४ ॥

तस्यास्तु तेन वृत्तेन तपसा च विशाम्पते ।
भक्त्या च भगवान् प्रीतः परया पाकशासनः ॥ ५ ॥

प्रजानाथ ! उसके उस आचरण, तपस्या तथा पराभक्तिसे भगवान् पाकशासन (इन्द्र) बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥

आजगामाश्रमं तस्यास्त्रिदशाधिपतिः प्रभुः ।
आस्थाय रूपं विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ६ ॥

वे शक्तिशाली देवराज ब्रह्मर्षि महात्मा वसिष्ठका रूप धारण करके उसके आश्रमपर आये ॥ ६ ॥

सा तं दृष्ट्वोग्रतपसं वसिष्ठं तपतां वरम् ।
आचारैर्मुनिभिर्दृष्टैः पूजयामास भारत ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! उसने तपस्वी मुनियोंमें श्रेष्ठ और उग्र तपस्यापरायण वसिष्ठको देखकर मुनिजनोचित आचारोंद्वारा उनका पूजन किया ॥ ७ ॥

उवाच नियमज्ञा च कल्याणी सा प्रियंवदा ।
भगवन् मुनिशार्दूल किमाज्ञापयसि प्रभो ॥ ८ ॥
सर्वमद्य यथाशक्ति तव दास्यामि सुव्रत ।
शक्रभक्त्या च ते पाणिं न दास्यामि कथंचन॥ ९ ॥

फिर नियमोंका ज्ञान रखनेवाली और मधुर एवं प्रिय वचन बोलनेवाली कल्याणमयी श्रुतावतीने इस प्रकार कहा— 'भगवन् ! मुनिश्रेष्ठ ! प्रभो ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ? सुव्रत ! आज मैं यथाशक्ति आपको सब कुछ दूँगी; परंतु इन्द्रके प्रति अनुराग रखनेके कारण अपना हाथ आपको किसी प्रकार नहीं दे सकूँगी ॥ ८-९ ॥

व्रतैश्च नियमैश्चैव तपसा च तपोधन ।
शक्रस्तोषयितव्यो वै मया त्रिभुवनेश्वरः ॥ १० ॥

'तपोधन ! मुझे अपने व्रतों, नियमों तथा तपस्याद्वारा त्रिभुवनसम्राट् भगवान् इन्द्रको ही संतुष्ट करना है' ॥ १० ॥

इत्युक्तो भगवान् देवः स्मयन्निव निरीक्ष्य ताम् ।
उवाच नियमं ज्ञात्वा सान्त्वयन्निव भारत ॥ ११ ॥

भारत ! श्रुतावतीके ऐसा कहनेपर भगवान् इन्द्रने मुस्कराते हुए-से उसकी ओर देखा और उसके नियमको जानकर उसे सान्त्वना देते हुए-से कहा— ॥ ११ ॥

उग्रं तपश्चरसि वै विदिता मेऽसि सुव्रते ।
यदर्थमयमारम्भस्तव कल्याणि हृद्गतः ॥ १२ ॥
तच्च सर्वं यथाभूतं भविष्यति वरानने ।

'सुव्रते ! मैं जानता हूँ तुम बड़ी उग्र तपस्या कर रही हो । कल्याणि ! सुमुखि ! जिस उद्देश्यसे तुमने यह अनुष्ठान आरम्भ किया है और तुम्हारे हृदयमें जो संकल्प है, वह सब यथार्थरूपसे सफल होगा ॥ १२½ ॥

तपसा लभ्यते सर्वं यथाभूतं भविष्यति ॥ १३ ॥
यथा स्थानानि दिव्यानि विबुधानां शुभानने ।
तपसा तानि प्राप्याणि तपोमूलं महत् सुखम्॥ १४ ॥

'शुभानने ! तपस्यासे सब कुछ प्राप्त होता है । तुम्हारा मनोरथ भी यथावत् रूपसे सिद्ध होगा । देवताओंके जो दिव्य स्थान हैं, वे तपस्यासे प्राप्त होनेवाले हैं । महान् सुखका मूल कारण तपस्या ही है ॥ १३-१४ ॥

इति कृत्वा तपो घोरं देहं संन्यस्य मानवाः ।
देवत्वं यान्ति कल्याणि शृणुष्वैकं वचो मम ॥ १५ ॥

'कल्याणि ! इस उद्देश्यसे मनुष्य घोर तपस्या करके अपने शरीरको त्यागकर देवत्व प्राप्त कर लेते हैं । अच्छा, अब तुम मेरी एक बात सुनो ॥ १५ ॥

पञ्च चैतानि सुभगे बदराणि शुभव्रते ।
पचेत्युक्त्वा तु भगवाञ्जगाम बलसूदनः ॥ १६ ॥
आमन्त्र्य तां तु कल्याणीं ततो जप्यं जजाप सः ।
अविदूरे ततस्तस्मादाश्रमात् तीर्थमुत्तमम् ॥ १७ ॥

'सुभगे ! शुभव्रते ! ये पाँच बेरके फल हैं । तुम इन्हें पका दो ।' ऐसा कहकर भगवान् इन्द्र कल्याणी श्रुतावतीसे पूछकर उस आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर स्थित उत्तम तीर्थमें गये और वहाँ स्नान करके जप करने लगे ॥ १६-१७ ॥

इन्द्रतीर्थेति विख्यातं त्रिषु लोकेषु मानद ।
तस्या जिज्ञासनार्थं स भगवान् पाकशासनः ॥ १८ ॥
बदराणामपचनं चकार विबुधाधिपः ।

मानद ! वह तीर्थ तीनों लोकोंमें इन्द्र-तीर्थके नामसे विख्यात है । देवराज भगवान् पाकशासनने उस कन्याके मनोभावकी परीक्षा लेनेके लिये उन बेरके फलोंको पकने नहीं दिया ॥

ततः प्रतप्ता सा राजन् वाग्यता विगतक्लमा ॥ १९ ॥
तत्परा शुचिसंवीता पावके समधिश्रयत् ।
अपचद् राजशार्दूल बदराणि महाव्रता ॥ २० ॥

राजन् ! तदनन्तर शौचाचारसे सम्पन्न उस तपस्विनीने थकावटसे रहित हो मौनभावसे उन फलोंको आगपर चढ़ा दिया । नृपश्रेष्ठ ! फिर वह महाव्रता कुमारी बड़ी तत्परताके साथ उन बेरके फलोंको पकाने लगी ॥ १९-२० ॥

तस्याः पचन्त्याः सुमहान् कालोऽगात् पुरुषर्षभ ।
न च स्म तान्यपच्यन्त दिनं च क्षयमभ्यगात् ॥ २१ ॥

पुरुषप्रवर ! उन फलोंको पकाते हुए उसका बहुत समय व्यतीत हो गया, परंतु वे फल पक न सके । इतनेमें ही दिन समाप्त हो गया ॥ २१ ॥

हुताशनेन दग्धश्च यस्तस्याः काष्ठसंचयः ।
अकाष्ठमग्निं सा दृष्ट्वा स्वशरीरमथादहत् ॥ २२ ॥

उसने जो ईंधन जमा कर रक्खे थे, वे सब आगमें जल गये । तब अग्निको ईंधनरहित देख उसने अपने शरीरको जलाना आरम्भ किया ॥ २२ ॥

पादौ प्रक्षिप्य सा पूर्वं पावके चारुदर्शना ।
दग्धौ दग्धौ पुनः पादावुपावर्तयतानघ ॥ २३ ॥

निष्पाप नरेश ! मनोहर दिखायी देनेवाली उस कन्याने पहले अपने दोनों पैर आगमें डाल दिये । वे ज्यों-ज्यों जलने लगे, त्यों-ही-त्यों वह उन्हें आगके भीतर बढ़ाती गयी ॥ २३ ॥

चरणौ दह्यमानौ च नाचिन्तयदनिन्दिता ।
कुर्वाणा दुष्करं कर्म महर्षिप्रियकाम्यया ॥ २४ ॥

उस साध्वीने अपने जलते हुए चरणोंकी कुछ भी परवा नहीं की । वह महर्षिका प्रिय करनेकी इच्छासे दुष्कर कार्य कर रही थी ॥ २४ ॥

न वैमनस्यं तस्यास्तु मुखभेदोऽथवाभवत् ।
शरीरमग्निनाऽऽदीप्य जलमध्ये यथा स्थिता ॥ २५ ॥

उसके मनमें तनिक भी उदासी नहीं आयी । मुखकी कान्तिमें भी कोई अन्तर नहीं पड़ा । वह अपने शरीरको आगमें जलाकर भी ऐसी प्रसन्न थी, मानो जलके भीतर खड़ी हो ॥

तच्चास्या वचनं नित्यमवर्तद्धृदि भारत ।
सर्वथा बदराण्येव पक्तव्यानीति कन्यका ॥ २६ ॥

भारत ! उसके मनमें निरन्तर इसी बातका चिन्तन होता रहता था कि 'इन बेरके फलोंको हर तरहसे पकाना है' ॥ २६ ॥

सा तन्मनसि कृत्वैव महर्षेर्वचनं शुभा ।
अपचद् बदराण्येव न चापच्यन्त भारत ॥ २७ ॥

भरतनन्दन ! महर्षिके वचनको मनमें रखकर वह शुभ-लक्षणा कन्या उन बेरोंको पकाती ही रही, परंतु वे पक न सके ॥ २७ ॥

तस्यास्तु चरणौ वह्निर्ददाह भगवान् स्वयम् ।
न च तस्या मनोदुःखं स्वल्पमप्यभवत् तदा ॥ २८ ॥

भगवान् अग्निने स्वयं ही उसके दोनों पैरोंको जला दिया, तथापि उस समय उसके मनमें थोड़ा-सा भी दुःख नहीं हुआ ॥

अथ तत् कर्म दृष्ट्वास्याः प्रीतस्त्रिभुवनेश्वरः ।
ततः संदर्शयामास कन्यायै रूपमात्मनः ॥ २९ ॥

उसका यह कर्म देखकर त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए । फिर उन्होंने उस कन्याको अपना यथार्थ रूप दिखाया ॥ २९ ॥

उवाच च सुरश्रेष्ठस्तां कन्यां सुदृढव्रताम् ।
प्रीतोऽस्मि ते शुभे भक्त्या तपसा नियमेन च ॥ ३० ॥
तस्माद् योऽभिमतः कामः स ते सम्पत्स्यते शुभे ।
देहं त्यक्त्वा महाभागे त्रिदिवे मयि वत्स्यसि ॥ ३१ ॥

इसके बाद सुरश्रेष्ठ इन्द्रने दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उस कन्यासे इस प्रकार कहा—'शुभे ! मैं तुम्हारी तपस्या, नियमपालन और भक्तिसे बहुत संतुष्ट हूँ । अतः कल्याणि ! तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट मनोरथ है, वह पूर्ण होगा । महाभागे ! तुम इस शरीरका परित्याग करके स्वर्गलोकमें मेरे पास रहोगी ॥ ३०-३१ ॥

इदं च ते तीर्थवरं स्थिरं लोके भविष्यति ।
सर्वपापापहं सुभ्रु नाम्ना बदरपाचनम् ॥ ३२ ॥

'सुभ्रु ! तुम्हारा यह श्रेष्ठ तीर्थ इस जगत्‌में सुस्थिर होगा, बदरपाचन नामसे प्रसिद्ध होकर सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला होगा ॥ ३२ ॥

विख्यातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्मर्षिभिरभिप्लुतम् ।
अस्मिन् खलु महाभागे शुभे तीर्थवरेऽनघे ॥ ३३ ॥
त्यक्त्वा सप्तर्षयो जग्मुर्हिमवन्तमरुन्धतीम् ।

'यह तीनों लोकोंमें विख्यात है । बहुत-से ब्रह्मर्षियोंने इसमें स्नान किया है । पापरहित महाभागे ! एक समय सप्तर्षिगण इस मङ्गलमय श्रेष्ठ तीर्थमें अरुन्धतीको छोड़कर हिमालय पर्वतपर गये थे ॥ ३३½ ॥

ततस्ते वै महाभागा गत्वा तत्र सुसंशिताः ॥ ३४ ॥
वृत्त्यर्थं फलमूलानि समाहर्तुं ययुः किल ।

'वहाँ पहुँचकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले वे महाभाग महर्षि जीवन-निर्वाहके निमित्त फल-मूल लानेके लिये वनमें गये ॥

तेषां वृत्त्यर्थिनां तत्र वसतां हिमवद्वने ॥ ३५ ॥
अनावृष्टिरनुप्राप्ता तदा द्वादशवार्षिकी ।

'जीविकाकी इच्छासे जब वे हिमालयके वनमें निवास करते थे, उन्हीं दिनों बारह वर्षोंतक इस देशमें वर्षा ही नहीं हुई ॥

ते कृत्वा चाश्रमं तत्र न्यवसन्त तपस्विनः ॥ ३६ ॥
अरुन्धत्यपि कल्याणी तपोनित्याभवत् तदा ।

'वे तपस्वी मुनि वहीं आश्रम बनाकर रहने लगे । उस समय कल्याणी अरुन्धती भी प्रतिदिन तपस्यामें ही लगी रही॥

अरुन्धतीं ततो दृष्ट्वा तीव्रं नियममास्थिताम् ॥ ३७ ॥
अथागमत् त्रिनयनः सुप्रीतो वरदस्तदा ।

'अरुन्धतीको कठोर नियमका आश्रय लेकर तपस्या करती देख त्रिनेत्रधारी वरदायक भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए ॥

ब्राह्मं रूपं ततः कृत्वा महादेवो महायशाः ॥ ३८ ॥
तामभ्येत्याब्रवीद् देवो भिक्षामिच्छाम्यहं शुभे ।

'फिर वे महायशस्वी महादेवजी ब्राह्मणका रूप धारण करके उनके पास गये और बोले—'शुभे ! मैं भिक्षा चाहता हूँ'॥

प्रत्युवाच ततः सा तं ब्राह्मणं चारुदर्शना ॥ ३९ ॥
क्षीणोऽन्नसंचयो विप्र बदराणीह भक्षय ।

'तब परम सुन्दरी अरुन्धतीने उन ब्राह्मण देवतासे कहा—'विप्रवर ! अन्नका संग्रह तो समाप्त हो गया । अब यहाँ ये बेर हैं, इन्हींको खाइये' ॥ ३९½ ॥

ततोऽब्रवीन्महादेवः पचस्वैतानि सुव्रते ॥ ४० ॥
इत्युक्ता सापचत् तानि ब्राह्मणप्रियकाम्यया ।
अधिश्रित्य समिद्धेऽग्नौ बदराणि यशस्विनी ॥ ४१ ॥

'तब महादेवजीने कहा—'सुव्रते ! इन बेरोंको पका दो ।' उनके इस प्रकार आदेश देनेपर यशस्विनी अरुन्धतीने ब्राह्मण-का प्रिय करनेकी इच्छासे उन बेरोंको प्रज्वलित अग्निपर रखकर पकाना आरम्भ किया ॥ ४०-४१ ॥

दिव्या मनोरमाः पुण्याः कथाः शुश्राव सा तदा।
अतीता सा त्वनावृष्टिर्घोरा द्वादशवार्षिकी ॥ ४२ ॥
अनश्नन्त्याः पचन्त्याश्च शृण्वन्त्याश्च कथाः शुभाः।
दिनोपमः स तस्याथ कालोऽतीतः सुदारुणः॥ ४३ ॥

'उस समय उसे परम पवित्र मनोहर एवं दिव्य कथाएँ सुनायी देने लगीं । वह बिना खाये ही बेर पकाती और मङ्गल-मयी कथाएँ सुनती रही । इतनेमें ही बारह वर्षोंकी वह भयंकर अनावृष्टि समाप्त हो गयी । वह अत्यन्त दारुण समय उसके लिये एक दिनके समान व्यतीत हो गया ॥ ४२-४३ ॥

ततस्तु मुनयः प्राप्ताः फलान्यादाय पर्वतात् ।
ततः स भगवान् प्रीतः प्रोवाचारुन्धतीं ततः ॥ ४४ ॥
उपसर्पस्व धर्मज्ञे यथापूर्वमिमानृषीन् ।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञे तपसा नियमेन च ॥ ४५ ॥

'तदनन्तर सप्तर्षिगण हिमालय पर्वतसे फल लेकर वहाँ आये । उस समय भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर अरुन्धतीसे कहा—'धर्मज्ञे ! अब तुम पहलेके समान इन ऋषियोंके पास जाओ ! धर्मको जाननेवाली देवि ! मैं तुम्हारी तपस्या और नियमसे बहुत प्रसन्न हूँ' ॥ ४४-४५ ॥

ततः संदर्शयामास स्वरूपं भगवान् हरः ।
ततोऽब्रवीत् तदा तेभ्यस्तस्याश्च चरितं महत् ॥ ४६ ॥

'ऐसा कहकर भगवान् शंकरने अपने स्वरूपका दर्शन कराया और उन सप्तर्षियोंसे अरुन्धतीके महान् चरित्रका वर्णन किया ॥ ४६ ॥

भवद्भिर्हिमवत्पृष्ठे यत् तपः समुपार्जितम् ।
अस्याश्च यत् तपो विप्रा न समं तन्मतं मम ॥ ४७ ॥

'वे बोले—'विप्रवरो ! आपलोगोंने हिमालयके शिखरपर रहकर जो तपस्या की है और अरुन्धतीने यहीं रहकर जो तप किया है, इन दोनोंमें कोई समानता नहीं है (अरुन्धतीका ही तप श्रेष्ठ है) ॥ ४७ ॥

अनया हि तपस्विन्या तपस्तप्तं सुदुश्चरम् ।
अनश्नन्त्या पचन्त्या च समा द्वादश पारिताः ॥ ४८ ॥

'इस तपस्विनीने बिना कुछ खाये-पीये बेर पकाते हुए बारह वर्ष बिता दिये हैं । इस प्रकार इसने दुष्कर तपका उपार्जन कर लिया है' ॥ ४८ ॥

ततः प्रोवाच भगवांस्तामेवारुन्धतीं पुनः ।
वरं वृणीष्व कल्याणि यत् तेऽभिलषितं हृदि ॥ ४९ ॥

'इसके बाद भगवान् शंकरने पुनः अरुन्धतीसे कहा—'कल्याणि ! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसके अनुसार कोई वर माँग लो' ॥ ४९ ॥

साब्रवीत् पृथुताम्राक्षी देवं सप्तर्षिसंसदि ।
भगवान् यदि मे प्रीतस्तीर्थं स्यादिदमद्भुतम् ॥ ५० ॥
सिद्धदेवर्षिदयितं नाम्ना बदरपाचनम् ।

'तब विशाल एवं अरुण नेत्रोंवाली अरुन्धतीने सप्तर्षियों-की सभामें महादेवजीसे कहा—'भगवान् यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो यह स्थान बदरपाचन नामसे प्रसिद्ध होकर सिद्धों और देवर्षियोंका प्रिय एवं अद्भुत तीर्थ हो जाय ॥ ५०½ ॥

तथास्मिन् देवदेवेश त्रिरात्रमुषितः शुचिः ॥ ५१ ॥
प्राप्नुयादुपवासेन फलं द्वादशवार्षिकम् ।

'देवदेवेश्वर ! इस तीर्थमें तीन राततक पवित्र भावसे रहकर वास करनेसे मनुष्यको बारह वर्षोंके उपवासका फल प्राप्त हो' ॥ ५१½ ॥

एवमस्त्विति तां देवः प्रत्युवाच तपस्विनीम् ॥ ५२ ॥
सप्तर्षिभिः स्तुतो देवस्ततो लोकं ययौ तदा ।

'तब महादेवजीने उस तपस्विनीसे कहा—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) । फिर सप्तर्षियोंने उनकी स्तुति की । तत्पश्चात् महादेवजी अपने लोकमें चले गये ॥ ५२½ ॥

ऋषयो विस्मयं जग्मुस्तां दृष्ट्वा चाप्यरुन्धतीम् ॥ ५३ ॥
अश्रान्तां चाविवर्णां च क्षुत्पिपासासमायुताम् ।

'अरुन्धती भूख-प्याससे युक्त होनेपर भी न तो थकी थी और न उसकी अङ्गकान्ति ही फीकी पड़ी थी । उसे देखकर ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५३½ ॥

एवं सिद्धिः परा प्राप्ता अरुन्धत्या विशुद्धया ॥ ५४ ॥

यथा त्वया महाभागे मदर्थं संशितव्रते ।
विशेषो हि त्वया भद्रे व्रते ह्यस्मिन् समर्पितः ॥ ५५ ॥

'कठोर व्रतका पालन करनेवाली महाभागे ! इस प्रकार विशुद्धहृदया अरुन्धती देवीने यहाँ परम सिद्धि प्राप्त की थी, जैसी कि तुमने मेरे लिये तप करके सिद्धि पायी है। भद्रे ! तुमने इस व्रतमें विशेष आत्मसमर्पण किया है।५४-५५।

तथा चेदं ददाम्यद्य नियमेन सुतोषितः ।
विशेषं तव कल्याणि प्रयच्छामि वरं वरे ॥ ५६ ॥

'सती कल्याणि ! मैं तुम्हारे नियमसे संतुष्ट होकर यह विशेष वर प्रदान करता हूँ ॥ ५६ ॥

अरुन्धत्या वरस्तस्या यो दत्तो वै महात्मना ।
तस्य चाहं प्रभावेण तव कल्याणि तेजसा ॥ ५७ ॥
प्रवक्ष्यामि परं भूयो वरमत्र यथाविधि ।

'कल्याणि ! महात्मा भगवान् शंकरने अरुन्धती देवीको जो वर दिया था, तुम्हारे तेज और प्रभावसे मैं उससे भी बढ़कर उत्तम वर देता हूँ ॥ ५७½ ॥

यस्त्वेकां रजनीं तीर्थे वत्स्यते सुसमाहितः ॥ ५८ ॥
स स्नात्वा प्राप्स्यते लोकान् देहन्यासात् सुदुर्लभान् ।

'जो इस तीर्थमें एकाग्रचित्त होकर एक रात निवास करेगा, वह यहाँ स्नान करके देह-त्यागके पश्चात् उन पुण्यलोकोंमें जायगा, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं' ॥ ५८½ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् देवः सहस्राक्षः प्रतापवान् ॥ ५९ ॥
श्रुतावतीं ततः पुण्यां जगाम त्रिदिवं पुनः ।

पुण्यमयी श्रुतावतीसे ऐसा कहकर सहस्र नेत्रधारी प्रतापी भगवान् इन्द्रदेव पुनः स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ५९½ ॥

गते वज्रधरे राजंस्तत्र वर्षं पपात ह ॥ ६० ॥
पुष्पाणां भरतश्रेष्ठ दिव्यानां पुण्यगन्धिनाम् ।
देवदुन्दुभयश्चापि नेदुस्तत्र महास्वनाः ॥ ६१ ॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! वज्रधारी इन्द्रके चले जानेपर वहाँ पवित्र सुगन्धवाले दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और महान् शब्द करनेवाली देवदुन्दुभियाँ बज उठीं ॥ ६०-६१ ॥

मारुतश्च ववौ पुण्यः पुण्यगन्धो विशाम्पते ।
उत्सृज्य तु शुभा देहं जगामास्य च भार्यताम् ॥ ६२ ॥
तपसोग्रेण तं लब्ध्वा तेन रेमे सहाच्युत ।

प्रजानाथ ! पावन सुगंधसे युक्त पवित्र वायु चलने लगी। शुभलक्षणा श्रुतावती अपने शरीरको त्यागकर इन्द्रकी भार्या हो गयी। अच्युत ! वह अपनी उग्र तपस्यासे इन्द्रको पाकर उनके साथ रमण करने लगी ॥ ६२½ ॥

जनमेजय उवाच

का तस्या भगवन् माता क संवृद्धा च शोभना ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं विप्र परं कौतूहलं हि मे ॥ ६३ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! शोभामयी श्रुतावतीकी माता कौन थी और वह कहाँ पली थी? यह मैं सुनना चाहता हूँ। विप्रवर ! इसके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥

वैशम्पायन उवाच

भरद्वाजस्य विप्रर्षेः स्कन्नं रेतो महात्मनः ॥ ६४ ॥
दृष्ट्वाप्सरसमायान्तीं घृताचीं पृथुलोचनाम् ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! एक दिन विशाल नेत्रोंवाली घृताची अप्सरा कहींसे आ रही थी। उसे देखकर महात्मा महर्षि भरद्वाजका वीर्य स्खलित हो गया ॥ ६४½ ॥

स तु जग्राह तद्रेतः करेण जपतां वरः ॥ ६५ ॥
तदापतत् पर्णपुटे तत्र सा समभवत् सुता ।

जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ऋषिने उस वीर्यको अपने हाथमें ले लिया, परंतु वह तत्काल ही एक पत्तेके दोनेमें गिर पड़ा? वहीं वह कन्या प्रकट हो गयी ॥ ६५½ ॥

तस्यास्तु जातकर्मादि कृत्वा सर्वं तपोधनः ॥ ६६ ॥
नाम चास्याः स कृतवान् भरद्वाजो महामुनिः ।
श्रुतावतीति धर्मात्मा देवर्षिगणसंसदि ।
स्वे च तामाश्रमे न्यस्य जगाम हिमवद्वनम् ॥ ६७ ॥

तपस्याके धनी धर्मात्मा महामुनि भरद्वाजने उसके जात-कर्म आदि सब संस्कार करके देवर्षियोंकी सभामें उसका नाम श्रुतावती रख दिया। फिर वे उस कन्याको अपने आश्रममें रखकर हिमालयके जंगलमें चले गये थे ॥ ६६-६७ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य महानुभावो
वसूनि दत्त्वा च महाद्विजेभ्यः ।
जगाम तीर्थं सुसमाहितात्मा
शक्रस्य वृष्णिप्रवरस्तदानीम् ॥ ६८ ॥

वृष्णिवंशावतंस महानुभाव बलरामजी उस तीर्थमें भी स्नान और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको धनका दान करके उस समय एकाग्रचित्त हो वहाँसे इन्द्र-तीर्थमें चले गये ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने बदरपाचनतीर्थकथने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानके प्रसंगमें बदरपाचन तीर्थका वर्णनविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थ, रामतीर्थ, यमुनातीर्थ और आदित्यतीर्थकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

इन्द्रतीर्थं ततो गत्वा यदूनां प्रवरो बलः ।
विप्रेभ्यो धनरत्नानि ददौ स्नात्वा यथाविधि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वहाँसे इन्द्रतीर्थमें जाकर स्नान करके यदुकुलतिलक बलरामजीने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक धन और रत्नोंका दान किया ॥ १ ॥

तत्र ह्यमरराजोऽसावीजे क्रतुशतेन च।
बृहस्पतेश्च देवेशः प्रददौ विपुलं धनम्॥ २॥

उस तीर्थमें देवेश्वर देवराज इन्द्रने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया था और बृहस्पतिजीको प्रचुर धन दिया था॥ २॥

निरर्गलान् सजारूथ्यान् सर्वान् विविधदक्षिणान्।
आजहार क्रतूंस्तत्र यथोक्तान् वेदपारगैः॥ ३॥

नाना प्रकारकी दक्षिणाओंसे युक्त एवं पुष्ट उन सभी शास्त्रोक्त यज्ञोंको इन्द्रने वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ बिना किसी विघ्न-बाधाके वहाँ पूर्ण कर लिया॥ ३॥

तान् क्रतून् भरतश्रेष्ठ शतकृत्वो महाद्युतिः।
पूरयामास विधिवत् ततः ख्यातः शतक्रतुः॥ ४॥

भरतश्रेष्ठ! महातेजस्वी इन्द्रने उन यज्ञोंको सौ बार विधिपूर्वक पूर्ण किया, इसलिये इन्द्र शतक्रतु नामसे विख्यात हो गये॥

तस्य नाम्ना च तत् तीर्थं शिवं पुण्यं सनातनम्।
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम्॥ ५॥

उन्हींके नामसे वह सर्वपापापहारी, कल्याणकारी एवं सनातन पुण्य तीर्थ 'इन्द्रतीर्थ' कहलाने लगा॥ ५॥

उपस्पृश्य च तत्रापि विधिवन्मुसलायुधः।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा च सदाच्छादनभोजनैः॥ ६॥
शुभं तीर्थवरं तस्माद् रामतीर्थं जगाम ह।

मुसलधारी बलरामजी वहाँ भी विधिपूर्वक स्नान तथा उत्तम भोजन-वस्त्रद्वारा ब्राह्मणोंका पूजन करके वहाँसे शुभ तीर्थप्रवर रामतीर्थमें चले गये॥ ६½॥

यत्र रामो महाभागो भार्गवः सुमहातपाः॥ ७॥
असकृत् पृथिवीं जित्वा हतक्षत्रियपुङ्गवाम्।
उपाध्यायं पुरस्कृत्य कश्यपं मुनिसत्तमम्॥ ८॥
अयजद् वाजपेयेन सोऽश्वमेधशतेन च।
प्रददौ दक्षिणां चैव पृथिवीं वै ससागराम्॥ ९॥

जहाँ महातपस्वी भृगुवंशी महाभाग परशुरामजीने बारंबार क्षत्रियनरेशोंका संहार करके इस पृथ्वीको जीतनेके पश्चात् मुनिश्रेष्ठ कश्यपको आचार्यरूपसे आगे रखकर वाजपेय तथा एक सौ अश्वमेध यज्ञद्वारा भगवान्‌का पूजन किया और दक्षिणारूपमें समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी दे दी॥ ७–९॥

दत्त्वा च दानं विविधं नानारत्नसमन्वितम्।
सगोहस्तिकदासीकं साजाविं गतवान् वनम्॥ १०॥

नाना प्रकारके रत्न, गौ, हाथी, दास, दासी और भेड़-बकरोंसहित अनेक प्रकारके दान देकर वे वनमें चले गये॥

पुण्ये तीर्थवरे तत्र देवब्रह्मर्षिसेविते।
मुनींश्चैवाभिवाद्याथ यमुनातीर्थमागमत्॥ ११॥
यत्रानयामास तदा राजसूयं महीपते।
पुत्रोऽदितेर्महाभागो वरुणो वै सितप्रभः॥ १२॥

पृथ्वीनाथ! देवताओं और ब्रह्मर्षियोंसे सेवित उस उत्तम पुण्यमय तीर्थमें मुनियोंको प्रणाम करके बलरामजी यमुनातीर्थमें आये, जहाँ अदितिके महाभाग पुत्र गौरकान्ति वरुणजीने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था॥ ११-१२॥

तत्र निर्जित्य संग्रामे मानुषान् देवतास्तथा।
वरं क्रतुं समाजह्रे वरुणः परवीरहा॥ १३॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वरुणने संग्राममें मनुष्यों और देवताओंको जीतकर उस श्रेष्ठ यज्ञका आयोजन किया था॥

तस्मिन् क्रतुवरे वृत्ते संग्रामः समजायत।
देवानां दानवानां च त्रैलोक्यस्य भयावहः॥ १४॥

राजन्! वह श्रेष्ठ यज्ञ समाप्त होनेपर देवताओं और दानवोंमें घोर संग्राम हुआ था, जो तीनों लोकोंके लिये भयंकर था॥ १४॥

राजसूये क्रतुश्रेष्ठे निवृत्ते जनमेजय।
जायते सुमहाघोरः संग्रामः क्षत्रियान् प्रति॥ १५॥

जनमेजय! क्रतुश्रेष्ठ राजसूयका अनुष्ठान पूर्ण हो जानेपर उस देशके क्षत्रियोंमें महाभयंकर संग्राम हुआ करता है॥

तत्रापि लाङ्गली देव ऋषीनभ्यर्च्य पूजया।
इतरेभ्योऽप्यदाद् दानमर्थिभ्यः कामदो विभुः॥ १६॥

सबकी इच्छा पूर्ण करनेवाले भगवान् हलधरने उस तीर्थमें भी स्नान एवं ऋषियोंका पूजन करके अन्य याचकोंको भी धन दान किया॥ १६॥

वनमाली ततो हृष्टः स्तूयमानो महर्षिभिः।
तस्मादादित्यतीर्थं च जगाम कमलेक्षणः॥ १७॥

तदनन्तर महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न हुए वनमालाधारी कमलनयन बलराम वहाँसे आदित्यतीर्थमें गये॥ १७॥

यत्रेष्ट्वा भगवाञ्ज्योतिर्भास्करो राजसत्तम।
ज्योतिषामाधिपत्यं च प्रभावं चाभ्यपद्यत॥ १८॥

नृपश्रेष्ठ! वहीं यज्ञ करके ज्योतिर्मय भगवान् भास्करने ज्योतियोंका आधिपत्य एवं प्रभुत्व प्राप्त किया था॥ १८॥

तस्या नद्यास्तु तीरे वै सर्वे देवाः सवासवाः।
विश्वेदेवाः समरुतो गन्धर्वाप्सरसश्च ह॥ १९॥
द्वैपायनः शुकश्चैव कृष्णश्च मधुसूदनः।
यक्षाश्च राक्षसाश्चैव पिशाचाश्च विशाम्पते॥ २०॥
एते चान्ये च बहवो योगसिद्धाः सहस्रशः।

प्रजानाथ! उसी नदीके तटपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता, विश्वेदेव, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ, द्वैपायन व्यास, शुकदेव, मधुसूदन श्रीकृष्ण, यक्ष, राक्षस एवं पिशाच—ये तथा और भी बहुत-से पुरुष सहस्रोंकी संख्यामें योगसिद्ध हो गये हैं॥

तस्मिंस्तीर्थे सरस्वत्याः शिवे पुण्ये परंतप॥ २१॥
तत्र हत्वा पुरा विष्णुरसुरौ मधुकैटभौ।
आप्लुत्य भरतश्रेष्ठ तीर्थप्रवर उत्तमे॥ २२॥
द्वैपायनश्च धर्मात्मा तत्रैवाप्लुत्य भारत।
सम्प्राप्य परमं योगं सिद्धिं च परमां गतः॥ २३॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतश्रेष्ठ! सरस्वतीके उस परम उत्तम कल्याणकारी पुण्यतीर्थमें पहले मधु और कैटभ नामक असुरोंका वध करके भगवान् विष्णुने स्नान किया था। भारत! इसी प्रकार धर्मात्मा द्वैपायन व्यासने भी उसी तीर्थमें

गोता लगाया था। इससे उन्होंने परम योगको पाकर उत्तम सिद्धि प्राप्त कर ली ॥ २१-२३ ॥

असितो देवलश्चैव तस्मिन्नेव महातपाः।
परमं योगमास्थाय ऋषिर्योगमवाप्तवान् ॥ २४ ॥

महातपस्वी असित देवल ऋषिने उसी तीर्थमें परम योगका आश्रय ले योगसिद्धि पायी थी ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आदित्यतीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें असित देवल तथा जैगीषव्य मुनिका चरित्र

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्नेव तु धर्मात्मा वसति स तपोधनः।
गार्हस्थ्यं धर्ममास्थाय ह्यसितो देवलः पुरा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! प्राचीन कालकी बात है, उसी तीर्थमें तपस्याके धनी धर्मात्मा असित देवल मुनि गृहस्थधर्मका आश्रय लेकर निवास करते थे ॥ १ ॥

धर्मनित्यः शुचिर्दान्तो न्यस्तदण्डो महातपाः।
कर्मणा मनसा वाचा समः सर्वेषु जन्तुषु ॥ २ ॥

वे सदा धर्मपरायण, पवित्र, जितेन्द्रिय, किसीको भी दण्ड न देनेवाले, महातपस्वी तथा मन, वाणी और क्रियाद्वारा सभी जीवोंके प्रति समान भाव रखनेवाले थे ॥ २ ॥

अक्रोधनो महाराज तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।
प्रियाप्रिये तुल्यवृत्तिर्यमवत्समदर्शनः ॥ ३ ॥

महाराज! उनमें क्रोध नहीं था। वे अपनी निन्दा और स्तुतिको समान समझते थे। प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें उनकी चित्तवृत्ति एक-सी रहती थी। वे यमराजकी भाँति सबके प्रति सम दृष्टि रखते थे ॥ ३ ॥

काञ्चने लोष्टभावे च समदर्शी महातपाः।
देवानपूजयन्नित्यमतिथींश्च द्विजैः सह ॥ ४ ॥

सोना हो या मिट्टीका ढेला, महातपस्वी देवल दोनोंको समान दृष्टिसे देखते थे और प्रतिदिन देवताओं तथा ब्राह्मणोंसहित अतिथियोंका पूजन एवं आदर-सत्कार करते थे ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्यरतो नित्यं सदा धर्मपरायणः।
ततोऽभ्येत्य महाभाग योगमास्थाय भिक्षुकः ॥ ५ ॥
जैगीषव्यो मुनिर्धीमांस्तस्मिंस्तीर्थे समाहितः।

वे मुनि सदा ब्रह्मचर्यपालनमें तत्पर रहते थे। उन्हें सब समय धर्मका ही सबसे बड़ा सहारा था। महाभाग! एक दिन बुद्धिमान् जैगीषव्य मुनि जो संन्यासी थे, योगका आश्रय लेकर उस तीर्थमें आये और एकाग्रचित्त होकर वहाँ रहने लगे ॥ ५½ ॥

देवलस्याश्रमे राजन्नन्यवसत् स महाद्युतिः ॥ ६ ॥
योगनित्यो महाराज सिद्धिं प्राप्तो महातपाः।

राजन्! महाराज! वे महातेजस्वी और महातपस्वी जैगीषव्य सदा योगपरायण रहकर सिद्धि प्राप्त कर चुके थे तथा देवलके ही आश्रममें रहते थे ॥ ६½ ॥

तं तत्र वसमानं तु जैगीषव्यं महामुनिम् ॥ ७ ॥
देवलो दर्शयन्नेव नैवायुञ्जत धर्मतः।
एवं तयोर्महाराज दीर्घकालो व्यतिक्रमत् ॥ ८ ॥

यद्यपि महामुनि जैगीषव्य उस आश्रममें ही रहते थे तथापि देवल मुनि उन्हें दिखाकर धर्मतः योग-साधना नहीं करते थे। इस तरह दोनोंको वहाँ रहते हुए बहुत समय बीत गया ॥ ७-८ ॥

जैगीषव्यं मुनिवरं न ददर्शाथ देवलः।
आहारकाले मतिमान् परिव्राड् जनमेजय ॥ ९ ॥
उपातिष्ठत धर्मज्ञो भैक्षकाले स देवलम्।

जनमेजय! तदनन्तर कुछ कालतक ऐसा हुआ कि देवल मुनिवर जैगीषव्यको हर समय नहीं देख पाते थे। धर्मके ज्ञाता बुद्धिमान् संन्यासी जैगीषव्य केवल भोजन या भिक्षा लेनेके समय देवलके पास आते थे ॥ ९½ ॥

स दृष्ट्वा भिक्षुरूपेण प्राप्तं तत्र महामुनिम् ॥ १० ॥
गौरवं परमं चक्रे प्रीतिं च विपुलां तथा।
देवलस्तु यथाशक्ति पूजयामास भारत ॥ ११ ॥
ऋषिदृष्टेन विधिना समा बह्वीः समाहितः।

भारत! संन्यासीके रूपमें वहाँ आये हुए महामुनि जैगीषव्यको देखकर देवल उनके प्रति अत्यन्त गौरव और महान् प्रेम प्रकट करते तथा यथाशक्ति शास्त्रीय विधिसे एकाग्रचित्त हो उनका पूजन (आदर-सत्कार) किया करते थे। बहुत वर्षोंतक उन्होंने ऐसा ही किया ॥ १०-११½ ॥

कदाचित् तस्य नृपते देवलस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
चिन्ता सुमहती जाता मुनिं दृष्ट्वा महाद्युतिम्।

नरेश्वर! एक दिन महातेजस्वी जैगीषव्य मुनिको देखकर महात्मा देवलके मनमें बड़ी भारी चिन्ता हुई ॥ १२½ ॥

समास्तु समतिक्रान्ता बह्व्यः पूजयतो मम ॥ १३ ॥
न चायमलसो भिक्षुरभ्यभाषत किंचन।

उन्होंने सोचा, 'इनकी पूजा करते हुए मुझे बहुत वर्ष बीत गये; परंतु ये आलसी भिक्षु आजतक एक बात भी नहीं बोले' ॥ १३½ ॥

एवं विगणयन्नेव स जगाम महोदधिम् ॥ १४ ॥
अन्तरिक्षचरः श्रीमान् कलशं गृह्य देवलः।

यही सोचते हुए श्रीमान् देवलमुनि कलश हाथमें लेकर आकाशमार्गसे समुद्र तटकी ओर चल दिये ॥ १४½ ॥

गच्छन्नेव स धर्मात्मा समुद्रं सरितां पतिम् ॥ १५ ॥

जैगीषव्यं ततोऽपश्यद् गतं प्रागेव भारत।

भारत! नदीपति समुद्रके पास पहुँचते ही धर्मात्मा देवलने देखा कि जैगीषव्य वहाँ पहलेसे ही गये हैं॥ १५½॥

ततः सविस्मयश्चिन्तां जगामाथामितप्रभः॥ १६॥
कथं भिक्षुरयं प्राप्तः समुद्रे स्नात एव च।
इत्येवं चिन्तयामास महर्षिरसितस्तदा॥ १७॥

तब तो अमित तेजस्वी महर्षि असित देवलको चिन्ताके साथ-साथ आश्चर्य भी हुआ। वे सोचने लगे, 'ये भिक्षु यहाँ पहले ही कैसे आ पहुँचे? इन्होंने तो समुद्रमें स्नानका कार्य भी पूर्ण कर लिया'॥ १६-१७॥

स्नात्वा समुद्रे विधिवच्छुचिर्जप्यं जजाप सः।
कृतजप्याह्निकः श्रीमानाश्रमं च जगाम ह॥ १८॥
कलशं जलपूर्णं वै गृहीत्वा जनमेजय।

जनमेजय! फिर उन्होंने समुद्रमें विधिपूर्वक स्नान करके पवित्र हो जपने योग्य मन्त्रका जप किया। जप आदि नित्य कर्म पूर्ण करके श्रीमान् देवल जलसे भरा हुआ कलश लेकर अपने आश्रमपर आये॥ १८½॥

ततः स प्रविशन्नेव स्वमाश्रमपदं मुनिः॥ १९॥
आसीनमाश्रमे तत्र जैगीषव्यमपश्यत।
न व्याहरति चैवैनं जैगीषव्यः कथंचन॥ २०॥
काष्ठभूतोऽऽश्रमपदे वसति स्म महातपाः।

आश्रममें प्रवेश करते ही देवल मुनिने वहाँ बैठे हुए जैगीषव्यको देखा, परंतु जैगीषव्यने उस समय भी किसी तरह उनसे बात नहीं की। वे महातपस्वी मुनि आश्रमपर काष्ठमौन होकर बैठे हुए थे॥ १९-२०½॥

तं दृष्ट्वा चाप्लुतं तोये सागरे सागरोपमम्॥ २१॥
प्रविष्टमाश्रमं चापि पूर्वमेव ददर्श सः।
असितो देवलो राजंश्चिन्तयामास बुद्धिमान्॥ २२॥

राजन्! समुद्रके समान अत्यन्त प्रभावशाली मुनिको समुद्रके जलमें स्नान करके अपनेसे पहले ही आश्रममें प्रविष्ट हुआ देख बुद्धिमान् असित देवलको पुनः बड़ी चिन्ता हुई॥

दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम्।
चिन्तयामास राजेन्द्र तदा स मुनिसत्तमः॥ २३॥
मया दृष्टः समुद्रे च आश्रमे च कथं त्वयम्।

राजेन्द्र! जैगीषव्यकी तपस्याका वह योगजनित प्रभाव देखकर ये मुनिश्रेष्ठ देवल फिर सोचने लगे—'मैंने इन्हें अभी-अभी समुद्रतट पर देखा है, फिर ये आश्रममें कैसे उपस्थित हैं?'॥ २३½॥

एवं विगणयन्नेव स मुनिर्मन्त्रपारगः॥ २४॥
उत्पपाताश्रमात् तस्मादन्तरिक्षं विशाम्पते।
जिज्ञासार्थं तदा भिक्षोर्जैगीषव्यस्य देवलः॥ २५॥

प्रजानाथ! ऐसा विचार करते हुए वे मन्त्रशास्त्रके पारंगत विद्वान् मुनि उस आश्रमसे आकाशकी ओर उड़ चले। उस समय भिक्षु जैगीषव्यकी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने ऐसा किया॥ २४-२५॥

सोऽन्तरिक्षचरान् सिद्धान् समपश्यत् समाहितान्।
जैगीषव्यं च तैः सिद्धैः पूज्यमानमपश्यत॥ २६॥

ऊपर जाकर उन्होंने बहुत-से अन्तरिक्षचारी एकाग्रचित्तवाले सिद्धोंको देखा। साथ ही उन सिद्धोंके द्वारा पूजे जाते हुए जैगीषव्य मुनिका भी उन्हें दर्शन हुआ॥

ततोऽसितः सुसंरब्धो व्यवसायी दृढव्रतः।
अपश्यद् वै दिवं यान्तं जैगीषव्यं स देवलः॥ २७॥

तदनन्तर दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले दृढ़निश्चयी असित देवल मुनि रोषावेशमें भर गये। फिर उन्होंने जैगीषव्यको स्वर्गलोकमें जाते देखा॥ २७॥

तस्मात् तु पितृलोकं तं व्रजन्तं सोऽन्वपश्यत।
पितृलोकाच्च तं यान्तं याम्यं लोकमपश्यत॥ २८॥

स्वर्गलोकसे उन्हें पितृलोकमें और पितृलोकसे यमलोकमें जाते देखा॥ २८॥

तस्मादपि समुत्पत्य सोमलोकमभिप्लुतम्।
व्रजन्तमन्वपश्यत् स जैगीषव्यं महामुनिम्॥ २९॥

वहाँसे भी ऊपर उठकर महामुनि जैगीषव्य जलमय चन्द्रलोकमें जाते दिखायी दिये॥ २९॥

लोकान् समुत्पतन्तं तु शुभानेकान्तयाजिनाम्।
ततोऽग्निहोत्रिणां लोकांस्ततश्चाप्युत्पपात ह॥ ३०॥

फिर वे एकान्ततः यज्ञ करनेवाले पुरुषोंके उत्तम लोकोंकी ओर उड़ते दिखायी दिये। वहाँसे वे अग्निहोत्रियोंके लोकोंमें गये॥ ३०॥

दर्शं च पौर्णमासं च ये यजन्ति तपोधनाः।
तेभ्यः स ददृशे धीमाँल्लोकेभ्यः पशुयाजिनाम्॥ ३१॥

उन लोकोंसे ऊपर उठकर वे बुद्धिमान् मुनि उन तपोधनोंके लोकमें गये, जो दर्श और पौर्णमास यज्ञ करते हैं। वहाँसे वे पशुयाग करनेवालोंके लोकोंमें जाते दिखायी दिये॥

व्रजन्तं लोकममलमपश्यद् देवपूजितम्।
चातुर्मास्यैर्बहुविधैर्यजन्ते ये तपोधनाः॥ ३२॥

जो तपस्वी नाना प्रकारके चातुर्मास यज्ञ करते हैं, उनके निर्मल लोकोंमें जाते हुए जैगीषव्यको देवल मुनिने देखा। वे वहाँ देवताओंसे पूजित हो रहे थे॥ ३२॥

तेषां स्थानं ततो यातं तथाग्निष्टोमयाजिनाम्।
अग्निष्टुतेन च तथा ये यजन्ति तपोधनाः॥ ३३॥
तत् स्थानमनुसम्प्राप्तमन्वपश्यत देवलः।

वहाँसे अग्निष्टोमयाजी तथा अग्निष्टुत् यज्ञके द्वारा यज्ञ करनेवाले तपोधनोंके लोकमें पहुँचे हुए जैगीषव्यको देवल मुनिने देखा॥ ३३½॥

वाजपेयं क्रतुवरं तथा बहुसुवर्णकम्॥ ३४॥
आहरन्ति महाप्राज्ञास्तेषां लोकेष्वपश्यत।

जो महाप्राज्ञ पुरुष बहुत-सी सुवर्णमयी दक्षिणाओंसे युक्त क्रतुश्रेष्ठ वाजपेय यज्ञका अनुष्ठान करते हैं, उनके लोकोंमें भी उन्होंने जैगीषव्यका दर्शन किया॥ ३४½॥

यजन्ते राजसूयेन पुण्डरीकेण चैव ये॥ ३५॥

तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।

जो राजसूय और पुण्डरीक यज्ञके द्वारा यजन करते हैं, उनके लोकोंमें भी देवलने जैगीषव्यको देखा ॥ ३५½ ॥

अश्वमेधं क्रतुवरं नरमेधं तथैव च ॥ ३६ ॥
आहरन्ति नरश्रेष्ठास्तेषां लोकेष्वपश्यत ।

जो नरश्रेष्ठ क्रतुओंमें उत्तम अश्वमेध तथा नरमेधका अनुष्ठान करते हैं, उनके लोकोंमें भी उनका दर्शन किया ॥

सर्वमेधं च दुष्प्रापं तथा सौत्रामणिं च ये ॥ ३७ ॥
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।

जो लोग दुर्लभ सर्वमेध तथा सौत्रामणि यज्ञ करते हैं, उनके लोकोंमें भी देवलने जैगीषव्यको देखा ॥ ३७½ ॥

द्वादशाहैश्च सत्रैश्च यजन्ते विविधैर्नृप ॥ ३८ ॥
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।

नरेश्वर ! जो नाना प्रकारके द्वादशाह यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं, उनके लोकोंमें भी देवलने जैगीषव्यका दर्शन किया॥

मैत्रावरुणयोर्लोकानादित्यानां तथैव च ॥ ३९ ॥
सलोकतामनुप्राप्तमपश्यत ततोऽसितः ।

तत्पश्चात् असितने मित्र, वरुण और आदित्योंके लोकोंमें पहुँचे हुए जैगीषव्यको देखा ॥ ३९½ ॥

रुद्राणां च वसूनां च स्थानं यच्च बृहस्पतेः ॥ ४० ॥
तानि सर्वाण्यतीतानि समपश्यत् ततोऽसितः ।

तदनन्तर रुद्र, वसु और बृहस्पतिके जो स्थान हैं, उन सबको लाँघकर ऊपर उठे हुए जैगीषव्यका असित देवलने दर्शन किया ॥ ४०½ ॥

आरुह्य च गवां लोकं प्रयातो ब्रह्मसत्रिणाम् ॥ ४१ ॥
लोकानपश्यद् गच्छन्तं जैगीषव्यं ततोऽसितः ।

इसके बाद असितने गौओंके लोकमें जाकर जैगीषव्यको ब्रह्मसत्र करनेवालोंके लोकोंमें जाते देखा ॥ ४१½ ॥

त्रीँल्लोकानपरान् विप्रमुत्पतन्तं स्वतेजसा ॥ ४२ ॥
पतिव्रतानां लोकांश्च व्रजन्तं सोऽन्वपश्यत ।

तत्पश्चात् देवलने देखा कि विप्रवर जैगीषव्य मुनि अपने तेजसे ऊपर-ऊपरके तीन लोकोंको लाँघकर पतिव्रताओंके लोकमें जा रहे हैं ॥ ४२½ ॥

ततो मुनिवरं भूयो जैगीषव्यमथासितः ॥ ४३ ॥
नान्वपश्यत लोकस्थमन्तर्हितमरिंदम ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश ! इसके बाद असितने मुनिवर जैगीषव्यको पुनः किसी लोकमें स्थित नहीं देखा । वे अदृश्य हो गये थे ॥ ४३½ ॥

सोऽचिन्तयन्महाभागो जैगीषव्यस्य देवलः ॥ ४४ ॥
प्रभावं सुव्रतत्वं च सिद्धिं योगस्य चातुलाम् ।

तत्पश्चात् महाभाग देवलने जैगीषव्यके प्रभाव, उत्तम व्रत और अनुपम योगसिद्धिके विषयमें विचार किया ॥

असितोऽपृच्छत तदा सिद्धाँल्लोकेषु सत्तमान्॥ ४५ ॥
प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा धीरस्तान् ब्रह्मसत्रिणः ।
जैगीषव्यं न पश्यामि तं शंसध्वं महौजसम् ॥ ४६ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।

इसके बाद धैर्यवान् असितने उन लोकोंमें रहनेवाले ब्रह्मयाजी सिद्धों और साधु पुरुषोंसे हाथ जोड़कर विनीतभावसे पूछा—'महात्माओ ! मैं महातेजस्वी जैगीषव्यको अब देख नहीं रहा हूँ । आप उनका पता बतावें । मैं उनके विषयमें सुनना चाहता हूँ । इसके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है'॥

सिद्धा ऊचुः

शृणु देवल भूतार्थं शंसतां नो दृढव्रत ॥ ४७ ॥
जैगीषव्यः स वै लोकं शाश्वतं ब्रह्मणो गतः ।

सिद्धोंने कहा—दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले देवल ! सुनो । हम तुम्हें वह बात बता रहे हैं, जो हो चुकी है । जैगीषव्य मुनि सनातन ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे हैं ॥

वैशम्पायन उवाच

स श्रुत्वा वचनं तेषां सिद्धानां ब्रह्मसत्रिणाम्॥ ४८ ॥
असितो देवलस्तूर्णमुत्पपात पपात च ।
ततः सिद्धास्त ऊचुर्हि देवलं पुनरेव ह ॥ ४९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उन ब्रह्मयाजी सिद्धोंकी बात सुनकर देवलमुनि तुरंत ऊपरकी ओर उछले, परंतु नीचे गिर पड़े । तब उन सिद्धोंने पुनः देवलसे कहा—॥

न देवलगतिस्तत्र तव गन्तुं तपोधन ।
ब्रह्मणः सदने विप्र जैगीषव्यो यदाप्तवान् ॥ ५० ॥

'तपोधन देवल ! विप्रवर ! जहाँ जैगीषव्य गये हैं, उस ब्रह्मलोकमें जानेकी शक्ति तुममें नहीं है' ॥ ५० ॥

वैशम्पायन उवाच

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा सिद्धानां देवलः पुनः ।
आनुपूर्व्येण लोकांस्तान् सर्वानवततार ह ॥ ५१ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उन सिद्धोंकी बात सुनकर देवलमुनि पुनः क्रमशः उन सभी लोकोंमें होते हुए नीचे उतर आये ॥ ५१ ॥

स्वमाश्रमपदं पुण्यमाजगाम पतत्रिवत् ।
प्रविशन्नेव चापश्यज्जैगीषव्यं स देवलः ॥ ५२ ॥

पक्षीकी तरह उड़ते हुए वे अपने पुण्यमय आश्रमपर आ पहुँचे । आश्रमके भीतर प्रवेश करते ही देवलने जैगीषव्य मुनिको वहाँ बैठा देखा ॥ ५२ ॥

ततो बुद्ध्या व्यगणयद् देवलो धर्मयुक्तया ।
दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम् ॥ ५३ ॥

तब देवलने जैगीषव्यकी तपस्याका वह योगजनित प्रभाव देखकर धर्मयुक्त बुद्धिसे उसपर विचार किया ॥ ५३ ॥

ततोऽब्रवीन्महात्मानं जैगीषव्यं स देवलः ।
विनयावनतो राजन्नुपसर्प्य महामुनिम् ॥ ५४ ॥

राजन् ! इसके बाद महामुनि महात्मा जैगीषव्यके पास जाकर देवलने विनीतभावसे कहा—॥ ५४ ॥

मोक्षधर्मं समास्थातुमिच्छेयं भगवन्नहम् ।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा उपदेशं चकार सः ॥ ५५ ॥

विधिं च योगस्य परं कार्याकार्यस्य शास्त्रतः ।
संन्यासकृतबुद्धिं तं ततो दृष्ट्वा महातपाः ॥ ५६ ॥
सर्वाश्चास्य क्रियाश्चक्रे विधिदृष्टेन कर्मणा ।

'भगवन् ! मैं मोक्षधर्मका आश्रय लेना चाहता हूँ ।' उनकी वह बात सुनकर महातपस्वी जैगीषव्यने उनका संन्यास लेनेका विचार जानकर उन्हें ज्ञानका उपदेश किया । साथ ही योगकी उत्तम विधि बताकर शास्त्रके अनुसार कर्तव्य-अकर्तव्यका भी उपदेश दिया । इतना ही नहीं, उन्होंने शास्त्रीय विधिके अनुसार उनके संन्यासग्रहणसम्बन्धी समस्त कार्य (दीक्षा और संस्कार आदि) किये ॥ ५५-५६½ ॥

संन्यासकृतबुद्धिं तं भूतानि पितृभिः सह ॥ ५७ ॥
ततो दृष्ट्वा प्ररुरुदुः कोऽस्मान् संविभजिष्यति ।

उनका संन्यास लेनेका विचार जानकर पितरोंसहित समस्त प्राणी यह कहते हुए रोने लगे 'कि अब हमें कौन विभागपूर्वक अन्नदान करेगा' ॥ ५७½ ॥

देवलस्तु वचः श्रुत्वा भूतानां करुणं तथा ॥ ५८ ॥
दिशो दश व्याहरतां मोक्षं त्यक्तुं मनो दधे ।

दसों दिशाओंमें विलाप करते हुए उन प्राणियोंका करुणायुक्त वचन सुनकर देवलने मोक्षधर्म (संन्यास) को त्याग देनेका विचार किया ॥ ५८½ ॥

ततस्तु फलमूलानि पवित्राणि च भारत ॥ ५९ ॥
पुष्पाण्योषधयश्चैव रोरूयन्ति सहस्रशः ।
पुनर्नो देवलः क्षुद्रो नूनं छेत्स्यति दुर्मतिः ॥ ६० ॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दत्त्वा नावबुध्यते ।

भारत ! यह देख फल-मूल, पवित्री (कुश), पुष्प और ओषधियाँ—ये सहस्रों पदार्थ यह कहकर बारंबार रोने लगे कि 'यह खोटी बुद्धिवाला क्षुद्र देवल निश्चय ही फिर हमारा उच्छेद करेगा । तभी तो यह सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देकर भी अब अपनी प्रतिज्ञाको स्मरण नहीं करता है' ॥५९-६०½॥

ततो भूयो व्यगणयत् स्वबुद्ध्या मुनिसत्तमः ॥ ६१ ॥
मोक्षे गार्हस्थ्यधर्मे वा किं नु श्रेयस्करं भवेत्।

तब मुनिश्रेष्ठ देवल पुनः अपनी बुद्धिसे विचार करने लगे, मोक्ष और गार्हस्थ्यधर्म इनमेंसे कौन-सा मेरे लिये श्रेयस्कर होगा ॥ ६१½ ॥

इति निश्चित्य मनसा देवलो राजसत्तम ॥ ६२ ॥
त्यक्त्वा गार्हस्थ्यधर्मं स मोक्षधर्ममरोचयत् ।

नृपश्रेष्ठ ! देवलने मन-ही-मन इस बातपर निश्चित विचार करके गार्हस्थ्यधर्मको त्यागकर अपने लिये मोक्षधर्मको पसंद किया ॥ ६२½ ॥

एवमादीनि संचिन्त्य देवलो निश्चयात् ततः ॥ ६३ ॥
प्राप्तवान् परमां सिद्धिं परं योगं च भारत ।

भारत ! इन सब बातोंको सोच-विचारकर देवलने जो संन्यास लेनेका ही निश्चय किया, उससे उन्होंने परमसिद्धि और उत्तम योगको प्राप्त कर लिया ॥ ६३½ ॥

ततो देवाः समागम्य बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ६४ ॥
जैगीषव्ये तपश्चास्य प्रशंसन्ति तपस्विनः ।

तब बृहस्पति आदि सब देवता और तपस्वी वहाँ आकर जैगीषव्य मुनिके तपकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६४½ ॥

अथाब्रवीदृषिवरो देवान् वै नारदस्तथा ॥ ६५ ॥
जैगीषव्ये तपो नास्ति विस्मापयति योऽसितम् ।

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारदने देवताओंसे कहा—'जैगीषव्यमें तपस्या नहीं है; क्योंकि ये असित मुनिको अपना प्रभाव दिखाकर आश्चर्यमें डाल रहे हैं' ॥ ६५½ ॥

तमेवंवादिनं धीरं प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ॥ ६६ ॥
नैवमित्येव शंसन्तो जैगीषव्यं महामुनिम् ।
नातः परतरं किंचित् तुल्यमस्ति प्रभावतः ॥ ६७ ॥
तेजसस्तपसश्चास्य योगस्य च महात्मनः ।

ऐसा कहनेवाले ज्ञानी नारदमुनिको देवताओंने महामुनि जैगीषव्यकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार उत्तर दिया—'आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये; क्योंकि प्रभाव, तेज, तपस्या और योगकी दृष्टिसे इन महात्मासे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है' ॥ ६६-६७½ ॥

एवं प्रभावो धर्मात्मा जैगीषव्यस्तथासितः ।
तयोरिदं स्थानवरं तीर्थं चैव महात्मनोः ॥ ६८ ॥

धर्मात्मा जैगीषव्य तथा असितमुनिका ऐसा ही प्रभाव था । उन दोनों महात्माओंका यह श्रेष्ठ स्थान ही तीर्थ है ॥

तत्राप्युपस्पृश्य ततो महात्मा
दत्त्वा च वित्तं हलभृद् द्विजेभ्यः ।
अवाप्य धर्मं परमार्थकर्मा
जगाम सोमस्य महत् सुतीर्थम्॥ ६९ ॥

पारमार्थिक कर्म करनेवाले महात्मा हलधर वहाँ भी स्नान करके ब्राह्मणोंको धन-दान दे धर्मका फल पाकर सोमके महान् एवं उत्तम तीर्थमें गये ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सारस्वततीर्थकी महिमाके प्रसंगमें दधीच ऋषि और सारस्वत मुनिके चरित्रका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

यत्रेजिवानुडुपती राजसूयेन भारत ।
तस्मिंस्तीर्थे महानासीत् संग्रामस्तारकामयः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतनन्दन ! वही सोमतीर्थ है, जहाँ नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमाने राजसूय यज्ञ किया था । उसी तीर्थमें महान् तारकामय संग्राम हुआ था ॥ १ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य बलो दत्त्वा दानानि चात्मवान् ।
सारस्वतस्य धर्मात्मा मुनेस्तीर्थं जगाम ह ॥ २ ॥

धर्मात्मा एवं मनस्वी बलरामजी उस तीर्थमें भी स्नान एवं दान करके सारस्वत मुनिके तीर्थमें गये ॥ २ ॥

तत्र द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजोत्तमान् ।
वेदानध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥ ३ ॥

प्राचीनकालमें जब बारह वर्षोंतक अनावृष्टि हो गयी थी, सारस्वत मुनिने वहीं उत्तम ब्राह्मणोंको वेदाध्ययन कराया था॥

जनमेजय उवाच

कथं द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजोत्तमान् ।
ऋषीनध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥ ४ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! प्राचीन कालमें सारस्वत मुनिने बारह वर्षोंकी अनावृष्टिके समय उत्तम ब्राह्मणोंको किस प्रकार वेदोंका अध्ययन कराया था ? ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

आसीत् पूर्वं महाराज मुनिर्धीमान् महातपाः ।
दधीच इति विख्यातो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—महाराज ! पूर्वकालमें एक बुद्धिमान् महातपस्वी मुनि रहते थे, जो ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय थे । उनका नाम था दधीच ॥ ५ ॥

तस्यातितपसः शक्रो बिभेति सततं विभो ।
न स लोभयितुं शक्यः फलैर्बहुविधैरपि ॥ ६ ॥

प्रभो ! उनकी भारी तपस्यासे इन्द्र सदा डरते रहते थे । नाना प्रकारके फलोंका प्रलोभन देनेपर भी उन्हें लुभाया नहीं जा सकता था ॥ ६ ॥

प्रलोभनार्थं तस्याथ प्राहिणोत् पाकशासनः ।
दिव्यामप्सरसं पुण्यां दर्शनीयामलम्बुषाम् ॥ ७ ॥

तब इन्द्रने मुनिको लुभानेके लिये एक पवित्र दर्शनीय एवं दिव्य अप्सरा भेजी, जिसका नाम था अलम्बुषा ॥ ७ ॥

तस्य तर्पयतो देवान् सरस्वत्यां महात्मनः ।
समीपतो महाराज सोपातिष्ठत भाविनी ॥ ८ ॥

महाराज ! एक दिन, जब महात्मा दधीच सरस्वती नदीमें देवताओंका तर्पण कर रहे थे, वह माननीय अप्सरा उनके पास जाकर खड़ी हो गयी ॥ ८ ॥

तां दिव्यवपुषं दृष्ट्वा तस्यर्षेर्भावितात्मनः ।
रेतः स्कन्नं सरस्वत्यां तत् सा जग्राह निम्नगा॥ ९ ॥

उस दिव्यरूपधारिणी अप्सराको देखकर उन विशुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षिका वीर्य सरस्वतीके जलमें गिर पड़ा । उस वीर्यको सरस्वती नदीने स्वयं ग्रहण कर लिया ॥ ९ ॥

कुक्षौ चाप्यदधाद् दृष्ट्वा तद् रेतः पुरुषर्षभ ।
सा दधार च तं गर्भं पुत्रहेतोर्महानदी ॥ १० ॥

पुरुषप्रवर ! उस महानदीने हर्षमें भरकर पुत्रके लिये उस वीर्यको अपनी कुक्षिमें रख लिया और इस प्रकार वह गर्भवती हो गयी ॥ १० ॥

सुषुवे चापि समये पुत्रं सा सरितां वरा ।
जगाम पुत्रमादाय तमृषिं प्रति च प्रभो ॥ ११ ॥

प्रभो ! समय आनेपर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने एक पुत्रको जन्म दिया और उसे लेकर वह ऋषिके पास गयी ॥

ऋषिसंसदि तं दृष्ट्वा सा नदी मुनिसत्तमम् ।
ततः प्रोवाच राजेन्द्र ददती पुत्रमस्य तम् ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! ऋषियोंकी सभामें बैठे हुए मुनिश्रेष्ठ दधीचको देखकर उन्हें उनका वह पुत्र सौंपती हुई सरस्वती नदी इस प्रकार बोली—॥ १२ ॥

ब्रह्मर्षे तव पुत्रोऽयं त्वद्भक्त्या धारितो मया ।
दृष्ट्वा तेऽप्सरसं रेतो यत् स्कन्नं प्रागलम्बुषाम्॥ १३ ॥
तत् कुक्षिणा वै ब्रह्मर्षे त्वद्भक्त्या धृतवत्यहम् ।
न विनाशमिदं गच्छेत् त्वत्तेज इति निश्चयात्॥ १४ ॥
प्रतिगृह्णीष्व पुत्रं स्वं मया दत्तमनिन्दितम् ।

'ब्रह्मर्षे ! यह आपका पुत्र है । इसे आपके प्रति भक्ति होनेके कारण मैंने अपने गर्भमें धारण किया था । ब्रह्मर्षे ! पहले अलम्बुषा नामक अप्सराको देखकर जो आपका वीर्य स्खलित हुआ था, उसे आपके प्रति भक्ति होनेके कारण मैंने अपने गर्भमें धारण कर लिया था; क्योंकि मेरे मनमें यह विचार हुआ था कि आपका यह तेज नष्ट न होने पावे । अतः आप मेरे दिये हुए अपने इस अनिन्दनीय पुत्रको ग्रहण कीजिये' ॥ १३-१४½ ॥

इत्युक्तः प्रतिजग्राह प्रीतिं चावाप पुष्कलाम् ॥ १५ ॥
स्वसुतं चाप्यजिघ्रत् तं मूर्ध्नि प्रेम्णा द्विजोत्तमः ।
परिष्वज्य चिरं कालं तदा भरतसत्तम ॥ १६ ॥
सरस्वत्यै वरं प्रादात् प्रीयमाणो महामुनिः ।
विश्वेदेवाः सपितरो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ १७ ॥
तृप्तिं यास्यन्ति सुभगे तर्प्यमाणास्तवाम्भसा ।

उसके ऐसा कहनेपर मुनिने उस पुत्रको ग्रहण कर लिया और वे बड़े प्रसन्न हुए । भरतभूषण ! उन द्विजश्रेष्ठने बड़े प्रेमसे अपने उस पुत्रका मस्तक सूँघा और दीर्घकालतक छातीसे लगाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए महामुनिने सरस्वतीको वर दिया—'सुभगे ! तुम्हारे जलसे तर्पण करनेपर विश्वेदेव, पितृगण तथा गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदाय सभी तृप्तिलाभ करेंगे' ॥ १५–१७½ ॥

इत्युक्त्वा स तु तुष्टाव वचोभिर्वै महानदीम् ॥ १८ ॥
प्रीतः परमहृष्टात्मा यथावच्छृणु पार्थिव ।

राजन् ! ऐसा कहकर अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल हृदयसे मुनिने प्रेमपूर्वक उत्तम वाणीद्वारा सरस्वती देवीका स्तवन किया । उस स्तुतिको तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥ १८½ ॥

प्रसूतासि महाभागे सरसो ब्रह्मणः पुरा ॥ १९ ॥
जानन्ति त्वां सरिच्छ्रेष्ठे मुनयः संशितव्रताः ।
मम प्रियकरी चापि सततं प्रियदर्शने ॥ २० ॥
तस्मात् सारस्वतः पुत्रो महांस्ते वरवर्णिनि ।
तवैव नाम्ना प्रथितः पुत्रस्ते लोकभावनः ॥ २१ ॥

'महाभागे ! तुम पूर्वकालमें ब्रह्माजीके सरोवरसे प्रकट हुई

हो । सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती ! कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनि तुम्हारी महिमाको जानते हैं । प्रियदर्शने ! तुम सदा मेरा भी प्रिय करती रही हो; अतः वरवर्णिनि ! तुम्हारा यह लोकभावन महान् पुत्र तुम्हारे ही नामपर 'सारस्वत' कहलायेगा ॥

सारस्वत इति ख्यातो भविष्यति महातपाः ।
एष द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजर्षभान् ॥ २२ ॥
सारस्वतो महाभागे वेदानध्यापयिष्यति ।

'यह सारस्वत नामसे विख्यात महातपस्वी होगा । महाभागे ! इस संसारमें बारह वर्षोंतक जब वर्षा बंद हो जायगी, उस समय यह सारस्वत ही श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेद पढ़ायेगा ॥ २२½ ॥

पुण्याभ्यश्च सरिद्भ्यस्त्वं सदा पुण्यतमा शुभे॥ २३ ॥
भविष्यसि महाभागे मत्प्रसादात् सरस्वति ।

'शुभे ! महासौभाग्यशालिनी सरस्वति ! तुम मेरे प्रसादसे अन्य पवित्र सरिताओंकी अपेक्षा सदा ही अधिक पवित्र बनी रहोगी' ॥ २३½ ॥

एवं सा संस्तुतानेन वरं लब्ध्वा महानदी ॥ २४ ॥
पुत्रमादाय मुदिता जगाम भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार उनके द्वारा प्रशंसित हो वर पाकर वह महानदी पुत्रको लेकर प्रसन्नतापूर्वक चली गयी ॥

एतस्मिन्नेव काले तु विरोधे देवदानवैः ॥ २५ ॥
शक्रः प्रहरणान्वेषी लोकांस्त्रीन् विचचार ह ।

इसी समय देवताओं और दानवोंमें विरोध होनेपर इन्द्र अस्त्र-शस्त्रोंकी खोजके लिये तीनों लोकोंमें विचरण करने लगे॥

न चोपलेभे भगवाञ्छक्रः प्रहरणं तदा ॥ २६ ॥
यद्वै तेषां भवेद् योग्यं वधाय विबुधद्विषाम् ।

परंतु भगवान् शक्र उस समय ऐसा कोई हथियार न पा सके, जो उन देवद्रोहियोंके वधके लिये उपयोगी हो सके ॥

ततोऽब्रवीत् सुराञ्शक्रो न मे शक्या महासुराः॥ २७ ॥
ऋतेऽस्थिभिर्दधीचस्य निहन्तुं त्रिदशद्विषः ।

तदनन्तर इन्द्रने देवताओंसे कहा—'दधीच मुनिकी अस्थियोंके सिवा और किसी अस्त्र-शस्त्रसे मेरे द्वारा देवद्रोही महान् असुर नहीं मारे जा सकते ॥ २७½ ॥

तस्माद् गत्वा ऋषिश्रेष्ठो याच्यतां सुरसत्तमाः॥ २८ ॥
दधीचास्थीनि देहीति तैर्वधिष्यामहे रिपून् ।

'अतः सुरश्रेष्ठगण ! तुमलोग जाकर मुनिवर दधीचसे याचना करो कि आप अपनी हड्डियाँ हमें दे दें । हम उन्हींके द्वारा अपने शत्रुओंका वध करेंगे' ॥ २८½ ॥

स च तैर्याचितोऽस्थीनि यत्नादृषिवरस्तदा ॥ २९ ॥
प्राणत्यागं कुरुश्रेष्ठ चकारैवाविचारयन् ।
स लोकानक्षयान् प्राप्तो देवप्रियकरस्तदा ॥ ३० ॥

कुरुश्रेष्ठ ! देवताओंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अस्थियोंके लिये याचना की जानेपर मुनिवर दधीचने बिना कोई विचार किये अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया । उस समय देवताओंका प्रिय करनेके कारण वे अक्षय लोकोंमें चले गये ॥ २९-३० ॥

तस्यास्थिभिरथो शक्रः सम्प्रहृष्टमनास्तदा ।
कारयामास दिव्यानि नानाप्रहरणानि च ॥ ३१ ॥
गदावज्राणि चक्राणि गुरून् दण्डांश्च पुष्कलान्।

तब इन्द्रने प्रसन्नचित्त होकर दधीचकी हड्डियोंसे गदा, वज्र, चक्र और बहुसंख्यक भारी दण्ड आदि नाना प्रकारके दिव्य आयुध तैयार कराये ॥ ३१½ ॥

स हि तीव्रेण तपसा सम्भृतः परमर्षिणा ॥ ३२ ॥
प्रजापतिसुतेनाथ भृगुणा लोकभावनः ।
अतिकायः स तेजस्वी लोकसारो विनिर्मितः ॥ ३३ ॥

ब्रह्माजीके पुत्र महर्षि भृगुने तीव्र तपस्यासे भरे हुए लोकमङ्गलकारी विशालकाय एवं तेजस्वी दधीचको उत्पन्न किया था । ऐसा जान पड़ता था, मानो सम्पूर्ण जगत्के सारतत्त्वसे उनका निर्माण किया गया हो ॥ ३२-३३ ॥

जज्ञे शैलगुरुः प्रांशुर्महिम्ना प्रथितः प्रभुः ।
नित्यमुद्विजते चास्य तेजसः पाकशासनः ॥ ३४ ॥

वे पर्वतके समान भारी और ऊँचे थे । अपनी महत्ताके लिये वे सामर्थ्यशाली मुनि सर्वत्र विख्यात थे । पाकशासन इन्द्र उनके तेजसे सदा उद्विग्न रहते थे ॥ ३४ ॥

तेन वज्रेण भगवान् मन्त्रयुक्तेन भारत ।
भृशं क्रोधविसृष्टेन ब्रह्मतेजोद्भवेन च ॥ ३५ ॥
दैत्यदानववीराणां जघान नवतीर्नव ।

भरतनन्दन ! ब्रह्मतेजसे प्रकट हुए उस वज्रको मन्त्रोच्चारणके साथ अत्यन्त क्रोधपूर्वक छोड़कर भगवान् इन्द्रने आठ सौ दस दैत्य-दानव वीरोंका वध कर डाला ॥ ३५½ ॥

अथ काले व्यतिक्रान्ते महत्यतिभयंकरे ॥ ३६ ॥
अनावृष्टिरनुप्राप्ता राजन् द्वादशवार्षिकी ।

राजन् ! तदनन्तर सुदीर्घ काल व्यतीत होनेपर जगत्में बारह वर्षोंतक स्थिर रहनेवाली अत्यन्त भयंकर अनावृष्टि प्राप्त हुई ॥ ३६½ ॥

तस्यां द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां महर्षयः ॥ ३७ ॥
वृत्त्यर्थं प्राद्रवन् राजन् क्षुधार्ताः सर्वतोदिशम् ।

नरेश्वर ! बारह वर्षोंकी उस अनावृष्टिमें सब महर्षि भूखसे पीड़ित हो जीविकाके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ने लगे ॥

दिग्भ्यस्तान् प्रद्रुतान् दृष्ट्वा मुनिः सारस्वतस्तदा ॥ ३८ ॥
गमनाय मतिं चक्रे तं प्रोवाच सरस्वती ।

सम्पूर्ण दिशाओंसे भागकर इधर-उधर जाते हुए उन महर्षियोंको देखकर सारस्वत मुनिने भी वहाँसे अन्यत्र जानेका विचार किया । तब सरस्वतीदेवीने उनसे कहा ॥ ३८½ ॥

न गन्तव्यमितः पुत्र तवाहारमहं सदा ॥ ३९ ॥
दास्यामि मत्स्यप्रवरानुष्यतामिह भारत ।

भरतनन्दन ! सरस्वती इस प्रकार बोलीं—'बेटा ! तुम्हें यहाँसे कहीं नहीं जाना चाहिये । मैं सदा तुम्हें भोजनके लिये उत्तमोत्तम मछलियाँ दूँगी; अतः तुम यहीं रहो' ॥ ३९½ ॥

इत्युक्तस्तर्पयामास स पितॄन् देवतास्तथा ॥ ४० ॥
आहारमकरोन्नित्यं प्राणान् वेदांश्च धारयन् ।

सरस्वतीके ऐसा कहनेपर सारस्वत मुनि वहीं रहकर देवताओं और पितरोंको तृप्त करने लगे । वे प्रतिदिन भोजन करते और अपने प्राणों तथा वेदोंकी रक्षा करते थे ॥४०½॥

अथ तस्यामनावृष्ट्यामतीतायां महर्षयः ॥ ४१ ॥
अन्योन्यं परिपप्रच्छुः पुनः स्वाध्यायकारणात् ।

जब बारह वर्षोंकी वह अनावृष्टि प्रायः बीत गयी, तब महर्षि पुनः स्वाध्यायके लिये एक-दूसरेसे पूछने लगे ॥४१½॥

तेषां क्षुधापरीतानां नष्टा वेदाभिधावताम् ॥ ४२ ॥
सर्वेषामेवं राजेन्द्र न कश्चित् प्रतिभानवान् ।

राजेन्द्र ! उस समय भूखसे पीड़ित होकर इधर-उधर दौड़नेवाले सभी महर्षि वेद भूल गये थे । कोई भी ऐसा प्रतिभाशाली नहीं था, जिसे वेदोंका स्मरण रह गया हो ॥

अथ कश्चिदृषिस्तेषां सारस्वतमुपेयिवान् ॥ ४३ ॥
कुर्वाणं संशितात्मानं स्वाध्यायमृषिसत्तमम् ।

तदनन्तर उनमेंसे कोई ऋषि प्रतिदिन स्वाध्याय करनेवाले शुद्धात्मा मुनिवर सारस्वतके पास आये ॥ ४३½ ॥

स गत्वाऽऽचष्ट तेभ्यश्च सारस्वतमतिप्रभम् ॥ ४४ ॥
स्वाध्यायममरप्रख्यं कुर्वाणं विजने वने ।

फिर वहाँसे जाकर उन्होंने सब महर्षियोंको बताया कि 'देवताओंके समान अत्यन्त कान्तिमान् एक सारस्वत मुनि हैं, जो निर्जन वनमें रहकर सदा स्वाध्याय करते हैं' ॥ ४४½ ॥

ततः सर्वे समाजग्मुस्तत्र राजन् महर्षयः ॥ ४५ ॥
सारस्वतं मुनिश्रेष्ठमिदमूचुः समागताः ।
अस्मानध्यापयस्वेति तानुवाच ततो मुनिः ॥ ४६ ॥
शिष्यत्वमुपगच्छध्वं विधिवद्धि ममेत्युत ।

राजन् ! यह सुनकर वे सब महर्षि वहाँ आये और आकर मुनिश्रेष्ठ सारस्वतसे इस प्रकार बोले—'मुने ! आप हम लोगोंको वेद पढ़ाइये ।' तब सारस्वतने उनसे कहा—'आपलोग विधिपूर्वक मेरी शिष्यता ग्रहण करें' ॥ ४५-४६½ ॥

तत्राब्रुवन् मुनिगणा बालस्त्वमसि पुत्रक ॥ ४७ ॥
स तानाह न मे धर्मो नश्येदिति पुनर्मुनीन् ।
यो ह्यधर्मेण वै ब्रूयाद् गृह्णीयाद् योऽप्यधर्मतः ॥ ४८ ॥
हीयेतां तावुभौ क्षिप्रं स्यातां वा वैरिणावुभौ ।

तब वहाँ उन मुनियोंने कहा—'बेटा ! तुम तो अभी बालक हो' (हम तुम्हारे शिष्य कैसे हो सकते हैं ?) तब सारस्वतने पुनः उन मुनियोंसे कहा—'मेरा धर्म नष्ट न हो, इसलिये मैं आपलोगोंको शिष्य बनाना चाहता हूँ; क्योंकि जो अधर्मपूर्वक वेदोंका प्रवचन करता है तथा जो अधर्मपूर्वक उन वेदमन्त्रोंको ग्रहण करता है, वे दोनों शीघ्र ही हीनावस्थाको प्राप्त होते हैं अथवा दोनों एक-दूसरेके वैरी हो जाते हैं ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥ ४९ ॥
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ।

'न बहुत वर्षोंकी अवस्था होनेसे, न बाल पकनेसे, न धनसे और न अधिक भाई-बन्धुओंसे कोई बड़ा होता है । ऋषियोंने हमारे लिये यही धर्म निश्चित किया है कि हममेंसे जो वेदोंका प्रवचन कर सके, वही महान् है' ॥ ४९½ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनयस्ते विधानतः ॥ ५० ॥
तस्माद् वेदाननुप्राप्य पुनर्धर्मं प्रचक्रिरे ।

सारस्वतकी यह बात सुनकर वे मुनि उनसे विधिपूर्वक वेदोंका उपदेश पाकर पुनः धर्मका अनुष्ठान करने लगे ॥

षष्टिर्मुनिसहस्राणि शिष्यत्वं प्रतिपेदिरे ॥ ५१ ॥
सारस्वतस्य विप्रर्षेर्वेदस्वाध्यायकारणात् ।

साठ हजार मुनियोंने स्वाध्यायके निमित्त ब्रह्मर्षि सारस्वतकी शिष्यता ग्रहण की थी ॥ ५१½ ॥

मुष्टिं मुष्टिं ततः सर्वे दर्भाणां ते ह्युपाहरन् ।
तस्यासनार्थं विप्रर्षेर्बालस्यापि वशे स्थिताः ॥ ५२ ॥

वे ब्रह्मर्षि यद्यपि बालक थे तो भी वे सभी बड़े-बड़े महर्षि उनकी आज्ञाके अधीन रहकर उनके आसनके लिये एक-एक मुट्ठी कुश ले आया करते थे ॥ ५२ ॥

तत्रापि दत्त्वा वसु रौहिणेयो
महाबलः केशवपूर्वजोऽथ ।
जगाम तीर्थं मुदितः क्रमेण
ख्यातं महद् वृद्धकन्या स यत्र ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्णके बड़े भाई महाबली रोहिणीनन्दन बलरामजी वहाँ भी स्नान और धन दान करके प्रसन्नतापूर्वक क्रमशः सब तीर्थोंमें विचरते हुए उस विख्यात महातीर्थमें गये, जहाँ कभी वृद्धा कुमारी कन्या निवास करती थी ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वृद्ध कन्याका चरित्र, शृङ्गवान्‌के साथ उसका विवाह और स्वर्गगमन तथा उस तीर्थका माहात्म्य

जनमेजय उवाच

कथं कुमारी भगवंस्तपोयुक्ता ह्यभूत् पुरा ।
किमर्थं च तपस्तेपे को वास्या नियमोऽभवत् ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! पूर्वकालमें वह कुमारी तपस्यामें क्यों संलग्न हुई ? उसने किसलिये तपस्या की और उसका कौन-सा नियम था ? ॥ १ ॥

सुदुष्करमिदं ब्रह्मंस्त्वत्तः श्रुतमनुत्तमम् ।
आख्याहि तत्त्वमखिलं यथा तपसि सा स्थिता ॥ २ ॥

ब्रह्मन् ! मैंने आपके मुखसे यह अत्यन्त उत्तम तथा परम दुष्कर तपकी बात सुनी है । आप सारा वृत्तान्त यथार्थ

रूपसे बताइये; वह कन्या क्यों तपस्यामें प्रवृत्त हुई थी ? ॥

वैशम्पायन उवाच

ऋषिरासीन्महावीर्यः कुणिर्गर्गो महायशाः ।
स तप्त्वा विपुलं राजंस्तपो वै तपतां वरः ॥ ३ ॥
मनसाथ सुतां सुभ्रूं समुत्पादितवान् विभुः ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें एक महान् शक्तिशाली और महायशस्वी कुणिर्गर्ग नामक ऋषि रहते थे । तपस्या करनेवालोंमें श्रेष्ठ उन महर्षिने बड़ा भारी तप करके अपने मनसे एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की ॥३½॥

तां च दृष्ट्वा मुनिः प्रीतः कुणिर्गर्गो महायशाः ॥ ४ ॥
जगाम त्रिदिवं राजन् संत्यज्येह कलेवरम् ।

नरेश्वर ! उसे देखकर महायशस्वी मुनि कुणिर्गर्ग बड़े प्रसन्न हुए और कुछ कालके पश्चात् अपना यह शरीर छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ४½ ॥

सुभ्रूः सा ह्यथ कल्याणी पुण्डरीकनिभेक्षणा ॥ ५ ॥
महता तपसोग्रेण कृत्वाऽऽश्रममनिन्दिता ।
उपवासैः पूजयन्ती पितॄन् देवांश्च सा पुरा ॥ ६ ॥

तदनन्तर कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली वह कल्याणमयी सती साध्वी सुन्दरी कन्या पूर्वकालमें अपने लिये आश्रम बनाकर बड़ी कठोर तपस्या तथा उपवासके साथ-साथ देवताओं और पितरोंका पूजन करती हुई वहाँ रहने लगी ॥ ५-६ ॥

तस्यास्तु तपसोग्रेण महान् कालोऽत्यगान्नृप ।
सा पित्रा दीयमानापि तत्र नैच्छदनिन्दिता ॥ ७ ॥
आत्मनः सदृशं सा तु भर्तारं नान्वपश्यत ।

राजन् ! उग्र तपस्या करते हुए उसका बहुत समय व्यतीत हो गया । पिताने अपने जीवनकालमें उसका किसीके साथ ब्याह कर देनेका प्रयत्न किया; परंतु उस अनिन्द्य सुन्दरीने विवाहकी इच्छा नहीं की । उसे अपने योग्य कोई वर ही नहीं दिखायी देता था ॥ ७½ ॥

ततः सा तपसोग्रेण पीडयित्वाऽऽत्मनस्तनुम् ॥ ८ ॥
पितृदेवार्चनरता बभूव विजने वने ।

तब वह उग्र तपस्याके द्वारा अपने शरीरको पीड़ा देकर निर्जन वनमें पितरों तथा देवताओंके पूजनमें तत्पर हो गयी ॥

साऽऽत्मानं मन्यमानापि कृतकृत्यं श्रमान्विता ॥ ९ ॥
वार्धकेन च राजेन्द्र तपसा चैव कर्शिता ।

राजेन्द्र ! परिश्रमसे थक जानेपर भी वह अपने आपको कृतार्थ मानती रही । धीरे-धीरे बुढ़ापा और तपस्याने उसे दुर्बल बना दिया ॥ ९½ ॥

सा नाशकद् यदा गन्तुं पदात् पदमपि स्वयम् ॥ १० ॥
चकार गमने बुद्धिं परलोकाय वै तदा ।

जब वह स्वयं एक पग भी चलनेमें असमर्थ हो गयी, तब उसने परलोकमें जानेका विचार किया ॥ १०½ ॥

मोक्तुकामां तु तां दृष्ट्वा शरीरं नारदोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥
असंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकास्तवानघे ।
एवं तु श्रुतमस्माभिर्देवलोके महाव्रते ॥ १२ ॥
तपः परमकं प्राप्तं न तु लोकास्त्वया जिताः ।

उसकी देहत्यागकी इच्छा देख देवर्षि नारदने उससे कहा—'महान् व्रतका पालन करनेवाली निष्पाप नारी ! तुम्हारा तो अभी विवाहसंस्कार भी नहीं हुआ, तुम तो अभी कन्या हो । फिर तुम्हें पुण्यलोक कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? तुम्हारे सम्बन्धमें ऐसी बात मैंने देवलोकमें सुनी है । तुमने तपस्या तो बहुत बड़ी की है; परंतु पुण्यलोकोंपर अधिकार नहीं प्राप्त किया है' ॥ ११-१२½ ॥

तन्नारदवचः श्रुत्वा साब्रवीदृषिसंसदि ॥ १३ ॥
तपसोऽर्धं प्रयच्छामि पाणिग्राहस्य सत्तम ।

नारदजीकी यह बात सुनकर वह ऋषियोंकी सभामें उपस्थित होकर बोली—'साधुशिरोमणे ! आपमेंसे जो कोई मेरा पाणिग्रहण करेगा, उसे मैं अपनी तपस्याका आधा भाग दे दूँगी' ॥ १३½ ॥

इत्युक्ते चास्या जग्राह पाणिं गालवसम्भवः ॥ १४ ॥
ऋषिः प्राक् शृङ्गवान्नाम समयं चेममब्रवीत् ।
समयेन तवाद्याहं पाणिं स्प्रक्ष्यामि शोभने ॥ १५ ॥
यद्येकरात्रं वस्तव्यं त्वया सह मयेति ह ।

उसके ऐसा कहनेपर सबसे पहले गालवके पुत्र शृङ्गवान् ऋषिने उसका पाणिग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की और सबसे पहले उसके सामने यह शर्त रक्खी—'शोभने ! मैं एक शर्तके साथ आज तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा । विवाहके बाद तुम्हें एक रात मेरे साथ रहना होगा । यदि यह स्वीकार हो तो मैं तैयार हूँ' ॥ १४-१५½ ॥

तथेति सा प्रतिश्रुत्य तस्मै पाणिं ददौ तदा ॥ १६ ॥
यथादृष्टेन विधिना हुत्वा चाग्निं विधानतः ।
चक्रे च पाणिग्रहणं तस्योद्वाहं च गालविः ॥ १७ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर उसने मुनिके हाथमें अपना हाथ दे दिया । फिर गालव-पुत्रने शास्त्रोक्त रीतिसे विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके उसका पाणिग्रहण और विवाह-संस्कार किया ॥

सा रात्रावभवद् राजंस्तरुणी वरवर्णिनी ।
दिव्याभरणवस्त्रा च दिव्यगन्धानुलेपना ॥ १८ ॥

राजन् ! रात्रिमें वह दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित और दिव्य गन्धयुक्त अङ्गरागसे अलंकृत परम सुन्दरी तरुणी हो गयी ॥ १८ ॥

तां दृष्ट्वा गालविः प्रीतो दीपयन्तीमिव श्रिया ।
उवास च क्षपामेकां प्रभाते साब्रवीच्च तम् ॥ १९ ॥

उसे अपनी कान्तिसे सब ओर प्रकाश फैलाती देख गालवकुमार बड़े प्रसन्न हुए और उसके साथ एक रात निवास किया । सवेरा होते ही वह मुनिसे बोली—॥ १९ ॥

यस्त्वया समयो विप्र कृतो मे तपतां वर ।
तेनोषितास्मि भद्रं ते स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ २० ॥

'तपस्वी मुनियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षे ! आपने जो शर्त की थी, उसके अनुसार मैं आपके साथ रह चुकी । आपका मङ्गल हो, कल्याण हो । अब आज्ञा दीजिये, मैं जाती हूँ' ॥ २० ॥

सा निर्गताब्रवीद् भूयो योऽस्मिंस्तीर्थे समाहितः।
वसते रजनीमेकां तर्पयित्वा दिवौकसः ॥ २१ ॥
चत्वारिंशतमष्टौ च द्वौ चाष्टौ सम्यगाचरेत्।
यो ब्रह्मचर्यं वर्षाणि फलं तस्य लभेत सः ॥ २२ ॥

यों कहकर वह वहाँसे चल दी। जाते-जाते उसने फिर कहा—'जो अपने चित्तको एकाग्र कर इस तीर्थमें स्नान और देवताओंका तर्पण करके एक रात निवास करेगा, उसे अट्ठावन वर्षोंतक विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य पालन करनेका फल प्राप्त होगा' ॥ २१-२२ ॥

एवमुक्त्वा ततः साध्वी देहं त्यक्त्वा दिवं गता।
ऋषिरप्यभवद् दीनस्तस्या रूपं विचिन्तयन् ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर वह साध्वी तपस्विनी देह त्यागकर स्वर्गलोकमें चली गयी और मुनि उसके दिव्यरूपका चिन्तन करते हुए बहुत दुखी हो गये ॥ २३ ॥

समयेन तपोऽर्धं च कृच्छ्रात् प्रतिगृहीतवान्।
साधयित्वा तदाऽऽत्मानं तस्याः स गतिमन्वियात् ॥
दुःखितो भरतश्रेष्ठ तस्या रूपबलात्कृतः।

उन्होंने शर्तके अनुसार उसकी तपस्याका आधा भाग बड़े कष्टसे स्वीकार किया। फिर वे भी अपने शरीरका परित्याग करके उसीके पथपर चले गये। भरतश्रेष्ठ! वे उसके रूपपर बलात् आकृष्ट होकर अत्यन्त दुखी हो गये थे ॥ २४½ ॥

एतत्ते वृद्धकन्याया व्याख्यातं चरितं महत् ॥ २५ ॥
तथैव ब्रह्मचर्यं च स्वर्गस्य च गतिः शुभा।

यह मैंने तुमसे वृद्ध कन्याके महान् चरित्र, ब्रह्मचर्य-पालन तथा स्वर्गलोककी प्राप्तिरूप सद्गतिका वर्णन किया ॥

तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुधः ॥ २६ ॥
तत्रापि दत्त्वा दानानि द्विजातिभ्यः परंतपः।
शुशोच शल्यं संग्रामे निहतं पाण्डवैस्तदा ॥ २७ ॥
समन्तपञ्चकद्वारात् ततो निष्क्रम्य माधवः।
पप्रच्छर्षिगणान् रामः कुरुक्षेत्रस्य यत् फलम् ॥ २८ ॥

वहीं रहकर शत्रुओंको संताप देनेवाले बलरामजीने शल्यके मारे जानेका समाचार सुना था। वहाँ भी मधुवंशी बलरामने ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दे समन्तपञ्चक द्वारसे निकलकर ऋषियोंसे कुरुक्षेत्रके सेवनका फल पूछा॥

ते पृष्टा यदुसिंहेन कुरुक्षेत्रफलं विभो।
समाचख्युर्महात्मानस्तस्मै सर्वं यथातथम् ॥ २९ ॥

प्रभो! उस यदुसिंहके द्वारा कुरुक्षेत्रके फलके विषयमें पूछे जानेपर वहाँ रहनेवाले महात्माओंने उन्हें सब कुछ यथावत् रूपसे बताया ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ऋषियोंद्वारा कुरुक्षेत्रकी सीमा और महिमाका वर्णन

ऋषय ऊचुः

प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते
सनातनं राम समन्तपञ्चकम्।
समीजिरे यत्र पुरा दिवौकसो
वरेण सत्रेण महावरप्रदाः ॥ १ ॥

ऋषियोंने कहा—बलरामजी! समन्तपञ्चक क्षेत्र सनातन तीर्थ है। इसे प्रजापतिकी उत्तरवेदी कहते हैं। वहाँ प्राचीनकालमें महान् वरदायक देवताओंने बहुत बड़े यज्ञका अनुष्ठान किया था ॥ १ ॥

पुरा च राजर्षिवरेण धीमता
बहूनि वर्षाण्यमितेन तेजसा।
प्रकृष्टमेतत् कुरुणा महात्मना
ततः कुरुक्षेत्रमितीह पप्रथे ॥ २ ॥

पहले अमित तेजस्वी बुद्धिमान् राजर्षिप्रवर महात्मा कुरुने इस क्षेत्रको बहुत वर्षोंतक जोता था, इसलिये इस जगत्में इसका नाम कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हो गया ॥ २ ॥

राम उवाच

किमर्थं कुरुणा कृष्टं क्षेत्रमेतन्महात्मना।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथ्यमानं तपोधनाः ॥ ३ ॥

बलरामजीने पूछा—तपोधनो! महात्मा कुरुने इस क्षेत्रको किसलिये जोता था? मैं आपलोगोंके मुखसे यह कथा सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

पुरा किल कुरुं राम कर्षन्तं सततोत्थितम्।
अभ्येत्य शक्रस्त्रिदिवात् पर्यपृच्छत कारणम् ॥ ४ ॥

ऋषि बोले—राम! सुना जाता है कि पूर्वकालमें सदा प्रत्येक शुभ कार्यके लिये उद्यत रहनेवाले कुरु जब इस क्षेत्रको जोत रहे थे, उस समय इन्द्रने स्वर्गसे आकर इसका कारण पूछा ॥ ४ ॥

इन्द्र उवाच

किमिदं वर्तते राजन् प्रयत्नेन परेण च।
राजर्षे किमभिप्रेतं येनेयं कृष्यते क्षितिः ॥ ५ ॥

इन्द्रने प्रश्न किया—राजन्! यह महान् प्रयत्नके साथ क्या हो रहा है? राजर्षे! आप क्या चाहते हैं, जिसके कारण यह भूमि जोत रहे हैं? ॥ ५ ॥

कुरुरुवाच

इह ये पुरुषाः क्षेत्रे मरिष्यन्ति शतक्रतो।
ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकान् पापविवर्जितान् ॥ ६ ॥

कुरुने कहा—शतक्रतो ! जो मनुष्य इस क्षेत्रमें मरेंगे, वे पुण्यात्माओंके पापरहित लोकोंमें जायँगे ॥ ६ ॥

अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं पुनः ।
राजर्षिरप्यनिर्विण्णः कर्षत्येव वसुंधराम् ॥ ७ ॥

तब इन्द्र उनका उपहास करके स्वर्गलोकमें चले गये । राजर्षि कुरु उस कार्यसे उदासीन न होकर वहाँकी भूमि जोतते ही रहे ॥ ७ ॥

आगम्यागम्य चैवैनं भूयोभूयोऽवहस्य च ।
शतक्रतुरनिर्विण्णं पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह ॥ ८ ॥

शतक्रतु इन्द्र अपने कार्यसे विरत न होनेवाले कुरुके पास बारंबार आते और उनसे पूछ-पूछकर प्रत्येक बार उनकी हँसी उड़ाकर स्वर्गलोकमें चले जाते थे ॥ ८ ॥

यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष वसुधां नृपः ।
ततः शक्रोऽब्रवीद् देवान् राजर्षेर्यच्चिकीर्षितम् ॥ ९ ॥

जब राजा कुरु कठोर तपस्यापूर्वक पृथ्वीको जोतते ही रह गये, तब इन्द्रने देवताओंसे राजर्षि कुरुकी वह चेष्टा बतायी ॥ ९ ॥

एतच्छ्रुत्वाब्रुवन् देवाः सहस्राक्षमिदं वचः ।
वरेण च्छन्द्यतां शक्र राजर्षिर्यदि शक्यते ॥१०॥

यह सुनकर देवताओंने सहस्रनेत्रधारी इन्द्रसे कहा—'शक्र ! यदि सम्भव हो तो राजर्षि कुरुको वर देकर अपने अनुकूल किया जाय ॥ १० ॥

यदि ह्यत्र प्रमीता वै स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ।
अस्मानिष्ट्वा क्रतुभिर्भागो नो न भविष्यति ॥११॥

'यदि यहाँ मरे हुए मानव यज्ञोंद्वारा हमारा पूजन किये बिना ही स्वर्गलोकमें चले जायँगे, तब तो हमलोगोंका भाग सर्वथा नष्ट हो जायगा' ॥ ११ ॥

आगम्य च ततः शक्रस्तदा राजर्षिमब्रवीत् ।
अलं खेदेन भवतः क्रियतां वचनं मम ॥ १२ ॥
मानवा ये निराहारा देहं त्यक्ष्यन्त्यतन्द्रिताः ।
युधि वा निहताः सम्यगपि तिर्यग्गता नृप ॥ १३ ॥
ते स्वर्गभाजो राजेन्द्र भविष्यन्ति महामते ।

तब इन्द्रने वहाँसे आकर राजर्षि कुरुसे कहा—'नरेश्वर ! आप व्यर्थ कष्ट क्यों उठाते हैं ? मेरी बात मान लीजिये । महामते ! राजेन्द्र ! जो मनुष्य और पशु-पक्षी यहाँ निराहार रहकर देह त्याग करेंगे अथवा युद्धमें मारे जायँगे, वे स्वर्गलोकके भागी होंगे' ॥ १२-१३½ ॥

तथास्त्विति ततो राजा कुरुः शक्रमुवाच ह ॥ १४ ॥
ततस्तमभ्यनुज्ञाप्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
जगाम त्रिदिवं भूयः क्षिप्रं बलनिषूदनः ॥ १५ ॥

तब राजा कुरुने इन्द्रसे कहा—'देवराज ! ऐसा ही हो' तदनन्तर कुरुसे विदा ले बलसूदन इन्द्र फिर शीघ्र ही प्रसन्न चित्तसे स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १४-१५ ॥

एवमेतद् यदुश्रेष्ठ कृष्टं राजर्षिणा पुरा ।
शक्रेण चाभ्यनुज्ञातं ब्रह्माद्यैश्च सुरैस्तथा ॥ १६ ॥

यदुश्रेष्ठ ! इस प्रकार प्राचीनकालमें राजर्षि कुरुने इस क्षेत्रको जोता और इन्द्र तथा ब्रह्मा आदि देवताओंने इसे वर देकर अनुगृहीत किया ॥ १६ ॥

नातः परतरं पुण्यं भूमेः स्थानं भविष्यति ।
इह तप्स्यन्ति ये केचित्तपः परमकं नराः ॥ १७ ॥
देहत्यागेन ते सर्वे यास्यन्ति ब्रह्मणः क्षयम् ।

भूतलका कोई भी स्थान इससे बढ़कर पुण्यदायक नहीं होगा । जो मनुष्य यहाँ रहकर बड़ी भारी तपस्या करेंगे, वे सब लोग देहत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जायँगे ॥ १७½ ॥

ये पुनः पुण्यभाजो वै दानं दास्यन्ति मानवाः ॥ १८ ॥
तेषां सहस्रगुणितं भविष्यत्यचिरेण वै ।

जो पुण्यात्मा मानव वहाँ दान देंगे, उनका वह दान शीघ्र ही सहस्रगुना हो जायगा ॥ १८½ ॥

ये चेह नित्यं मनुजा निवत्स्यन्ति शुभैषिणः ॥ १९ ॥
यमस्य विषयं ते तु न द्रक्ष्यन्ति कदाचन ।

जो मानव शुभकी इच्छा रखकर यहाँ नित्य निवास करेंगे, उन्हें कभी यमका राज्य नहीं देखना पड़ेगा ॥१९½॥

यक्ष्यन्ति ये च क्रतुभिर्महद्भिर्मनुजेश्वराः ॥ २० ॥
तेषां त्रिविष्टपे वासो यावद्भूमिर्धरिष्यति ।

जो नरेश्वर यहाँ बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करेंगे, वे जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक स्वर्गलोकमें निवास करेंगे ॥ २०½ ॥

अपि चात्र स्वयं शक्रो जगौ गाथां सुराधिपः ॥ २१ ॥
कुरुक्षेत्रनिबद्धां वै तां शृणुष्व हलायुध ।

हलायुध ! स्वयं देवराज इन्द्रने कुरुक्षेत्रके सम्बन्धमें यहाँ जो गाथा गायी है, उसे आप सुनिये ॥ २१½ ॥

पांसवोऽपि कुरुक्षेत्राद् वायुना समुदीरिताः ।
अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥ २२ ॥

'कुरुक्षेत्रसे वायुद्वारा उड़ायी हुई धूलियाँ भी यदि ऊपर पड़ जायँ तो वे पापी मनुष्यको भी परम पदकी प्राप्ति कराती हैं ॥ २२ ॥

सुरर्षभा ब्राह्मणसत्तमाश्च
तथा नृगाद्या नरदेवमुख्याः ।
इष्ट्वा महार्हैः क्रतुभिर्नृसिंहाः
संत्यज्य देहान् सुगतिं प्रपन्नाः ॥ २३ ॥

'श्रेष्ठ देवताओ ! यहाँ ब्राह्मणशिरोमणि तथा नृग आदि मुख्य-मुख्य पुरुषसिंह नरेश महान् यज्ञोंका अनुष्ठान करके देहत्यागके पश्चात् उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं ॥२३॥

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
रामहृदानां च मचक्रुकस्य च ।
एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते ॥ २४ ॥

'तरन्तुक, अरन्तुक, रामहृद (परशुराम कुण्ड) तथा मचक्रुक—इनके बीचका जो भूभाग है, यही समन्तपञ्चक एवं कुरुक्षेत्र है । इसे प्रजापतिकी उत्तरवेदी कहते हैं ॥ ४ ॥

शिवं महापुण्यमिदं दिवौकसां
सुसम्मतं सर्वगुणैः समन्वितम्।
अतश्च सर्वे निहता नृपा रणे
यास्यन्ति पुण्यां गतिमक्षयां सदा ॥ २५ ॥

'यह महान् पुण्यप्रद, कल्याणकारी, देवताओंका प्रिय एवं सर्वगुणसम्पन्न तीर्थ है। अतः यहाँ रणभूमिमें मारे गये सम्पूर्ण नरेश सदा पुण्यमयी अक्षय गति प्राप्त करेंगे' ॥ २५ ॥

इत्युवाच स्वयं शक्रः सह ब्रह्मादिभिस्तदा।
तच्चानुमोदितं सर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ २६ ॥

ब्रह्मा आदि देवताओंसहित साक्षात् इन्द्रने ऐसी बातें कही थीं तथा ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीने इन सारी बातोंका अनुमोदन किया था ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने कुरुक्षेत्रकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानके प्रसङ्गमें कुरुक्षेत्रकी महिमाका वर्णनविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्लक्षप्रस्रवण आदि तीर्थों तथा सरस्वतीकी महिमा एवं नारदजीसे कौरवोंके विनाश और भीम तथा दुर्योधनके युद्धका समाचार सुनकर बलरामजीका उसे देखनेके लिये जाना

वैशम्पायन उवाच

कुरुक्षेत्रं ततो दृष्ट्वा दत्त्वा दायांश्च सात्वतः।
आश्रमं सुमहद् दिव्यमगमज्जनमेजय ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सात्वतवंशी बलरामजी कुरुक्षेत्रका दर्शन कर वहाँ बहुत-सा धन दान करके उस स्थानसे एक महान् एवं दिव्य आश्रममें गये ॥ १ ॥

मधूकाम्रवणोपेतं प्लक्षन्यग्रोधसंकुलम्।
चिरबिल्वयुतं पुण्यं पनसार्जुनसंकुलम् ॥ २ ॥
तं दृष्ट्वा यादवश्रेष्ठः प्रवरं पुण्यलक्षणम्।
पप्रच्छ तानृषीन् सर्वान् कस्याश्रमवरस्त्वयम् ॥ ३ ॥

महुआ और आमके वन उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। पाकड़ और बरगदके वृक्ष वहाँ अपनी छाया फैला रहे थे। चिलबिल, कटहल और अर्जुन (समूह)के पेड़ चारों ओर भरे हुए थे। पुण्यदायक लक्षणोंसे युक्त उस पुण्यमय श्रेष्ठ आश्रमका दर्शन करके यादवश्रेष्ठ बलरामजीने उन समस्त ऋषियोंसे पूछा कि 'यह सुन्दर आश्रम किसका है?' ॥ २-३ ॥

ते तु सर्वे महात्मानमूचू राजन् हलायुधम्।
शृणु विस्तरशो राम यस्यायं पूर्वमाश्रमः ॥ ४ ॥

राजन्! तब वे सभी ऋषि महात्मा हलधरसे बोले— 'बलरामजी! पहले यह आश्रम जिसके अधिकारमें था, उसकी कथा विस्तारपूर्वक सुनिये— ॥ ४ ॥

अत्र विष्णुः पुरा देवस्तप्तवांस्तप उत्तमम्।
अत्रास्य विधिवद् यज्ञाः सर्वे वृत्ताः सनातनाः ॥ ५ ॥

'प्राचीनकालमें यहाँ भगवान् विष्णुने उत्तम तपस्या की है, यहीं उनके सभी सनातन यज्ञ विधिपूर्वक सम्पन्न हुए हैं ॥

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमारब्रह्मचारिणी।
योगयुक्ता दिवं याता तपःसिद्धा तपस्विनी ॥ ६ ॥

'यहीं कुमारावस्थासे ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाली एक सिद्ध ब्राह्मणी रहती थी, जो तपःसिद्ध तपस्विनी थी। वह योगयुक्त होकर स्वर्गलोकमें चली गयी ॥ ६ ॥

बभूव श्रीमती राजञ्शाण्डिल्यस्य महात्मनः।
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी ॥ ७ ॥

'राजन्! नियमपूर्वक व्रतधारण और ब्रह्मचर्यपालन करनेवाली वह तेजस्विनी साध्वी महात्मा शाण्डिल्यकी सुपुत्री थी ॥ ७ ॥

सा तु तप्त्वा तपो घोरं दुश्चरं स्त्रीजनेन ह।
गता स्वर्गं महाभागा देवब्राह्मणपूजिता ॥ ८ ॥

'स्त्रियोंके लिये जो अत्यन्त दुष्कर था, ऐसा घोर तप करके देवताओं और ब्राह्मणोंद्वारा सम्मानित हुई वह महान् सौभाग्यशालिनी देवी स्वर्गलोकको चली गयी थी' ॥ ८ ॥

श्रुत्वा ऋषीणां वचनमाश्रमं तं जगाम ह।
ऋषींस्तानभिवाद्याथ पार्श्वे हिमवतोऽच्युतः ॥ ९ ॥
संध्याकार्याणि सर्वाणि निर्वर्त्यारुरुहेऽचलम्।

ऋषियोंका वचन सुनकर अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले बलरामजी उस आश्रममें गये। वहाँ हिमालयके पार्श्वभागमें उन ऋषियोंको प्रणाम करके संध्या-वन्दन आदि सब कार्य करनेके अनन्तर वे हिमालयपर चढ़ने लगे ॥ ९½ ॥

नातिदूरं ततो गत्वा नगं तालध्वजो बली ॥ १० ॥
पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः।
प्रभावं च सरस्वत्याः प्लक्षप्रस्रवणं बलः ॥ ११ ॥

जिनकी ध्वजापर तालका चिह्न सुशोभित होता है, वे बलरामजी उस पर्वतपर थोड़ी ही दूर गये थे कि उनकी दृष्टि एक पुण्यमय उत्तम तीर्थपर पड़ी। वह सरस्वतीकी उत्पत्तिका स्थान प्लक्षप्रस्रवण नामक तीर्थ था। उसका दर्शन करके बलरामजीको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १०-११ ॥

सम्प्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम्।
हलायुधस्तत्र चापि दत्त्वा दानं महाबलः ॥ १२ ॥
आप्लुतः सलिले पुण्ये सुशीते विमले शुचौ।
संतर्पयामास पितॄन् देवांश्च रणदुर्मदः ॥ १३ ॥
तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह।
मित्रावरुणयोः पुण्यं जगामाश्रममच्युतः ॥ १४ ॥

फिर वे कारपवन नामक उत्तम तीर्थमें गये। महाबली

हलधरने वहाँके निर्मल, पवित्र और अत्यन्त शीतल पुण्यदायक जलमें गोता लगाकर ब्राह्मणोंको दान दे देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् रणदुर्मद बलरामजी यतियों और ब्राह्मणोंके साथ वहाँ एक रात रहकर मित्रावरुणके पवित्र आश्रमपर गये ॥ १२—१४ ॥

इन्द्रोऽग्निरर्यमा चैव यत्र प्राक् प्रीतिमाप्नुवन् ।
तं देशं कारपवनाद् यमुनायां जगाम ह ॥ १५ ॥
स्नात्वा तत्र च धर्मात्मा परां प्रीतिमवाप्य च ।
ऋषिभिश्चैव सिद्धैश्च सहितो वै महाबलः ॥ १६ ॥
उपविष्टः कथाः शुभ्राः शुश्राव यदुपुङ्गवः ।

जहाँ पूर्वकालमें इन्द्र, अग्नि और अर्यमाने बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की थी, वह स्थान यमुनाके तटपर है। कारपवनसे उस तीर्थमें जाकर महाबली धर्मात्मा बलरामने स्नान करके बड़ा हर्ष प्राप्त किया। फिर वे यदुपुङ्गव बलभद्र ऋषियों और सिद्धोंके साथ बैठकर उत्तम कथाएँ सुनने लगे ॥ १५-१६½ ॥

तथा तु तिष्ठतां तेषां नारदो भगवानृषिः ॥ १७ ॥
आजगामाथ तं देशं यत्र रामो व्यवस्थितः ।

इस प्रकार वे लोग वहीं ठहरे हुए थे, तबतक देवर्षि भगवान् नारद भी उनके पास उसी स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ बलरामजी विराजमान थे ॥ १७½ ॥

जटामण्डलसंवीतः स्वर्णचीरो महातपाः ॥ १८ ॥
हेमदण्डधरो राजन् कमण्डलुधरस्तथा ।
कच्छपीं सुखशब्दां तां गृह्य वीणां मनोरमाम् ॥ १९ ॥

राजन् ! महातपस्वी नारद जटामण्डलसे मण्डित हो सुनहरा चीर धारण किये हुए थे। उन्होंने कमण्डलु, सोनेका दण्ड तथा सुखदायक शब्द करनेवाली कच्छपी नामक मनोरम वीणा भी ले रक्खी थी ॥ १८-१९ ॥

नृत्ये गीते च कुशलो देवब्राह्मणपूजितः ।
प्रकर्ता कलहानां च नित्यं च कलहप्रियः ॥ २० ॥

वे नृत्य-गीतमें कुशल, देवताओं तथा ब्राह्मणोंसे सम्मानित, कलह करानेवाले तथा सदैव कलहके प्रेमी हैं ॥ २० ॥

तं देशमगमद् यत्र श्रीमान् रामो व्यवस्थितः ।
प्रत्युत्थाय च तं सम्यक् पूजयित्वा यतव्रतम् ॥ २१ ॥
देवर्षिं पर्यपृच्छत् स यथा वृत्तं कुरून् प्रति ।

वे उस स्थानपर गये, जहाँ तेजस्वी बलराम बैठे हुए थे। उन्होंने उठकर नियम और व्रतका पालन करनेवाले देवर्षिका भलीभाँति पूजन करके उनसे कौरवोंका समाचार पूछा ॥ २१½ ॥

ततोऽस्याकथयद् राजन् नारदः सर्वधर्मवित् ॥ २२ ॥
सर्वमेतद् यथावृत्तमतीव कुरुसंक्षयम् ।

राजन् ! तब सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता नारदजीने उनसे यह सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे बता दिया कि कुरुकुलका अत्यन्त संहार हो गया है ॥ २२½ ॥

ततोऽब्रवीद् रौहिणेयो नारदं दीनया गिरा ॥ २३ ॥
किमवस्थं तु तत् क्षत्रं ये तु तत्राभवन् नृपाः ।
श्रुतमेतन्मया पूर्वं सर्वमेव तपोधन ॥ २४ ॥
विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे ।

तब रोहिणीनन्दन बलरामने दीनवाणीमें नारदजीसे पूछा—'तपोधन ! जो राजा लोग वहाँ उपस्थित हुए थे, उन सब क्षत्रियोंकी क्या अवस्था हुई है, यह सब तो मैंने पहले ही सुन लिया था। इस समय कुछ विशेष और विस्तृत समाचार जाननेके लिये मेरे मनमें अत्यन्त उत्सुकता हुई है' ॥ २३-२४½ ॥

नारद उवाच

पूर्वमेव हतो भीष्मो द्रोणः सिन्धुपतिस्तथा ॥ २५ ॥
हतो वैकर्तनः कर्णः पुत्राश्चास्य महारथाः ।
भूरिश्रवा रौहिणेय मद्रराजश्च वीर्यवान् ॥ २६ ॥

नारदजीने कहा—रोहिणीनन्दन ! भीष्मजी तो पहले ही मारे गये। फिर सिंधुराज जयद्रथ, द्रोण, वैकर्तन कर्ण तथा उसके महारथी पुत्र भी मारे गये हैं। भूरिश्रवा तथा पराक्रमी मद्रराज शल्य भी मार डाले गये ॥ २५-२६ ॥

एते चान्ये च बहवस्तत्र तत्र महाबलाः ।
प्रियान् प्राणान् परित्यज्य जयार्थं कौरवस्य वै ॥ २७ ॥
राजानो राजपुत्राश्च समरेष्वनिवर्तिनः ।

ये तथा और भी बहुत-से महाबली राजा और राजकुमार जो युद्धसे पीछे हटनेवाले नहीं थे, कुरुराज दुर्योधनकी विजयके लिये अपने प्यारे प्राणोंका परित्याग करके स्वर्गलोकमें चले गये हैं ॥ २७½ ॥

अहतांस्तु महाबाहो शृणु मे तत्र माधव ॥ २८ ॥
धार्तराष्ट्रबले शेषास्त्रयः समितिमर्दनाः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ २९ ॥

महाबाहु माधव ! जो वहाँ नहीं मारे गये हैं, उनके नाम भी मुझसे सुन लो। दुर्योधनकी सेनामें कृपाचार्य, कृतवर्मा और पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा—ये शत्रुदलका मर्दन करनेवाले तीन ही वीर शेष रह गये हैं ॥ २८-२९ ॥

तेऽपि वै विद्रुता राम दिशो दश भयात् तदा ।
दुर्योधने हते शल्ये विद्रुतेषु कृपादिषु ॥ ३० ॥
ह्रदं द्वैपायनं नाम विवेश भृशदुःखितः ।

परंतु बलरामजी ! जब शल्य मारे गये, तब ये तीनों भी भयके मारे सम्पूर्ण दिशाओंमें पलायन कर गये थे। शल्यके मारे जाने और कृप आदिके भाग जानेपर दुर्योधन बहुत दुखी हुआ और भागकर द्वैपायनसरोवरमें जा छिपा ३०½

शयानं धार्तराष्ट्रं तु सलिले स्तम्भिते तदा ॥ ३१ ॥
पाण्डवाः सह कृष्णेन वाग्भिरुग्राभिरार्दयन् ।

जब दुर्योधन जलको स्तम्भित करके उसके भीतर सो रहा था, उस समय पाण्डवलोग भगवान् श्रीकृष्णके साथ वहाँ आ पहुँचे और अपनी कठोर बातोंसे उसे कष्ट पहुँचाने लगे ३१½

स तुद्यमानो बलवान् वाग्भी राम समन्ततः ॥ ३२ ॥
उत्थितः स ह्रदाद् वीरः प्रगृह्य महतीं गदाम् ।

बलराम ! जब सब ओरसे कड़वी बातोंद्वारा उसे व्यथित किया जाने लगा, तब वह बलवान् वीर विशाल गदा हाथमें लेकर सरोवरसे उठ खड़ा हुआ ॥ ३२½ ॥

स चाप्युपगतो योद्धुं भीमेन सह साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥
भविष्यति तयोरद्य युद्धं राम सुदारुणम् ।
यदि कौतूहलं तेऽस्ति व्रज माधव मा चिरम् ।
पश्य युद्धं महाघोरं शिष्ययोर्यदि मन्यसे ॥ ३४ ॥

इस समय वह भीमके साथ युद्ध करनेके लिये उनके पास जा पहुँचा है। राम ! आज उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होगा, माधव ! यदि तुम्हारे मनमें भी उसे देखनेका कौतूहल हो तो शीघ्र जाओ। यदि ठीक समझो तो अपने दोनों शिष्योंका वह महाभयंकर युद्ध अपनी आँखोंसे देख लो ॥ ३३-३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा तानभ्यर्च्य द्विजर्षभान् ।
सर्वान् विसर्जयामास ये तेनाभ्यागताः सह ॥ ३५ ॥
गम्यतां द्वारकां चेति सोऽन्वशादनुयायिनः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! नारदजीकी बात सुनकर बलरामजीने अपने साथ आये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें विदा कर दिया और सेवकोंको आज्ञा दे दी कि तुम लोग द्वारका चले जाओ ॥ ३५½ ॥

सोऽवतीर्याचलश्रेष्ठात् प्लक्षप्रस्रवणाच्छुभात् ॥ ३६ ॥
ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वा तीर्थफलं महत् ।
विप्राणां संनिधौ श्लोकमगायदिममच्युतः ॥ ३७ ॥

फिर वे प्लक्षप्रस्रवण नामक शुभ पर्वतशिखरसे नीचे उतर आये और तीर्थ-सेवनका महान् फल सुनकर प्रसन्नचित्त हो अच्युत बलरामने ब्राह्मणोंके समीप इस श्लोकका गान किया—॥ ३६-३७ ॥

सरस्वतीवाससमा कुतो रतिः
सरस्वतीवाससमाः कुतो गुणाः ।
सरस्वतीं प्राप्य दिवं गता जनाः
सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम् ॥ ३८ ॥

'सरस्वती नदीके तटपर निवास करनेमें जो सुख और आनन्द है, वह अन्यत्र कहाँसे मिल सकता है ? सरस्वती-तटपर निवास करनेमें जो गुण हैं, वे अन्यत्र कहाँ हैं ? सरस्वतीका सेवन करके स्वर्गलोकमें पहुँचे हुए मनुष्य सदा सरस्वती नदीका स्मरण करते रहेंगे ॥ ३८ ॥

सरस्वती सर्वनदीषु पुण्या
सरस्वती लोकशुभावहा सदा ।
सरस्वतीं प्राप्य जनाः सुदुष्कृतं
सदा न शोचन्ति परत्र चेह च ॥ ३९ ॥

'सरस्वती सब नदियोंमें पवित्र है। सरस्वती सदा सम्पूर्ण जगत्का कल्याण करनेवाली है। सरस्वतीको पाकर मनुष्य इहलोक और परलोकमें कभी पापोंके लिये शोक नहीं करते हैं' ॥ ३९ ॥

ततो मुहुर्मुहुः प्रीत्या प्रेक्षमाणः सरस्वतीम् ।
हयैर्युक्तं रथं शुभ्रमातिष्ठत परंतपः ॥ ४० ॥

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले बलरामजी बार-बार प्रेमपूर्वक सरस्वती नदीकी ओर देखते हुए घोड़ोंसे जुते उज्ज्वल रथपर आरूढ़ हुए ॥ ४० ॥

स शीघ्रगामिना तेन रथेन यदुपुङ्गवः ।
दिदृक्षुरभिसम्प्राप्तः शिष्ययुद्धमुपस्थितम् ॥ ४१ ॥

उसी शीघ्रगामी रथके द्वारा तत्काल उपस्थित हुए दोनों शिष्योंका युद्ध देखनेके लिये यदुपुङ्गव बलरामजी उनके पास जा पहुँचे ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

बलरामजीकी सलाहसे सबका कुरुक्षेत्रके समन्तपञ्चक तीर्थमें जाना और वहाँ भीम तथा दुर्योधनमें गदायुद्धकी तैयारी

वैशम्पायन उवाच

एवं तदभवद् युद्धं तुमुलं जनमेजय ।
यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार वह तुमुल युद्ध हुआ, जिसके विषयमें अत्यन्त दुखी हुए राजा धृतराष्ट्रने इस तरह प्रश्न किया ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

रामं संनिहितं दृष्ट्वा गदायुद्ध उपस्थिते ।
मम पुत्रः कथं भीमं प्रत्ययुध्यत संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! गदायुद्ध उपस्थित होनेपर बलरामजीको निकट आया देख मेरे पुत्रने भीमसेनके साथ किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ २ ॥

संजय उवाच

रामसांनिध्यमासाद्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
युद्धकामो महाबाहुः समहृष्यत वीर्यवान् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! बलरामजीको निकट पाकर युद्धकी इच्छा रखनेवाला आपका शक्तिशाली पुत्र महाबाहु दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा लाङ्गलिनं राजा प्रत्युत्थाय च भारत ।
प्रीत्या परमया युक्तः समभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ४ ॥

आसनं च ददौ तस्मै पर्यपृच्छदनामयम्।

भरतनन्दन ! हलधरको देखते ही राजा युधिष्ठिर उठकर खड़े हो गये और बड़े प्रेमसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें बैठनेके लिये उन्होंने आसन दिया तथा उनके स्वास्थ्यका समाचार पूछा ॥ ४½ ॥

ततो युधिष्ठिरं रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ५ ॥
मधुरं धर्मसंयुक्तं शूराणां हितमेव च।

तब बलरामने युधिष्ठिरसे मधुर वाणीमें शूरवीरोंके लिये हितकर धर्मयुक्त वचन कहा—॥ ५½ ॥

मया श्रुतं कथयतामृषीणां राजसत्तम ॥ ६ ॥
कुरुक्षेत्रं परं पुण्यं पावनं स्वर्ग्यमेव च।
दैवतैर्ऋषिभिर्जुष्टं ब्राह्मणैश्च महात्मभिः ॥ ७ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! मैंने माहात्म्य-कथा कहनेवाले ऋषियोंके मुखसे यह सुना है कि कुरुक्षेत्र परम पावन पुण्यमय तीर्थ है। वह स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। देवता, ऋषि तथा महात्मा ब्राह्मण सदा उसका सेवन करते हैं ॥ ६-७ ॥

तत्र वै योत्स्यमाना ये देहं त्यक्ष्यन्ति मानवाः।
तेषां स्वर्गे ध्रुवो वासः शक्रेण सह मारिष ॥ ८ ॥

'माननीय नरेश ! जो मानव वहाँ युद्ध करते हुए अपने शरीरका त्याग करेंगे, उनका निश्चय ही स्वर्गलोकमें इन्द्रके साथ निवास होगा ॥ ८ ॥

तस्मात् समन्तपञ्चकमितो याम द्रुतं नृप।
प्रथितोत्तरवेदी सा देवलोके प्रजापतेः ॥ ९ ॥
तस्मिन् महापुण्यतमे त्रैलोक्यस्य सनातने।
संग्रामे निधनं प्राप्य ध्रुवं स्वर्गे भविष्यति ॥ १० ॥

'अतः नरेश्वर ! हम सब लोग यहाँसे शीघ्र ही समन्तपञ्चक तीर्थमें चलें। वह भूमि देवलोकमें प्रजापतिकी उत्तरवेदीके नामसे प्रसिद्ध है। त्रिलोकीके उस परम पुण्यतम सनातन तीर्थमें युद्ध करके मृत्युको प्राप्त हुआ मनुष्य निश्चय ही स्वर्गलोकमें जायगा' ॥ ९-१० ॥

तथेत्युक्त्वा महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
समन्तपञ्चकं वीरः प्रायादभिमुखः प्रभुः ॥ ११ ॥
ततो दुर्योधनो राजा प्रगृह्य महतीं गदाम्।
पद्भ्याममर्षी द्युतिमानगच्छत् पाण्डवैः सह ॥ १२ ॥

महाराज ! तब 'बहुत अच्छा', कहकर वीर राजा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर समन्तपञ्चक तीर्थकी ओर चल दिये। उस समय अमर्षमें भरा हुआ तेजस्वी राजा दुर्योधन हाथमें विशाल गदा लेकर पाण्डवोंके साथ पैदल ही चला ।११-१२।

तथाऽऽयान्तं गदाहस्तं वर्मणा चापि दंशितम्।
अन्तरिक्षचरा देवाः साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ १३ ॥

गदा हाथमें लिये कवच धारण किये दुर्योधनको इस प्रकार आते देख आकाशमें विचरनेवाले देवता साधु-साधु कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥

वातिकाश्चारणा ये तु दृष्ट्वा ते हर्षमागताः।
स पाण्डवैः परिवृतः कुरुराजस्तवात्मजः ॥ १४ ॥
मत्तस्येव गजेन्द्रस्य गतिमास्थाय सोऽव्रजत्।

वातिक और चारण भी उसे देखकर हर्षसे खिल उठे। पाण्डवोंसे घिरा हुआ आपका पुत्र कुरुराज दुर्योधन मतवाले गजराजकी-सी गतिका आश्रय लेकर चल रहा था ॥ १४½ ॥

ततः शङ्खनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः ॥ १५ ॥
सिंहनादैश्च शूराणां दिशः सर्वाः प्रपूरिताः।

उस समय शङ्खोंकी ध्वनि, रणभेरियोंके गम्भीर घोष और शूरवीरोंके सिंहनादोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं ।१५½।

ततस्ते तु कुरुक्षेत्रं प्राप्ता नरवरोत्तमाः ॥ १६ ॥
प्रतीच्यभिमुखं देशं यथोद्दिष्टं सुतेन ते।
दक्षिणेन सरस्वत्याः स्वयनं तीर्थमुत्तमम् ॥ १७ ॥
तस्मिन् देशे त्वनिरिणे ते तु युद्धमरोचयन्।

तदनन्तर वे सभी श्रेष्ठ नरवीर आपके पुत्रके साथ पश्चिमाभिमुख चलकर पूर्वोक्त कुरुक्षेत्रमें आ पहुँचे। वह उत्तम तीर्थ सरस्वतीके दक्षिण तटपर स्थित एवं सद्गतिकी प्राप्ति करानेवाला था। वहाँ कहीं ऊसर भूमि नहीं थी। उसी स्थानमें आकर सबने युद्ध करना पसंद किया ।१६-१७½।

ततो भीमो महाकोटिं गदां गृह्याथ वर्मभृत् ॥ १८ ॥
बिभ्रद्रूपं महाराज सदृशं हि गरुत्मतः।

फिर तो भीमसेन कवच पहनकर बहुत बड़ी नोकवाली गदा हाथमें ले गरुडका-सा रूप धारण करके युद्धके लिये तैयार हो गये ॥ १८½ ॥

अवबद्धशिरस्त्राणः संख्ये काञ्चनवर्मभृत् ॥ १९ ॥
रराज राजन् पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव।

तत्पश्चात् दुर्योधन भी सिरपर टोप लगाये सोनेका कवच बाँधे भीमके साथ युद्धके लिये डट गया। राजन् ! उस समय आपका पुत्र सुवर्णमय गिरिराज मेरुके समान शोभा पा रहा था ॥ १९½ ॥

वर्मभ्यां संयतौ वीरौ भीमदुर्योधनावुभौ ॥ २० ॥
संयुगे च प्रकाशेते संरब्धाविव कुञ्जरौ।

कवच बाँधे हुए दोनों वीर भीमसेन और दुर्योधन युद्धभूमिमें कुपित हुए दो मतवाले हाथियोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २०½ ॥

रणमण्डलमध्यस्थौ भ्रातरौ तौ नरर्षभौ ॥ २१ ॥
अशोभेतां महाराज चन्द्रसूर्याविवोदितौ।

महाराज ! रणमण्डलके बीचमें खड़े हुए ये दोनों नरश्रेष्ठ भ्राता उदित हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान शोभा पा रहे थे ॥ २१½ ॥

तावन्योन्यं निरीक्षेतां क्रुद्धाविव महाद्विपौ ॥ २२ ॥
दहन्तौ लोचनै राजन् परस्परवधैषिणौ।

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए दो गजराजोंके समान एक दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले वे दोनों वीर परस्पर इस प्रकार देखने लगे, मानो नेत्रोंद्वारा एक दूसरेको भस्म कर डालेंगे ॥ २२½ ॥

सम्प्रहृष्टमना राजन् गदामादाय कौरवः ॥ २३ ॥

सृक्किणी संलिहन् राजन् क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन्।
ततो दुर्योधनो राजन् गदामादाय वीर्यवान् ॥ २४ ॥
भीमसेनमभिप्रेक्ष्य गजो गजमिवाह्वयत्।

नरेश्वर ! तदनन्तर शक्तिशाली कुरुवंशी राजा दुर्योधन प्रसन्नचित्त हो गदा हाथमें ले क्रोधसे लाल आँखें करके गलफरोंको चाटता और लंबी साँसें खींचता हुआ भीमसेनकी ओर देखकर उसी प्रकार ललकारने लगा, जैसे एक हाथी दूसरे हाथीको पुकार रहा हो ॥ २३-२४½ ॥

अद्रिसारमयीं भीमस्तथैवादाय वीर्यवान् ॥ २५ ॥
आह्वयामास नृपतिं सिंहं सिंहो यथा वने।

उसी प्रकार पराक्रमी भीमसेनने लोहेकी गदा लेकर राजा दुर्योधनको ललकारा, मानो वनमें एक सिंह दूसरे सिंहको पुकार रहा हो ॥ २५½ ॥

तावुद्यतगदापाणी दुर्योधनवृकोदरौ ॥ २६ ॥
संयुगे च प्रकाशेतां गिरी सशिखराविव।

दुर्योधन और भीमसेन दोनोंकी गदाएँ ऊपरको उठी थीं। उस समय रणभूमिमें वे दोनों शिखरयुक्त दो पर्वतोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २६½ ॥

तावुभौ समतिक्रुद्धावुभौ भीमपराक्रमौ ॥ २७ ॥
उभौ शिष्यौ गदायुद्धे रौहिणेयस्य धीमतः।

दोनों ही अत्यन्त क्रोधमें भरे थे। दोनों भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले थे और दोनों ही गदायुद्धमें बुद्धिमान् रोहिणीनन्दन बलरामजीके शिष्य थे ॥ २७½ ॥

उभौ सदृशकर्माणौ यमवासवयोरिव ॥ २८ ॥
तथा सदृशकर्माणौ वरुणस्य महाबलौ।
वासुदेवस्य रामस्य तथा वैश्रवणस्य च ॥ २९ ॥
सदृशौ तौ महाराज मधुकैटभयोर्युधि।
उभौ सदृशकर्माणौ तथा सुन्दोपसुन्दयोः ॥ ३० ॥
रामरावणयोश्चैव वालिसुग्रीवयोस्तथा।
तथैव कालस्य समौ मृत्योश्चैव परंतपौ ॥ ३१ ॥

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों महाबली वीर यमराज, इन्द्र, वरुण, श्रीकृष्ण, बलराम, कुबेर, मधु, कैटभ, सुन्द, उपसुन्द, राम, रावण तथा बाली और सुग्रीवके समान पराक्रम दिखानेवाले थे तथा काल एवं मृत्युके समान जान पड़ते थे ॥ २८–३१ ॥

अन्योन्यमभिधावन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ।
वासितासंगमे दृप्तौ शरदीव मदोत्कटौ ॥ ३२ ॥
उभौ क्रोधविषं दीप्तं वमन्तावुरगाविव।
अन्योन्यमभिसंरब्धौ प्रेक्षमाणावरिंदमौ ॥ ३३ ॥

जैसे शरद् ऋतुमें मैथुनकी इच्छावाली हथिनीसे समागम करनेके लिये दो मतवाले हाथी मदोन्मत्त होकर एक दूसरेपर धावा करते हों, उसी प्रकार अपने बलका गर्व रखनेवाले वे दोनों वीर एक दूसरेसे टक्कर लेनेको उद्यत थे। शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों योद्धा दो सर्पोंके समान प्रज्वलित क्रोधरूपी विषका वमन करते हुए एक दूसरेको रोषपूर्वक देख रहे थे ॥ ३२-३३ ॥

उभौ भरतशार्दूलौ विक्रमेण समन्वितौ।
सिंहाविव दुराधर्षौ गदायुद्धविशारदौ ॥ ३४ ॥

भरतवंशके वे विक्रमशाली सिंह दो जंगली सिंहोंके समान दुर्जय थे और दोनों ही गदायुद्धके विशेषज्ञ माने जाते थे ॥ ३४ ॥

नखदंष्ट्रायुधौ वीरौ व्याघ्राविव दुरुत्सहौ।
प्रजासंहरणे क्षुब्धौ समुद्राविव दुस्तरौ ॥ ३५ ॥
लोहिताङ्गाविव क्रुद्धौ प्रतपन्तौ महारथौ।

पञ्जों और दाढ़ोंसे प्रहार करनेवाले दो व्याघ्रोंके समान उन दोनों वीरोंका वेग शत्रुओंके लिये दुःसह था। प्रलयकालमें विक्षुब्ध हुए दो समुद्रोंके समान उन्हें पार करना कठिन था। वे दोनों महारथी क्रोधमें भरे हुए दो मङ्गल ग्रहोंके समान एक दूसरेको ताप दे रहे थे ॥ ३५½ ॥

पूर्वपश्चिमजौ मेघौ प्रेक्षमाणावरिंदमौ ॥ ३६ ॥
गर्जमानौ सुविषमं क्षरन्तौ प्रावृषीव हि।

जैसे वर्षा ऋतुमें पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें स्थित दो वृष्टिकारक मेघ भयंकर गर्जना कर रहे हों, उसी प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर एक दूसरेको देखते हुए भयानक सिंहनाद कर रहे थे ॥ ३६½ ॥

रश्मियुक्तौ महात्मानौ दीप्तिमन्तौ महाबलौ ॥ ३७ ॥
ददृशाते कुरुश्रेष्ठौ कालसूर्याविवोदितौ।

महामनस्वी महाबली कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन और भीमसेन प्रखर किरणोंसे युक्त, प्रलयकालमें उगे हुए दो दीप्तिशाली सूर्योंके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ३७½ ॥

व्याघ्राविव सुसंरब्धौ गर्जन्ताविव तोयदौ ॥ ३८ ॥
जहृषाते महाबाहू सिंहकेसरिणाविव।

रोषमें भरे हुए दो व्याघ्रों, गरजते हुए दो मेघों और दहाड़ते हुए दो सिंहोंके समान वे दोनों महाबाहु वीर हर्षोत्फुल्ल हो रहे थे ॥ ३८½ ॥

गजाविव सुसंरब्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३९ ॥
ददृशाते महात्मानौ सशृङ्गाविव पर्वतौ।

वे दोनों महामनस्वी योद्धा परस्पर कुपित हुए दो हाथियों, प्रज्वलित हुई दो अग्नियों और शिखरयुक्त दो पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३९½ ॥

रोषात् प्रस्फुरमाणोष्ठौ निरीक्षन्तौ परस्परम् ॥ ४० ॥
तौ समेतौ महात्मानौ गदाहस्तौ नरोत्तमौ।

उन दोनोंके ओठ रोषसे फड़क रहे थे। वे दोनों नरश्रेष्ठ एक दूसरेपर दृष्टिपात करते हुए हाथमें गदा ले परस्पर भिड़नेके लिये उद्यत थे ॥ ४०½ ॥

उभौ परमसंहृष्टावुभौ परमसम्मतौ ॥ ४१ ॥
सदश्वाविव हेषन्तौ बृहन्ताविव कुञ्जरौ।
वृषभाविव गर्जन्तौ दुर्योधनवृकोदरौ ॥ ४२ ॥
दैत्याविव बलोन्मत्तौ रेजतुस्तौ नरोत्तमौ।

दोनों अत्यन्त हर्ष और उत्साहमें भरे थे। दोनों ही बड़े सम्मानित वीर थे। मनुष्योंमें श्रेष्ठ वे दुर्योधन और भीमसेन

हींसते हुए दो अच्छे घोड़ों, चिग्घाड़ते हुए दो गजराजों और हँकड़ते हुए दो साँड़ों तथा बलसे उन्मत्त हुए दो दैत्योंके समान शोभा पाते थे ॥ ४१-४२½ ॥

ततो दुर्योधनो राजन्निदमाह युधिष्ठिरम् ॥ ४३ ॥
भ्रातृभिः सहितं चैव कृष्णेन च महात्मना ।
रामेणामितवीर्येण वाक्यं शौटीर्यसम्मतम् ॥ ४४ ॥
केकयैः सृञ्जयैर्दृप्तं पञ्चालैश्च महात्मभिः ।

राजन्! तदनन्तर दुर्योधनने अमितपराक्रमी बलराम, महात्मा श्रीकृष्ण, महामनस्वी पाञ्चाल, सृंजय, केकयगण तथा अपने भाइयोंके साथ खड़े हुए अभिमानी युधिष्ठिरसे इस प्रकार गर्वयुक्त वचन कहा—॥ ४३-४४½ ॥

इदं व्यवसितं युद्धं मम भीमस्य चोभयोः ॥ ४५ ॥
उपोपविष्टाः पश्यध्वं सहितैर्नृपपुङ्गवैः ।

'वीरो! मेरा और भीमसेनका जो यह युद्ध निश्चित हुआ है, इसे आपलोग सभी श्रेष्ठ नरेशोंके साथ निकट बैठकर देखिये' ॥ ४५½ ॥

श्रुत्वा दुर्योधनवचः प्रत्यपद्यन्त तत्तथा ॥ ४६ ॥
ततः समुपविष्टं तत् सुमहद्राजमण्डलम् ।
विराजमानं ददृशे दिवीवादित्यमण्डलम् ॥ ४७ ॥
तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः ।
उपविष्टो महाराज पूज्यमानः समन्ततः ॥ ४८ ॥
शुशुभे राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः ।
नक्षत्रैरिव सम्पूर्णो वृतो निशि निशाकरः ॥ ४९ ॥

दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब लोगोंने उसे स्वीकार कर लिया, फिर तो राजाओंका वह विशाल समूह वहाँ सब ओर बैठ गया। नरेशोंकी वह मण्डली आकाशमें सूर्यमण्डलके समान दिखायी दे रही थी। उन सबके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णके बड़े भ्राता तेजस्वी महाबाहु बलरामजी विराजमान हुए। महाराज! सब ओरसे सम्मानित होते हुए नीलाम्बरधारी, गौरकान्ति बलभद्रजी राजाओंके बीचमें वैसे ही शोभा पा रहे थे, जैसे रात्रिमें नक्षत्रोंसे घिरे हुए पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥ ४६–४९ ॥

तौ तथा तु महाराज गदाहस्तौ सुदुःसहौ ।
अन्योन्यं वाग्भिरुग्राभिस्तक्षमाणौ व्यवस्थितौ॥ ५० ॥

महाराज! हाथमें गदा लिये वे दोनों दुःसह वीर एक दूसरेको अपने कठोर वचनोंद्वारा पीड़ा देते हुए खड़े थे ॥ ५० ॥

अप्रियाणि ततोऽन्योन्यमुक्त्वा तौ कुरुसत्तमौ ।
उदीक्षन्तौ स्थितौ तत्र वृत्रशक्रौ यथाऽऽहवे ॥ ५१ ॥

परस्पर कटु वचनोंका प्रयोग करके वे दोनों कुरुकुलके श्रेष्ठतम वीर वहाँ युद्धस्थलमें वृत्रासुर और इन्द्रके समान एक दूसरेको देखते हुए युद्धके लिये डटे रहे ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि युद्धारम्भे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें युद्धका आरम्भविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्योधनके लिये अपशकुन, भीमसेनका उत्साह तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्धके पश्चात् गदायुद्धका आरम्भ

वैशम्पायन उवाच

ततो वाग्युद्धमभवत् तुमुलं जनमेजय ।
यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर भीमसेन और दुर्योधनमें भयंकर वाग्युद्ध होने लगा। इस प्रसङ्गको सुनकर राजा धृतराष्ट्र बहुत दुखी हुए और संजयसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं यस्य निष्ठेयमीदृशी ।
एकादशचमूभर्ता यत्र पुत्रो ममानघ ॥ २ ॥
आज्ञाप्य सर्वान् नृपतीन् भुक्त्वा चेमां वसुंधराम् ।
गदामादाय वेगेन पदातिः प्रस्थितो रणे ॥ ३ ॥

'निष्पाप संजय! जिसका परिणाम ऐसा दुःखद होता है, उस मानव-जन्मको धिक्कार है! मेरा पुत्र एक दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका स्वामी था। उसने सब राजाओंपर हुक्म चलाया और सारी पृथ्वीका अकेले उपभोग किया; किंतु अन्तमें उसकी यह दशा हुई कि गदा हाथमें लेकर उसे वेगपूर्वक पैदल ही युद्धमें जाना पड़ा ॥ २-३ ॥

भूत्वा हि जगतो नाथो ह्यनाथ इव मे सुतः ।
गदामुद्यम्य यो याति किमन्यद् भागधेयतः ॥ ४ ॥

'जो मेरा पुत्र सम्पूर्ण जगत्का नाथ था, वही अनाथकी भाँति गदा हाथमें लेकर युद्धस्थलमें पैदल जा रहा था। इसे भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है? ॥ ४ ॥

अहो दुःखं महत् प्राप्तं पुत्रेण मम संजय ।
एवमुक्त्वा स दुःखार्तो विरराम जनाधिपः ॥ ५ ॥

'संजय! हाय! मेरे पुत्रने बड़ा भारी दुःख उठाया।' ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र दुःखसे पीड़ित हो चुप हो रहे ॥

संजय उवाच

स मेघनिनदो हर्षान्निनदन्निव गोवृषः ।
आजुहाव तदा पार्थं युद्धाय युधि वीर्यवान् ॥ ६ ॥

संजयने कहा—महाराज! उस समय रणभूमिमें मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले पराक्रमी दुर्योधनने हर्षमें भरकर जोर-जोरसे शब्द करनेवाले साँड़की भाँति सिंहनाद करके कुन्तीपुत्र भीमसेनको युद्धके लिये ललकारा ॥ ६ ॥

भीममाह्वयमाने तु कुरुराजे महात्मनि ।

प्रादुरासन् सुघोराणि रूपाणि विविधान्युत ॥ ७ ॥

महामनस्वी कुरुराज दुर्योधन जब भीमसेनका आह्वान करने लगा, उस समय नाना प्रकारके भयंकर अपशकुन प्रकट हुए ॥ ७ ॥

ववुर्वाताः सनिर्घाताः पांशुवर्षं पपात च ।
बभूवुश्च दिशः सर्वास्तिमिरेण समावृताः ॥ ८ ॥
महास्वनाः सनिर्घातास्तुमुला लोमहर्षणाः ।
पेतुस्तथोल्काः शतशः स्फोटयन्त्यो नभस्तलात् ॥ ९ ॥
राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशाम्पते ।
चकम्पे च महाकम्पं पृथिवी सवनद्रुमा ॥ १० ॥

बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ प्रचण्ड वायु चलने लगी, सब ओर धूलिकी वर्षा होने लगी, सम्पूर्ण दिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो गयीं, आकाशसे महान् शब्द तथा वज्रकी-सी गड़गड़ाहटके साथ रोंगटे खड़े कर देनेवाली सैकड़ों भयंकर उल्काएँ भूतलको विदीर्ण करती हुई गिरने लगीं। प्रजानाथ! अमावास्याके बिना ही राहुने सूर्यको ग्रस लिया, वन और वृक्षोंसहित सारी पृथ्वी जोर-जोरसे काँपने लगी ॥ ८—१० ॥

रूक्षाश्च वाताः प्रववुर्नीचैः शर्करकर्षिणः ।
गिरीणां शिखराण्येव न्यपतन्त महीतले ॥ ११ ॥

नीचे धूल और कंकड़की वर्षा करती हुई रूखी हवा चलने लगी । पर्वतोंके शिखर टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ११ ॥

मृगा बहुविधाकाराः सम्पतन्ति दिशो दश ।
दीप्ताः शिवाश्चाप्यनदन् घोररूपाः सुदारुणाः ॥ १२ ॥

नाना प्रकारकी आकृतिवाले मृग दसों दिशाओंमें दौड़ लगाने लगे । अत्यन्त भयंकर एवं घोररूप धारण करनेवाली सियारिनें जिनका मुख अग्निसे प्रज्वलित हो रहा था, अमङ्गलसूचक बोली बोल रही थीं ॥ १२ ॥

निर्घाताश्च महाघोरा बभूवुर्लोमहर्षणाः ।
दीप्तायां दिशि राजेन्द्र मृगाश्चाशुभवेदिनः ॥ १३ ॥

राजेन्द्र ! अत्यन्त भयंकर और रोमाञ्चकारी शब्द प्रकट हो रहे थे, दिशाएँ मानो जल रही थीं और मृग किसी भावी अमङ्गलकी सूचना दे रहे थे ॥ १३ ॥

उदपानगताश्चापो व्यवर्धन्त समन्ततः ।
अशरीरा महानादाः श्रूयन्ते स्म तदा नृप ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! कुओंके जल सब ओरसे अपने आप बढ़ने लगे और बिना शरीरके ही जोर-जोरसे गर्जनाएँ सुनायी दे रही थीं ॥ १४ ॥

एवमादीनि दृष्ट्वाथ निमित्तानि वृकोदरः ।
उवाच भ्रातरं ज्येष्ठं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार बहुत-से अपशकुन देखकर भीमसेन अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले—॥ १५ ॥

नैष शक्तो रणे जेतुं मन्दात्मा मां सुयोधनः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निगूढं हृदये चिरम् ॥ १६ ॥
सुयोधने कौरवेन्द्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः ।
शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम् ॥ १७ ॥

'भैया ! यह मन्दबुद्धि दुर्योधन रणभूमिमें मुझे किसी प्रकार परास्त नहीं कर सकता । आज मैं अपने हृदयमें चिरकालसे छिपाये हुए क्रोधको कौरवराज दुर्योधनपर उसी प्रकार छोड़ूँगा, जैसे अर्जुनने खाण्डववनमें अग्निको छोड़ा था । पाण्डुनन्दन ! आज आपके हृदयका काँटा मैं निकाल दूँगा ॥ १६-१७ ॥

निहत्य गदया पापमिमं कुरुकुलाधमम् ।
अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्याम्यहं त्वयि ॥ १८ ॥

'मैं अपनी गदासे इस कुरुकुलाधम पापीको मारकर आज आपको कीर्तिमयी माला पहनाऊँगा ॥ १८ ॥

हत्वेमं पापकर्माणं गदया रणमूर्धनि ।
अद्यास्य शतधा देहं भिनद्मि गदयानया ॥ १९ ॥

'युद्धके मुहानेपर गदाके आघातसे इस पापीका वध करके आज इसी गदासे इसके शरीरके सौ-सौ टुकड़े कर डालूँगा ॥ १९ ॥

नायं प्रवेष्टा नगरं पुनर्वारणसाह्वयम् ।
सर्पोत्सर्गस्य शयने विषदानस्य भोजने ॥ २० ॥
प्रमाणकोट्यां पातस्य दाहस्य जतुवेश्मनि ।
सभायामवहासस्य सर्वस्वहरणस्य च ॥ २१ ॥
वर्षमज्ञातवासस्य वनवासस्य चानघ ।
अद्यान्तमेषां दुःखानां गन्ताहं भरतर्षभ ॥ २२ ॥

'अब फिर कभी यह हस्तिनापुरमें प्रवेश नहीं करेगा । भरतश्रेष्ठ ! इसने जो मेरी शय्यापर साँप छोड़ा था, भोजनमें विष दिया था, प्रमाणकोटिके जलमें मुझे गिराया था, लाक्षागृहमें जलानेकी चेष्टा की थी, भरी सभामें मेरा उपहास किया था, सर्वस्व हर लिया था तथा बारह वर्षोंतक वनवास और एक वर्षतक अज्ञातवासके लिये विवश किया था; इसके द्वारा प्राप्त हुए मैं इन सभी दुःखोंका अन्त कर डालूँगा ॥२०—२२॥

एकाह्ना विनिहत्येमं भविष्याम्यात्मनोऽनृणः ।
अद्यायुर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेरकृतात्मनः ॥ २३ ॥
समाप्तं भरतश्रेष्ठ मातापित्रोश्च दर्शनम् ।

'आज एक दिनमें इसका वध करके मैं अपने आपसे उऋण हो जाऊँगा । भरतभूषण ! आज दुर्बुद्धि एवं अजितात्मा धृतराष्ट्रपुत्रकी आयु समाप्त हो गयी है । इसे मातापिताके दर्शनका अवसर भी अब नहीं मिलनेवाला है ।२३½।

अद्य सौख्यं तु राजेन्द्र कुरुराजस्य दुर्मतेः ॥ २४ ॥
समाप्तं च महाराज नारीणां दर्शनं पुनः ।

'राजेन्द्र ! महाराज ! आज खोटी बुद्धिवाले कुरुराज दुर्योधनका सारा सुख समाप्त हो गया । अब इसके लिये पुनः अपनी स्त्रियोंको देखना और उनसे मिलना असम्भव है ॥ २४½ ॥

अद्यायं कुरुराजस्य शान्तनोः कुलपांसनः ॥ २५ ॥
प्राणान् श्रियं च राज्यं च त्यक्त्वा शेष्यति भूतले ।

'कुरुराज शान्तनुके कुलका यह जीता-जागता कलंक

आज अपने प्राण, लक्ष्मी तथा राज्यको छोड़कर सदाके लिये पृथ्वीपर सो जायगा ॥ २५½ ॥

राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ २६ ॥
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ।

'आज राजा धृतराष्ट्र अपने इस पुत्रको मारा गया सुनकर अपने उन अशुभ कर्मोंको याद करेंगे, जिन्हें उन्होंने शकुनिकी सलाहके अनुसार किया था' ॥ २६½ ॥

इत्युक्त्वा राजशार्दूल गदामादाय वीर्यवान् ॥ २७ ॥
अभ्यतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ।

नृपश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर पराक्रमी भीमसेन हाथमें गदा ले युद्धके लिये खड़े हो गये और जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको ललकारा था, उसी प्रकार वे दुर्योधनका आह्वान करने लगे ॥ २७½ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ॥ २८ ॥
भीमसेनः पुनः क्रुद्धो दुर्योधनमुवाच ह ।

शिखरयुक्त कैलास पर्वतके समान गदा उठाये दुर्योधनको खड़ा देख भीमसेन पुनः कुपित हो उससे इस प्रकार बोले—॥ २८½ ॥

राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य तथा त्वमपि चात्मनः ॥ २९ ॥
स्मर तद् दुष्कृतं कर्म यद् वृत्तं वारणावते ।

'दुर्योधन ! वारणावत नगरमें जो कुछ हुआ था, राजा धृतराष्ट्रके और अपने भी उस कुकर्मको तू याद कर ले २९½

द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला ॥ ३० ॥
द्यूते न वञ्चितो राजा यत् त्वया सौबलेन च ।
वने दुःखं च यत् प्राप्तमस्माभिस्त्वत्कृतं महत् ॥ ३१ ॥
विराटनगरे चैव योन्यन्तरगतैरिव ।
तत् सर्वं पातयाम्यद्य दिष्ट्या दृष्टोऽसि दुर्मते ॥ ३२ ॥

'तूने भरी सभामें जो रजस्वला द्रौपदीको अपमानित करके उसे क्लेश पहुँचाया था, सुबलपुत्र शकुनिके द्वारा जूएमें जो राजा युधिष्ठिरको ठग लिया था, तुम्हारे कारण हम सब लोगोंने जो वनमें महान् दुःख उठाया था और विराटनगरमें जो हमें दूसरी योनिमें गये हुए प्राणियोंके समान रहना पड़ा था; इन सब कष्टोंके कारण मेरे मनमें जो क्रोध संचित है, वह सब-का-सब आज तुझपर डाल दूँगा। दुर्मते ! सौभाग्यसे आज तू मुझे दीख गया है ॥ ३०–३२ ॥

त्वत्कृतेऽसौ हतः शेते शरतल्पे प्रतापवान् ।
गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठो निहतो याज्ञसेनिना ॥ ३३ ॥

'तेरे ही कारण रथियोंमें श्रेष्ठ प्रतापी गङ्गानन्दन भीष्म द्रुपदकुमार शिखण्डीके हाथसे मारे जाकर बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ ३३ ॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च तथा शल्यः प्रतापवान् ।
वैराग्नेरादिकर्तासौ शकुनिः सौबलो हतः ॥ ३४ ॥

'द्रोणाचार्य, कर्ण और प्रतापी शल्य मारे गये तथा इस वैरकी आगको प्रज्वलित करनेमें जिसका सबसे पहला हाथ था, वह सुबलपुत्र शकुनि भी मार डाला गया ॥ ३४ ॥

प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः ।
भ्रातरस्ते हताः सर्वे शूरा विक्रान्तयोधिनः ॥ ३५ ॥

'द्रौपदीको क्लेश देनेवाला पापात्मा प्रातिकामी भी मारा गया। साथ ही जो पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले थे, वे तेरे सभी शूरवीर भाई भी मारे जा चुके हैं ॥

एते चान्ये च बहवो निहतास्त्वत्कृते नृपाः ।
त्वामद्य निहनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥ ३६ ॥

'ये तथा और भी बहुत-से नरेश तेरे लिये युद्धमें मारे गये हैं। आज तुझे भी गदासे मार गिराऊँगा, इसमें संशय नहीं है' ॥ ३६ ॥

इत्येवमुच्चै राजेन्द्र भाषमाणं वृकोदरम् ।
उवाच गतभी राजन् पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥ ३७ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार उच्च स्वरसे बोलनेवाले भीमसेनसे आपके सत्यपराक्रमी पुत्रने निर्भय होकर कहा—॥ ३७ ॥

किं कत्थनेन बहुना युध्यस्व त्वं वृकोदर ।
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां कुलाधम ॥ ३८ ॥

'वृकोदर ! बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनानेसे क्या लाभ ? तू मेरे साथ संग्राम कर ले। कुलाधम ! आज मैं तेरा युद्धका हौसला मिटा दूँगा ॥ ३८ ॥

न हि दुर्योधनः क्षुद्र केनचित् त्वद्विधेन वै ।
शक्यस्त्रासयितुं वाचा यथान्यः प्राकृतो नरः ॥ ३९ ॥

'ओ नीच ! तेरे-जैसा कोई भी मनुष्य अन्य प्राकृत पुरुषके समान दुर्योधनकोवाणीद्वारा नहीं डरा सकता ॥३९॥

चिरकालेप्सितं दिष्ट्या हृदयस्थमिदं मम ।
त्वया सह गदायुद्धं त्रिदशैरुपपादितम् ॥ ४० ॥

'सौभाग्यकी बात है कि मेरे हृदयमें दीर्घकालसे जो तेरे साथ गदायुद्ध करनेकी अभिलाषा थी, उसे देवताओंने पूर्ण कर दिया ॥ ४० ॥

किं वाचा बहुनोक्तेन कत्थितेन च दुर्मते ।
वाणी सम्पद्यतामेषा कर्मणा मा चिरं कृथाः ॥ ४१ ॥

'दुर्बुद्धे ! वाणीद्वारा बहुत शेखी बघारनेसे क्या होगा? तू जो कुछ कहता है, उसे शीघ्र ही कार्यरूपमें परिणत कर' ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सर्व एवाभ्यपूजयन् ।
राजानः सोमकाश्चैव ये तत्रासन् समागताः ॥ ४२ ॥

दुर्योधनकी यह बात सुनकर वहाँ आये हुए समस्त राजाओं तथा सोमकोंने उसकी बड़ी सराहना की ॥ ४२ ॥

ततः सम्पूजितः सर्वैः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
भूयो धीरां मतिं चक्रे युद्धाय कुरुनन्दनः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर सबसे सम्मानित हो कुरुनन्दन दुर्योधनने युद्धके लिये धीर बुद्धिका आश्रय लिया। उस समय उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था ॥ ४३ ॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं तलशब्दैर्नराधिपाः ।
भूयः संहर्षयांचक्रुर्दुर्योधनममर्षणम् ॥ ४४ ॥

इसके बाद जैसे लोग ताली बजाकर मतवाले हाथीको कुपित कर देते हैं, उसी प्रकार राजाओंने ताली पीटकर



दुर्योधन और भीमका गदायुद्ध

अमर्षशील दुर्योधनको पुनः हर्ष और उत्साहसे भर दिया ॥

तं महात्मा महात्मानं गदामुद्यम्य पाण्डवः ।
अभिदुद्राव वेगेन धार्तराष्ट्रं वृकोदरः ॥ ४५ ॥

महामनस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनने गदा उठाकर आपके महामना पुत्र दुर्योधनपर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ४५ ॥

बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत् ।
शस्त्राणि चाप्यदीप्यन्त पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ४६ ॥

उस समय हाथी बारंबार चिग्घाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे । साथ ही विजयाभिलाषी पाण्डवोंके अस्त्र-शस्त्र चमक उठे ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि गदायुद्धारम्भे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें गदायुद्धका आरम्भविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भीमसेन और दुर्योधनका गदायुद्ध

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भीमसेनं तथागतम् ।
प्रत्युद्ययावदीनात्मा वेगेन महता नदन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर उदारहृदय दुर्योधनने भीमसेनको इस प्रकार आक्रमण करते देख स्वयं भी गर्जना करते हुए बड़े वेगसे आगे बढ़कर उनका सामना किया ॥

समापेततुरन्योन्यं श‍ृङ्गिणौ वृषभाविव ।
महानिर्घातघोषश्च प्रहाराणामजायत ॥ २ ॥

वे दोनों बड़े-बड़े सींगवाले दो साँड़ोंके समान एक-दूसरेसे भिड़ गये । उनके प्रहारोंकी आवाज महान् वज्रपातके समान भयंकर जान पड़ती थी ॥ २ ॥

अभवच्च तयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
जिगीषतोर्यथान्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव ॥ ३ ॥

एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले उन दोनोंमें इन्द्र और प्रह्लादके समान भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा ॥ ३ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ गदाहस्तौ मनस्विनौ ।
ददृशाते महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

उनके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो गये थे । हाथमें गदा लिये वे दोनों महामना मनस्वी वीर फूले हुए दो पलाश-वृक्षोंके समान दिखायी देते थे ॥ ४ ॥

तथा तस्मिन् महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे ।
खद्योतसंघैरिव खं दर्शनीयं व्यरोचत ॥ ५ ॥

उस अत्यन्त भयंकर महायुद्धके चालू होनेपर गदाओंके आघातसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं । वे आकाशमें जुगनुओंके दलके समान जान पड़ती थीं और उनसे वहाँके आकाशकी दर्शनीय शोभा हो रही थी ॥ ५ ॥

तथा तस्मिन् वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम् ।
उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिंदमौ ॥ ६ ॥

इस प्रकार चलते हुए उस अत्यन्त भयंकर घमासान युद्धमें लड़ते-लड़ते वे दोनों शत्रुदमन वीर बहुत थक गये ॥

तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतपौ ।
सम्प्रहारयतां चित्रे सम्प्रगृह्य गदे शुभे ॥ ७ ॥

फिर उन दोनोंने दो घड़ीतक विश्राम किया । इसके बाद शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों योद्धा फिर विचित्र एवं सुन्दर गदाएँ हाथमें लेकर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥

तौ तु दृष्ट्वा महावीर्यौ समाश्वस्तौ नरर्षभौ ।
बलिनौ वारणौ यद्वद्वा सितार्थे मदोत्कटौ ॥ ८ ॥
समानवीर्यौ सम्प्रेक्ष्य प्रगृहीतगदावुभौ ।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वमानवाः ॥ ९ ॥

उन समान बलशाली महापराक्रमी नरश्रेष्ठ वीरोंने विश्राम करके पुनः हाथमें गदा ले ली और मैथुनकी इच्छावाली हथिनीके लिये लड़नेवाले दो बलवान् एवं मदोन्मत्त गजराजोंके समान पुनः युद्ध आरम्भ कर दिया है, यह देखकर देवता, गन्धर्व और मनुष्य सभी अत्यन्त आश्चर्यसे चकित हो उठे ॥ ८-९ ॥

प्रगृहीतगदौ दृष्ट्वा दुर्योधनवृकोदरौ ।
संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत ॥ १० ॥

दुर्योधन और भीमसेनको पुनः गदा उठाये देख उनमेंसे किसी एककी विजयके सम्बन्धमें समस्त प्राणियोंके हृदयमें संशय उत्पन्न हो गया ॥ १० ॥

समागम्य ततो भूयो भ्रातरौ बलिनां वरौ ।
अन्योन्यस्यान्तरप्रेप्सू प्रचक्रातेऽन्तरं प्रति ॥ ११ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ उन दोनों भाइयोंमें जब पुनः भिड़न्त हुई तो दोनों ही दोनोंके चूकनेका अवसर देखते हुए पैंतरे बदलने लगे ॥ ११ ॥

यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिमिवोद्यताम् ।
ददृशुः प्रेक्षका राजन् रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥ १२ ॥
आविद्ध्यतो गदां तस्य भीमसेनस्य संयुगे ।
शब्दः सुतुमुलो घोरो मुहूर्तं समपद्यत ॥ १३ ॥

राजन् ! उस समय युद्धस्थलमें जब भीमसेन अपनी गदा घुमाने लगे, तब दर्शकोंने देखा, उनकी भारी गदा यमदण्डके समान भयंकर है । वह इन्द्रके वज्रके समान ऊपर उठी हुई है और शत्रुको छिन्न-भिन्न कर डालनेमें समर्थ है । गदा घुमाते समय उसकी घोर एवं भयानक आवाज वहाँ दो घड़ीतक गूँजती रही ॥ १२-१३ ॥

आविद्ध्यन्तमरिं प्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रोऽथ पाण्डवम् ।
गदामतुलवेगां तां विस्मितः सम्बभूव ह ॥ १४ ॥

आपका पुत्र दुर्योधन अपने शत्रु पाण्डुकुमार भीमसेनको वह अनुपम वेगशालिनी गदा घुमाते देख आश्चर्यमें पड़ गया ॥

चरंश्च विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भारत ।
अशोभत तदा वीरो भूय एव वृकोदरः ॥ १५ ॥

भरतनन्दन ! वीर भीमसेन भाँति-भाँतिके मार्गों और मण्डलोंका प्रदर्शन करते हुए पुनः बड़ी शोभा पाने लगे ॥

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यरक्षणे ।
मार्जाराविव भक्षार्थे ततक्षाते मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥

वे दोनों परस्पर भिड़कर एक दूसरेसे अपनी रक्षाके लिये प्रयत्नशील हो रोटीके टुकड़ोंके लिये लड़नेवाले दो बिलावोंके समान बारंबार आघात-प्रतिघात कर रहे थे ॥ १६ ॥

अचरद् भीमसेनस्तु मार्गान् बहुविधांस्तथा ।
मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ १७ ॥

उस समय भीमसेन नाना प्रकारके मार्ग और विचित्र मण्डल दिखाने लगे । वे कभी शत्रुके सम्मुख आगे बढ़ते और कभी उसका सामना करते हुए ही पीछे हट आते थे ॥

अस्त्रयन्त्राणि चित्राणि स्थानानि विविधानि च ।
परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥ १८ ॥

विचित्र अस्त्र-यन्त्रों और भाँति-भाँतिके स्थानोंका प्रदर्शन करते हुए वे दोनों शत्रुके प्रहारोंसे अपनेको बचाते, विपक्षीके प्रहारको व्यर्थ कर देते और दायें-बायें दौड़ लगाते थे ॥१८॥

अभिद्रवणमाक्षेपमवस्थानं सविग्रहम् ।
परिवर्तनसंवर्तमवप्लुतमुपप्लुतम् ॥ १९ ॥
उपन्यस्तमपन्यस्तं गदायुद्धविशारदौ ।
एवं तौ विचरन्तौ तु परस्परमविध्यताम् ॥ २० ॥

कभी वेगसे एक-दूसरेके सामने जाते, कभी विरोधीको गिरानेकी चेष्टा करते, कभी स्थिरभावसे खड़े होते, कभी गिरे हुए शत्रुके उठनेपर पुनः उसके साथ युद्ध करते, कभी विरोधीपर प्रहार करनेके लिये चक्कर काटते, कभी शत्रुके बढ़ावको रोक देते, कभी विपक्षीके प्रहारको विफल करनेके लिये झुककर निकल जाते, कभी उछलते-कूदते, कभी निकट आकर गदाका प्रहार करते और कभी लौटकर पीछेकी ओर किये हुए हाथसे शत्रुपर आघात करते थे । दोनों ही गदा-युद्धके विशेषज्ञ थे और इस प्रकार पैंतरे बदलते हुए एक-दूसरेपर चोट करते थे ॥ १९-२० ॥

वञ्चयानौ पुनश्चैव चेरतुः कुरुसत्तमौ ।
विक्रीडन्तौ सुबलिनौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २१ ॥

कुरुकुलके वे दोनों श्रेष्ठ और बलवान् वीर विपक्षीको चकमा देते हुए बारंबार युद्धके खेल दिखाते तथा पैंतरे बदलते थे ॥ २१ ॥

तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः ।
गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ ॥ २२ ॥

समराङ्गणमें सब ओर युद्धकी क्रीडाका प्रदर्शन करते हुए उन दोनों शत्रुदमन वीरोंने सहसा अपनी गदाओंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार किया ॥ २२ ॥

परस्परं समासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा ।
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ ॥ २३ ॥

महाराज ! जैसे दो हाथी अपने दाँतोंसे परस्पर प्रहार करके लहू-लुहान हो जाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों एक-दूसरेपर चोट करके खूनसे भीगकर शोभा पाने लगे ॥ २३ ॥

एवं तदभवद् युद्धं घोररूपं परंतप ।
परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ॥ २४ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! इस प्रकार दिनकी समाप्तिके समय उन दोनों वीरोंमें वृत्रासुर और इन्द्रके समान क्रूरतापूर्ण एवं भयंकर युद्ध होने लगा ॥ २४ ॥

गदाहस्तौ ततस्तौ तु मण्डलावस्थितौ बली ।
दक्षिणं मण्डलं राजन् धार्तराष्ट्रोऽभ्यवर्तत ॥ २५ ॥
सव्यं तु मण्डलं तत्र भीमसेनोऽभ्यवर्तत ।

राजन् ! दोनों ही हाथमें गदा लेकर मण्डलाकार युद्ध-स्थलमें खड़े थे । उनमेंसे बलवान् दुर्योधन दक्षिण मण्डलमें खड़ा था और भीमसेन बायें मण्डलमें ॥ २५½ ॥

तथा तु चरतस्तस्य भीमस्य रणमूर्धनि ॥ २६ ॥
दुर्योधनो महाराज पार्श्वदेशेऽभ्यताडयत् ।

महाराज ! युद्धके मुहानेपर वाममण्डलमें विचरते हुए भीमसेनकी पसलीमें दुर्योधनने गदा मारी ॥ २६½ ॥

आहतस्तु ततो भीमः पुत्रेण तव भारत ॥ २७ ॥
आविद्ध्यत गदां गुर्वीं प्रहारं तमचिन्तयन् ।

भरतनन्दन ! आपके पुत्रद्वारा आहत किये गये भीमसेन उस प्रहारको कुछ भी न गिनते हुए अपनी भारी गदा घुमाने लगे ॥ २७½ ॥

इन्द्राशनिसमां घोरां यमदण्डमिवोद्यताम् ॥ २८ ॥
ददृशुस्ते महाराज भीमसेनस्य तां गदाम् ।

राजेन्द्र ! दर्शकोंने भीमसेनकी उस भयंकर गदाको इन्द्रके वज्र और यमराजके दण्डके समान उठी हुई देखा ॥

आविध्यन्तं गदां दृष्ट्वा भीमसेनं तवात्मजः ॥ २९ ॥
समुद्यम्य गदां घोरां प्रत्यविध्यत् परंतपः ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले आपके पुत्र दुर्योधनने भीमसेनको गदा घुमाते देख अपनी भयंकर गदा उठाकर उनकी गदापर दे मारी ॥ २९½ ॥

गदामारुतवेगेन तव पुत्रस्य भारत ॥ ३० ॥
शब्द आसीत् सुतुमुलस्तेजश्च समजायत ।

भारत ! आपके पुत्रकी वायुतुल्य गदाके वेगसे उस गदाके टकरानेपर बड़े जोरका शब्द हुआ और दोनों गदाओंसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं ॥ ३०½ ॥

स चरन् विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः ॥ ३१ ॥
समशोभत तेजस्वी भूयो भीमात् सुयोधनः ।

नाना प्रकारके मार्गों और भिन्न-भिन्न मण्डलोंसे विचरते हुए तेजस्वी दुर्योधनकी उस समय भीमसेनसे अधिक शोभा हुई ॥

आविद्धा सर्ववेगेन भीमेन महती गदा ॥ ३२ ॥
सधूमं सार्चिषं चाग्निं मुमोचोग्रमहास्वना ।

भीमसेनके द्वारा सम्पूर्ण वेगसे घुमायी गयी वह विशाल गदा उस समय भयंकर शब्द करती हुई धूम और ज्वालाओं-सहित आग प्रकट करने लगी ॥ ३२½ ॥

आधूतां भीमसेनेन गदां दृष्ट्वा सुयोधनः ॥ ३३ ॥
अद्रिसारमयीं गुर्वीमाविध्यन् बह्वशोभत ।

भीमसेनके द्वारा घुमायी गयी उस गदाको देखकर दुर्योधन भी अपनी लोहमयी भारी गदाको घुमाता हुआ अधिक शोभा पाने लगा ॥ ३३½ ॥

गदामारुतवेगं हि दृष्ट्वा तस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥
भयं विवेश पाण्डूंस्तु सर्वानेव ससोमकान् ।

उस महामनस्वी वीरकी वायुतुल्य गदाके वेगको देखकर सोमकोंसहित समस्त पाण्डवोंके मनमें भय समा गया ॥

तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः ॥ ३५ ॥
गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ ।

समराङ्गणमें सब ओर युद्धकी क्रीडाका प्रदर्शन करते हुए उन दोनों शत्रुदमन वीरोंने सहसा अपनी गदाओंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार किया ॥ ३५½ ॥

तौ परस्परमासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा ॥ ३६ ॥
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ ।

महाराज ! जैसे दो हाथी अपने दाँतोंसे परस्पर प्रहार करके लहू-लुहान हो जाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों एक-दूसरेपर चोट करके खूनसे लथपथ हो अद्भुत शोभा पाने लगे ॥

एवं तदभवद् युद्धं घोररूपमसंवृतम् ॥ ३७ ॥
परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ।

इस प्रकार दिनकी समाप्तिके समय, उन दोनों वीरोंमें प्रकटरूपमें वृत्रासुर और इन्द्रके समान क्रूरतापूर्ण एवं भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ३७½ ॥

दृष्ट्वा व्यवस्थितं भीमं तव पुत्रो महाबलः ॥ ३८ ॥
चरंश्चित्रतरान् मार्गान् कौन्तेयमभिदुद्रुवे ।

तदनन्तर विचित्र मार्गोंसे विचरते हुए आपके महाबली पुत्रने कुन्तीकुमार भीमसेनको खड़ा देख उनपर सहसा आक्रमण किया ॥ ३८½ ॥

तस्य भीमो महावेगां जाम्बूनदपरिष्कृताम् ॥ ३९ ॥
अतिक्रुद्धस्य क्रुद्धस्तु ताडयामास तां गदाम् ।

यह देख क्रोधमें भरे भीमसेनने अत्यन्त कुपित हुए दुर्योधनकी सुवर्णजटित उस महावेगशालिनी गदापर ही अपनी गदासे आघात किया ॥ ३९½ ॥

सविस्फुलिङ्गो निर्ह्रादस्तयोस्तत्राभिघातजः ॥ ४० ॥
प्रादुरासीन्महाराज सृष्टयोर्वज्रयोरिव ।

महाराज ! उन दोनों गदाओंके टकरानेसे भयंकर शब्द हुआ और आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं । उस समय ऐसा जान पड़ा, मानो दोनों ओरसे छोड़े गये दो वज्र परस्पर टकरा गये हों ॥ ४०½ ॥

वेगवत्या तया तत्र भीमसेनप्रमुक्तया ॥ ४१ ॥
निपतन्त्या महाराज पृथिवी समकम्पत ।

राजेन्द्र ! भीमसेनकी छोड़ी हुई उस वेगवती गदाके गिरनेसे धरती डोलने लगी ॥ ४१½ ॥

तां नामृष्यत कौरव्यो गदां प्रतिहतां रणे ॥ ४२ ॥
मत्तो द्विप इव क्रुद्धः प्रतिकुञ्जरदर्शनात् ।

जैसे क्रोधमें भरा हुआ मतवाला हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी गजराजको देखकर सहन नहीं कर पाता, उसी प्रकार रणभूमिमें अपनी गदाको प्रतिहत हुई देख कुरुवंशी दुर्योधन नहीं सह सका ॥ ४२½ ॥

स सव्यं मण्डलं राजा उद्भ्राम्य कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥
आजघ्ने मूर्ध्नि कौन्तेयं गदया भीमवेगया ।

तत्पश्चात् राजा दुर्योधनने अपने मनमें दृढ़ निश्चय लेकर बायें मण्डलसे चक्कर लगाते हुए अपनी भयंकर वेगशाली गदासे कुन्तीकुमार भीमसेनके मस्तकपर प्रहार किया ॥४३½॥

तया त्वभिहतो भीमः पुत्रेण तव पाण्डवः ॥ ४४ ॥
नाकम्पत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ।

महाराज ! आपके पुत्रके आघातसे पीड़ित होनेपर भी पाण्डुपुत्र भीमसेन विचलित नहीं हुए । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४४½ ॥

आश्चर्यं चापि तद् राजन् सर्वसैन्यान्यपूजयन् ॥ ४५ ॥
यद् गदाभिहतो भीमो नाकम्पत पदात् पदम् ।

राजन् ! गदाकी चोट खाकर भी जो भीमसेन एक पग भी इधर-उधर नहीं हुए, वह महान् आश्चर्यकी बात थी, जिसकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ४५½ ॥

ततो गुरुतरां दीप्तां गदां हेमपरिष्कृताम् ॥ ४६ ॥
दुर्योधनाय व्यसृजद् भीमो भीमपराक्रमः ।

तदनन्तर भयंकर पराक्रमी भीमसेनने दुर्योधनपर अपनी सुवर्णजटित तेजस्विनी एवं बड़ी भारी गदा छोड़ी ॥ ४६½ ॥

तं प्रहारमसम्भ्रान्तो लाघवेन महाबलः ॥ ४७ ॥
मोघं दुर्योधनश्चक्रे तत्राभूद् विस्मयो महान् ।

परंतु महाबली दुर्योधनको इससे तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उसने फुर्तीसे इधर-उधर होकर उस प्रहारको व्यर्थ कर दिया । यह देख वहाँ सब लोगोंको महान् आश्चर्य हुआ॥

सा तु मोघा गदा राजन् पतन्ती भीमचोदिता ॥ ४८ ॥
चालयामास पृथिवीं महानिर्घातनिःस्वना ।

राजन् ! भीमसेनकी चलायी हुई वह गदा जब व्यर्थ होकर गिरने लगी, उस समय उसने वज्रपातके समान महान् शब्द प्रकट करके पृथ्वीको हिला दिया ॥ ४८½ ॥

आस्थाय कौशिकान् मार्गानुत्पतन् स पुनः पुनः॥ ४९ ॥
गदानिपातं प्रज्ञाय भीमसेनं च वञ्चितम् ।
वञ्चयित्वा तदा भीमं गदया कुरुसत्तमः ॥ ५० ॥
ताडयामास संक्रुद्धो वक्षोदेशे महाबलः ।

जब राजा दुर्योधनने देखा कि भीमसेनकी गदा नीचे गिर गयी और उनका वार खाली गया, तब क्रोधमें भरे हुए महाबली कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनने कौशिक मार्गोंका आश्रय ले बार-बार उछलकर भीमसेनको धोखा देकर उनकी छातीमें गदा मारी ॥ ४९-५०½ ॥

गदया निहतो भीमो मुह्यमानो महारणे ॥ ५१ ॥
नाभ्यमन्यत कर्तव्यं पुत्रेणाभ्याहतस्तव ।

उस महासमरमें आपके पुत्रकी गदाकी चोट खाकर भीमसेन मूर्च्छित-से हो गये और एक क्षणतक उन्हें अपने कर्तव्यका ज्ञानतक न रहा ॥ ५१½ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने राजन् सोमकपाण्डवाः ॥ ५२ ॥
भृशोपहतसंकल्पा न हृष्टमनसोऽभवन् ।

राजन् ! जब भीमसेनकी ऐसी अवस्था हो गयी, उस समय सोमक और पाण्डव बहुत ही खिन्न और उदास हो गये । उनकी विजयकी आशा नष्ट हो गयी ॥ ५२½ ॥

स तु तेन प्रहारेण मातङ्ग इव रोषितः ॥ ५३ ॥
हस्तिवद्धस्तिसंकाशमभिदुद्राव ते सुतम् ।

उस प्रहारसे भीमसेन मतवाले हाथीकी भाँति कुपित हो उठे और जैसे एक गजराज दूसरे गजराजपर धावा करता है, उसी प्रकार उन्होंने आपके पुत्रपर आक्रमण किया ॥५३½॥

ततस्तु तरसा भीमो गदया तनयं तव ॥ ५४ ॥
अभिदुद्राव वेगेन सिंहो वनगजं यथा ।

जैसे सिंह जंगली हाथीपर झपटता है, उसी प्रकार भीमसेन गदा लेकर बड़े वेगसे आपके पुत्रकी ओर दौड़े ॥५४½॥

उपसृत्य तु राजानं गदामोक्षविशारदः ॥ ५५ ॥
आविध्यत गदां राजन् समुद्दिश्य सुतं तव ।
अताडयद् भीमसेनः पार्श्वे दुर्योधनं तदा ॥ ५६ ॥

राजन् ! गदाका प्रहार करनेमें कुशल भीमसेनने आपके पुत्र राजा दुर्योधनके निकट पहुँचकर गदा घुमायी और उसे मार डालनेके उद्देश्यसे उसकी पसलीमें आघात किया ॥

स विह्वलः प्रहारेण जानुभ्यामगमन्महीम् ।
तस्मिन् कुरुकुलश्रेष्ठे जानुभ्यामवनीं गते ॥ ५७ ॥
उदतिष्ठत् ततो नादः सृंजयानां जगत्पते ।

राजन् ! उस प्रहारसे व्याकुल हो आपका पुत्र पृथ्वीपर घुटने टेककर बैठ गया । उस कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर दुर्योधनके घुटने टेक देनेपर सृंजयोंने बड़े जोरसे हर्षध्वनि की ॥५७½॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा सृंजयानां नरर्षभः ॥ ५८ ॥
अमर्षाद् भरतश्रेष्ठ पुत्रस्ते समकुप्यत ।
उत्थाय तु महाबाहुर्महानाग इव श्वसन् ॥ ५९ ॥
दिधक्षन्निव नेत्राभ्यां भीमसेनमवैक्षत ।

भरतश्रेष्ठ ! उन सृंजयोंका वह सिंहनाद सुनकर पुरुषप्रवर आपका महाबाहु पुत्र दुर्योधन अमर्षसे कुपित हो उठा और खड़ा होकर महान् सर्पके समान फुंकार करने लगा । उसने दोनों आँखोंसे भीमसेनकी ओर इस प्रकार देखा, मानो उन्हें भस्म कर डालना चाहता हो ॥ ५८-५९½ ॥

ततः स भरतश्रेष्ठो गदापाणिरभिद्रवन् ॥ ६० ॥
प्रमथिष्यन्निव शिरो भीमसेनस्य संयुगे ।

भरतवंशका वह श्रेष्ठ वीर हाथमें गदा लेकर युद्धस्थलमें भीमसेनका मस्तक कुचल डालनेके लिये उनकी ओर दौड़ा ॥

स महात्मा महात्मानं भीमं भीमपराक्रमः ॥ ६१ ॥
अताडयच्छङ्खदेशे न चचालाचलोपमः ।

पास पहुँचकर उस भयंकर पराक्रमी महामनस्वी वीरने महामना भीमसेनके ललाटपर गदासे आघात किया, परंतु भीमसेन पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े रह गये, तनिक भी विचलित नहीं हुए ॥ ६१½ ॥

स भूयः शुशुभे पार्थस्ताडितो गदया रणे ।
उद्भिन्नरुधिरो राजन् प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ६२ ॥

राजन् ! रणभूमिमें उस गदाकी चोट खाकर भीमसेनके मस्तकसे रक्तकी धारा बह चली और वे मदकी धारा बहानेवाले गजराजके समान अधिक शोभा पाने लगे ॥ ६२ ॥

ततो गदां वीरहणीमयोमयीं
प्रगृह्य वज्राशनितुल्यनिःस्वनाम् ।
अताडयच्छत्रुममित्रकर्षणो
बलेन विक्रम्य धनंजयाग्रजः ॥ ६३ ॥

तदनन्तर अर्जुनके बड़े भाई शत्रुसूदन भीमसेनने बलपूर्वक पराक्रम प्रकट करके वज्र और अशनिके तुल्य महान् शब्द करनेवाली वीरविनाशिनी लोहमयी गदा हाथमें लेकर उसके द्वारा अपने शत्रुपर प्रहार किया ॥ ६३ ॥

स भीमसेनाभिहतस्तवात्मजः
पपात संकम्पितदेहबन्धनः ।
सुपुष्पितो मारुतवेगताडितो
वने यथा शाल इवावघूर्णितः ॥ ६४ ॥

भीमसेनके उस प्रहारसे आहत होकर आपके पुत्रके शरीरकी नस-नस ढीली हो गयी और वह वायुके वेगसे प्रताड़ित हो झोंके खानेवाले विकसित शालवृक्षकी भाँति काँपता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६४ ॥

ततः प्रणेदुर्जहृषुश्च पाण्डवाः
समीक्ष्य पुत्रं पतितं क्षितौ तव ।
ततः सुतस्ते प्रतिलभ्य चेतनां
समुत्पपात द्विरदो यथा ह्रदात् ॥ ६५ ॥

आपके पुत्रको पृथ्वीपर पड़ा देख पाण्डव हर्षमें भरकर सिंहनाद करने लगे । इतनेहीमें आपका पुत्र होशमें आ गया और सरोवरसे निकले हुए हाथीके समान उछलकर खड़ा हो गया ॥ ६५ ॥

स पार्थिवो नित्यममर्षितस्तदा
महारथः शिक्षितवत् परिभ्रमन् ।
अताडयत् पाण्डवमग्रतः स्थितं
स विह्वलाङ्गो जगतीमुपास्पृशत् ॥ ६६ ॥

सदा अमर्षमें भरे रहनेवाले महारथी राजा दुर्योधनने एक शिक्षित योद्धाकी भाँति विचरते हुए अपने सामने खड़े भीमसेनपर पुनः गदाका प्रहार किया । उसकी चोट खाकर भीमसेनका सारा शरीर शिथिल हो गया और उन्होंने धरती थाम ली ॥

स सिंहनादं विननाद कौरवो
निपात्य भूमौ युधि भीममोजसा ।
बिभेद चैवाशनितुल्यमोजसा
गदानिपातेन शरीररक्षणम् ॥ ६७ ॥

भीमसेनको युद्धस्थलमें बलपूर्वक भूमिपर गिराकर कुरुराज दुर्योधन सिंहके समान दहाड़ने लगा । उसने सारी शक्ति

लगाकर चलायी हुई गदाके आघातसे भीमसेनके वज्रतुल्य कवचका भेदन कर दिया था ॥ ६७ ॥

ततोऽन्तरिक्षे निनदो महानभूद्
दिवौकसामप्सरसां च नेदुषाम् ।
पपात चोच्चैरमरप्रवेरितं
विचित्रपुष्पोत्करवर्षमुत्तमम् ॥ ६८ ॥

उस समय आकाशमें हर्षध्वनि करनेवाले देवताओं और अप्सराओंका महान् कोलाहल गूँज उठा। साथ ही देवताओंद्वारा बहुत ऊँचेसे की हुई विचित्र पुष्पसमूहोंकी वहाँ अच्छी वर्षा होने लगी ॥ ६८ ॥

ततः परानाविशदुत्तमं भयं
समीक्ष्य भूमौ पतितं नरोत्तमम् ।
अहीयमानं च बलेन कौरवं
निशाम्य भेदं सुदृढस्य वर्मणः ॥ ६९ ॥

राजन् ! तदनन्तर यह देखकर कि भीमसेनका सुदृढ़ कवच छिन्न-भिन्न हो गया, नरश्रेष्ठ भीम धराशायी हो गये और कुरुराज दुर्योधनका बल क्षीण नहीं हो रहा है, शत्रुओंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ ६९ ॥

ततो मुहूर्तादुपलभ्य चेतनां
प्रमृज्य वक्त्रं रुधिराक्तमात्मनः ।
धृतिं समालम्ब्य विवृत्य लोचने
बलेन संस्तभ्य वृकोदरः स्थितः ॥ ७० ॥

तत्पश्चात् दो घड़ीमें सचेत हो भीमसेन खूनसे भींगे हुए अपने मुँहको पोंछते हुए उठे और बलपूर्वक अपनेको सँभालकर धैर्यका आश्रय ले आँख खोलकर देखते हुए पुनः युद्धके लिये खड़े हो गये ॥ ७० ॥

(ततो यमौ यमसदृशौ पराक्रमे
सपार्षतः शिनितनयश्च वीर्यवान् ।
समाह्वयन्नहमित्यभित्वरं-
स्तवात्मजं समभियुयुर्जयैषिणः ॥

उस समय यमराजके सदृश पराक्रमी नकुल और सहदेव, धृष्टद्युम्न तथा पराक्रमी शिनिपौत्र सात्यकि—ये सब-के-सब विजयके अभिलाषी हो 'मैं लड़ूँगा, मैं लड़ूँगा' ऐसा कहकर बड़ी उतावलीके साथ आपके पुत्रको ललकारने और उसपर आक्रमण करने लगे ॥

निगृह्य तान् पुनरपि पाण्डवो बली
तवात्मजं स्वयमभिगम्य कालवत् ।
चचार च व्यपगतखेदवेपथुः
सुरेश्वरो नमुचिमिवोत्तमं रणे ॥)

परंतु बलवान् पाण्डुपुत्र भीमने उन सबको रोककर स्वयं ही आपके पुत्रपर पुनः कालके समान आक्रमण किया और खेद एवं कम्पसे रहित होकर वे रणभूमिमें उसी प्रकार विचरने लगे, जैसे देवराज इन्द्र श्रेष्ठ दैत्य नमुचिपर आक्रमण करके युद्धस्थलमें विचरण करते थे ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि गदायुद्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें गदायुद्धविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ७२ श्लोक हैं)

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनके संकेतके अनुसार भीमसेनका गदासे दुर्योधनकी जाँघें तोड़कर उसे धराशायी करना एवं भीषण उत्पातोंका प्रकट होना

संजय उवाच

समुदीर्णं ततो दृष्ट्वा संग्रामं कुरुमुख्ययोः ।
अथाब्रवीदर्जुनस्तु वासुदेवं यशस्विनम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कुरुकुलके उन दोनों प्रमुख वीरोंके उस संग्रामको उत्तरोत्तर बढ़ता देख अर्जुनने यशस्वी भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—॥ १ ॥

अनयोर्वीरयोर्युद्धे को ज्यायान् भवतो मतः ।
कस्य वा को गुणो भूयानेतद् वद जनार्दन ॥ २ ॥

'जनार्दन ! आपकी रायमें इन दोनों वीरोंमेंसे इस युद्धस्थलमें कौन बड़ा है अथवा किसमें कौन-सा गुण अधिक है ? यह मुझे बताइये' ॥ २ ॥

वासुदेव उवाच

उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीमस्तु बलवत्तरः ।
कृती यत्नपरस्त्वेष धार्तराष्ट्रो वृकोदरात् ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! इन दोनोंको शिक्षा तो एक-सी मिली है; परंतु भीमसेन बलमें अधिक हैं और यह दुर्योधन उनकी अपेक्षा अभ्यास और प्रयत्नमें बढ़ा-चढ़ा है ॥ ३ ॥

भीमसेनस्तु धर्मेण युद्ध्यमानो न जेष्यति ।
अन्यायेन तु युध्यन् वै हन्यादेव सुयोधनम् ॥ ४ ॥

यदि भीमसेन धर्मपूर्वक युद्ध करते रहे तो कदापि नहीं जीतेंगे और अन्यायपूर्वक युद्ध करनेपर निश्चय ही दुर्योधनका वध कर डालेंगे ॥ ४ ॥

मायया निर्जिता देवैरसुरा इति नः श्रुतम् ।
विरोचनस्तु शक्रेण मायया निर्जितः स वै ॥ ५ ॥

हमने सुना है कि देवताओंने पूर्वकालमें मायासे ही असुरोंपर विजय पायी थी और इन्द्रने मायासे ही विरोचनको परास्त किया था ॥ ५ ॥

मायया चाक्षिपत् तेजो वृत्रस्य बलसूदनः ।
तस्मान्मायामयं भीम आतिष्ठतु पराक्रमम् ॥ ६ ॥

बलसूदन इन्द्रने मायासे वृत्रासुरके तेजको नष्ट कर दिया था, इसलिये भीमसेन भी यहाँ मायामय पराक्रमका ही आश्रय लें ॥ ६ ॥

प्रतिज्ञातं च भीमेन द्यूतकाले धनंजय ।
ऊरू भेत्स्यामि ते संख्ये गदयेति सुयोधनम् ॥ ७ ॥

धनंजय ! जूएके समय भीमने प्रतिज्ञा करते हुए दुर्योधनसे यह कहा था कि 'मैं युद्धमें गदा मारकर तेरी दोनों जाँघें तोड़ डालूँगा' ॥ ७ ॥

सोऽयं प्रतिज्ञां तां चापि पालयत्वरिकर्षणः ।
मायाविनं तु राजानं माययैव निकृन्ततु ॥ ८ ॥

अतः शत्रुसूदन भीमसेन अपनी उस प्रतिज्ञाका पालन करें और मायावी राजा दुर्योधनको मायासे ही नष्ट कर डालें॥

यद्येष बलमास्थाय न्यायेन प्रहरिष्यति ।
विषमस्थस्ततो राजा भविष्यति युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

यदि ये बलका सहारा लेकर न्यायपूर्वक प्रहार करेंगे, तब राजा युधिष्ठिर पुनः बड़ी विषम परिस्थितिमें पड़ जायँगे ॥

पुनरेव तु वक्ष्यामि पाण्डवेय निबोध मे ।
धर्मराजापराधेन भयं नः पुनरागतम् ॥ १० ॥

पाण्डुनन्दन ! मैं पुनः यह बात कहे देता हूँ, तुम उसे ध्यान देकर सुनो । धर्मराजके अपराधसे हमलोगोंपर फिर भय आ पहुँचा है ॥ १० ॥

कृत्वा हि सुमहत् कर्म हत्वा भीष्ममुखान् कुरून् ।
जयः प्राप्तो यशः प्राग्र्यं वैरं च प्रतियातितम् ॥ ११ ॥
तदेवं विजयः प्राप्तः पुनः संशयितः कृतः ।

महान् प्रयास करके भीष्म आदि कौरवोंको मारकर विजय एवं श्रेष्ठ यशकी प्राप्ति की गयी और वैरका पूरा-पूरा बदला चुकाया गया था । इस प्रकार जो विजय प्राप्त हुई थी, उसे उन्होंने फिर संशयमें डाल दिया है ॥ ११½ ॥

अबुद्धिरेषा महती धर्मराजस्य पाण्डव ॥ १२ ॥
यदेकविजये युद्धं पणितं घोरमीदृशम् ।

पाण्डुनन्दन ! एकको ही हार-जीतसे सबकी हार-जीतकी शर्त लगाकर जो इन्होंने इस भयंकर युद्धको जूएका दाँव बना डाला, यह धर्मराजकी बड़ी भारी नासमझी है॥ १२½ ॥

सुयोधनः कृती वीर एकायनगतस्तथा ॥ १३ ॥
अपि चोशनसा गीतः श्रूयतेऽयं पुरातनः ।
श्लोकस्तत्त्वार्थसहितस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १४ ॥

दुर्योधन युद्धकी कला जानता है, वीर है और एक निश्चयपर डटा हुआ है । इस विषयमें शुक्राचार्यका कहा हुआ यह एक प्राचीन श्लोक सुननेमें आता है, जो नीति-शास्त्रके तात्त्विक अर्थसे भरा हुआ है, उसे सुना रहा हूँ, मेरे कहनेसे वह श्लोक सुनो ॥ १३-१४ ॥

पुनरावर्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणाम् ।
भेतव्यमरिशेषाणामेकायनगता हिते ॥ १५ ॥

'मरनेसे बचे हुए शत्रुगण यदि युद्धमें जान बचानेकी इच्छासे भाग गये हों और पुनः युद्धके लिये लौटने लगे हों तो उनसे डरते रहना चाहिये; क्योंकि वे एक निश्चयपर पहुँचे हुए होते हैं (उस समय वे मृत्युसे भी नहीं डरते हैं)'॥

साहसोत्पतितानां च निराशानां च जीविते ।
न शक्यमग्रतः स्थातुं शक्रेणापि धनंजय ॥ १६ ॥

धनंजय ! जो जीवनकी आशा छोड़कर साहसपूर्वक युद्धमें कूद पड़े हों, उनके सामने इन्द्र भी नहीं ठहर सकते॥

सुयोधनमिमं भग्नं हतसैन्यं ह्रदं गतम् ।
पराजितं वनप्रेप्सुं निराशं राज्यलम्भने ॥ १७ ॥
को न्वेष संयुगे प्राज्ञः पुनर्द्वन्द्वे समाह्वयेत् ।

इस दुर्योधनकी सेना मारी गयी थी । यह परास्त हो गया था और अब राज्य पानेसे निराश हो वनमें चला जाना चाहता था; इसीलिये भागकर पोखरेमें छिपा था, ऐसे हताश शत्रुको कौन बुद्धिमान् पुरुष समराङ्गणमें द्वन्द्व-युद्धके लिये आमन्त्रित करेगा ? ॥ १७½ ॥

अपि नो निर्जितं राज्यं न हरेत सुयोधनः ॥ १८ ॥
यस्त्रयोदशवर्षाणि गदया कृतनिश्रमः ।
चरत्यूर्ध्वं च तिर्यक् च भीमसेनजिघांसया ॥ १९ ॥

कहीं ऐसा न हो कि हमारे जीते हुए राज्यको दुर्योधन फिर हड़प ले । उसने तेरह वर्षोंतक गदाद्वारा युद्ध करनेका निरन्तर श्रम एवं अभ्यास किया है । देखो, यह भीमसेनके वधकी इच्छासे इधर-उधर और ऊपरकी ओर विचर रहा है॥

एनं चेन्न महाबाहुरन्यायेन हनिष्यति ।
एष वः कौरवो राजा धार्तराष्ट्रो भविष्यति ॥ २० ॥

यदि महाबाहु भीमसेन इसे अन्यायपूर्वक नहीं मारेंगे तो यह धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन ही आपका तथा समस्त कुरुकुल-का राजा होगा ॥ २० ॥

धनंजयस्तु श्रुत्वैतत् केशवस्य महात्मनः ।
प्रेक्षतो भीमसेनस्य सव्यमूरुमताडयत् ॥ २१ ॥

महात्मा भगवान् केशवका यह वचन सुनकर अर्जुनने भीमसेनके देखते हुए अपनी बायीं जाँघको ठोंका ॥ २१ ॥

गृह्य संज्ञां ततो भीमो गदया व्यचरद् रणे ।
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ॥ २२ ॥

इससे संकेत पाकर भीमसेन रणभूमिमें गदाद्वारा यमक तथा अन्य प्रकारके विचित्र मण्डल दिखाते हुए विचरने लगे॥

दक्षिणं मण्डलं सव्यं गोमूत्रकमथापि च ।
व्यचरत् पाण्डवो राजन्नरिं सम्मोहयन्निव ॥ २३ ॥

राजन् ! पाण्डुपुत्र भीमसेन आपके शत्रुको मोहित करते हुए-से दक्षिण, वाम और गोमूत्रक मण्डलसे विचरने लगे ॥

तथैव तव पुत्रोऽपि गदामार्गविशारदः ।
व्यचरल्लघु चित्रं च भीमसेनजिघांसया ॥ २४ ॥

इसी प्रकार गदायुद्धकी प्रणालीका विशेषज्ञ आपका पुत्र भी भीमसेनके वधकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक विचित्र पैंतरे देता हुआ विचरने लगा ॥ २४ ॥

आधुन्वन्तौ गदे घोरे चन्दनागरुरूषिते ।
वैरस्यान्तं परीप्सन्तौ रणे क्रुद्धाविवान्तकौ ॥ २५ ॥

वैरका अन्त करनेकी इच्छावाले वे दोनों वीर रणभूमिमें चन्दन और अगुरुसे चर्चित भयंकर गदाएँ घुमाते हुए कुपित कालके समान प्रतीत होते थे ॥ २५ ॥

अन्योन्यं तौ जिघांसन्तौ प्रवीरौ पुरुषर्षभौ ।
युयुधाते गरुत्मन्तौ यथा नागामिषैषिणौ ॥ २६ ॥

जैसे दो गरुड़ किसी सर्पके मांसको पानेकी इच्छासे परस्पर लड़ रहे हों, उसी प्रकार एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे दोनों पुरुषप्रवर प्रमुख वीर भीमसेन और दुर्योधन आपसमें जूझ रहे थे ॥ २६ ॥

मण्डलानि विचित्राणि चरतोर्नृपभीमयोः ।
गदासम्पातजास्तत्र प्रजज्ञुः पावकार्चिषः ॥ २७ ॥

विचित्र मण्डलों (पैंतरों) से विचरते हुए राजा दुर्योधन और भीमसेनकी गदाओंके टकरानेसे वहाँ आगकी लपटें प्रकट होने लगीं ॥ २७ ॥

समं प्रहरतोस्तत्र शूरयोर्बलिनोर्मृधे ।
क्षुब्धयोर्वायुना राजन् द्वयोरिव समुद्रयोः ॥ २८ ॥
तयोः प्रहरतोस्तुल्यं मत्तकुञ्जरयोरिव ।
गदानिर्घातसंह्रादः प्रहाराणामजायत ॥ २९ ॥

राजन् ! जैसे वायुसे विक्षुब्ध हुए दो समुद्र एक दूसरेसे टकरा रहे हों अथवा दो मतवाले हाथी परस्पर चोट कर रहे हों, उसी प्रकार वहाँ एक दूसरेपर समान रूपसे प्रहार करनेवाले दोनों बलवान् वीरोंके परस्पर चोट करनेपर गदाओंके टकरानेकी आवाज वज्रकी कड़कके समान प्रकट होती थी॥

तस्मिंस्तदा सम्प्रहारे दारुणे संकुले भृशम् ।
उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिंदमौ ॥ ३० ॥

उस समय उस अत्यन्त भयंकर घमासान युद्धमें शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर परस्पर युद्ध करते हुए बहुत थक गये ॥ ३० ॥

तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतप ।
अभ्यहारयतां क्रुद्धौ प्रगृह्य महती गदे ॥ ३१ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! तब दोनों दो घड़ीतक विश्राम करके पुनः विशाल गदाएँ हाथमें लेकर क्रोधपूर्वक एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ३१ ॥

तयोः समभवद् युद्धं घोररूपमसंवृतम् ।
गदानिपातै राजेन्द्र तक्षतोर्वै परस्परम् ॥ ३२ ॥

राजेन्द्र ! गदाकी चोटसे एक दूसरेको घायल करते हुए उन दोनोंमें खुले तौरपर घोर युद्ध हो रहा था ॥ ३२ ॥

समरे प्रद्रुतौ तौ तु वृषभाक्षौ तरस्विनौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ पङ्कस्थौ महिषाविव ॥ ३३ ॥

बैलके समान विशाल नेत्रोंवाले वे दोनों वेगशाली वीर समराङ्गणमें परस्पर धावा करके कीचड़में खड़े हुए दो भैंसोंके समान एक दूसरेपर चोट करते थे ॥ ३३ ॥

जर्जरीकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेणाभिसम्प्लुतौ ।
ददृशाते हिमवति पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३४ ॥

उन दोनोंके सारे अङ्ग गदाके प्रहारसे जर्जर हो गये थे और दोनों ही खूनसे लथपथ हो गये थे। उस दशामें वे हिमालयपर खिले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३४ ॥

दुर्योधनस्तु पार्थेन विवरे सम्प्रदर्शिते ।
ईषदुन्मिषमाणस्तु सहसा प्रससार ह ॥ ३५ ॥

जब अर्जुनने छिद्रकी ओर संकेत किया, तब कनखियोंसे उसे देखकर दुर्योधन सहसा भीमसेनकी ओर बढ़ा ॥३५॥

तमभ्याशगतं प्राज्ञो रणे प्रेक्ष्य वृकोदरः ।
अवाक्षिपद् गदां तस्मिन् वेगेन महता बली ॥ ३६ ॥

रणभूमिमें उसे निकट आया देख बुद्धिमान् एवं बलवान् भीमने उसपर बड़े वेगसे गदा चलायी ॥ ३६ ॥

आक्षिपन्तं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ।
अवासर्पत्ततः स्थानात् सा मोघा न्यपतद् भुवि ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ ! उन्हें गदा चलाते देख आपका पुत्र सहसा उस स्थानसे हट गया और वह गदा व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३७ ॥

मोक्षयित्वा प्रहारं तं सुतस्तवससम्भ्रमात् ।
भीमसेनं च गदया प्राहरत् कुरुसत्तम ॥ ३८ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उस प्रहारसे अपनेको बचाकर आपके पुत्रने भीमसेनपर बड़े वेगसे गदाद्वारा आघात किया ॥ ३८ ॥

तस्य विस्यन्दमानेन रुधिरेणामितौजसः ।
प्रहारगुरुपाताच्च मूर्छेव समजायत ॥ ३९ ॥

उसकी चोटसे अमिततेजस्वी भीमके शरीरसे रक्तकी धारा बह चली। साथ ही उस प्रहारके गहरे आघातसे उन्हें मूर्छा-सी आ गयी ॥ ३९ ॥

दुर्योधनो न तं वेद पीडितं पाण्डवं रणे ।
धारयामास भीमोऽपि शरीरमतिपीडितम् ॥ ४० ॥

उस समय दुर्योधन यह न जान सका कि रणभूमिमें पाण्डुपुत्र भीमसेन अधिक पीड़ित हो गये हैं। यद्यपि उनके शरीरमें अत्यन्त वेदना हो रही थी तो भी भीमसेन उसे सँभाले रहे ॥ ४० ॥

अमन्यत स्थितं ह्येनं प्रहरिष्यन्तमाहवे ।
अतो न प्राहरत् तस्मै पुनरेव तवात्मजः ॥ ४१ ॥

उसने यही समझा कि रणक्षेत्रमें भीमसेन अब मुझपर प्रहार करनेके लिये खड़े हैं; अतः बचनेकी ही चेष्टामें संलग्न होकर आपके पुत्रने पुनः उनपर प्रहार नहीं किया ॥ ४१ ॥

ततो मुहूर्तमाश्वस्य दुर्योधनमुपस्थितम् ।
वेगेनाभ्यपतद् राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४२ ॥

राजन् ! तदनन्तर दो घड़ी सुस्ताकर प्रतापी भीमसेनने निकट आये हुए दुर्योधनपर बड़े वेगसे आक्रमण किया॥४२॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संरब्धममितौजसम् ।
मोघमस्य प्रहारं तं चिकीर्षुर्भरतर्षभ ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अमिततेजस्वी भीमको रोषपूर्वक धावा करते देख आपके पुत्रने उनके उस प्रहारको व्यर्थ कर देनेकी इच्छा की ॥ ४३ ॥

अवस्थाने मतिं कृत्वा पुत्रस्तव महामनाः ।
इयेषोत्पतितुं राजञ्छलयिष्यन् वृकोदरम् ॥ ४४ ॥

राजन् ! भीमसेनको छलनेके लिये आपके महामनस्वी

पुत्रने पहले वहाँ स्थिरतापूर्वक खड़े रहनेका विचार करके फिर उछलकर दूर हट जानेकी इच्छा की ॥ ४४ ॥

अबुद्ध्यद् भीमसेनस्तु राज्ञस्तस्य चिकीर्षितम् ।
अथास्य समभिद्रुत्य समुत्क्रुश्य च सिंहवत् ॥ ४५ ॥
सृत्या वञ्चयतो राजन् पुनरेवोत्पतिष्यतः ।
ऊरुभ्यां प्राहिणोद् राजन् गदां वेगेन पाण्डवः ॥ ४६ ॥

भीमसेन समझ गये कि राजा दुर्योधन क्या करना चाहता है। अतः पैंतरेसे छलने और ऊपर उछलनेकी इच्छावाले दुर्योधनके ऊपर आक्रमण करके भीमसेनने सिंहके समान गर्जना की और उसकी जाँघोंपर बड़े वेगसे गदा चलायी ॥

सा वज्रनिष्पेषसमा प्रहिता भीमकर्मणा ।
ऊरू दुर्योधनस्याथ बभञ्ज प्रियदर्शनौ ॥ ४७ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके द्वारा चलायी हुई वह गदा वज्रपातके समान गिरी और दुर्योधनकी सुन्दर दिखायी देनेवाली जाँघोंको उसने तोड़ दिया ॥ ४७ ॥

स पपात नरव्याघ्रो वसुधामनुनादयन् ।
भग्नोरुर्भीमसेनेन पुत्रस्तव महीपते ॥ ४८ ॥

पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार जब भीमसेनने उसकी जाँघें तोड़ डालीं, तब आपका पुत्र पुरुषसिंह दुर्योधन पृथ्वीको प्रतिध्वनित करता हुआ गिर पड़ा ॥ ४८ ॥

ववुर्वाताः सनिर्घाताः पांशुवर्षं पपात च ।
चचाल पृथिवी चापि सवृक्षक्षुपपर्वता ॥ ४९ ॥
तस्मिन् निपतिते वीरे पत्यौ सर्वमहीक्षिताम् ।

फिर तो समस्त भूपालोंके स्वामी वीर राजा दुर्योधनके धराशायी होनेपर वहाँ बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ प्रचण्ड हवा चलने लगी, धूलिकी वर्षा होने लगी और वृक्षों, वनों एवं पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी ॥ ४९½ ॥

महास्वना पुनर्दीप्ता सनिर्घाता भयंकरी ॥ ५० ॥
पपात चोल्का महती पतिते पृथिवीपतौ ।

पृथ्वीपति दुर्योधनके गिर जानेपर आकाशसे पुनः महान् शब्द और बिजलीकी कड़कके साथ प्रज्वलित, भयंकर एवं विशाल उल्का भूमिपर गिरी ॥ ५०½ ॥

तथा शोणितवर्षं च पांशुवर्षं च भारत ॥ ५१ ॥
ववर्ष मघवांस्तत्र तव पुत्रे निपातिते ।

भरतनन्दन ! आपके पुत्रके धराशायी हो जानेपर इन्द्रने वहाँ रक्त और धूलिकी वर्षा की ॥ ५१½ ॥

यक्षाणां राक्षसानां च पिशाचानां तथैव च ॥ ५२ ॥
अन्तरिक्षे महानादः श्रूयते भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! उस समय आकाशमें यक्षों, राक्षसों तथा पिशाचोंका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ ५२½ ॥

तेन शब्देन घोरेण मृगाणामथ पक्षिणाम् ॥ ५३ ॥
जज्ञे घोरतरः शब्दो बहूनां सर्वतोदिशम् ।

उस घोर शब्दके साथ बहुत-से पशुओं और पक्षियोंकी भयानक आवाज भी सम्पूर्ण दिशाओंमें गूँज उठी ॥ ५३½ ॥

ये तत्र वाजिनः शेषा गजाश्च मनुजैः सह ॥ ५४ ॥
मुमुचुस्ते महानादं तव पुत्रे निपातिते ।

वहाँ जो घोड़े, हाथी और मनुष्य शेष रह गये थे, वे सभी आपके पुत्रके मारे जानेपर महान् कोलाहल करने लगे॥

भेरीशङ्खमृदङ्गानामभवच्च स्वनो महान् ॥ ५५ ॥
अन्तर्भूमिगतश्चैव तव पुत्रे निपातिते ।

राजन् ! जब आपका पुत्र मार गिराया गया, उस समय इस भूतलपर भेरी, शङ्खों और मृदङ्गोंका गम्भीर घोष होने लगा ॥ ५५½ ॥

बहुपादैर्बहुभुजैः कबन्धैर्घोरदर्शनैः ॥ ५६ ॥
नृत्यद्भिर्भयदैर्व्याप्ता दिशस्तत्राभवन् नृप ।

नरेश्वर ! वहाँ सम्पूर्ण दिशाओंमें नाचते हुए अनेक पैर और अनेक बाँहवाले घोर एवं भयंकर कबन्ध व्याप्त हो रहे थे ॥ ५६½ ॥

ध्वजवन्तोऽस्त्रवन्तश्च शस्त्रवन्तस्तथैव च ॥ ५७ ॥
प्राकम्पन्त ततो राजंस्तव पुत्रे निपातिते ।

राजन् ! आपके पुत्रके धराशायी हो जानेपर वहाँ अस्त्र-शस्त्र और ध्वजावाले सभी वीर काँपने लगे ॥ ५७½ ॥

ह्रदाः कूपाश्च रुधिरमुद्वेमुर्नृपसत्तम ॥ ५८ ॥
नद्यश्च सुमहावेगाः प्रतिस्रोतोवहाभवन् ।

नृपश्रेष्ठ ! तालाबों और कूपोंमें रक्तका उफान आने लगा और महान् वेगशालिनी नदियाँ उल्टी अपने उद्गमकी ओर बहने लगीं ॥ ५८½ ॥

पुँल्लिङ्गा इव नार्यस्तु स्त्रीलिङ्गाः पुरुषाभवन् ॥ ५९ ॥
दुर्योधने तदा राजन् पतिते तनये तव ।

राजन् ! आपके पुत्र दुर्योधनके धराशायी होनेपर स्त्रियोंमें पुरुषत्व और पुरुषोंमें स्त्रीत्वके सूचक लक्षण प्रकट होने लगे॥

दृष्ट्वा तानद्भुतोत्पातान् पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ६० ॥
आविग्नमनसः सर्वे बभूवुर्भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! उन अद्भुत उत्पातोंको देखकर पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चाल मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठे ॥

ययुर्देवा यथाकामं गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ६१ ॥
कथयन्तोऽद्भुतं युद्धं सुतयोस्तव भारत ।

भारत ! तदनन्तर देवता, गन्धर्व और अप्सराओंके समूह आपके दोनों पुत्रोंके अद्भुत युद्धकी चर्चा करते हुए अपने अभीष्ट स्थानको चले गये ॥ ६१½ ॥

तथैव सिद्धा राजेन्द्र तथा वातिकचारणाः ।
नरसिंहौ प्रशंसन्तौ विप्रजग्मुर्यथागतम् ॥ ६२ ॥

राजेन्द्र ! उसी प्रकार सिद्ध, वातिक (वायुचारी) और चारण उन दोनों पुरुषसिंहोंकी प्रशंसा करते हुए जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि दुर्योधनवधेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें दुर्योधनका वधविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा दुर्योधनका तिरस्कार, युधिष्ठिरका भीमसेनको समझाकर अन्यायसे रोकना और दुर्योधनको सान्त्वना देते हुए खेद प्रकट करना

संजय उवाच

तं पातितं ततो दृष्ट्वा महाशालमिवोद्गतम् ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे ददृशुस्तत्र पाण्डवाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनको ऊँचे एवं विशाल शालवृक्षके समान गिराया गया देख समस्त पाण्डव मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और निकट जाकर उसे देखने लगे ॥ १ ॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं सिंहेन विनिपातितम् ।
ददृशुर्हृष्टरोमाणः सर्वे ते चापि सोमकाः ॥ २ ॥

समस्त सोमकोंने भी सिंहके द्वारा गिराये गये मदमत्त गजराजके समान जब दुर्योधनको धराशायी हुआ देखा तो हर्षसे उनके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया ॥ २ ॥

ततो दुर्योधनं हत्वा भीमसेनः प्रतापवान् ।
पातितं कौरवेन्द्रं तमुपगम्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

इस प्रकार दुर्योधनका वध करके प्रतापी भीमसेन उस गिराये गये कौरवराजके पास जाकर बोले—॥ ३ ॥

गौर्गौरिति पुरा मन्द द्रौपदीमेकवाससम् ।
यत् सभायां हसन्नस्मांस्तदा वदसि दुर्मते ॥ ४ ॥
तस्यावहासस्य फलमद्य त्वं समवाप्नुहि ।

'खोटी बुद्धिवाले मूर्ख ! तूने पहले मुझे 'बैल, बैल' कहकर और एक वस्त्रधारिणी रजस्वला द्रौपदीको सभामें लाकर जो हमलोगोंका उपहास किया था तथा हम सबके प्रति कटुवचन सुनाये थे, उस उपहासका फल आज तू प्राप्त कर ले' ॥ ४½ ॥

एवमुक्त्वा स वामेन पदा मौलिमुपास्पृशत् ॥ ५ ॥
शिरश्च राजसिंहस्य पादेन समलोडयत् ।

ऐसा कहकर भीमसेनने अपने बायें पैरसे उसके मुकुटको ठुकराया और उस राजसिंहके मस्तकपर भी पैरसे ठोकर मारा ५½

तथैव क्रोधसंरक्तो भीमः परबलार्दनः ॥ ६ ॥
पुनरेवाब्रवीद् वाक्यं यत् तच्छृणु नराधिप ।

नरेश्वर ! इसी प्रकार शत्रुसेनाका संहार करनेवाले भीमसेनने क्रोधसे लाल आँखें करके फिर जो बात कही, उसे भी सुन लीजिये ॥ ६½ ॥

येऽस्मान् पुरोपनृत्यन्त मूढा गौरिति गौरिति ॥ ७ ॥
तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति ।

जिन मूर्खोंने पहले हमें 'बैल-बैल' कहकर नृत्य किया था, आज उन्हें 'बैल-बैल' कहकर उस अपमानका बदला लेते हुए हम भी प्रसन्नतासे नाच रहे हैं ॥ ७½ ॥

नास्माकं निकृतिर्वह्निर्नाक्षद्यूतं न वञ्चना ।
स्वबाहुबलमाश्रित्य प्रबाधामो वयं रिपून् ॥ ८ ॥

छल-कपट करना, घरमें आग लगाना, जूआ खेलना अथवा ठगी करना हमारा काम नहीं है। हम तो अपने बाहुबलका भरोसा करके शत्रुओंको संताप देते हैं ॥ ८ ॥

सोऽवाप्य वैरस्य परस्य पारं
वृकोदरः प्राह शनैः प्रहस्य ।
युधिष्ठिरं केशवसृंजयांश्च
धनंजयं माद्रवतीसुतौ च ॥ ९ ॥

इस प्रकार भारी वैरसे पार होकर भीमसेन धीरे-धीरे हँसते हुए युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, सृंजयगण, अर्जुन तथा माद्रीकुमार नकुल-सहदेवसे बोले—॥ ९ ॥

रजस्वलां द्रौपदीमानयन् ये
ये चाप्यकुर्वन्त सदस्यवस्त्राम् ।
तान् पश्यध्वं पाण्डवैर्धार्तराष्ट्रान्
रणे हतांस्तपसा याज्ञसेन्याः ॥ १० ॥

'जिन लोगोंने रजस्वला द्रौपदीको सभामें बुलाया, जिन्होंने उसे भरी सभामें नंगी करनेका प्रयत्न किया, उन्हीं धृतराष्ट्रपुत्रोंको द्रौपदीकी तपस्यासे पाण्डवोंने रणभूमिमें मार गिराया, यह सब लोग देख लो ॥ १० ॥

ये नः पुरा षण्ढतिलानवोचन्
क्रूरा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्राः ।
ते नो हताः सगणाः सानुबन्धाः
कामं स्वर्गं नरकं वा पतामः ॥ ११ ॥

'राजा धृतराष्ट्रके जिन क्रूर पुत्रोंने पहले हमें थोथे तिलोंके समान नपुंसक कहा था, वे अपने सेवकों और सम्बन्धियोंसहित हमारे हाथसे मार डाले गये। अब हम भले ही स्वर्गमें जायँ या नरकमें गिरें, इसकी चिन्ता नहीं है' ॥ ११ ॥

पुनश्च राज्ञः पतितस्य भूमौ
स तां गदां स्कन्धगतां प्रगृह्य ।
वामेन पादेन शिरः प्रमृद्य
दुर्योधनं नैकृतिकं न्यवोचत् ॥ १२ ॥

यों कहकर भीमसेनने पृथ्वीपर पड़े हुए राजा दुर्योधनके कंधेसे लगी हुई उसकी गदा ले ली और बायें पैरसे उसका सिर कुचलकर उसे छलिया और कपटी कहा ॥ १२ ॥

हृष्टेन राजन् कुरुसत्तमस्य
क्षुद्रात्मना भीमसेनेन पादम् ।
दृष्ट्वा कृतं मूर्धनि नाभ्यनन्दन्
धर्मात्मानः सोमकानां प्रबर्हाः ॥ १३ ॥

राजन् ! क्षुद्र बुद्धिवाले भीमसेनने हर्षमें भरकर जो कुरुश्रेष्ठ राजा दुर्योधनके मस्तकपर पैर रक्खा, उनके इस कार्यको देखकर सोमकोंमें जो श्रेष्ठ एवं धर्मात्मा पुरुष थे, वे प्रसन्न नहीं हुए और न उन्होंने उनके इस कुकृत्यका अभिनन्दन ही किया ॥ १३ ॥

तव पुत्रं तथा हत्वा कत्थमानं वृकोदरम् ।

नृत्यमानं च बहुशो धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥

आपके पुत्रको मारकर बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनाते और बारंबार नाचते-कूदते हुए भीमसेनसे धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा—॥ १४ ॥

गतोऽसि वैरस्यानृण्यं प्रतिज्ञा पूरिता त्वया ।
शुभेनाथाशुभेनैव कर्मणा विरमाधुना ॥ १५ ॥

'भीम ! तुम वैरसे उऋण हुए । तुमने शुभ या अशुभ कर्मसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली । अब तो इस कार्यसे विरत हो जाओ ॥ १५ ॥

मा शिरोऽस्य पदा मार्दीर्मा धर्मस्तेऽतिगो भवेत्।
राजा ज्ञातिर्हतश्चायं नैतन्न्याय्यं तवानघ ॥१६॥

'तुम इसके मस्तकको पैरसे न ठुकराओ । तुम्हारे द्वारा धर्मका उल्लङ्घन नहीं होना चाहिये । अनघ ! दुर्योधन राजा और हमारा भाई-बन्धु है; यह मार डाला गया, अब तुम्हें इसके साथ ऐसा बर्ताव करना उचित नहीं है ॥ १६॥

एकादशचमूनाथं कुरूणामधिपं तथा ।
मा स्प्राक्षीर्भीम पादेन राजानं ज्ञातिमेव च ॥१७ ॥

'भीम ! ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी तथा अपने ही बान्धव कुरुराज राजा दुर्योधनको पैरसे न ठुकराओ ॥ १७ ॥

हतबन्धुर्हतामात्यो भ्रष्टसैन्यो हतो मृधे ।
सर्वाकारेण शोच्योऽयं नावहास्योऽयमीश्वरः ॥१८ ॥

'इसके भाई और मन्त्री मारे गये, सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी और यह स्वयं भी युद्धमें मारा गया । ऐसी दशामें राजा दुर्योधन सर्वथा शोकके योग्य है, उपहासका पात्र नहीं है ॥ १८ ॥

विध्वस्तोऽयं हतामात्यो हतभ्राता हतप्रजः ।
उत्सन्नपिण्डो भ्राता च नैतन्न्याय्यं कृतं त्वया॥ १९ ॥

'इसका सर्वथा विध्वंस हो गया इसके मन्त्री, भाई और पुत्र भी मार डाले गये । अब इसे पिण्ड देनेवाला भी कोई नहीं रह गया है । इसके सिवा यह हमारा ही भाई है । तुमने इसके साथ यह न्यायोचित वर्ताव नहीं किया है ॥१९॥

धार्मिको भीमसेनोऽसावित्याहुस्त्वां पुरा जनाः।
स कस्माद् भीमसेन त्वं राजानमधितिष्ठसि ॥ २०॥

'तुम्हारे विषयमें लोग पहले कहा करते थे कि भीमसेन बड़े धर्मात्मा हैं । भीम ! वही तुम आज राजा दुर्योधनको क्यों पैरसे ठुकराते हो ?' ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा भीमसेनं तु साश्रुकण्ठो युधिष्ठिरः ।
उपसृत्याब्रवीद् दीनो दुर्योधनमरिंदमम् ॥ २१ ॥

भीमसेनसे ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर दीनभावसे शत्रुदमन दुर्योधनके पास गये और अश्रुगद्गद कण्ठसे इस प्रकार बोले—॥ २१ ॥

तात मन्युर्न ते कार्यो नात्मा शोच्यस्त्वया तथा।
नूनं पूर्वकृतं कर्म सुघोरमनुभूयते ॥ २२ ॥

'तात ! तुम्हें खेद या क्रोध नहीं करना चाहिये । साथ ही अपने लिये शोक करना भी उचित नहीं है । निश्चय ही सब लोग अपने पहलेके किये हुए अत्यन्त भयंकर कर्मोंका ही परिणाम भोगते हैं ॥ २२ ॥

धात्रोपदिष्टं विषमं नूनं फलमसंस्कृतम् ।
यद् वयं त्वां जिघांसामस्त्वं चास्मान् कुरुसत्तम॥२३॥

'कुरुश्रेष्ठ ! इस समय जो हमलोग तुम्हें और तुम हमें मार डालना चाहते थे, यह अवश्य ही विधाताका दिया हुआ हमारे ही अशुद्ध कर्मोंका विषम फल है ॥ २३ ॥

आत्मनो ह्यपराधेन महद् व्यसनमीदृशम् ।
प्राप्तवानसि यल्लोभान्मदाद् बाल्याच्च भारत॥ २४ ॥

'भरतनन्दन ! तुमने लोभ, मद और अविवेकके कारण अपने ही अपराधसे ऐसा भारी संकट प्राप्त किया है ॥ २४॥

घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितॄंस्तथा ।
पुत्रान् पौत्रांस्तथा चान्यांस्ततोऽसि निधनं गतः॥ २५ ॥

'तुम अपने मित्रों, भाइयों, पितृतुल्य पुरुषों, पुत्रों और पौत्रोंका वध कराकर फिर स्वयं भी मारे गये ॥ २५ ॥

तवापराधादस्माभिर्भ्रातरस्ते निपातिताः ।
निहता ज्ञातयश्चापि दिष्टं मन्ये दुरत्ययम् ॥ २६ ॥

'तुम्हारे अपराधसे ही हमलोगोंने तुम्हारे भाइयोंको मार गिराया और कुटुम्बीजनोंका वध किया है, मैं इसे दैवका दुर्लङ्घ्य विधान ही मानता हूँ ॥ २६ ॥

आत्मा न शोचनीयस्ते श्लाघ्यो मृत्युस्तवानघ ।
वयमेवाधुना शोच्याः सर्वावस्थासु कौरव ॥ २७ ॥
कृपणं वर्तयिष्यामस्तैर्हीना बन्धुभिः प्रियैः ।

'अनघ ! तुम्हें अपने लिये शोक नहीं करना चाहिये, तुम्हारी प्रशंसनीय मृत्यु हो रही है । कुरुराज ! अब तो सभी अवस्थाओंमें इस समय हमलोग ही शोचनीय हो गये हैं; क्योंकि उन प्रिय बन्धु-बान्धवोंसे रहित होकर हमें दीनतापूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ेगा ॥ २७½ ॥

भ्रातॄणां चैव पुत्राणां तथा वै शोकविह्वलाः ॥ २८ ॥
कथं द्रक्ष्यामि विधवा वधूः शोकपरिप्लुताः ।

'भला, मैं भाइयों और पुत्रोंकी उन शोकविह्वला और दुःखमें डूबी हुई विधवा बहुओंको कैसे देख सकूँगा ॥२८½॥

त्वमेकः सुस्थितो राजन् स्वर्गे ते निलयो ध्रुवः॥ २९ ॥
वयं नरकसंज्ञं वै दुःखं प्राप्स्याम दारुणम् ।

'राजन् ! तुम अकेले सुखी हो । निश्चय ही स्वर्गमें तुम्हें स्थान प्राप्त होगा और हमें यहाँ नरकतुल्य दारुण दुःख भोगना पड़ेगा ॥ २९½ ॥

स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य विह्वलाः ।
गर्हयिष्यन्ति नो नूनंविधवाः शोककर्शिताः ॥ ३० ॥

'धृतराष्ट्रकी वे शोकातुर एवं व्याकुल विधवा पुत्रवधुएँ और पौत्रवधुएँ भी निश्चय ही हमलोगोंकी निन्दा करेंगी' ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो निशश्वास स पार्थिवः ।

विललाप चिरं चापि धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३१ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखसे आतुर हो लंबी साँस छोड़ते हुए बहुत देरतक विलाप करते रहे ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि युधिष्ठिरविलापे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें युधिष्ठिरका विलापविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

क्रोधमें भरे हुए बलरामको श्रीकृष्णका समझाना और युधिष्ठिरके साथ श्रीकृष्णकी तथा भीमसेनकी बातचीत

धृतराष्ट्र उवाच

अधर्मेण हतं दृष्ट्वा राजानं माधवोत्तमः।
किमब्रवीत् तदा सूत बलदेवो महाबलः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा--सूत! उस समय राजा दुर्योधनको अधर्मपूर्वक मारा गया देख महाबली मधुकुलशिरोमणि बलदेवजीने क्या कहा था? ॥ १ ॥

गदायुद्धविशेषज्ञो गदायुद्धविशारदः।
कृतवान् रौहिणेयो यत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

संजय! गदायुद्धके विशेषज्ञ तथा उसकी कलामें कुशल रोहिणीनन्दन बलरामजीने वहाँ जो कुछ किया हो, वह मुझे बताओ ॥ २ ॥

संजय उवाच

शिरस्यभिहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन ते सुतम्।
रामः प्रहरतां श्रेष्ठश्चुक्रोध बलवद्बली ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन्! भीमसेनके द्वारा आपके पुत्रके मस्तक पर पैरका प्रहार हुआ देख योद्धाओंमें श्रेष्ठ बलवान् बलरामको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३ ॥

ततो मध्ये नरेन्द्राणामूर्ध्वबाहुर्हलायुधः।
कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग् धिग् भीमेत्युवाच ह ॥ ४ ॥

फिर वहाँ राजाओंकी मण्डलीमें अपनी दोनों बाँहें ऊपर उठाकर हलधर बलरामने भयंकर आर्तनाद करते हुए कहा—'भीमसेन! तुम्हें धिक्कार है! धिक्कार है!! ॥ ४ ॥

अहो धिग् यदधो नाभेः प्रहृतं धर्मविग्रहे।
नैतद् दृष्टं गदायुद्धे कृतवान् यद् वृकोदरः ॥ ५ ॥

'अहो! इस धर्मयुद्धमें नाभिसे नीचे, जो प्रहार किया गया है और जिसे भीमसेनने स्वयं किया है, यह गदायुद्धमें कभी नहीं देखा गया ॥ ५ ॥

अधो नाभ्या न हन्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।
अयं त्वशास्त्रविन्मूढः स्वच्छन्दात् सम्प्रवर्तते ॥ ६ ॥

'नाभिसे नीचे आघात नहीं करना चाहिये। यह गदा-युद्धके विषयमें शास्त्रका सिद्धान्त है। परंतु यह शास्त्रज्ञानसे शून्य मूर्ख भीमसेन यहाँ स्वेच्छाचार कर रहा है' ॥ ६ ॥

तस्य तत् तद् ब्रुवाणस्य रोषः समभवन्महान्।
ततो राजानमालोक्य रोषसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥

ये सब बातें कहते हुए बलदेवजीका रोष बहुत बढ़ गया। फिर राजा दुर्योधनकी ओर दृष्टिपात करके उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं ॥ ७ ॥

बलदेवो महाराज ततो वचनमब्रवीत्।
न चैष पतितः कृष्ण केवलं मत्समोऽसमः ॥ ८ ॥
आश्रितस्य तु दौर्बल्यादाश्रयः परिभर्त्स्यते।

महाराज! फिर बलदेवजीने कहा—'श्रीकृष्ण! राजा दुर्योधन मेरे समान बलवान् था। गदायुद्धमें उसकी समानता करनेवाला कोई नहीं था। यहाँ अन्याय करके केवल दुर्योधन ही नहीं गिराया गया है, (मेरा भी अपमान किया गया है) शरणागतकी दुर्बलताके कारण शरण देनेवालेका तिरस्कार किया जा रहा है' ॥ ८½ ॥

ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद् बली ॥ ९ ॥
तस्योर्ध्वबाहोः सदृशं रूपमासीन्महात्मनः।
बहुधातुविचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः ॥ १० ॥

ऐसा कहकर महाबली बलराम अपना हल उठाकर भीमसेनकी ओर दौड़े। उस समय अपनी भुजाएँ ऊपर उठाये हुए महात्मा बलरामजीका रूप अनेक धातुओंके कारण बिचित्र शोभा पानेवाले महान् श्वेतपर्वतके समान जान पड़ता था ॥ ९-१० ॥

(भ्रातृभिः सहितो भीमः सार्जुनैरस्त्रकोविदैः।
न विव्यथे महाराज दृष्ट्वा हलधरं बली ॥)

महाराज! हलधरको आक्रमण करते देख अर्जुनसहित अस्त्रवेत्ता भाइयोंके साथ खड़े हुए बलवान् भीमसेन तनिक भी व्यथित नहीं हुए ॥

तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद्बली ॥ ११ ॥

उस समय विनयशील, बलवान् श्रीकृष्णने आक्रमण करते हुए बलरामजीको अपनी मोटी एवं गोल-गोल भुजाओं-द्वारा बड़े प्रयत्नसे पकड़ा ॥ ११ ॥

सितासितौ यदुवरौ शुशुभातेऽधिकं तदा।
(संगताविव राजेन्द्र कैलासाञ्जनपर्वतौ ॥)
नभोगतौ यथा राजंश्चन्द्रसूर्यौ दिनक्षये ॥ १२ ॥

राजेन्द्र! वे श्याम-गौर यदुकुलतिलक दोनों भाई परस्पर मिले हुए कैलास और कज्जल पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे। राजन्! संध्याकालके आकाशमें जैसे चन्द्रमा और सूर्य उदित हुए हों, वैसे ही उस रणक्षेत्रमें वे दोनों भाई सुशोभित हो रहे थे ॥ १२ ॥

उवाच चैनं संरब्धं शमयन्निव केशवः।
आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा ॥ १३ ॥

विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः ।

उस समय श्रीकृष्णने रोषसे भरे हुए बलरामजीको शान्त करते हुए-से कहा—'भैया ! अपनी उन्नति छः प्रकारकी होती है—अपनी वृद्धि, मित्रकी वृद्धि और मित्रके मित्रकी वृद्धि । तथा शत्रुपक्षमें इसके विपरीत स्थिति अर्थात् शत्रुकी हानि, शत्रुके मित्रकी हानि तथा शत्रुके मित्रके मित्र-की हानि ॥ १३½ ॥

आत्मन्यपि च मित्रे च विपरीतं यदा भवेत् ॥ १४ ॥
तदा विद्यान्मनोग्लानिमाशु शान्तिकरो भवेत् ।

'अपनी और अपने मित्रकी यदि इसके विपरीत परि-स्थिति हो तो मन-ही-मन ग्लानिका अनुभव करना चाहिये और मित्रोंकी उस हानिके निवारणके लिये शीघ्र प्रयत्नशील होना चाहिये ॥ १४½ ॥

अस्माकं सहजं मित्रं पाण्डवाः शुद्धपौरुषाः ॥ १५ ॥
स्वकाः पितृष्वसुः पुत्रास्ते परैर्निकृता भृशम् ।

'शुद्ध पुरुषार्थका आश्रय लेनेवाले पाण्डव हमारे सहज मित्र हैं । बुआके पुत्र होनेके कारण सर्वथा अपने हैं । शत्रुओंने इनके साथ बहुत छल-कपट किया था ॥ १५½ ॥

प्रतिज्ञापालनं धर्मः क्षत्रियस्येह वेद्म्यहम् ॥ १६ ॥
सुयोधनस्य गदया भङ्क्तास्म्यूरू महाहवे ।
इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमेन हि सभातले ॥ १७ ॥

'मैं समझता हूँ कि इस जगत्में अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना क्षत्रियके लिये धर्म ही है । पहले सभामें भीमसेनने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं महायुद्धमें अपनी गदासे दुर्योधन-की दोनों जाँघें तोड़ डालूँगा' ॥ १६-१७ ॥

मैत्रेयेणाभिशप्तश्च पूर्वमेव महर्षिणा ।
ऊरू ते भेत्स्यते भीमो गदयेति परंतप ॥ १८ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले बलरामजी ! महर्षि मैत्रेयने भी दुर्योधनको पहलेसे ही यह शाप दे रक्खा था कि 'भीमसेन अपनी गदासे तेरी दोनों जाँघें तोड़ डालेंगे' ॥१८॥

अतो दोषं न पश्यामि मा क्रुद्धस्त्वं प्रलम्बहन् ।
यौनः स्वैः सुखहार्दैश्च सम्बन्धः सह पाण्डवैः॥ १९ ॥
तेषां वृद्धया हि वृद्धिर्नो मा क्रुधः पुरुषर्षभ ।

'अतः प्रलम्बहन्ता बलभद्रजी ! मैं इसमें भीमसेनका कोई दोष नहीं देखता; इसलिये आप क्रोध न कीजिये । हमारा पाण्डवोंके साथ यौन-सम्बन्ध तो है ही । परस्पर सुख देनेवाले सौहार्दसे भी हमलोग बँधे हुए हैं । पुरुषप्रवर ! इन पाण्डवोंकी वृद्धिसे हमारी भी वृद्धि है, अतः आप क्रोध न करें' ॥ १९½ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा सीरभृत् प्राह धर्मवित् ॥ २० ॥
धर्मः सुचरितः सद्भिः स च द्वाभ्यां नियच्छति ।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर धर्मज्ञ हलधरने इस प्रकार कहा—'श्रीकृष्ण ! श्रेष्ठ पुरुषोंने धर्मका अच्छी तरह आचरण किया है; किंतु वह अर्थ और काम—इन दो वस्तुओंसे संकुचित हो जाता है ॥ २०½ ॥

अर्थश्चात्यर्थलुब्धस्य कामश्चातिप्रसङ्गिणः ॥ २१ ॥
धर्मार्थौ धर्मकामौ च कामार्थौ चाप्यपीडयन् ।
धर्मार्थकामान् योऽभ्येति सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते॥२२॥

'अत्यन्त लोभीका अर्थ और अधिक आसक्ति रखने-वालेका काम—ये दोनों ही धर्मको हानि पहुँचाते हैं ! जो मनुष्य कामसे धर्म और अर्थको, अर्थसे धर्म और कामको तथा धर्मसे अर्थ और कामको हानि न पहुँचाकर धर्म, अर्थ और काम तीनोंका यथोचित रूपसे सेवन करता है, वह अत्यन्त सुखका भागी होता है ॥ २१-२२ ॥

तदिदं व्याकुलं सर्वं कृतं धर्मस्य पीडनात् ।
भीमसेनेन गोविन्द कामं त्वं तु यथाऽऽत्थ माम्॥ २३ ॥

'गोविन्द ! भीमसेनने (अर्थके लोभसे) धर्मको हानि पहुँचाकर इन सबको विकृत कर डाला है । तुम मुझसे जिस प्रकार इस कार्यको धर्मसंगत बता रहे हो वह सब तुम्हारी मनमानी कल्पना है' ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अरोषणो हि धर्मात्मा सततं धर्मवत्सलः ।
भवान् प्रख्यायते लोके तस्मात् संशाम्य मा क्रुधः॥२४॥

श्रीकृष्णने कहा—भैया ! आप संसारमें क्रोधरहित, धर्मात्मा और निरन्तर धर्मपर अनुग्रह रखनेवाले सत्पुरुषके रूपमें विख्यात हैं; अतः शान्त हो जाइये, क्रोध न कीजिये ॥

प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च ।
आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च पाण्डवः ॥ २५ ॥

समझ लीजिये कि कलियुग आ गया । पाण्डुपुत्र भीम-सेनकी प्रतिज्ञापर भी ध्यान दीजिये । आज पाण्डुकुमार भीम वैर और प्रतिज्ञाके ऋणसे मुक्त हो जायँ ॥ २५ ॥

(गतः पुरुषशार्दूलो हत्वा नैकृतिकं रणे ।
अधर्मो विद्यते नात्र यद् भीमो हतवान् रिपुम् ॥

पुरुषसिंह भीम रणभूमिमें कपटी दुर्योधनको मारकर चले गये । उन्होंने जो अपने शत्रुका वध किया है, इसमें कोई अधर्म नहीं है ॥

युद्धयन्तं समरे वीरं कुरुवृष्णियशस्करम् ।
अनेन कर्णः संदिष्टः पृष्ठतो धनुराच्छिनत् ॥

इसी दुर्योधनने कर्णको आज्ञा दी थी, जिससे उसने कुरु और वृष्णि दोनों कुलोंके सुयशकी वृद्धि करनेवाले, युद्ध-परायण, वीर अभिमन्युके धनुषको समराङ्गणमें पीछेसे आकर काट दिया था ॥

ततः संछिन्नधन्वानं विरथं पौरुषे स्थितम् ।
व्यायुधीकृत्य हतवान् सौभद्रमपलायिनम् ॥

इस प्रकार धनुष कट जाने और रथसे हीन हो जानेपर भी जो पुरुषार्थमें ही तत्पर था, रणभूमिमें पीठ न दिखाने-वाले उस सुभद्राकुमार अभिमन्युको इसने निहत्था करके मार डाला था ॥

जन्मप्रभृतिलुब्धश्च पापश्चैव दुरात्मवान् ।

निहतो भीमसेनेन दुर्बुद्धिः कुलपांसनः ॥

यह दुरात्मा, दुर्बुद्धि एवं पापी दुर्योधन जन्मसे ही लोभी तथा कुरुकुलका कलंक रहा है, जो भीमसेनके हाथसे मारा गया है॥

प्रतिज्ञां भीमसेनस्य त्रयोदशसमार्जिताम् ।
किमर्थं नाभिजानाति युद्ध्यमानोऽपि विश्रुताम्॥

भीमसेनकी प्रतिज्ञा तेरह वर्षोंसे चल रही थी और सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुकी थी । युद्ध करते समय दुर्योधनने उसे याद क्यों नहीं रक्खा ? ॥

ऊर्ध्वमुत्क्रम्य वेगेन जिघांसन्तं वृकोदरः ।
बभञ्ज गदया चोरू न स्थाने न च मण्डले ॥)

यह वेगसे ऊपर उछलकर भीमसेनको मार डालना चाहता था । उस अवस्थामें भीमने अपनी गदासे इसकी दोनों जाँघें तोड़ डाली थीं । उस समय न तो यह किसी स्थानमें था और न मण्डलमें ही ॥

संजय उवाच

धर्मच्छलमपि श्रुत्वा केशवात् स विशाम्पते ।
नैव प्रीतमना रामो वचनं प्राह संसदि ॥ २६ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! भगवान् श्रीकृष्णसे यह छलरूप धर्मका विवेचन सुनकर बलदेवजीके मनको संतोष नहीं हुआ । उन्होंने भरी सभामें कहा—॥ २६ ॥

हत्वाधर्मेण राजानं धर्मात्मानं सुयोधनम् ।
जिह्मयोधीति लोकेऽस्मिन् ख्यातिं यास्यति पाण्डवः ॥

'धर्मात्मा राजा दुर्योधनको अधर्मपूर्वक मारकर पाण्डुपुत्र भीमसेन इस संसारमें कपटपूर्ण युद्ध करनेवाले योद्धाके रूपमें विख्यात होंगे ॥ २७ ॥

दुर्योधनोऽपि धर्मात्मा गतिं यास्यति शाश्वतीम् ।
ऋजुयोधी हतो राजा धार्तराष्ट्रो नराधिपः ॥ २८ ॥

'धृतराष्ट्रपुत्र धर्मात्मा राजा दुर्योधन सरलतासे युद्ध कर रहा था, उस अवस्थामें मारा गया है; अतः वह सनातन सद्गतिको प्राप्त होगा ॥ २८ ॥

युद्धदीक्षां प्रविश्याजौ रणयज्ञं वितत्य च ।
हुत्वाऽऽत्मानममित्राग्नौ प्राप चावभृथं यशः ॥ २९ ॥

'युद्धकी दीक्षा ले संग्रामभूमिमें प्रविष्ट हो रणयज्ञका विस्तार करके शत्रुरूपी प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे दुर्योधनने सुयशरूपी अवभृथ-स्नानका शुभ अवसर प्राप्त किया है' ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा रथमास्थाय रौहिणेयः प्रतापवान् ।
श्वेताभ्रशिखराकारः प्रययौ द्वारकां प्रति ॥ ३० ॥

यह कहकर प्रतापी रोहिणीनन्दन बलरामजी, जो श्वेत बादलोंके अग्रभागकी भाँति गौर-कान्तिसे सुशोभित हो रहे थे, रथपर आरूढ़ हो द्वारकाकी ओर चल दिये ॥३०॥

पञ्चालाश्च सवार्ष्णेयाः पाण्डवाश्च विशाम्पते ।
रामे द्वारवतीं याते नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ ३१ ॥

प्रजानाथ ! बलरामजीके इस प्रकार द्वारका चले जानेपर पाञ्चाल, वृष्णिवंशी तथा पाण्डव वीर उदास हो गये । उनके मनमें अधिक उत्साह नहीं रह गया ॥ ३१ ॥

ततो युधिष्ठिरं दीनं चिन्तापरमधोमुखम् ।
शोकोपहतसंकल्पं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ ३२ ॥

उस समय युधिष्ठिर बहुत दुखी थे । वे नीचे मुख किये चिन्तामें डूब गये थे । शोकसे उनका मनोरथ भङ्ग हो गया था । उस अवस्थामें उनसे भगवान् श्रीकृष्ण बोले ॥

वासुदेव उवाच

धर्मराज किमर्थं त्वमधर्ममनुमन्यसे ।
हतबन्धोर्यदेतस्य पतितस्य विचेतसः ॥ ३३ ॥
दुर्योधनस्य भीमेन मृद्यमानं शिरः पदा ।
उपप्रेक्षसि कस्मात् त्वं धर्मज्ञः सन्नराधिप ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्णने पूछा—धर्मराज ! आप चुप होकर अधर्मका अनुमोदन क्यों कर रहे हैं ? नरेश्वर दुर्योधनके भाई और सहायक मारे जा चुके हैं । यह पृथ्वीपर गिरकर अचेत हो रहा है । ऐसी दशामें भीमसेन इसके मस्तकको पैरसे कुचल रहे हैं । आप धर्मज्ञ होकर समीपसे ही यह सब कैसे देख रहे हैं ॥

युधिष्ठिर उवाच

न ममैतत् प्रियं कृष्ण यद् राजानं वृकोदरः ।
पदा मूर्ध्न्यस्पृशत् क्रोधान्न च हृष्ये कुलक्षये ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण ! भीमसेनने क्रोधमें भरकर जो राजा दुर्योधनके मस्तकको पैरोंसे ठुकराया है, यह मुझे भी अच्छा नहीं लगा । अपने कुलका संहार हो जानेसे मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥ ३५ ॥

निकृत्या निकृता नित्यं धृतराष्ट्रसुतैर्वयम् ।
बहूनि परुषाण्युक्त्वा वनं प्रस्थापिताः स्म ह ॥ ३६ ॥

परंतु क्या करूँ, धृतराष्ट्रके पुत्रोंने सदा ही हमें अपने कपट-जालका शिकार बनाया और बहुत-से कटुवचन सुनाकर वनमें भेज दिया ॥ ३६ ॥

भीमसेनस्य तद् दुःखमतीव हृदि वर्तते ।
इति संचिन्त्य वार्ष्णेय मयैतत् समुपेक्षितम् ॥ ३७ ॥

वृष्णिनन्दन ! भीमसेनके हृदयमें इन सब बातोंके लिये बड़ा दुःख था । यही सोचकर मैंने उनके इस कार्यकी उपेक्षा की है ॥ ३७ ॥

तस्माद्धत्वाकृतप्रज्ञं लुब्धं कामवशानुगम् ।
लभतां पाण्डवः कामं धर्मेऽधर्मे च वा कृते ॥ ३८ ॥

इसलिये मैंने विचार किया कि कामके वशीभूत हुए लोभी और अजितात्मा दुर्योधनको मारकर धर्म या अधर्म करके पाण्डुपुत्र भीम अपनी इच्छा पूरी कर लें ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

इत्युक्ते धर्मराजेन वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ।
काममस्त्वेतदिति वै कृच्छ्राद् यदुकुलोद्वहः ॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! धर्मराजके ऐसा कहनेपर यदुकुलश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने बड़े कष्टसे यह कहा कि 'अच्छा, ऐसा ही सही' ॥ ३९ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन भीमप्रियहितैषिणा ।
अन्वमोदत तत् सर्वं यद् भीमेन कृतं युधि ॥ ४० ॥

भीमसेनका प्रिय और हित चाहनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण-के ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने भीमसेनके द्वारा युद्धस्थलमें जो कुछ किया गया था, उस सबका अनुमोदन किया ॥ ४० ॥

(अर्जुनोऽपि महाबाहुरप्रीतेनान्तरात्मना ।
नोवाच वचनं किंचित् भ्रातरं साध्वसाधु वा॥)

महाबाहु अर्जुन भी अप्रसन्न-चित्तसे अपने भाईके प्रति भला बुरा कुछ नहीं बोले ॥

भीमसेनोऽपि हत्वाऽऽजौ तव पुत्रममर्षणः ।
अभिवाद्याग्रतः स्थित्वा सम्प्रहृष्टः कृताञ्जलिः ॥ ४१ ॥

अमर्षशील भीमसेन युद्धस्थलमें आपके पुत्रका वध करके बड़े प्रसन्न हुए और युधिष्ठिरको प्रणाम करके उनके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ ४१ ॥

प्रोवाच सुमहातेजा धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
हर्षादुत्फुल्लनयनो जितकाशी विशाम्पते ॥ ४२ ॥

प्रजानाथ ! उस समय महातेजस्वी भीमसेन विजयश्रीसे प्रकाशित हो रहे थे । उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे, उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—॥ ४२ ॥

तवाद्य पृथिवी सर्वा क्षेमा निहतकण्टका ।
तां प्रशाधि महाराज स्वधर्ममनुपालय ॥ ४३ ॥

'महाराज ! आज यह सारी पृथ्वी आपकी हो गयी, इसके काँटे नष्ट कर दिये गये, अतः यह मङ्गलमयी हो गयी है । आप इसका शासन तथा अपने धर्मका पालन कीजिये ॥

यस्तु कर्तास्य वैरस्य निकृत्या निकृतिप्रियः ।
सोऽयं विनिहतः शेते पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ ४४ ॥

'पृथ्वीनाथ ! जिसे छल और कपट ही प्रिय था तथा जिसने कपटसे ही इस वैरकी नींव डाली थी, वही यह दुर्योधन आज मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहा है ॥ ४४ ॥

दुःशासनप्रभृतयः सर्वे ते चोग्रवादिनः ।
राधेयः शकुनिश्चैव हताश्च तव शत्रवः ॥ ४५ ॥

'वे भयङ्कर कटुवचन बोलनेवाले दुःशासन आदि धृतराष्ट्रपुत्र तथा कर्ण और शकुनि आदि आपके सभी शत्रु मार डाले गये ॥ ४५ ॥

सेयं रत्नसमाकीर्णा मही सवनपर्वता ।
उपावृत्ता महाराज त्वामद्य निहतद्विषम् ॥ ४६ ॥

'महाराज ! आपके शत्रु नष्ट हो गये । आज यह रत्नोंसे भरी हुई वन और पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी आपकी सेवामें प्रस्तुत है' ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गतो वैरस्य निधनं हतो राजा सुयोधनः ।
कृष्णस्य मतमास्थाय विजितेयं वसुन्धरा ॥ ४७ ॥

युधिष्ठिर बोले—भीमसेन ! सौभाग्यकी बात है कि तुमने वैरका अन्त कर दिया, राजा दुर्योधन मारा गया और श्रीकृष्णके मतका आश्रय लेकर हमने यह सारी पृथ्वी जीत ली ॥ ४७ ॥

दिष्ट्या गतस्त्वमानृण्यं मातुः कोपस्य चोभयोः ।
दिष्ट्या जयति दुर्धर्ष दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ॥ ४८ ॥

सौभाग्यसे तुम माता तथा क्रोध दोनोंके ऋणसे उऋण हो गये । दुर्धर्ष वीर ! भाग्यवश तुम विजयी हुए और सौभाग्यसे ही तुमने अपने शत्रुको मार गिराया ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवसान्त्वने षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें श्रीकृष्णका बलदेवजीको सान्त्वना देनाविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८½ श्लोक मिलाकर कुल ५६½ श्लोक हैं)

एकषष्टितमोऽध्यायः

पाण्डव-सैनिकोंद्वारा भीमकी स्तुति, श्रीकृष्णका दुर्योधनपर आक्षेप, दुर्योधनका उत्तर तथा श्रीकृष्णके द्वारा पाण्डवोंका समाधान एवं शङ्खध्वनि

धृतराष्ट्र उवाच

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! रणभूमिमें भीमसेनके द्वारा दुर्योधनको मारा गया देख पाण्डवों तथा सृंजयोंने क्या किया?॥

संजय उवाच

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
सिंहेनेव महाराज मत्तं वनगजं यथा ॥ २ ॥
प्रहृष्टमनसस्तत्र कृष्णेन सह पाण्डवाः ।

संजयने कहा—महाराज ! जैसे कोई मतवाला जंगली हाथी सिंहके द्वारा मारा गया हो, उसी प्रकार दुर्योधन-को भीमसेनके हाथसे रणभूमिमें मारा गया देख श्रीकृष्ण-सहित पाण्डव मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए ॥ २½ ॥

पञ्चाला सृञ्जयाश्चैव निहते कुरुनन्दने ॥ ३ ॥
आविध्यन्नुत्तरीयाणि सिंहनादांश्च नेदिरे ।
नैतान् हर्षसमाविष्टानियं सेहे वसुंधरा ॥ ४ ॥

कुरुनन्दन दुर्योधनके मारे जानेपर पाञ्चाल और सृंजय तो अपने दुपट्टे उछालने और सिंहनाद करने लगे । हर्षमें भरे हुए इन पाण्डव वीरोंका भार यह पृथ्वी सहन नहीं कर पाती थी ॥ ३-४ ॥

धनूंष्यन्ये व्याक्षिपन्त ज्याश्चाप्यन्ये तथाक्षिपन् ।
दध्मुरन्ये महाशङ्खानन्ये जघ्नुश्च दुन्दुभीन् ॥ ५ ॥

किसीने धनुष टंकारा, किसीने प्रत्यञ्चा खींची, कुछ लोग बड़े-बड़े शङ्ख बजाने लगे और दूसरे बहुत-से सैनिक डंके पीटने लगे ॥ ५ ॥

चिक्रीडुश्च तथैवान्ये जहसुश्च तवाहिताः ।
अब्रुवंश्चासकृद् वीरा भीमसेनमिदं वचः ॥ ६ ॥

आपके बहुत-से शत्रु भाँति-भाँतिके खेल खेलने और

हास-परिहास करने लगे । कितने ही वीर भीमसेनके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—॥ ६ ॥

दुष्करं भवता कर्म रणेऽद्य सुमहत् कृतम् ।
कौरवेन्द्रं रणे हत्वा गदयातिकृतश्रमम् ॥ ७ ॥

'कौरवराज दुर्योधनने गदायुद्धमें बड़ा भारी परिश्रम किया था । आज रणभूमिमें उसका वध करके आपने महान् एवं दुष्कर पराक्रम कर दिखाया है ॥ ७ ॥

इन्द्रेणेव हि वृत्रस्य वधं परमसंयुगे ।
त्वया कृतममन्यन्त शत्रोर्वधमिमं जनाः ॥ ८ ॥

'जैसे महासमरमें इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया था, आपके द्वारा किया हुआ यह शत्रुका संहार भी उसी कोटिका है—ऐसा सब लोग समझने लगे हैं ॥ ८ ॥

चरन्तं विविधान् मार्गान् मण्डलानि च सर्वशः ।
दुर्योधनमिमं शूरं कोऽन्यो हन्याद् वृकोदरात्॥ ९ ॥

'भला, नाना प्रकारके पैंतरे बदलते और सब तरहकी मण्डलाकार गतियोंसे चलते हुए इस शूरवीर दुर्योधनको भीमसेनके सिवा दूसरा कौन मार सकता था ? ॥ ९ ॥

वैरस्य च गतः पारं त्वमिहान्यैः सुदुर्गमम् ।
अशक्यमेतदन्येन सम्पादयितुमीदृशम् ॥ १० ॥

'आप वैरके समुद्रसे पार हो गये, जहाँ पहुँचना दूसरे लोगोंके लिये अत्यन्त कठिन है । दूसरे किसीके लिये ऐसा पराक्रम कर दिखाना सर्वथा असम्भव है ॥ १० ॥

कुञ्जरेणेव मत्तेन वीर संग्राममूर्धनि ।
दुर्योधनशिरो दिष्ट्या पादेन मृदितं त्वया ॥ ११ ॥

'वीर ! मतवाले गजराजकी भाँति आपने युद्धके मुहानेपर अपने पैरसे दुर्योधनके मस्तकको कुचल दिया है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ ११ ॥

सिंहेन महिषस्येव कृत्वा सङ्गरमुत्तमम् ।
दुःशासनस्य रुधिरं दिष्ट्या पीतं त्वयानघ ॥ १२ ॥

'अनघ ! जैसे सिंहने भैंसेका खून पी लिया हो, उसी प्रकार आपने महान् युद्ध ठानकर दुःशासनके रक्तका पान किया है, यह भी सौभाग्यकी ही बात है ॥ १२ ॥

ये विप्रकुर्वन् राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
मूर्ध्नि तेषां कृतः पादो दिष्ट्या ते स्वेन कर्मणा ॥ १३ ॥

'जिन लोगोंने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका अपराध किया था, उन सबके मस्तकपर आपने अपने पराक्रमद्वारा पैर रख दिया, यह कितने हर्षका विषय है ॥ १३ ॥

अमित्राणामधिष्ठानाद् वधाद् दुर्योधनस्य च ।
भीम दिष्ट्या पृथिव्यां ते प्रथितं सुमहद् यशः ॥ १४ ॥

'भीम ! शत्रुओंपर अपना प्रभुत्व स्थापित करने और दुर्योधनको मार डालनेसे भाग्यवश इस भूमण्डलमें आपका महान् यश फैल गया है ॥ १४ ॥

एवं नूनं हते वृत्रे शक्रं नन्दन्ति वन्दिनः ।
तथा त्वां निहतामित्रं वयं नन्दाम भारत ॥ १५ ॥

'भारत ! निश्चय ही वृत्रासुरके मारे जानेपर वन्दीजनोंने जिस प्रकार इन्द्रका अभिनन्दन किया था, उसी प्रकार हम शत्रुओंका वध करनेवाले आपका अभिनन्दन करते हैं ॥ १५ ॥

दुर्योधनवधे यानि रोमाणि हृषितानि नः ।
अद्यापि न विकृष्यन्ते तानि तद् विद्धि भारत ॥ १६ ॥

'भरतनन्दन ! दुर्योधनके वधके समय हमारे शरीरमें जो रोंगटे खड़े हुए थे, वे अब भी ज्यों-के-त्यों हैं, गिर नहीं रहे हैं । इन्हें आप देख लें' ॥ १६ ॥

इत्यब्रुवन् भीमसेनं वातिकास्तत्र सङ्गताः ।
तान् हृष्टान् पुरुषव्याघ्रान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह॥ १७॥
ब्रुवतोऽसदृशं तत्र प्रोवाच मधुसूदनः ।

प्रशंसा करनेवाले वीरगण वहाँ एकत्र होकर भीमसेनसे उपर्युक्त बातें कह रहे थे । भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि पुरुषसिंह पाञ्चाल और पाण्डव अयोग्य बातें कह रहे हैं, तब वे वहाँ उन सबसे बोले—॥ १७½ ॥

न न्याय्यं निहतं शत्रुं भूयो हन्तुं नराधिपाः ॥ १८ ॥
असकृद् वाग्भिरुग्राभिर्निहतो ह्येष मन्दधीः ।

'नरेश्वरो ! मरे हुए शत्रुको पुनः मारना उचित नहीं है । तुमलोगोंने इस मन्दबुद्धि दुर्योधनको बारंबार कठोर वचनोंद्वारा घायल किया है ॥ १८½ ॥

तदैवैष हतः पापो यदैव निरपत्रपः ॥ १९ ॥
लुब्धः पापसहायश्च सुहृदां शासनातिगः ।

'यह निर्लज्ज पापी तो उसी समय मर चुका था जब लोभमें फँसा और पापियोंको अपना सहायक बनाकर सुहृदोंके शासनसे दूर रहने लगा ॥ १९½ ॥

बहुशो विदुरद्रोणकृपगाङ्गेयसृंजयैः ॥ २० ॥
पाण्डुभ्यः प्रार्थ्यमानोऽपि पित्र्यमंशं न दत्तवान् ।

'विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म तथा सृंजयोंके बारंबार प्रार्थना करनेपर भी इसने पाण्डवोंको उनका पैतृक भाग नहीं दिया ॥ २०½ ॥

नैष योग्योऽद्य मित्रं वा शत्रुर्वा पुरुषाधमः ॥ २१ ॥
किमनेनातिभुग्नेन वाग्भिः काष्ठसधर्मणा ।
रथेष्वारोहत क्षिप्रं गच्छामो वसुधाधिपाः ॥ २२ ॥
दिष्ट्या हतोऽयं पापात्मा सामात्यज्ञातिबान्धवः।

'यह नराधम अब किसी योग्य नहीं है । न यह किसीका मित्र है और न शत्रु । राजाओ ! यह तो सूखे काठके समान कठोर है । इसे कटुवचनोंद्वारा अधिक झुकानेकी चेष्टा करनेसे क्या लाभ ? अब शीघ्र अपने रथोंपर बैठो । हम सब लोग छावनीकी ओर चलें । सौभाग्यसे यह पापात्मा अपने मन्त्री, कुटुम्ब और भाई-बन्धुओंसहित मार डाला गया ।'

इति श्रुत्वा त्वधिक्षेपं कृष्णाद् दुर्योधनो नृपः ॥ २३ ॥
अमर्षवशमापन्न उदतिष्ठद् विशाम्पते ।
स्फिग्देशेनोपविष्टः स दोर्भ्यां विष्टभ्य मेदिनीम्॥ २४ ॥

प्रजानाथ ! श्रीकृष्णके मुखसे यह आक्षेपयुक्त वचन सुन राजा दुर्योधन अमर्षके वशीभूत होकर उठा और दोनों हाथ पृथ्वीपर टेककर चूतड़के सहारे बैठ गया ॥ २३-२४ ॥

दृष्टिं भ्रूसङ्कटां कृत्वा वासुदेवे न्यपातयत्।
अर्धोन्नतशरीरस्य रूपमासीन्नृपस्य तु ॥ २५ ॥
क्रुद्धस्याशीविषस्येव च्छिन्नपुच्छस्य भारत।

तत्पश्चात् उसने श्रीकृष्णकी ओर भौंहें टेढ़ी करके देखा, उसका आधा शरीर उठा हुआ था। उस समय राजा दुर्योधनका रूप उस कुपित विषधरके समान जान पड़ता था, जो पूँछ कट जानेके कारण अपने आधे शरीरको ही उठाकर देख रहा हो ॥ २५½ ॥

प्राणान्तकरिणीं घोरां वेदनामप्यचिन्तयन् ॥ २६ ॥
दुर्योधनो वासुदेवं वाग्भिरुग्राभिरार्दयत्।

उसे प्राणोंका अन्त कर देनेवाली भयंकर वेदना हो रही थी, तो भी उसकी चिन्ता न करते हुए दुर्योधनने अपने कठोर वचनोंद्वारा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको पीड़ा देना प्रारम्भ किया—॥ २६½ ॥

कंसदासस्य दायाद न ते लज्जास्त्यनेन वै ॥ २७ ॥
अधर्मेण गदायुद्धे यदहं विनिपातितः।

'ओ कंसके दासके बेटे ! मैं जो गदायुद्धमें अधर्मसे मारा गया हूँ, इस कुकृत्यके कारण क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती है ? ॥ २७½ ॥

ऊरू भिन्धीति भीमस्य स्मृतिं मिथ्या प्रयच्छता॥ २८ ॥
किं न विज्ञातमेतन्मे यदर्जुनमवोचथाः।

'भीमसेनको मेरी जाँघें तोड़ डालनेका मिथ्या स्मरण दिलाते हुए तुमने अर्जुनसे जो कुछ कहा था, क्या वह मुझे ज्ञात नहीं है ? ॥ २८½ ॥

घातयित्वा महीपालानृजुयुद्धान् सहस्रशः ॥ २९ ॥
जिह्मैरुपायैर्बहुभिर्न ते लज्जा न ते घृणा।

'सरलतासे धर्मानुकूल युद्ध करनेवाले सहस्रों भूमिपालोंको बहुत-से कुटिल उपायोंद्वारा मरवाकर न तुम्हें लज्जा आती है और न इस बुरे कर्मसे घृणा ही होती है ॥ २९½ ॥

अहन्यहनि शूराणां कुर्वाणः कदनं महत् ॥ ३० ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य घातितस्ते पितामहः।

'जो प्रतिदिन शूरवीरोंका भारी संहार मचा रहे थे, उन पितामह भीष्मका तुमने शिखण्डीको आगे रखकर वध कराया ॥ ३०½ ॥

अश्वत्थाम्नः सनामानं हत्वा नागं सुदुर्मते ॥ ३१ ॥
आचार्यो न्यासितः शस्त्रं किं तन्न विदितं मया।

'दुर्मते ! अश्वत्थामाके सदृश नामवाले एक हाथीको मारकर तुमलोगोंने द्रोणाचार्यके हाथसे शस्त्र नीचे डलवा दिया था, क्या वह मुझे ज्ञात नहीं है ? ॥ ३१½ ॥

स चानेन नृशंसेन धृष्टद्युम्नेन वीर्यवान् ॥ ३२ ॥
पात्यमानस्त्वया दृष्टो न चैनं त्वमवारयः।

'इस नृशंस धृष्टद्युम्नने पराक्रमी आचार्यको उस अवस्थामें मार गिराया, जिसे तुमने अपनी आँखों देखा; किंतु मना नहीं किया ॥ ३२½ ॥

वधार्थं पाण्डुपुत्रस्य याचितां शक्तिमेव च ॥ ३३ ॥
घटोत्कचे व्यंसयतः कस्त्वत्तः पापकृत्तमः।

'पाण्डुपुत्र अर्जुनके वधके लिये माँगी हुई इन्द्रकी शक्तिको तुमने घटोत्कचपर छुड़वा दिया। तुमसे बढ़कर महापापी कौन हो सकता है ? ॥ ३३½ ॥

छिन्नहस्तः प्रायगतस्तथा भूरिश्रवा बली ॥ ३४ ॥
त्वयाभिसृष्टेन हतः शैनेयेन महात्मना।

'बलवान् भूरिश्रवाका हाथ कट गया था और वे आमरण अनशनका व्रत लेकर बैठे हुए थे। उस दशामें तुमसे ही प्रेरित होकर महामना सात्यकिने उनका वध किया॥

कुर्वाणश्चोत्तमं कर्म कर्णः पार्थजिगीषया ॥ ३५ ॥
व्यंसनेनाश्वसेनस्य पन्नगेन्द्रस्य वै पुनः।
पुनश्च पतिते चक्रे व्यसनार्तः पराजितः ॥ ३६ ॥
पातितः समरे कर्णश्चक्रव्यग्रोऽग्रणीर्नृणाम्।

'मनुष्योंमें अग्रगण्य कर्ण अर्जुनको जीतनेकी इच्छासे उत्तम पराक्रम कर रहा था। उस समय नागराज अश्वसेनको जो कर्णके बाणके साथ अर्जुनके वधके लिये जा रहा था, तुमने अपने प्रयत्नसे विफल कर दिया। फिर जब कर्णके रथका पहिया गड्ढेमें गिर गया और वह उसे उठानेमें व्यग्रतापूर्वक संलग्न हुआ, उस समय उसे संकटसे पीड़ित एवं पराजित जानकर तुमलोगोंने मार गिराया॥ ३५–३६½ ॥

यदि मां चापि कर्णं च भीष्मद्रोणौ च संयुतौ॥ ३७ ॥
ऋजुना प्रतियुध्येथा न ते स्याद् विजयो ध्रुवम्।

'यदि मेरे, कर्णके तथा भीष्म और द्रोणाचार्यके साथ मायारहित सरलभावसे तुम युद्ध करते तो निश्चय ही तुम्हारे पक्षकी विजय नहीं होती ॥ ३७½ ॥

त्वया पुनरनार्येण जिह्ममार्गेण पार्थिवाः ॥ ३८ ॥
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो वयं चान्ये च घातिताः।

'परंतु तुम-जैसे अनार्यने कुटिल मार्गका आश्रय लेकर स्वधर्म-पालनमें लगे हुए हमलोगोंका तथा दूसरे राजाओंका भी वध करवाया है' ॥ ३८½ ॥

वासुदेव उवाच

हतस्त्वमसि गान्धारे सभ्रातृसुतबान्धवः ॥ ३९ ॥
सगणः ससुहृच्चैव पापं मार्गमनुष्ठितः।
तवैव दुष्कृतैर्वीरौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ४० ॥
कर्णश्च निहतः संख्ये तव शीलानुवर्तकः।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—गान्धारीनन्दन ! तुमने पापके रास्तेपर पैर रक्खा था; इसीलिये तुम भाई, पुत्र, बान्धव, सेवक और सुहृद्गणोंसहित मारे गये हो। वीर भीष्म और द्रोणाचार्य तुम्हारे दुष्कर्मोंसे ही मारे गये हैं। कर्ण भी तुम्हारे स्वभावका ही अनुसरण करनेवाला था; इसलिये युद्धमें मारा गया ॥ ३९-४०½ ॥

याच्यमानं मया मूढ पित्र्यमंशं न दित्ससि ॥ ४१ ॥
पाण्डवेभ्यः स्वराज्यं च लोभाच्छकुनिनिश्चयात्।

ओ मूर्ख ! तुम शकुनिकी सलाह मानकर मेरे माँगनेपर भी पाण्डवोंको उनकी पैतृकसम्पत्ति, उनका अपना राज्य लोभवश नहीं देना चाहते थे ॥ ४१½ ॥

विषं ते भीमसेनाय दत्तं सर्वे च पाण्डवाः ॥ ४२ ॥
प्रदीपिता जतुगृहे मात्रा सह सुदुर्मते ।
सभायां याज्ञसेनी च कृष्टा द्यूते रजस्वला ॥ ४३ ॥
तदैव तावद् दुष्टात्मन् वध्यस्त्वं निरपत्रप ।

सुदुर्मते ! तुमने जब भीमसेनको विष दिया, समस्त पाण्डवोंको उनकी माताके साथ लाक्षागृहमें जला डालनेका प्रयत्न किया और निर्लज्ज ! दुष्टात्मन् ! द्यूतक्रीड़ाके समय भरी सभामें रजस्वला द्रौपदीको जब तुमलोग घसीट लाये, तभी तुम वधके योग्य हो गये थे ॥ ४२-४३½ ॥

अनक्षज्ञं च धर्मज्ञं सौबलेनाक्षवेदिना ॥ ४४ ॥
निकृत्या यत् पराजैषीस्तस्मादसि हतो रणे ।

तुमने द्यूतक्रीड़ाके जानकार सुबलपुत्र शकुनिके द्वारा उस कलाको न जाननेवाले धर्मज्ञ युधिष्ठिरको, जो छलसे पराजित किया था, उसी पापसे तुम रणभूमिमें मारे गये हो ॥४४½॥

जयद्रथेन पापेन यत् कृष्णा क्लेशिता वने ॥ ४५ ॥
यातेषु मृगयां चैव तृणबिन्दोरथाश्रमम् ।
अभिमन्युश्च यद् बाल एको बहुभिराहवे ॥ ४६ ॥
त्वद्दोषैर्निहतः पाप तस्मादसि हतो रणे ।

जब पाण्डव शिकारके लिये तृणबिन्दुके आश्रमपर चले गये थे, उस समय पापी जयद्रथने वनके भीतर द्रौपदीको जो क्लेश पहुँचाया और पापात्मन् ! तुम्हारे ही अपराधसे बहुत-से योद्धाओंने मिलकर युद्धस्थलमें जो अकेले बालक अभिमन्यु-का वध किया था, इन्हीं सब कारणोंसे आज तुम भी रण-भूमिमें मारे गये हो ॥ ४५-४६½ ॥

(कुर्वाणं कर्म समरे पाण्डवानर्थकाङ्क्षिणम् ।
यच्छिखण्ड्यवधीद् भीष्मं मित्रार्थे न व्यतिक्रमः॥

भीष्म पाण्डवोंके अनर्थकी इच्छा रखकर समरभूमिमें पराक्रम प्रकट कर रहे थे । उस समय अपने मित्रोंके हितके लिये शिखण्डीने जो उनका वध किया है, वह कोई दोष या अपराधकी बात नहीं है ॥

स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा आचार्यस्त्वत्प्रियेप्सया ।
पार्षतेन हतः संख्ये वर्तमानोऽसतां पथि ॥

आचार्य द्रोण तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे अपने धर्म-को पीछे करके असाधु पुरुषोंके मार्गपर चल रहे थे; अतः युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नने उनका वध किया है ॥

प्रतिज्ञामात्मनः सत्यां चिकीर्षन् समरे रिपुम् ।
हतवान् सात्वतो विद्वान् सौमदत्तिं महारथम्॥

विद्वान् सात्वतवंशी सात्यकिने अपनी सच्ची प्रतिज्ञाका पालन करनेकी इच्छासे समराङ्गणमें अपने शत्रु महारथी भूरिश्रवाका वध किया था ॥

अर्जुनः समरे राजन् युध्यमानः कदाचन ।
निन्दितं पुरुषव्याघ्रः करोति न कथंचन ॥

राजन् ! समरभूमिमें युद्ध करते हुए पुरुषसिंह अर्जुन कभी किसी प्रकार भी कोई निन्दित कार्य नहीं करते हैं ! ॥

लब्ध्वापि बहुशश्छिद्रं वीरवृत्तमनुस्मरन् ।
न जघान रणे कर्णं मैवं वोचः सुदुर्मते ॥

दुर्मते ! अर्जुनने वीरोचित सदाचारका विचार करके बहुत-से छिद्र (प्रहार करनेके अवसर) पाकर भी युद्धमें कर्णका वध नहीं किया है; अतः तुम उनके विषयमें ऐसी बात न कहो ॥

देवानां मतमाज्ञाय तेषां प्रियहितेप्सया ।
नार्जुनस्य महानागं मया व्यंसितमस्त्रजम् ॥

देवताओंका मत जानकर उनका प्रिय और हित करनेकी इच्छासे मैंने अर्जुनपर महानागास्त्रका प्रहार नहीं होने दिया। उसे विफल कर दिया ॥

त्वं च भीष्मश्च कर्णश्च द्रोणो द्रौणिस्तथा कृपः ।
विराटनगरे तस्य आनृशंस्याच्च जीविताः ॥

तुम, भीष्म, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य विराटनगरमें अर्जुनकी दयालुतासे ही जीवित बच गये ॥

स्मर पार्थस्य विक्रान्तं गन्धर्वेषु कृतं तदा ।
अधर्मः कोऽत्र गान्धारे पाण्डवैर्यत् कृतं त्वयि॥

याद करो, अर्जुनके उस पराक्रमको; जो उन्होंने तुम्हारे लिये उन दिनों गन्धर्वोंपर प्रकट किया था । गान्धारीनन्दन ! पाण्डवोंने यहाँ तुम्हारे साथ जो बर्ताव किया है, उसमें कौन-सा अधर्म है ॥

स्वबाहुबलमास्थाय स्वधर्मेण परंतपाः ।
जितवन्तो रणे वीरा पापोऽसि निधनं गतः ॥)

शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर पाण्डवोंने अपने बाहुबल-का आश्रय लेकर क्षत्रिय-धर्मके अनुसार विजय पायी है । तुम पापी हो, इसीलिये मारे गये हो ॥

यान्यकार्याणि चास्माकं कृतानीति प्रभाषसे ॥ ४७ ॥
वैगुण्येन तवात्यर्थं सर्वं हि तदनुष्ठितम् ।

तुम जिन्हें हमारे किये हुए अनुचित कार्य बता रहे हो, वे सब तुम्हारे महान् दोषसे ही किये गये हैं ॥ ४७½ ॥

बृहस्पतेरुशनसो नोपदेशः श्रुतस्त्वया ॥ ४८ ॥
वृद्धा नोपासिताश्चैव हितं वाक्यं न ते श्रुतम् ।

तुमने बृहस्पति और शुक्राचार्यके नीतिसम्बन्धी उपदेश-को नहीं सुना है, बड़े-बूढ़ोंकी उपासना नहीं की है और उनके हितकर वचन भी नहीं सुने हैं ॥ ४८½ ॥

लोभेनातिबलेन त्वं तृष्णया च वशीकृतः ॥ ४९ ॥
कृतवानस्यकार्याणि विपाकस्तस्य भुज्यताम् ।

तुमने अत्यन्त प्रबल लोभ और तृष्णाके वशीभूत होकर न करने योग्य कार्य किये हैं; अतः उनका परिणाम अब तुम्हीं भोगो ॥ ४९½ ॥

दुर्योधन उवाच

अधीतं विधिवद् दत्तं भूः प्रशास्ता ससागरा ॥ ५० ॥
मूर्ध्नि स्थितममित्राणां को नु स्वन्ततरो मया ।

दुर्योधनने कहा—मैंने विधिपूर्वक अध्ययन किया, दान दिये, समुद्रोंसहित पृथ्वीका शासन किया और शत्रुओंके मस्तकपर पैर रखकर मैं खड़ा रहा । मेरे समान उत्तम अन्त (परिणाम) किसका हुआ है ? ॥ ५०½ ॥

यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुपश्यताम् ॥ ५१ ॥
तदिदं निधनं प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।

अपने धर्मपर दृष्टि रखनेवाले क्षत्रिय-बन्धुओंको जो अभीष्ट है, वही यह मृत्यु मुझे प्राप्त हुई है; अतः मुझसे अच्छा अन्त और किसका हुआ है ? ॥ ५१½ ॥

देवार्हा मानुषा भोगाः प्राप्ता असुलभा नृपैः ॥ ५२ ॥
ऐश्वर्यं चोत्तमं प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।

जो दूसरे राजाओंके लिये दुर्लभ हैं, वे देवताओंको ही सुलभ होनेवाले मानवभोग मुझे प्राप्त हुए हैं। मैंने उत्तम ऐश्वर्य पा लिया है; अतः मुझसे उत्कृष्ट अन्त और किसका हुआ है ? ॥ ५२½ ॥

ससुहृत् सानुगश्चैव स्वर्गं गन्ताहमच्युत ॥ ५३ ॥
यूयं निहतसंकल्पाः शोचन्तो वर्तयिष्यथ ।

अच्युत ! मैं सुहृदों और सेवकोंसहित स्वर्गलोकमें जाऊँगा और तुमलोग भग्नमनोरथ होकर शोचनीय जीवन बिताते रहोगे ॥ ५३½ ॥

(न मे विषादो भीमेन पादेन शिर आहतम् ।
काका वा कङ्कगृध्रा वा निधास्यन्ति पदं क्षणात् ॥)

भीमसेनने अपने पैरसे जो मेरे सिरपर आघात किया है, इसके लिये मुझे कोई खेद नहीं है; क्योंकि अभी क्षणभरके बाद कौए, कङ्क अथवा गृध्र भी तो इस शरीरपर अपना पैर रक्खेंगे ॥

संजय उवाच

अस्य वाक्यस्य निधने कुरुराजस्य धीमतः ॥ ५४ ॥
अपतत् सुमहद् वर्षं पुष्पाणां पुण्यगन्धिनाम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! बुद्धिमान् कुरुराज दुर्योधनकी यह बात पूरी होते ही उसके ऊपर पवित्र सुगंधवाले पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी ॥ ५४½ ॥

अवादयन्त गन्धर्वा वादित्रं सुमनोहरम् ॥ ५५ ॥
जगुश्चाप्सरसो राज्ञो यशःसम्बद्धमेव च ।

गन्धर्वगण अत्यन्त मनोहर बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ राजा दुर्योधनके सुयशसम्बन्धी गीत गाने लगीं ५५½

सिद्धाश्च मुमुचुर्वाचः साधु साध्विति पार्थिव ॥ ५६ ॥
ववौ च सुरभिर्वायुः पुण्यगन्धो मृदुः सुखः ।
व्यराजंश्च दिशः सर्वा नभो वैदूर्यसंनिभम् ॥ ५७ ॥

राजन् ! उस समय सिद्धगण बोल उठे—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'। फिर पवित्र गन्धवाली मनोहर, मृदुल एवं सुखदायक हवा चलने लगी। सारी दिशाओंमें प्रकाश छा गया और आकाश नीलमके समान चमक उठा ॥ ५६-५७ ॥

अत्यद्भुतानि ते दृष्ट्वा वासुदेवपुरोगमाः ।
दुर्योधनस्य पूजां तु दृष्ट्वा व्रीडामुपागमन् ॥ ५८ ॥

श्रीकृष्ण आदि सब लोग ये अद्भुत बातें और दुर्योधनकी यह पूजा देखकर बहुत लज्जित हुए ॥ ५८ ॥

हतांश्चाधर्मतः श्रुत्वा शोकार्ताः शुशुचुर्हि ते ।
भीष्मं द्रोणं तथा कर्णं भूरिश्रवसमेव च ॥ ५९ ॥

भीष्म, द्रोण, कर्ण और भूरिश्रवाको अधर्मपूर्वक मारा गया सुनकर सब लोग शोकसे व्याकुल हो खेद प्रकट करने लगे ॥ ५९ ॥

तांस्तु चिन्तापरान् दृष्ट्वा पाण्डवान् दीनचेतसः ।
प्रोवाचेदं वचः कृष्णो मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥ ६० ॥

पाण्डवोंको दीनचित्त एवं चिन्तामग्न देख मेघ और दुन्दुभिके समान गम्भीर घोष करनेवाले श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा—॥ ६० ॥

नैष शक्योऽतिशीघ्रास्त्रस्ते च सर्वे महारथाः ।
ऋजुयुद्धेन विक्रान्ता हन्तुं युष्माभिराहवे ॥ ६१ ॥

'यह दुर्योधन अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला था, अतः इसे कोई जीत नहीं सकता था और वे भीष्म, द्रोण आदि महारथी भी बड़े पराक्रमी थे। उन्हें धर्मानुकूल सरलतापूर्वक युद्धके द्वारा आपलोग नहीं मार सकते थे ॥ ६१ ॥

नैष शक्यः कदाचित् तु हन्तुं धर्मेण पार्थिवः ।
ते वा भीष्ममुखाः सर्वे महेष्वासा महारथाः ॥ ६२ ॥

'यह राजा दुर्योधन अथवा वे भीष्म आदि सभी महाधनुर्धर महारथी कभी धर्मयुद्धके द्वारा नहीं मारे जा सकते थे ॥ ६२ ॥

मयानेकैरुपायैस्तु मायायोगेन चासकृत् ।
हतास्ते सर्व एवाजौ भवतां हितमिच्छता ॥ ६३ ॥

'आपलोगोंका हित चाहते हुए मैंने ही बारंबार मायाका प्रयोग करके अनेक उपायोंसे युद्धस्थलमें उन सबका वध किया ॥ ६३ ॥

यदि नैवंविधं जातु कुर्यां जिह्ममहं रणे ।
कुतो वो विजयो भूयः कुतो राज्यं कुतो धनम् ॥ ६४ ॥

'यदि कदाचित् युद्धमें मैं इस प्रकार कपटपूर्ण कार्य नहीं करता तो फिर तुम्हें विजय कैसे प्राप्त होती, राज्य कैसे हाथमें आता और धन कैसे मिल सकता था ? ॥ ६४ ॥

ते हि सर्वे महात्मानश्चत्वारोऽतिरथा भुवि ।
न शक्या धर्मतो हन्तुं लोकपालैरपि स्वयम् ॥ ६५ ॥

'भीष्म, द्रोण, कर्ण और भूरिश्रवा—ये चारों महामना इस भूतलपर अतिरथीके रूपमें विख्यात थे। साक्षात् लोकपाल भी धर्मयुद्ध करके उन सबको नहीं मार सकते थे ॥ ६५ ॥

तथैवायं गदापाणिर्धार्तराष्ट्रो गतक्लमः ।
न शक्यो धर्मतो हन्तुं कालेनापीह दण्डिना ॥ ६६ ॥

'यह गदाधारी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन भी युद्धसे थकता नहीं था, इसे दण्डधारी काल भी धर्मानुकूल युद्धके द्वारा नहीं मार सकता था ॥ ६६ ॥

न च वो हृदि कर्तव्यं यदयं घातितो रिपुः ।
मिथ्यावध्यास्तथोपायैर्बहवः शत्रवोऽधिकाः ॥ ६७ ॥

'इस प्रकार जो यह शत्रु मारा गया है इसके लिये तुम्हें अपने मनमें विचार नहीं करना चाहिये ? बहुतेरे अधिक शक्तिशाली शत्रु नाना प्रकारके उपायों और कूटनीतिके प्रयोगोंद्वारा मारनेके योग्य होते हैं ॥ ६७ ॥

पूर्वैरनुगतो मार्गो देवैरसुरघातिभिः ।
सद्भिश्चानुगतः पन्थाः स सर्वैरनुगम्यते ॥ ६८ ॥

'असुरोंका विनाश करनेवाले पूर्ववर्ती देवताओंने इस मार्गका आश्रय लिया है। श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्गसे चले हैं, उसका सभी लोग अनुसरण करते हैं ॥ ६८ ॥

कृतकृत्याश्च सायाह्ने निवासं रोचयामहे ।
साश्वनागरथाः सर्वे विश्रमामो नराधिपाः ॥ ६९ ॥

'अब हमलोगोंका कार्य पूरा हो गया, अतः सायंकालके समय विश्राम करनेकी इच्छा हो रही है । राजाओ ! हम सब लोग घोड़े, हाथी एवं रथसहित विश्राम करें' ॥ ६९ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा तदानीं पाण्डवैः सह ।
पञ्चाला भृशसंहृष्टा विनेदुः सिंहसंघवत् ॥ ७० ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर उस समय पाण्डवों-सहित समस्त पाञ्चाल अत्यन्त प्रसन्न हुए और सिंहसमुदाय-के समान दहाड़ने लगे ॥ ७० ॥

ततः प्राध्मापयञ्शङ्खान् पाञ्चजन्यं च माधवः ।
हृष्टा दुर्योधनं दृष्ट्वा निहतं पुरुषर्षभ ॥ ७१ ॥

पुरुषप्रवर ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य लोग दुर्योधनको मारा गया देख हर्षमें भरकर अपने-अपने शङ्ख बजाने लगे । श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥ ७१ ॥

(देवदत्तं प्रहृष्टात्मा शङ्खप्रवरमर्जुनः ।
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ।

प्रसन्नचित्त अर्जुनने देवदत्त नामक श्रेष्ठ शङ्खकी ध्वनि की । कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्तविजय तथा भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनने पौण्ड्र नामक महान् शङ्ख बजाया ॥

नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा जैत्रं सात्यकिर्नन्दिवर्धनम् ।
तेषां नादेन महता शङ्खानां भरतर्षभ ॥
आपुपूरे नभः सर्वं पृथिवी च चचाल ह ॥

नकुल और सहदेवने क्रमशः सुघोष और मणिपुष्पक नामक शङ्ख बजाये । धृष्टद्युम्नने जैत्र और सात्यकिने नन्दि-वर्धन नामक शङ्खकी ध्वनि फैलायी । भरतश्रेष्ठ ! उन महान् शङ्खोंके शब्दसे सारा आकाश भर गया और धरती डोलने लगी ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
पाण्डुसैन्येष्ववाद्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥
अस्तुवन् पाण्डवानन्ये गीर्भिश्च स्तुतिमङ्गलैः ।)

तत्पश्चात् पाण्डवसेनाओंमें शङ्ख, भेरी, पणव, आनक और गोमुख आदि बाजे बजाये जाने लगे । उन सबकी मिली-जुली आवाज बड़ी भयानक जान पड़ती थी । उस समय अन्य बहुत-से मनुष्य स्तुति एवं मङ्गलमय वचनोंद्वारा पाण्डवोंका स्तवन करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि कृष्णपाण्डवदुर्योधनसंवादे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें श्रीकृष्ण, पाण्डव और दुर्योधनका संवादविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १५ श्लोक मिलाकर कुल ८६ श्लोक हैं)

द्विषष्टितमोऽध्यायः

पाण्डवोंका कौरव शिबिरमें पहुँचना, अर्जुनके रथका दग्ध होना और पाण्डवोंका भगवान् श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजना

संजय उवाच

ततस्ते प्रययुः सर्वे निवासाय महीक्षितः ।
शङ्खान् प्रध्मापयन्तो वै हृष्टाः परिघबाहवः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर परिघके समान मोटी भुजाओंवाले सब नरेश अपना-अपना शङ्ख बजाते हुए शिबिरमें विश्राम करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक चल दिये ॥ १ ॥

पाण्डवान् गच्छतश्चापि शिबिरं नो विशाम्पते ।
महेष्वासोऽन्वगात् पश्चाद् युयुत्सुः सात्यकिस्तथा ॥ २ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
सर्वे चान्ये महेष्वासाः प्रययुः शिबिराण्युत ॥ ३ ॥

प्रजानाथ ! हमारे शिबिरकी ओर जाते हुए पाण्डवोंके पीछे-पीछे महाधनुर्धर युयुत्सु, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके सभी पुत्र तथा अन्य सब धनुर्धर योद्धा भी उन शिबिरोंमें गये ॥ २-३ ॥

ततस्ते प्राविशन् पार्था हतत्विट्कं हतेश्वरम् ।
दुर्योधनस्य शिबिरं रङ्गवद्विसृते जने ॥ ४ ॥
गतोत्सवं पुरमिव हृतनागमिव ह्रदम् ।
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठं वृद्धामात्यैरधिष्ठितम् ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् कुन्तीके पुत्रोंने पहले दुर्योधनके शिबिरमें प्रवेश किया । जैसे दर्शकोंके चले जानेपर सूना रङ्गमण्डप शोभाहीन दिखायी देता है, उसी प्रकार जिसका स्वामी मारा गया था, वह शिबिर उत्सवशून्य नगर और नागरहित सरोवरके समान श्रीहीन जान पड़ता था । वहाँ रहनेवाले लोगोंमें अधिकांश स्त्रियाँ और नपुंसक थे तथा बूढ़े मन्त्री

अधिष्ठाता बनकर उस शिबिरका संरक्षण कर रहे थे ॥४-५॥

तत्रैतान् पर्युपातिष्ठन् दुर्योधनपुरःसराः।
कृताञ्जलिपुटा राजन् काषायमलिनाम्बराः ॥ ६ ॥

राजन्! वहाँ दुर्योधनके आगे-आगे चलनेवाले सेवक-गण मलिन भगवा वस्त्र पहनकर हाथ जोड़े हुए इन पाण्डवोंके समक्ष उपस्थित हुए ॥ ६ ॥

शिबिरं समनुप्राप्य कुरुराजस्य पाण्डवाः।
अवतेरुर्महाराज रथेभ्यो रथसत्तमाः ॥ ७ ॥

महाराज! कुरुराजके शिबिरमें पहुँचकर रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डव अपने रथोंसे नीचे उतरे ॥ ७ ॥

ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः।
स्थितः प्रियहिते नित्यमतीव भरतर्षभ ॥ ८ ॥
अवरोपय गाण्डीवमक्षयौ च महेषुधी।
अथाहमवरोक्ष्यामि पश्चाद् भरतसत्तम ॥ ९ ॥
स्वयं चैवावरोह त्वमेतच्छ्रेयस्तवानघ।

भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् सदा अर्जुनके प्रिय एवं हितमें तत्पर रहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने गाण्डीवधारी अर्जुनसे कहा—'भरतवंशशिरोमणे! तुम गाण्डीव धनुषको और इन दोनों बाणोंसे भरे हुए अक्षय तरकसोंको उतार लो। फिर स्वयं भी उतर जाओ! इसके बाद मैं उतरूँगा! अनघ! ऐसा करनेमें ही तुम्हारी भलाई है' ॥ ८-९½ ॥

तच्चाकरोत् तथा वीरः पाण्डुपुत्रो धनंजयः ॥ १० ॥
अथ पश्चात् ततः कृष्णो रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम्।
अवारोहत मेधावी रथाद् गाण्डीवधन्वनः ॥ ११ ॥

वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनने वह सब वैसे ही किया। तदनन्तर परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर गाण्डीवधारी अर्जुनके रथसे स्वयं भी उतर पड़े ॥ १०-११ ॥

अथावतीर्णे भूतानामीश्वरे सुमहात्मनि।
कपिरन्तर्दधे दिव्यो ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ॥ १२ ॥

समस्त प्राणियोंके ईश्वर परमात्मा श्रीकृष्णके उतरते ही गाण्डीवधारी अर्जुनका ध्वजस्वरूप दिव्य वानर उस रथसे अन्तर्धान हो गया ॥ १२॥

स दग्धो द्रोणकर्णाभ्यां दिव्यैरस्त्रैर्महारथः।
अथादीप्तोऽग्निना ह्याशु प्रजज्वाल महीपते ॥ १३ ॥

पृथ्वीनाथ! इसके बाद अर्जुनका वह विशाल रथ, जो द्रोण और कर्णके दिव्यास्त्रोंद्वारा दग्धप्राय हो गया था, तुरंत ही आगसे प्रज्वलित हो उठा ॥ १३ ॥

सोपासङ्गः सरश्मिश्च साश्वः सयुगबन्धुरः।
भस्मीभूतोऽपतद् भूमौ रथो गाण्डीवधन्वनः ॥ १४ ॥

गाण्डीवधारीका वह रथ उपासङ्ग, बागडोर, जूआ, बन्धुरकाष्ठ और घोड़ोंसहित भस्म होकर भूमिपर गिर पड़ा ॥

तं तथा भस्मभूतं तु दृष्ट्वा पाण्डुसुताः प्रभो।
अभवन् विस्मिता राजन्नर्जुनश्चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥
कृताञ्जलिः सप्रणयं प्रणिपत्याभिवाद्य ह।
गोविन्द कस्माद् भगवन् रथो दग्धोऽयमग्निना ॥ १६ ॥
किमेतन्महदाश्चर्यमभवद् यदुनन्दन।
तन्मे ब्रूहि महाबाहो श्रोतव्यं यदि मन्यसे ॥ १७ ॥

प्रभो! नरेश्वर! उस रथको भस्मीभूत हुआ देख समस्त पाण्डव आश्चर्यचकित हो उठे और अर्जुनने भी हाथ जोड़कर भगवान्‌के चरणोंमें बारंबार प्रणाम करके प्रेमपूर्वक पूछा—'गोविन्द! यह रथ अकस्मात् कैसे आगसे जल गया? भगवन्! यदुनन्दन! यह कैसी महान् आश्चर्यकी बात हो गयी? महाबाहो! यदि आप सुनने योग्य समझें तो इसका रहस्य मुझे बतावें' ॥ १५—१७ ॥

वासुदेव उवाच

अस्त्रैर्बहुविधैर्दग्धः पूर्वमेवायमर्जुन।
मदधिष्ठितत्वात् समरे न विशीर्णः परंतप ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णने कहा—शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुन! यह रथ नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा पहले ही दग्ध हो चुका था; परंतु मेरे बैठे रहनेके कारण समराङ्गणमें भस्म होकर गिर न सका ॥ १८ ॥

इदानीं तु विशीर्णोऽयं दग्धो ब्रह्मास्त्रतेजसा।
मया विमुक्तः कौन्तेय त्वय्यद्य कृतकर्मणि ॥ १९ ॥

कुन्तीनन्दन! आज जब तुम अपना अभीष्ट कार्य पूर्ण कर चुके हो, तब मैंने इसे छोड़ दिया है; इसलिये पहलेसे ही ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध हुआ यह रथ इस समय बिखरकर गिर पड़ा है ॥ १९ ॥

ईषदुत्स्मयमानस्तु भगवान् केशवोऽरिहा।
परिष्वज्य च राजानं युधिष्ठिरमभाषत ॥ २० ॥

इसके बाद शत्रुओंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने किञ्चित् मुस्कराते हुए वहाँ राजा युधिष्ठिरको हृदयसे लगाकर कहा—॥ २० ॥

दिष्ट्या जयसि कौन्तेय दिष्ट्या ते शत्रवो जिताः।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ २१ ॥
त्वं चापि कुशली राजन् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
मुक्ता वीरक्षयादस्मात् संग्रामान्निहतद्विषः ॥ २२ ॥

'कुन्तीनन्दन! सौभाग्यसे आपकी विजय हुई और सारे शत्रु परास्त हो गये। राजन्! गाण्डीवधारी अर्जुन, पाण्डुकुमार भीमसेन, आप और माद्रीपुत्र पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेव—ये सब-के-सब सकुशल हैं तथा जहाँ वीरोंका विनाश हुआ और तुम्हारे सारे शत्रु कालके गालमें चले गये, उस घोर संग्रामसे तुमलोग जीवित बच गये, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ २१-२२ ॥



युद्धके अन्तमें अर्जुनके रथका दाह

क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि भारत ।
उपायातमुपप्लव्यं सह गाण्डीवधन्वना ॥ २३ ॥
आनीय मधुपर्कं मां यत् पुरा त्वमवोचथाः ।
एष भ्राता सखा चैव तव कृष्ण धनंजयः ॥ २४ ॥
रक्षितव्यो महाबाहो सर्वास्वापत्स्विति प्रभो ।

'भरतनन्दन ! अब आगे समयानुसार जो कार्य प्राप्त हो उसे शीघ्र कर डालिये । पहले गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ जब मैं उपप्लव्य नगरमें आया था, उस समय मेरे लिये मधुपर्क अर्पित करके आपने मुझसे यह बात कही थी कि 'श्रीकृष्ण ! यह अर्जुन तुम्हारा भाई और सखा है । प्रभो ! महाबाहो ! तुम्हें इसकी सब आपत्तियोंसे रक्षा करनी चाहिये' २३-२४½

तव चैव ब्रुवाणस्य तथेत्येवाहमब्रुवम् ॥ २५ ॥
स सव्यसाची गुप्तस्ते विजयी च जनेश्वर ।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र शूरः सत्यपराक्रमः ॥ २६ ॥
मुक्तो वीरक्षयादस्मात् संग्रामाल्लोमहर्षणात् ।

'आपने जब ऐसा कहा, तब मैंने 'तथास्तु' कहकर वह आज्ञा स्वीकार कर ली थी । जनेश्वर ! राजेन्द्र ! आपका वह शूरवीर, सत्यपराक्रमी भाई सव्यसाची अर्जुन मेरे द्वारा सुरक्षित रहकर विजयी हुआ है तथा वीरोंका विनाश करनेवाले इस रोमाञ्चकारी संग्रामसे भाइयोंसहित जीवित बच गया है' ॥ २५-२६½ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २७ ॥
हृष्टरोमा महाराज प्रत्युवाच जनार्दनम् ।

महाराज ! श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । वे उनसे इस प्रकार बोले॥२७½॥

युधिष्ठिर उवाच

प्रमुक्तं द्रोणकर्णाभ्यां ब्रह्मास्त्रमरिमर्दन ॥ २८ ॥
कस्त्वदन्यः सहेत् साक्षादपि वज्री पुरंदरः ।

युधिष्ठिरने कहा—शत्रुमर्दन श्रीकृष्ण ! द्रोणाचार्य और कर्णने जिस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था, उसे आपके सिवा दूसरा कौन सह सकता था । साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी उसका आघात नहीं सह सकते थे ॥ २८½ ॥

भवतस्तु प्रसादेन संशप्तकगणा जिताः ॥ २९ ॥
महारणगतः पार्थो यच्च नासीत् पराङ्मुखः ।

आपकी ही कृपासे संशप्तकगण परास्त हुए हैं और कुन्तीकुमार अर्जुनने उस महासमरमें जो कभी पीठ नहीं दिखायी है, वह भी आपके ही अनुग्रहका फल है ॥ २९½ ॥

तथैव च महाबाहो पर्यायैर्बहुभिर्मया ॥ ३० ॥
कर्मणामनुसंतानं तेजसश्च गतीः शुभाः ।

महाबाहो ! आपके द्वारा अनेकों बार हमारे कार्योंकी सिद्धि हुई है और हमें तेजके शुभ परिणाम प्राप्त हुए हैं ॥ ३०½ ॥

उपप्लव्ये महर्षिर्मे कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ३१ ॥
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।

उपप्लव्य नगरमें महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायनने मुझसे कहा था कि 'जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है' ॥ ३१½ ॥

इत्येवमुक्ते ते वीराः शिबिरं तव भारत ॥ ३२ ॥
प्रविश्य प्रत्यपद्यन्त कोशरत्नर्धिसंचयान् ।

भारत ! युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर पाण्डव वीरोंने आपके शिबिरमें प्रवेश करके खजाना, रत्नोंकी ढेरी तथा भण्डार-घरपर अधिकार कर लिया ॥ ३२½ ॥

रजतं जातरूपं च मणीनथ च मौक्तिकान् ॥ ३३ ॥
भूषणान्यथ मुख्यानि कम्बलान्यजिनानि च ।
दासीदासमसंख्येयं राज्योपकरणानि च ॥ ३४ ॥

चाँदी, सोना, मोती, मणि, अच्छे-अच्छे आभूषण, कम्बल (कालीन), मृगचर्म, असंख्य दास-दासी तथा राज्यके बहुत-से सामान उनके हाथ लगे ॥ ३३-३४ ॥

ते प्राप्य धनमक्षय्यं त्वदीयं भरतर्षभ ।
उदक्रोशन्महाभागा नरेन्द्र विजितारयः ॥ ३५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! नरेश्वर ! आपके धनका अक्षय भण्डार पाकर शत्रुविजयी महाभाग पाण्डव जोर-जोरसे हर्षध्वनि करने लगे ॥ ३५ ॥

ते तु वीराः समाश्वस्य वाहनान्यवमुच्य च ।
अतिष्ठन्त मुहुः सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा ॥ ३६ ॥

वे सारे वीर अपने वाहनोंको खोलकर वहीं विश्राम करने लगे । समस्त पाण्डव और सात्यकि वहाँ एक साथ बैठे हुए थे ॥ ३६ ॥

अथाब्रवीन्महाराज वासुदेवो महायशाः ।
अस्माभिर्मङ्गलार्थाय वस्तव्यं शिबिराद् बहिः ॥ ३७ ॥

महाराज ! तदनन्तर महायशस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने कहा—'आजकी रातमें हमलोगोंको अपने मङ्गलके लिये शिबिरसे बाहर ही रहना चाहिये' ॥ ३७ ॥

तथेत्युक्त्वा हि ते सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा।
वासुदेवेन सहिता मङ्गलार्थं बहिर्ययुः ॥ ३८ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर समस्त पाण्डव और सात्यकि श्रीकृष्णके साथ अपने मङ्गलके लिये छावनीसे बाहर चले गये ॥ ३८ ॥

ते समासाद्य सरितं पुण्यामोघवतीं नृप ।
न्यवसन्नथ तां रात्रिं पाण्डवा हतशत्रवः ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! जिनके शत्रु मारे गये थे, उन पाण्डवोंने उस रातमें पुण्यसलिला ओघवती नदीके तटपर जाकर निवास किया ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिरस्ततो राजा प्राप्तकालमचिन्तयत्।
तत्र ते गमनं प्राप्तं रोचते तव माधव ॥ ४० ॥
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिंदम।

तब राजा युधिष्ठिरने वहाँ समयोचित कार्यका विचार किया और कहा—'शत्रुदमन माधव! एक बार क्रोधसे जलती हुई गान्धारी देवीको शान्त करनेके लिये आपका हस्तिनापुरमें जाना उचित जान पड़ता है ॥ ४०½ ॥

हेतुकारणयुक्तैश्च वाक्यैः कालसमीरितैः ॥ ४१ ॥
क्षिप्रमेव महाभाग गान्धारीं प्रशमिष्यसि।
पितामहश्च भगवान् व्यासस्तत्र भविष्यति ॥ ४२ ॥

'महाभाग! आप युक्ति और कारणोंसहित समयोचित बातें कहकर गान्धारी देवीको शीघ्र ही शान्त कर सकेंगे। हमारे पितामह भगवान् व्यास भी इस समय वहीं होंगे' ४१-४२

वैशम्पायन उवाच

ततः सम्प्रेषयामासुर्यादवं नागसाह्वयम्।
स च प्रायाज्जवेनाशु वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ४३ ॥
दारुकं रथमारोप्य येन राजाम्बिकासुतः।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर पाण्डवोंने यदुकुलतिलक भगवान् श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजा। प्रतापी वासुदेव दारुकको रथपर बिठाकर स्वयं भी बैठे और जहाँ अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र थे, वहाँ पहुँचनेके लिये बड़े वेगसे चले ॥ ४३½ ॥

तमूचुः सम्प्रयास्यन्तं शैब्यसुग्रीववाहनम् ॥ ४४ ॥
प्रत्याश्वासय गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम्।

शैब्य और सुग्रीव नामक अश्व जिनके वाहन हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णके जाते समय पाण्डवोंने फिर उनसे कहा—'प्रभो! यशस्विनी गान्धारी देवीके पुत्र मारे गये हैं; अतः आप उस दुखिया माताको धीरज बँधावें' ॥ ४४½ ॥

स प्रायात् पाण्डवैरुक्तस्तत् पुरं सात्वतां वरः ॥
आससाद ततः क्षिप्रं गान्धारीं निहतात्मजाम् ॥ ४५ ॥

पाण्डवोंके ऐसा कहनेपर सात्वतवंशके श्रेष्ठ पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण जिनके पुत्र मारे गये थे, उन गान्धारी देवीके पास हस्तिनापुरमें शीघ्र जा पहुँचे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि वासुदेवप्रेषणे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें पाण्डवोंका भगवान् श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजनाविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरकी प्रेरणासे श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारीको आश्वासन दे पुनः पाण्डवोंके पास लौट आना

जनमेजय उवाच

किमर्थं द्विजशार्दूल धर्मराजो युधिष्ठिरः।
गान्धार्याः प्रेषयामास वासुदेवं परंतपम् ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! धर्मराज युधिष्ठिरने शत्रुसंतापी भगवान् श्रीकृष्णको गान्धारी देवीके पास किसलिये भेजा? ॥ १ ॥

यदा पूर्वं गतः कृष्णः शमार्थं कौरवान् प्रति।
न च तं लब्धवान् कामं ततो युद्धमभूदिदम् ॥ २ ॥

जब पूर्वकालमें श्रीकृष्ण संधि करानेके लिये कौरवोंके पास गये थे, उस समय तो उन्हें उनका अभीष्ट मनोरथ प्राप्त ही नहीं हुआ, जिससे यह युद्ध उपस्थित हुआ ॥ २ ॥

निहतेषु तु योधेषु हते दुर्योधने तदा।
पृथिव्यां पाण्डवेयस्य निःसपत्ने कृते युधि ॥ ३ ॥
विद्रुते शिबिरे शून्ये प्राप्ते यशसि चोत्तमे।
किं नु तत् कारणं ब्रह्मन् येन कृष्णो गतः पुनः ॥ ४ ॥

ब्रह्मन्! जब युद्धमें सारे योद्धा मारे गये, दुर्योधनका भी अन्त हो गया, भूमण्डलमें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके शत्रुओंका सर्वथा अभाव हो गया, कौरवदलके लोग शिबिरको सूना करके भाग गये और पाण्डवोंको उत्तम यशकी प्राप्ति हो गयी, तब कौन-सा ऐसा कारण आ गया, जिससे श्रीकृष्ण पुनः हस्तिनापुरमें गये? ॥ ३-४ ॥

न चैतत् कारणं ब्रह्मन्नल्पं विप्रतिभाति मे।
यत्रागमदमेयात्मा स्वयमेव जनार्दनः ॥ ५ ॥

विप्रवर! मुझे इसका कोई छोटा-मोटा कारण नहीं जान पड़ता, जिससे अप्रमेयस्वरूप साक्षात् भगवान् जनार्दनको ही जाना पड़ा ॥ ५ ॥

तत्त्वतो वै समाचक्ष्व सर्वमध्वर्युसत्तम।
यच्चात्र कारणं ब्रह्मन् कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥ ६ ॥

यजुर्वेदीय विद्वानोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणदेव! इस कार्यका निश्चय करनेमें जो भी कारण हो, वह सब यथार्थरूपसे मुझे बताइये॥

वैशम्पायन उवाच

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो यन्मां पृच्छसि पार्थिव।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथावद् भरतर्षभ ॥ ७ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—भरतकुलभूषण नरेश! तुमने

जो प्रश्न किया है, वह सर्वथा उचित है। तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वह सब मैं तुझे यथार्थरूपसे बताऊँगा ॥ ७ ॥

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे।
व्युत्क्रम्य समयं राजन् धार्तराष्ट्रं महाबलम् ॥ ८ ॥
अन्यायेन हतं दृष्ट्वा गदायुद्धेन भारत।
युधिष्ठिरं महाराज महद् भयमथाविशत् ॥ ९ ॥

राजन्! भरतवंशी महाराज! धृतराष्ट्रपुत्र महाबली दुर्योधनको भीमसेनने युद्धमें उसके नियमका उल्लङ्घन करके मारा है। वह गदायुद्धके द्वारा अन्यायपूर्वक मारा गया है। इन सब बातोंपर दृष्टिपात करके युधिष्ठिरके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ ८-९ ॥

चिन्तयानो महाभागां गान्धारीं तपसान्विताम्।
घोरेण तपसा युक्तां त्रैलोक्यमपि सा दहेत् ॥ १० ॥

वे घोर तपस्यासे युक्त महाभागा तपस्विनी गान्धारीदेवीका चिन्तन करने लगे। उन्होंने सोचा 'गान्धारी देवी कुपित होनेपर तीनों लोकोंको जलाकर भस्म कर सकती हैं'॥ १० ॥

तस्य चिन्तयमानस्य बुद्धिः समभवत् तदा।
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः पूर्वं प्रशमनं भवेत् ॥ ११ ॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए राजा युधिष्ठिरके हृदयमें उस समय यह विचार हुआ कि पहले क्रोधसे जलती हुई गान्धारी देवीको शान्त कर देना चाहिये ॥ ११ ॥

सा हि पुत्रवधं श्रुत्वा कृतमस्माभिरीदृशम्।
मानसेनाग्निना क्रुद्धा भस्मसान्नः करिष्यति ॥ १२ ॥

वे हमलोगोंके द्वारा इस तरह पुत्रका वध किया गया सुनकर कुपित हो अपने संकल्पजनित अग्निसे हमें भस्म कर डालेंगी ॥ १२ ॥

कथं दुःखमिदं तीव्रं गान्धारी सा सहिष्यति।
श्रुत्वा विनिहतं पुत्रं छलेनाजिह्मयोधिनम् ॥ १३ ॥

उनका पुत्र सरलतासे युद्ध कर रहा था; परंतु छलसे मारा गया। यह सुनकर गान्धारी देवी इस तीव्र दुःखको कैसे सह सकेंगी? ॥ १३ ॥

एवं विचिन्त्य बहुधा भयशोकसमन्वितः।
वासुदेवमिदं वाक्यं धर्मराजोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥

इस तरह अनेक प्रकारसे विचार करके धर्मराज युधिष्ठिर भय और शोकमें डूब गये और वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—॥ १४ ॥

तव प्रसादाद् गोविन्द राज्यं निहतकण्टकम्।
अप्राप्यं मनसापीदं प्राप्तमस्माभिरच्युत ॥ १५ ॥

'गोविन्द! अच्युत! जिसे मनके द्वारा भी प्राप्त करना असम्भव था, वही यह अकण्टक राज्य हमें आपकी कृपासे प्राप्त हो गया ॥ १५ ॥

प्रत्यक्षं मे महाबाहो संग्रामे लोमहर्षणे।
विमर्दः सुमहान् प्राप्तस्त्वया यादवनन्दन ॥ १६ ॥

'यादवनन्दन! महाबाहो! इस रोमाञ्चकारी संग्राममें जो महान् विनाश प्राप्त हुआ था, वह सब आपने प्रत्यक्ष देखा था ॥ १६ ॥

त्वया देवासुरे युद्धे वधार्थममरद्विषाम्।
यथा साह्यं पुरा दत्तं हताश्च विबुधद्विषः ॥ १७ ॥
साह्यं तथा महाबाहो दत्तमस्माकमच्युत।
सारथ्येन च वार्ष्णेय भवता हि धृता वयम् ॥ १८ ॥

'पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर जैसे आपने देवद्रोही दैत्योंके वधके लिये देवताओंकी सहायता की थी, जिससे वे सारे देवशत्रु मारे गये, महाबाहु अच्युत! उसी प्रकार इस युद्धमें आपने हमें सहायता प्रदान की है। वृष्णिनन्दन! आपने सारथिका कार्य करके हमलोगोंको बचा लिया। १७-१८।

यदि न त्वं भवेर्नाथः फाल्गुनस्य महारणे।
कथं शक्यो रणे जेतुं भवेदेष बलार्णवः ॥ १९ ॥

'यदि आप इस महासमरमें अर्जुनके स्वामी और सहायक न होते तो युद्धमें इस कौरव-सेनारूपी समुद्रपर विजय पाना कैसे सम्भव हो सकता था? ॥ १९ ॥

गदाप्रहारा विपुलाः परिघैश्चापि ताडनम्।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तोमरैः सपरश्वधैः ॥ २० ॥
अस्मत्कृते त्वया कृष्ण वाचः सुपरुषाः श्रुताः।
शस्त्राणां च निपाता वै वज्रस्पर्शोपमा रणे ॥ २१ ॥

'श्रीकृष्ण! आपने हमलोगोंके लिये गदाओंके बहुत-से आघात सहे, परिघोंकी मार खायी; शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर और फरसोंकी चोटें सहन कीं तथा बहुत-सी कठोर बातें सुनीं। आपके ऊपर रणभूमिमें ऐसे-ऐसे शस्त्रोंके प्रहार हुए, जिनका स्पर्श वज्रके तुल्य था ॥ २०-२१ ॥

ते च ते सफला जाता हते दुर्योधनेऽच्युत।
तत् सर्वं न यथा नश्येत् पुनः कृष्ण तथा कुरु॥ २२ ॥

'अच्युत! दुर्योधनके मारे जानेपर वे सारे आघात सफल हो गये। श्रीकृष्ण! अब ऐसा कीजिये, जिससे वह सारा किया-कराया कार्य फिर नष्ट न हो जाय ॥ २२ ॥

संदेहदोलां प्राप्तं नश्चेतः कृष्ण जये सति।
गान्धार्या हि महाबाहो क्रोधं बुद्ध्यस्व माधव ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण! आज विजय हो जानेपर भी हमारा मन संदेहके झूलेपर झूल रहा है। महाबाहु माधव! आप गान्धारी देवीके क्रोधपर तो ध्यान दीजिये ॥ २३ ॥

सा हि नित्यं महाभागा तपसोग्रेण कर्शिता।
पुत्रपौत्रवधं श्रुत्वा ध्रुवं नः सम्प्रधक्ष्यति ॥ २४ ॥

'महाभागा गान्धारी प्रतिदिन उग्र तपस्यासे अपने शरीरको दुर्बल करती जा रही हैं। वे पुत्रों और पौत्रोंका वध

हुआ सुनकर निश्चय ही हमें जला डालेगी ॥ २४ ॥

तस्याः प्रसादनं वीर प्राप्तकालं मतं मम ।
कश्च तां क्रोधताम्राक्षीं पुत्रव्यसनकर्शिताम् ॥ २५ ॥
वीक्षितुं पुरुषः शक्तस्त्वामृते पुरुषोत्तम ।

'वीर ! अब उन्हें प्रसन्न करनेका कार्य ही मुझे समयोचित जान पड़ता है । पुरुषोत्तम ! आपके सिवा दूसरा कौन ऐसा पुरुष है, जो पुत्रोंके शोकसे दुर्बल हो क्रोधसे लाल आँखें करके बैठी हुई गान्धारी देवीकी ओर आँख उठाकर देख सके ॥ २५½ ॥

तत्र मे गमनं प्राप्तं रोचते तव माधव ॥ २६ ॥
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिंदम ।

'शत्रुओंका दमन करनेवाले माधव ! इस समय क्रोधसे जलती हुई गान्धारी देवीको शान्त करनेके लिये आपका वहाँ जाना ही मुझे उचित जान पड़ता है ॥ २६½ ॥

त्वं हि कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाप्ययः ॥ २७ ॥
हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैः कालसमीरितैः ।
क्षिप्रमेव महाबाहो गान्धारीं शमयिष्यसि ॥ २८ ॥

'महाबाहो ! आप सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा और संहारक हैं । आप ही सबकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं । आप युक्ति और कारणोंसे संयुक्त समयोचित वचनोंद्वारा गान्धारी देवीको शीघ्र ही शान्त कर देंगे ॥ २७-२८ ॥

पितामहश्च भगवान् कृष्णस्तत्र भविष्यति ।
सर्वथा ते महाबाहो गान्धार्याः क्रोधनाशनम् ॥ २९ ॥
कर्तव्यं सात्वतां श्रेष्ठ पाण्डवानां हितार्थिना ।

'हमारे पितामह श्रीकृष्णद्वैपायन भगवान् व्यास भी वहीं होंगे । महाबाहो ! सात्वतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! आप पाण्डवोंके हितैषी हैं । आपको सब प्रकारसे गान्धारी देवीके क्रोधको शान्त कर देना चाहिये' ॥ २९½ ॥

धर्मराजस्य वचनं श्रुत्वा यदुकुलोद्वहः ॥ ३० ॥
आमन्त्र्य दारुकं प्राह रथः सज्जो विधीयताम् ।

धर्मराजकी यह बात सुनकर यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने दारुकको बुलाकर कहा--'रथ तैयार करो' ॥ ३०½ ॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणोऽथ दारुकः ॥ ३१ ॥
न्यवेदयद् रथं सज्जं केशवाय महात्मने ।

केशवका यह आदेश सुनकर दारुकने बड़ी उतावलीके साथ रथको सुसज्जित किया और उन महात्माको इसकी सूचना दी ॥ ३१½ ॥

तं रथं यादवश्रेष्ठः समारुह्य परंतपः ॥ ३२ ॥
जगाम हास्तिनपुरं त्वरितः केशवो विभुः ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण तुरंत ही उस रथपर आरूढ़ हो हस्तिनापुरकी ओर चल दिये॥

ततः प्रायान्महाराज माधवो भगवान् रथी ॥ ३३ ॥
नागसाह्वयमासाद्य प्रविवेश च वीर्यवान् ।

महाराज ! पराक्रमी भगवान् माधव उस रथपर बैठकर हस्तिनापुरमें जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने नगरमें प्रवेश किया ॥ ३३½ ॥

प्रविश्य नगरं वीरो रथघोषेण नादयन् ॥ ३४ ॥
विदितो धृतराष्ट्रस्य सोऽवतीर्य रथोत्तमात् ।
अभ्यगच्छददीनात्मा धृतराष्ट्रनिवेशनम् ॥ ३५ ॥

नगरमें प्रविष्ट होकर वीर श्रीकृष्ण अपने रथके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगे । धृतराष्ट्रको उनके आगमनकी सूचना दी गयी और वे अपने उत्तम रथसे उतरकर मनमें दीनता न लाते हुए धृतराष्ट्रके महलमें गये ॥

पूर्वं चाभिगतं तत्र सोऽपश्यदृषिसत्तमम् ।
पादौ प्रपीड्य कृष्णस्य राज्ञश्चापि जनार्दनः ॥ ३६ ॥
अभ्यवादयदव्यग्रो गान्धारीं चापि केशवः ।

वहाँ उन्होंने मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको पहलेसे ही उपस्थित देखा । व्यास तथा राजा धृतराष्ट्र दोनोंके चरण दबाकर जनार्दन श्रीकृष्णने बिना किसी व्यग्रताके गान्धारी देवीको प्रणाम किया ॥ ३६½ ॥

ततस्तु यादवश्रेष्ठो धृतराष्ट्रमधोक्षजः ॥ ३७ ॥
पाणिमालम्ब्य राजेन्द्र सुस्वरं प्ररुरोद ह ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण धृतराष्ट्रका हाथ अपने हाथमें लेकर उन्मुक्त स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे ॥

स मुहूर्तादिवोत्सृज्य बाष्पं शोकसमुद्भवम् ॥ ३८ ॥
प्रक्षाल्य वारिणा नेत्रे ह्याचम्य च यथाविधि ।
उवाच प्रस्तुतं वाक्यं धृतराष्ट्रमरिंदमः ॥ ३९ ॥
न तेऽस्त्यविदितं किंचिद् वृद्धस्य तव भारत ।
कालस्य च यथावृत्तं तत् ते सुविदितं प्रभो ॥ ४० ॥

उन्होंने दो घड़ीतक शोकके आँसू बहाकर शुद्ध जलसे नेत्र धोये और विधिपूर्वक आचमन किया । तत्पश्चात् शत्रुदमन श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्रसे प्रस्तुत वचन कहा—'भारत! आप वृद्ध पुरुष हैं; अतः कालके द्वारा जो कुछ भी संघटित हुआ और हो रहा है, वह कुछ भी आपसे अज्ञात नहीं है । प्रभो ! आपको सब कुछ अच्छी तरह विदित है ॥३८–४०॥

यतितं पाण्डवैः सर्वैस्तव चित्तानुरोधिभिः ।
कथं कुलक्षयो न स्यात्तथा क्षत्रस्य भारत ॥ ४१ ॥

'भारत ! समस्त पाण्डव सदासे ही आपकी इच्छाके अनुसार बर्ताव करनेवाले हैं । उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि किसी तरह हमारे कुलका तथा क्षत्रियसमूहका विनाश न हो ॥ ४१ ॥

भ्रातृभिः समयं कृत्वा क्षान्तवान् धर्मवत्सलः ।
द्यूतच्छलजितैः शुद्धैर्वनवासो ह्युपागतः ॥ ४२

'धर्मवत्सल युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ नियत समयकी प्रतीक्षा करते हुए सारा कष्ट चुपचाप सहन किया था। पाण्डव शुद्ध भावसे आपके पास आये थे तो भी उन्हें कपटपूर्वक जूएमें हराकर वनवास दिया गया ॥ ४२ ॥

अज्ञातवासचर्यां च नानावेषसमावृतैः।
अन्ये च बहवः क्लेशात् त्वशक्तैरिव सर्वदा ॥ ४३ ॥

'उन्होंने नाना प्रकारके वेशोंमें अपनेको छिपाकर अज्ञातवासका कष्ट भोगा। इसके सिवा और भी बहुत-से क्लेश उन्हें असमर्थ पुरुषोंके समान सदा सहन करने पड़े हैं ॥४३॥

मया च स्वयमागम्य युद्धकाल उपस्थिते।
सर्वलोकस्य सांनिध्ये ग्रामांस्त्वं पञ्च याचितः ॥ ४४ ॥

'जब युद्धका अवसर उपस्थित हुआ, उस समय मैंने स्वयं आकर शान्ति स्थापित करनेके लिये सब लोगोंके सामने आपसे केवल पाँच गाँव माँगे थे ॥ ४४ ॥

त्वया कालोपसृष्टेन लोभतो नापवर्जिताः।
तवापराधान्नृपते सर्वं क्षत्रं क्षयं गतम् ॥ ४५ ॥

'परंतु कालसे प्रेरित हो आपने लोभवश वे पाँच गाँव भी नहीं दिये। नरेश्वर ! आपके अपराधसे समस्त क्षत्रियोंका विनाश हो गया ॥ ४५ ॥

भीष्मेण सोमदत्तेन बाह्लीकेन कृपेण च।
द्रोणेन च सपुत्रेण विदुरेण च धीमता ॥ ४६ ॥
याचितस्त्वं शमं नित्यं न च तत् कृतवानसि।

'भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुरजीने भी सदा आपसे शान्तिके लिये याचना की थी; परंतु आपने वह कार्य नहीं किया ॥

कालोपहतचित्ता हि सर्वे मुह्यन्ति भारत ॥ ४७ ॥
यथा मूढो भवान् पूर्वमस्मिन्नर्थे समुद्यते।
किमन्यत् कालयोगाद्धि दिष्टमेव परायणम् ॥ ४८ ॥

'भारत ! जिनका चित्त कालके प्रभावसे दूषित हो जाता है, वे सब लोग मोहमें पड़ जाते हैं। जैसे कि पहले युद्धकी तैयारीके समय आपकी भी बुद्धि मोहित हो गयी थी। इसे कालयोगके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? भाग्य ही सबसे बड़ा आश्रय है ॥ ४७-४८ ॥

मा च दोषान् महाप्राज्ञ पाण्डवेषु निवेशय।
अल्पोऽप्यतिक्रमो नास्ति पाण्डवानां महात्मनाम् ॥४९॥
धर्मतो न्यायतश्चैव स्नेहतश्च परंतप।

'महाप्राज्ञ ! आप पाण्डवोंपर दोषारोपण न कीजियेगा। परंतप ! धर्म, न्याय और स्नेहकी दृष्टिसे महात्मा पाण्डवोंका इसमें थोड़ा-सा भी अपराध नहीं है ॥ ४९½ ॥

एतत् सर्वं तु विज्ञाय ह्यात्मदोषकृतं फलम् ॥ ५० ॥
असूयां पाण्डुपुत्रेषु न भवान् कर्तुमर्हति।

'यह सब अपने ही अपराधोंका फल है, ऐसा जानकर आपको पाण्डवोंके प्रति दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये ॥५०½॥

कुलं वंशश्च पिण्डाश्च यच्च पुत्रकृतं फलम् ॥ ५१ ॥
गान्धार्यास्तव वै नाथ पाण्डवेषु प्रतिष्ठितम्।

'अब तो आपका कुल और वंश पाण्डवोंसे ही चलनेवाला है। नाथ ! आपको और गान्धारी देवीको पिण्डा-पानी तथा पुत्रसे प्राप्त होनेवाला सारा फल पाण्डवोंसे ही मिलनेवाला है। उन्हींपर यह सब कुछ अवलम्बित है ॥ ५१½ ॥

त्वं चैव कुरुशार्दूल गान्धारी च यशस्विनी ॥ ५२ ॥
मा शुचो नरशार्दूल पाण्डवान् प्रति किल्बिषम्।

'कुरुप्रवर ! पुरुषसिंह ! आप और यशस्वी गान्धारीदेवी कभी पाण्डवोंकी बुराई करनेकी बात न सोचें ॥५२½॥

एतत् सर्वमनुध्याय आत्मनश्च व्यतिक्रमम् ॥ ५३ ॥
शिवेन पाण्डवान् पाहि नमस्ते भरतर्षभ।

'भरतश्रेष्ठ ! इन सब बातों तथा अपने अपराधोंका चिन्तन करके आप पाण्डवोंके प्रति कल्याण-भावना रखते हुए उनकी रक्षा करें। आपको नमस्कार है ॥ ५३½ ॥

जानासि च महाबाहो धर्मराजस्य या त्वयि ॥ ५४ ॥
भक्तिर्भरतशार्दूल स्नेहश्चापि स्वभावतः।

'महाबाहो ! भरतवंशके सिंह ! आप जानते हैं कि धर्मराज युधिष्ठिरके मनमें आपके प्रति कितनी भक्ति और कितना स्वाभाविक स्नेह है ॥ ५४½ ॥

एतच्च कदनं कृत्वा शत्रूणामपकारिणाम् ॥ ५५ ॥
दह्यते स दिवा रात्रौ न च शर्माधिगच्छति।

'अपने अपराधी शत्रुओंका ही यह संहार करके वे दिन-रात शोककी आगमें जलते हैं, कभी चैन नहीं पाते हैं ॥

त्वां चैव नरशार्दूल गान्धारीं च यशस्विनीम् ॥ ५६ ॥
स शोचन् नरशार्दूलः शान्तिं नैवाधिगच्छति।

'पुरुषसिंह ! आप और यशस्विनी गान्धारी देवीके लिये निरन्तर शोक करते हुए नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको शान्ति नहीं मिल रही है ॥ ५६½ ॥

ह्रिया च परयाऽऽविष्टो भवन्तं नाधिगच्छति ॥ ५७ ॥
पुत्रशोकाभिसंतप्तं बुद्धिव्याकुलितेन्द्रियम्।

'आप पुत्रशोकसे सर्वथा संतप्त हैं। आपकी बुद्धि और इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हैं। ऐसी दशामें वे अत्यन्त लज्जित होनेके कारण आपके सामने नहीं आ रहे हैं' ॥ ५७½ ॥

एवमुक्त्वा महाराज धृतराष्ट्रं यदूत्तमः ॥ ५८ ॥
उवाच परमं वाक्यं गान्धारीं शोककर्शिताम्।

महाराज ! यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर शोकसे दुर्बल हुई गान्धारी देवीसे यह उत्तम वचन बोले—॥

सौबलेयि निबोध त्वं यत् त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ५९ ॥
त्वत्समा नास्ति लोकेऽस्मिन्नद्य सीमन्तिनी शुभे।

'सुबलनन्दिनि ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान

देकर सुनो और समझो । शुभे ! इस संसारमें तुम्हारी-जैसी तपोबल-सम्पन्न स्त्री दूसरी कोई नहीं है ॥ ५९½ ॥

जानासि च यथा राज्ञि सभायां मम संनिधौ ॥ ६० ॥
धर्मार्थसहितं वाक्यमुभयोः पक्षयोर्हितम् ।
उक्तवत्यसि कल्याणि न च ते तनयैः कृतम् ॥ ६१ ॥

'रानी ! तुम्हें याद होगा, उस दिन सभामें मेरे सामने ही तुमने दोनों पक्षोंका हित करनेवाला धर्म और अर्थयुक्त वचन कहा था, किंतु कल्याणि ! तुम्हारे पुत्रोंने उसे नहीं माना ॥ ६०-६१ ॥

दुर्योधनस्त्वया चोक्तो जयार्थी परुषं वचः ।
शृणु मूढ वचो मह्यं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ६२ ॥

'तुमने विजयकी अभिलाषा रखनेवाले दुर्योधनको सम्बोधित करके उससे बड़ी रुखाईके साथ कहा था—'ओ मूढ ! मेरी बात सुन ले, जहाँ धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है' ॥ ६२ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं तव वाक्यं नृपात्मजे ।
एवं विदित्वा कल्याणि मा स्म शोके मनः कृथाः॥ ६३ ॥

'कल्याणमयी राजकुमारी ! तुम्हारी वही बात आज सत्य हुई है, ऐसा समझकर तुम मनमें शोक न करो ॥ ६३ ॥

पाण्डवानां विनाशाय मा ते बुद्धिः कदाचन ।
शक्ता चासि महाभागे पृथिवीं सचराचराम् ॥ ६४ ॥
चक्षुषा क्रोधदीप्तेन निर्दग्धुं तपसो बलात् ।

'पाण्डवोंके विनाशका विचार तुम्हारे मनमें कभी नहीं आना चाहिये । महाभागे ! तुम अपनी तपस्याके बलसे क्रोध-भरी दृष्टिद्वारा चराचर प्राणियोंसहित समूची पृथ्वीको भस्म कर डालनेकी शक्ति रखती हो' ॥ ६४½ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि केशव ।
आधिभिर्दह्यमानाया मतिः संचलिता मम ॥ ६६ ॥
सा मे व्यवस्थिता श्रुत्वा तव वाक्यं जनार्दन ।

भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर गान्धारीने कहा—'महाबाहु केशव ! तुम जैसा कहते हो, वह बिल्कुल ठीक है । अबतक मेरे मनमें बड़ी व्यथाएँ थीं और उन व्यथाओंकी आगसे दग्ध होनेके कारण मेरी बुद्धि विचलित हो गयी थी (अतः मैं पाण्डवोंके अनिष्टकी बात सोचने लगी थी); परंतु जनार्दन ! इस समय तुम्हारी बात सुनकर मेरी बुद्धि स्थिर हो गयी है—क्रोधका आवेश उतर गया है ॥ ६५-६६½ ॥

राज्ञस्त्वन्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य केशव ॥ ६७ ॥
त्वं गतिः सहितैर्वीरैः पाण्डवैर्द्विपदां वर ।

'मनुष्योंमें श्रेष्ठ केशव ! ये राजा अन्धे और बूढ़े हैं तथा इनके सभी पुत्र मारे गये हैं । अब समस्त वीर पाण्डवोंके साथ तुम्हीं इनके आश्रयदाता हो' ॥ ६७½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं मुखं प्रच्छाद्य वाससा ॥ ६८ ॥
पुत्रशोकाभिसंतप्ता गान्धारी प्ररुरोद ह ।

इतनी बात कहकर पुत्रशोकसे संतप्त हुई गान्धारी देवी अपने मुखको आँचलसे ढककर फूट-फूटकर रोने लगीं ॥

तत एनां महाबाहुः केशवः शोककर्शिताम् ॥ ६९ ॥
हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैराश्वासयत् प्रभुः ।

तब महाबाहु भगवान् केशवने शोकसे दुर्बल हुई गान्धारी-को कितने ही कारण बताकर युक्तियुक्त वचनोंद्वारा आश्वासन दिया—धीरज बँधाया ॥ ६९½ ॥

समाश्वास्य च गान्धारीं धृतराष्ट्रं च माधवः ॥ ७० ॥
द्रौणिसंकल्पितं भावमवबुद्ध्यत केशवः ।

गान्धारी और धृतराष्ट्रको सान्त्वना दे माधव श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके मनमें जो भीषण संकल्प हुआ था, उसका स्मरण किया ॥ ७०½ ॥

ततस्त्वरित उत्थाय पादौ मूर्ध्ना प्रणम्य च ॥ ७१ ॥
द्वैपायनस्य राजेन्द्र ततः कौरवमब्रवीत् ।
आपृच्छे त्वां कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः॥ ७२ ॥
द्रौणेः पापोऽस्त्यभिप्रायस्तेनास्मि सहसोत्थितः ।
पाण्डवानां वधे रात्रौ बुद्धिस्तेन प्रदर्शिता ॥ ७३ ॥

राजेन्द्र ! तदनन्तर वे सहसा उठकर खड़े हो गये और व्यासजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करके कुरुवंशी धृतराष्ट्रसे बोले—'कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं आपसे जानेकी आज्ञा चाहता हूँ । अब आप अपने मनको शोकमग्न न कीजिये । द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके मनमें पापपूर्ण संकल्प उदित हुआ है । इसीलिये मैं सहसा उठ गया हूँ । उसने रातको सोते समय पाण्डवोंके वधका विचार किया है' ॥ ७१-७३ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गान्धार्या सहितोऽब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रो महाबाहुः केशवं केशिसूदनम् ॥ ७४ ॥
शीघ्रं गच्छ महाबाहो पाण्डवान् परिपालय ।
भूयस्त्वया समेष्यामि क्षिप्रमेव जनार्दन ॥ ७५ ॥

यह सुनकर गान्धारीसहित महाबाहु धृतराष्ट्रने केशिहन्ता केशवसे कहा—'महाबाहु जनार्दन ! आप शीघ्र जाइये और पाण्डवोंकी रक्षा कीजिये । मैं पुनः शीघ्र ही आपसे मिलूँगा' ॥

प्रायात् ततस्तु त्वरितो दारुकेण सहाच्युतः ।
वासुदेवे गते राजन् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ७६ ॥
आश्वासयदमेयात्मा व्यासो लोकनमस्कृतः ।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण दारुकके साथ वहाँसे शीघ्र चल दिये । राजन् ! श्रीकृष्णके चले जानेपर अप्रमेयस्वरूप विश्ववन्दित भगवान् व्यासने राजा धृतराष्ट्रको सान्त्वना दी ॥

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा कृतकृत्यो जगाम ह ॥ ७७ ॥
शिबिरं हास्तिनपुराद् दिदृक्षुः पाण्डवान् नृप ।

नरेश्वर ! इधर धर्मात्मा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण कृतकृत्य हो हस्तिनापुरसे पाण्डवोंको देखनेके लिये शिबिरमें लौट आये॥

आगम्य शिबिरं रात्रौ सोऽभ्यगच्छत पाण्डवान्।
तच्च तेभ्यः समाख्याय सहितस्तैः समाहितः ॥ ७८ ॥

शिबिरमें आकर रातमें वे पाण्डवोंसे मिले और उनसे सारा समाचार कहकर उन्हींके साथ सावधान होकर रहे ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि धृतराष्ट्रगान्धारीसमाश्वासने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें धृतराष्ट्र और गान्धारीका श्रीकृष्णको आश्वासन देना विषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

दुर्योधनका संजयके सम्मुख विलाप और वाहकोंद्वारा अपने साथियोंको संदेश भेजना

धृतराष्ट्र उवाच

अधिष्ठितः पदा मूर्ध्नि भग्नसक्थो महीं गतः।
शौटीर्यमानी पुत्रो मे किमभाषत संजय ॥ १ ॥
अत्यर्थं कोपनो राजा जातवैरश्च पाण्डुषु।
व्यसनं परमं प्राप्तः किमाह परमाहवे ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब जाँघें टूट जानेके कारण मेरा पुत्र पृथ्वीपर गिर पड़ा और भीमसेनने उसके मस्तकपर पैर रख दिया, तब उसने क्या कहा ? उसे अपने बलपर बड़ा अभिमान था। राजा दुर्योधन अत्यन्त क्रोधी तथा पाण्डवोंसे वैर रखनेवाला था। उस युद्धभूमिमें जब वह बड़ी भारी विपत्तिमें फँस गया, तब क्या बोला ?॥१-२॥

संजय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तं नराधिप।
राज्ञा यदुक्तं भग्नेन तस्मिन् व्यसन आगते ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! सुनिये। नरेश्वर ! उस भारी संकटमें पड़ जानेपर टूटी जाँघवाले राजा दुर्योधनने जो कुछ कहा था, वह सब वृत्तान्त यथार्थरूपसे बता रहा हूँ॥

भग्नसक्थो नृपो राजन् पांसुना सोऽवगुण्ठितः।
यमयन् मूर्धजांस्तत्र वीक्ष्य चैव दिशो दश ॥ ४ ॥
केशान् नियम्य यत्नेन निःश्वसन्नुरगो यथा।
संरम्भाश्रुपरीताभ्यां नेत्राभ्यामभिवीक्ष्य माम् ॥ ५ ॥
बाहू धरण्यां निष्पिष्य सुदुर्मत्त इव द्विपः।
प्रकीर्णान् मूर्धजान् धुन्वन् दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ ६ ॥
गर्हयन् पाण्डवं ज्येष्ठं निःश्वस्येदमथाब्रवीत्।

राजन् ! जब कौरव-नरेशकी जाँघें टूट गयीं, तब वह धरतीपर गिरकर धूलमें सन गया। फिर बिखरे हुए बालोंको समेटता हुआ वहाँ दसों दिशाओंकी ओर देखने लगा। बड़े प्रयत्नसे अपने बालोंको बाँधकर सर्पके समान फुफकारते हुए उसने रोष और आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंद्वारा मेरी ओर देखा। इसके बाद दोनों भुजाओंको पृथ्वीपर रगड़कर मदोन्मत्त गजराजके समान अपने बिखरे केशोंको हिलाता, दाँतोंसे दाँतोंको पीसता तथा ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरकी निन्दा करता हुआ, वह उच्छ्वास ले इस प्रकार बोला—॥ ४–६½ ॥

भीष्मे शान्तनवे नाथे कर्णे शस्त्रभृतां वरे ॥ ७ ॥
गौतमे शकुनौ चापि द्रोणे चास्त्रभृतां वरे।
अश्वत्थाम्नि तथा शल्ये शूरे च कृतवर्मणि ॥ ८ ॥
इमामवस्थां प्राप्तोऽस्मि कालो हि दुरतिक्रमः।

'शान्तनुनन्दन भीष्म, अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण, कृपाचार्य, शकुनि, अस्त्रधारियोंमें सर्वश्रेष्ठ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शूरवीर शल्य तथा कृतवर्मा मेरे रक्षक थे तो भी मैं इस दशाको आ पहुँचा। निश्चय ही कालका उल्लङ्घन करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है ॥ ७–८½ ॥

एकादशचमूभर्ता सोऽहमेतां दशां गतः ॥ ९ ॥
कालं प्राप्य महाबाहो न कश्चिदतिवर्तते।

'महाबाहो ! मैं एक दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था; परंतु आज इस दशामें आ पड़ा हूँ। वास्तवमें कालको पाकर कोई उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥

आख्यातव्यं मदीयानां येऽस्मिञ्जीवन्ति संयुगे ॥ १० ॥
यथाहं भीमसेनेन व्युत्क्रम्य समयं हतः।

'मेरे पक्षके वीरोंमेंसे जो लोग इस युद्धमें जीवित बच गये हों, उन्हें यह बताना कि भीमसेनने किस तरह गदायुद्धके नियमका उल्लङ्घन करके मुझे मारा ॥ १०½ ॥

बहूनि सुनृशंसानि कृतानि खलु पाण्डवैः ॥ ११ ॥
भूरिश्रवसि कर्णे च भीष्मे द्रोणे च श्रीमति।

'पाण्डवोंने भूरिश्रवा, कर्ण, भीष्म तथा श्रीमान् द्रोणाचार्यके प्रति बहुत-से नृशंस कार्य किये हैं ॥ ११½ ॥

इदं चाकीर्तिजं कर्म नृशंसैः पाण्डवैः कृतम् ॥ १२ ॥
येन ते सत्सु निर्वेदं गमिष्यन्ति हि मे मतिः।

'उन क्रूरकर्मा पाण्डवोंने यह भी अपनी अकीर्ति फैलानेवाला कर्म ही किया है, जिससे वे साधु पुरुषोंकी सभामें पश्चात्ताप करेंगे; ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १२½ ॥

का प्रीतिः सत्त्वयुक्तस्य कृत्वोपधिकृतं जयम् ॥ १३ ॥

को वा समयभेत्तारं बुधः सम्मन्तुमर्हति ।

'छलसे विजय पाकर किसी सत्त्वगुणी या शक्तिशाली पुरुषको क्या प्रसन्नता होगी ? अथवा जो युद्धके नियमको भंग कर देता है, उसका सम्मान कौन विद्वान् कर सकता है?॥

अधर्मेण जयं लब्ध्वा को नु हृष्येत पण्डितः ॥ १४ ॥
यथा संहृष्यते पापः पाण्डुपुत्रो वृकोदरः ।

'अधर्मसे विजय प्राप्त करके किस बुद्धिमान् पुरुषको हर्ष होगा ? जैसा कि पापी पाण्डुपुत्र भीमसेनको हो रहा है॥

किन्नु चित्रमितस्त्वद्य भग्नसक्थस्य यन्मम ॥ १५ ॥
क्रुद्धेन भीमसेनेन पादेन मृदितं शिरः ।

'आज जब मेरी जाँघें टूट गयी हैं; ऐसी दशामें कुपित हुए भीमसेनने मेरे मस्तकको जो पैरसे ठुकराया है, इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है ! ॥ १५½ ॥

प्रतपन्तं श्रिया जुष्टं वर्तमानं च बन्धुषु ॥ १६ ॥
एवं कुर्यान्नरो यो हि स वै संजय पूजितः ।

'संजय ! जो अपने तेजसे तप रहा हो, राजलक्ष्मीसे सेवित हो और अपने सहायक बन्धुओंके बीचमें विद्यमान हो, ऐसे शत्रुके साथ जो उक्त बर्ताव करे, वही वीर पुरुष सम्मानित होता है (मरे हुएको मारनेमें क्या बड़ाई है) ॥

अभिज्ञौ युद्धधर्मस्य मम माता पिता च मे ॥ १७ ॥
तौ हि संजय दुःखार्तौ विज्ञाप्यौ वचनाद्धि मे ।
इष्टं भृत्या भृताः सम्यग् भूः प्रशास्ता ससागरा॥१८ ॥

'मेरे माता-पिता युद्धधर्मके ज्ञाता हैं। वे दोनों मेरी मृत्युका समाचार सुनकर दुःखसे आतुर हो जायँगे। तुम मेरे कहनेसे उन्हें यह संदेश देना कि मैंने यज्ञ किये, जो भरण-पोषण करने योग्य थे, उनका पालन किया और समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका अच्छी तरह शासन किया॥ १७-१८ ॥

मूर्ध्नि स्थितममित्राणां जीवतामेव संजय ।
दत्ता दाया यथाशक्ति मित्राणां च प्रियं कृतम् ॥ १९ ॥
अमित्रा बाधिताः सर्वे को नु स्वन्ततरो मया ।

'संजय ! मैंने जीवित शत्रुओंके ही मस्तकपर पैर रक्खा। यथाशक्ति धनका दान और मित्रोंका प्रिय किया। साथ ही सम्पूर्ण शत्रुओंको सदा ही क्लेश पहुँचाया। संसारमें कौन ऐसा पुरुष है, जिसका अन्त मेरे समान सुन्दर हुआ हो ?॥

मानिता बान्धवाः सर्वे वश्यः सम्पूजितो जनः ॥ २०॥
त्रितयं सेवितं सर्वं को नु स्वन्ततरो मया ।

'मैंने सभी बन्धु-बान्धवोंको सम्मान दिया। अपनी आज्ञाके अधीन रहनेवाले लोगोंका सत्कार किया और धर्म, अर्थ एवं काम सबका सेवन कर लिया। मेरे समान सुन्दर अन्त किसका हुआ होगा ? ॥ २०½ ॥

आज्ञप्तं नृपमुख्येषु मानः प्राप्तः सुदुर्लभः ॥ २१ ॥
आजानेयैस्तथा यातं को नु स्वन्ततरो मया ।

'बड़े-बड़े राजाओंपर हुक्म चलाया, अत्यन्त दुर्लभ सम्मान प्राप्त किया तथा आजानेय (अरबी) घोड़ोंपर सवारी की, मुझसे अच्छा अन्त और किसका हुआ होगा ?॥२१½॥

यातानि परराष्ट्राणि नृपा भुक्ताश्च दासवत् ॥ २२ ॥
प्रियेभ्यः प्रकृतं साधु को नु स्वन्ततरो मया ।

'दूसरे राष्ट्रोंपर आक्रमण किया और कितने ही राजाओंसे दासकी भाँति सेवाएँ लीं। जो अपने प्रिय व्यक्ति थे, उनकी सदा ही भलाई की। फिर मुझसे अच्छा अन्त किसका हुआ होगा ? ॥ २२½ ॥

अधीतं विधिवद् दत्तं प्राप्तमायुर्निरामयम् ॥ २३ ॥
स्वधर्मेण जिता लोकाः को नु स्वन्ततरो मया ।
दिष्ट्या नाहं जितः संख्ये परान् प्रेष्यवदाश्रितः॥ २४ ॥
दिष्ट्या मे विपुला लक्ष्मीर्मृते त्वन्यगता विभो ।

'विधिवत् वेदोंका स्वाध्याय किया, नाना प्रकारके दान दिये और रोगरहित आयु प्राप्त की। इसके सिवा, मैंने अपने धर्मके द्वारा पुण्यलोकोंपर विजय पायी है। फिर मेरे समान अच्छा अन्त और किसका हुआ होगा ? सौभाग्यकी बात है कि मैं न तो युद्धमें कभी पराजित हुआ और न दासकी भाँति कभी शत्रुओंकी शरण ली। सौभाग्यसे मेरे अधिकारमें विशाल राजलक्ष्मी रही है, जो मेरे मरनेके बाद ही दूसरेके हाथमें गयी है ॥ २३-२४½ ॥

यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ २५ ॥
निधनं तन्मया प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।

'अपने धर्मका पालन करनेवाले क्षत्रिय-बन्धुओंको जो अभीष्ट है, वैसी ही मृत्यु मुझे प्राप्त हुई है; अतः मुझसे अच्छा अन्त और किसका हुआ होगा ? ॥ २५½ ॥

दिष्ट्या नाहं परावृत्तो वैरात् प्राकृतवज्जितः ॥ २६ ॥
दिष्ट्या न विमतिं कांचिद् भजित्वा तु पराजितः ।

'हर्षकी बात है कि मैं युद्धमें पीठ दिखाकर भागा नहीं। निम्नश्रेणीके मनुष्यकी भाँति हार मानकर वैरसे कभी पीछे नहीं हटा तथा कभी किसी दुर्विचारका आश्रय लेकर पराजित नहीं हुआ—यह भी मेरे लिये गौरवकी ही बात है॥ २६½ ॥

सुप्तं वाथ प्रमत्तं वा यथा हन्याद् विषेण वा ॥ २७ ॥
एवं व्युत्क्रान्तधर्मेण व्युत्क्रम्य समयं हतः ।

'जैसे कोई सोये अथवा पागल हुए मनुष्यको मार दे या धोखेसे जहर देकर किसीकी हत्या कर डाले, उसी प्रकार धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले पापी भीमसेनने गदायुद्धकी मर्यादाका उल्लङ्घन करके मुझे मारा है ॥ २७½ ॥

अश्वत्थामा महाभागः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २८ ॥
कृपः शारद्वतश्चैव वक्तव्या वचनान्मम ।

'महाभाग अश्वत्थामा, सात्वतवंशी कृतवर्मा तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य—इन सबको मेरी यह बात सुना देना॥

अधर्मेण प्रवृत्तानां पाण्डवानामनेकशः ॥ २९ ॥
विश्वासं समयघ्नानां न यूयं गन्तुमर्हथ ।

'पाण्डवोंने अधर्ममें प्रवृत्त होकर अनेकों बार युद्धकी मर्यादा तोड़ी है; अतः आपलोग कभी उनका विश्वास न करें' ॥

वार्तिकांश्चाब्रवीद् राजा पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥ ३० ॥
अधर्माद् भीमसेनेन निहतोऽहं यथा रणे ।
सोऽहं द्रोणं स्वर्गगतं कर्णशल्यावुभौ तथा ॥ ३१ ॥
वृषसेनं महावीर्यं शकुनिं चापि सौबलम् ।
जलसंधं महावीर्यं भगदत्तं च पार्थिवम् ॥ ३२ ॥
सोमदत्तं महेष्वासं सैन्धवं च जयद्रथम् ।
दुःशासनपुरोगांश्च भ्रातॄनात्मसमांस्तथा ॥ ३३ ॥
दौःशासनिं च विक्रान्तं लक्ष्मणं चात्मजावुभौ ।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् मदीयांश्च सहस्रशः ॥ ३४ ॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सार्थहीनो यथाध्वगः ।

इसके बाद आपके सत्यपराक्रमी पुत्र राजा दुर्योधनने संदेशवाहक दूतोंसे इस प्रकार कहा—'भीमसेनने रणभूमिमें अधर्मसे मेरा वध किया है। अब मैं स्वर्गमें गये हुए द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य, महापराक्रमी वृषसेन, सुबलपुत्र शकुनि, महाबली जलसन्ध, राजा भगदत्त, महाधनुर्धर सोमदत्त, सिंधुराज जयद्रथ, अपने ही समान पराक्रमी दुःशासन आदि बन्धुगण, विक्रमशाली दुःशासनकुमार और अपने पुत्र लक्ष्मण—इन सबके तथा और भी जो बहुत-से मेरे पक्षके सहस्रों योद्धा मारे गये हैं, उन सबके पीछे मैं स्वर्गमें जाऊँगा। मेरी दशा उस पथिकके समान है, जो अपने साथियोंसे बिछुड़ गया हो ॥ ३०–३४½ ॥

कथं भ्रातॄन् हताञ्छ्रुत्वा भर्तारं च स्वसा मम ॥ ३५ ॥
रोरूयमाणा दुःखार्ता दुःशला सा भविष्यति ।

'हाय! अपने भाइयों और पतिकी मृत्युका समाचार सुनकर दुःखसे आतुर हो अत्यन्त रोदन करती हुई मेरी बहिन दुःशलाकी क्या दशा होगी? ॥ ३५½ ॥

स्नुषाभिः प्रस्नुषाभिश्च वृद्धो राजा पिता मम ॥ ३६ ॥
गान्धारीसहितश्चैव कां गतिं प्रतिपत्स्यति ।

'पुत्रों और पौत्रोंकी बिलखती हुई बहुओंके साथ मेरे बूढ़े पिता राजा धृतराष्ट्र माता गान्धारीसहित किस अवस्थाको पहुँच जायँगे? ॥ ३६½ ॥

नूनं लक्ष्मणमातापि हतपुत्रा हतेश्वरा ॥ ३७ ॥
विनाशं यास्यति क्षिप्रं कल्याणी पृथुलोचना ।

'निश्चय ही जिसके पति और पुत्र मारे गये हैं, वह कल्याणमयी विशाललोचना लक्ष्मणकी माता भी सारा समाचार सुनकर तुरंत ही प्राण दे देगी ॥ ३७½ ॥

यदि जानाति चार्वाकः परिव्राड् वाग्विशारदः ॥ ३८ ॥
करिष्यति महाभागो ध्रुवं चापचितिं मम ।

'संन्यासीके वेषमें सब ओर घूमनेवाले प्रवचनकुशल चार्वाक[1] यदि मेरी दशा ज्ञात हो जायगी तो वे महाभाग निश्चय ही मेरे वैरका बदला लेंगे ॥ ३८½ ॥

समन्तपञ्चके पुण्ये त्रिषु लोकेषु विश्रुते ॥ ३९ ॥
अहं निधनमासाद्य लोकान् प्राप्स्यामि शाश्वतान् ।

'तीनों लोकोंमें विख्यात पुण्यमय समन्तपञ्चकक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होकर अब मैं सनातन लोकोंमें जाऊँगा' ॥ ३९½ ॥

ततो जनसहस्राणि बाष्पपूर्णानि मारिष ॥ ४० ॥
प्रलापं नृपतेः श्रुत्वा व्यद्रवन्त दिशो दश ।

मान्यवर! राजा दुर्योधनका यह विलाप सुनकर हजारों मनुष्योंकी आँखोंमें आँसू भर आये और वे दसों दिशाओंमें भाग चले ॥ ४०½ ॥

ससागरवना घोरा पृथिवी सचराचरा ॥ ४१ ॥
चचालाथ सनिर्ह्रादा दिशश्चैवाविलाभवन् ।

उस समय समुद्र, वन और चराचर प्राणियोंसहित यह पृथ्वी भयानक रूपसे हिलने लगी। सब ओर वज्रकी-सी गर्जना होने लगी और सारी दिशाएँ मलिन हो गयीं ॥ ४१½ ॥

ते द्रोणपुत्रमासाद्य यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥ ४२ ॥
व्यवहारं गदायुद्धे पार्थिवस्य च पातनम् ।
तदाख्याय ततः सर्वे द्रोणपुत्रस्य भारत ॥
(वार्तिका दुःखसंतप्ताः शोकोपहतचेतसः ।)
ध्यात्वा च सुचिरं कालं जग्मुरार्ता यथागतम् ॥ ४३ ॥

उन संदेशवाहकोंने आकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे यथावत् समाचार कह सुनाया। भारत! गदायुद्धमें भीमसेनका जैसा व्यवहार हुआ तथा राजाको जिस प्रकार धराशायी किया गया, वह सारा वृत्तान्त द्रोणपुत्रको बताकर दुःखसे संतप्त हो वे बहुत देरतक चिन्तामें डूबे रहे। फिर शोकसे व्याकुल-चित्त एवं आर्त होकर जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि दुर्योधनविलापे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें दुर्योधनका विलापविषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४३½ श्लोक हैं)

१. आचार्य नीलकण्ठकी सम्मतिके अनुसार चार्वाक संन्यासी मुनिके वेषमें विचरनेवाला एक नास्तिक राक्षस था।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

दुर्योधनकी दशा देखकर अश्वत्थामाका विषाद, प्रतिज्ञा और सेनापतिके पदपर अभिषेक

संजय उवाच

वार्तिकाणां सकाशात् तु श्रुत्वा दुर्योधनं हतम् ।
हतशिष्टास्ततो राजन् कौरवाणां महारथाः ॥ १ ॥
विनिर्भिन्नाः शितैर्बाणैर्गदातोमरशक्तिभिः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २ ॥
त्वरिता जवनैरश्वैरायोधनमुपागमन् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! संदेशवाहकोंके मुखसे दुर्योधनके मारे जानेका समाचार सुनकर मरनेसे बचे हुए कौरव महारथी अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा—जो स्वयं भी तीखे बाण, गदा, तोमर और शक्तियोंके प्रहारसे विशेष घायल हो चुके थे, तेज चलनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार हो तुरंत ही युद्धभूमिमें आये॥

तत्रापश्यन् महात्मानं धार्तराष्ट्रं निपातितम् ॥ ३ ॥
प्रभग्नं वायुवेगेन महाशालं यथा वने ।
भूमौ विचेष्टमानं तं रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ४ ॥
महागजमिवारण्ये व्याधेन विनिपातितम् ।
विवर्तमानं बहुशो रुधिरौघपरिप्लुतम् ॥ ५ ॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा कि महामनस्वी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन मार गिराया गया है, मानो वनमें कोई विशाल शालवृक्ष वायुके वेगसे टूटकर धराशायी हो गया हो । खूनसे लथपथ हो दुर्योधन पृथ्वीपर पड़ा छटपटा रहा था, मानो जंगलमें किसी व्याधेने बहुत बड़े हाथीको मार गिराया हो । रक्तकी धारामें डूबा हुआ वह बारंबार करवटें बदल रहा था॥

यदृच्छया निपतितं चक्रमादित्यगोचरम् ।
महावातसमुत्थेन संशुष्कमिव सागरम् ॥ ६ ॥
पूर्णचन्द्रमिव व्योम्नि तुषारावृतमण्डलम् ।
रेणुध्वस्तं दीर्घभुजं मातङ्गमिव विक्रमे ॥ ७ ॥

जैसे दैवेच्छासे सूर्यका चक्र गिर पड़ा हो, बहुत बड़ी आँधी चलनेसे समुद्र सूख गया हो, आकाशमें पूर्ण चन्द्र-मण्डलपर कुहरा छा गया हो, वही दशा उस समय दुर्योधन-की हुई थी । मतवाले हाथीके समान पराक्रमी और विशाल भुजाओंवाला वह वीर धूलमें सन गया था ॥ ६-७ ॥

वृतं भूतगणैर्घोरैः क्रव्यादैश्च समन्ततः ।
यथा धनं लिप्समानैर्भृत्यैर्नृपतिसत्तमम् ॥ ८ ॥

जैसे धन चाहनेवाले भृत्यगण किसी श्रेष्ठ राजाको घेरे रहते हैं, उसी प्रकार भयंकर मांसभक्षी भूतोंने चारों ओरसे उसे घेर रक्खा था ॥ ८ ॥

भ्रुकुटीकृतवक्त्रान्तं क्रोधादुद्वृत्तचक्षुषम् ।
सामर्षं तं नरव्याघ्रं व्याघ्रं निपतितं यथा ॥ ९ ॥

उसके मुँहपर भौंहें तनी हुई थीं, आँखें क्रोधसे चढ़ी हुई थीं और गिरे हुए व्याघ्रके समान वह नरश्रेष्ठ वीर अमर्षमें भरा हुआ दिखायी देता था ॥ ९ ॥

ते तं दृष्ट्वा महेष्वासं भूतले पतितं नृपम् ।
मोहमभ्यागमन् सर्वे कृपप्रभृतयो रथाः ॥ १० ॥

महाधनुर्धर राजा दुर्योधनको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख कृपाचार्य आदि सभी महारथी मोहके वशीभूत हो गये॥१०॥

अवतीर्य रथेभ्यश्च प्राद्रवन् राजसंनिधौ ।
दुर्योधनं च सम्प्रेक्ष्य सर्वे भूमावुपाविशन् ॥ ११ ॥

वे अपने रथोंसे उतरकर राजाके पास दौड़े गये और दुर्योधनको देखकर सब लोग उसके पास ही जमीनपर बैठ गये ॥ ११ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् ।
उवाच भरतश्रेष्ठं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ॥ १२ ॥

महाराज ! उस समय अश्वत्थामाकी आँखोंमें आँसू भर आये । वह सिसकता हुआ सम्पूर्ण जगत्‌के राजाधिराज भरत-श्रेष्ठ दुर्योधनसे इस प्रकार बोला—॥ १२ ॥

न नूनं विद्यते सत्यं मानुषे किंचिदेव हि ।
यत्र त्वं पुरुषव्याघ्र शेषे पांसुषु रूषितः ॥ १३ ॥

'पुरुषसिंह ! निश्चय ही इस मनुष्यलोकमें कुछ भी सत्य नहीं है, सभी नाशवान् है, जहाँ तुम्हारे-जैसा राजा धूलमें सना हुआ लोट रहा है ॥ १३ ॥

भूत्वा हि नृपतिः पूर्वं समाज्ञाप्य च मेदिनीम् ।
कथमेकोऽद्य राजेन्द्र तिष्ठसे निर्जने वने ॥ १४ ॥

'राजेन्द्र ! तुम पहले सम्पूर्ण जगत्‌के मनुष्योंपर आधिपत्य रखकर सारे भूमण्डलपर हुक्म चलाते थे । वही तुम आज अकेले इस निर्जन वनमें कैसे पड़े हुए हो ?॥१४॥

दुःशासनं न पश्यामि नापि कर्णं महारथम् ।
नापि तान् सुहृदः सर्वान् किमिदं भरतर्षभ ॥ १५ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! न तो मैं दुःशासनको देखता हूँ और न महारथी कर्णको । अन्य सब सुहृदोंका भी मुझे दर्शन नहीं हो रहा है, यह क्या बात है ? ॥ १५ ॥

दुःखं नूनं कृतान्तस्य गतिं ज्ञातुं कथंचन ।
लोकानां च भवान् यत्र शेषे पांसुषु रूषितः॥ १६ ॥

'निश्चय ही काल और लोकोंकी गतिको जानना किसी प्रकार भी कठिन ही है, जिसके अधीन होकर आप धूलमें सने हुए पड़े हैं ॥ १६ ॥

एष मूर्धाभिषिक्तानामग्रे गत्वा परंतपः ।
सतृणं ग्रसते पांसुं पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १७ ॥

'अहो ! ये मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आगे चलनेवाले शत्रुसंतापी महाराज दुर्योधन तिनकोंसहित धूल फाँक रहे हैं । यह कालका उलट-फेर तो देखो ॥ १७ ॥

क्व ते तदमलं छत्रं व्यजनं क्व च पार्थिव ।
सा च ते महती सेना क्व गता पार्थिवोत्तम ॥ १८ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! महाराज ! कहाँ है आपका वह निर्मल छत्र, कहाँ है व्यजन और कहाँ गयी आपकी वह विशालसेना ? ॥

दुर्विज्ञेया गतिर्नूनं कार्याणां कारणान्तरे ।
यद् वै लोकगुरुर्भूत्वा भवानेतां दशां गतः ॥ १९ ॥

'किस कारणसे कौन-सा कार्य होगा, इसको समझ लेना निश्चय ही बहुत कठिन है; क्योंकि सम्पूर्ण जगत्के आदरणीय नरेश होकर भी आज तुम इस दशाको पहुँच गये ॥ १९ ॥

अध्रुवा सर्वमर्त्येषु श्रीरुपालक्ष्यते भृशम् ।
भवतो व्यसनं दृष्ट्वा शक्रविस्पर्धिनो भृशम् ॥ २० ॥

'तुम तो अपनी साम्राज्य-लक्ष्मीके द्वारा इन्द्रकी समानता करनेवाले थे । आज तुमपर भी यह संकट आया हुआ देखकर निश्चय हो गया कि किसी भी मनुष्यकी सम्पत्ति सदा स्थिर नहीं देखी जा सकती' ॥ २० ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा दुःखितस्य विशेषतः ।
उवाच राजन् पुत्रस्ते प्राप्तकालमिदं वचः ॥ २१ ॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां शोकजं बाष्पमुत्सृजन् ।
कृपादीन् स तदा वीरान् सर्वानेव नराधिपः ॥ २२ ॥

राजन् ! अत्यन्त दुखी हुए अश्वत्थामाकी वह बात सुनकर आपके पुत्र राजा दुर्योधनके नेत्रोंसे शोकके आँसू बहने लगे । उसने दोनों हाथोंसे नेत्रोंको पोंछा और कृपाचार्य आदि समस्त वीरोंसे यह समयोचित वचन कहा—॥२१-२२॥

ईदृशो लोकधर्मोऽयं धात्रा निर्दिष्ट उच्यते ।
विनाशः सर्वभूतानां कालपर्यायमागतः ॥ २३ ॥

'मित्रो ! इस मर्त्यलोकका ऐसा ही धर्म (नियम) है । विधाताने ही इसका निर्देश किया है, ऐसा कहा जाता है; इसलिये कालक्रमसे एक-न-एक दिन सम्पूर्ण प्राणियोंके विनाशकी घड़ी आ ही जाती है ॥ २३ ॥

सोऽयं मां समनुप्राप्तः प्रत्यक्षं भवतां हि यः ।
पृथिवीं पालयित्वाहमेतां निष्ठामुपागतः ॥ २४ ॥

'वही यह विनाशका समय अब मुझे भी प्राप्त हुआ है, जिसे आपलोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं । एक दिन मैं सारी पृथ्वीका पालन करता था और आज इस अवस्थाको पहुँच गया हूँ ॥ २४ ॥

दिष्ट्या नाहं परावृत्तो युद्धे कस्यांचिदापदि ।
दिष्ट्याहं निहतः पापैश्छलेनैव विशेषतः ॥ २५ ॥

'तो भी मुझे इस बातकी खुशी है कि कैसी ही आपत्ति क्यों न आयी, मैं युद्धमें कभी पीछे नहीं हटा । पापियोंने मुझे मारा भी तो छलसे ॥ २५ ॥

उत्साहश्च कृतो नित्यं मया दिष्ट्या युयुत्सता ।
दिष्ट्या चास्मिन् हतो युद्धे निहतज्ञातिबान्धवः॥ २६ ॥

'सौभाग्यवश मैंने रणभूमिमें जूझनेकी इच्छा रखकर सदा ही उत्साह दिखाया है और भाई-बन्धुओंके मारे जानेपर स्वयं भी युद्धमें ही प्राण-त्याग कर रहा हूँ, इससे मुझे विशेष संतोष है ॥ २६ ॥

दिष्ट्या च वोऽहं पश्यामि मुक्तानस्माज्जनक्षयात्।
स्वस्तियुक्तांश्च कल्यांश्च तन्मे प्रियमनुत्तमम् ॥ २७ ॥

'सौभाग्यकी बात है कि मैं आपलोगोंको इस नरसंहारसे मुक्त देख रहा हूँ । साथ ही आपलोग सकुशल एवं कुछ करनेमें समर्थ हैं—यह मेरे लिये और भी उत्तम एवं प्रसन्नताकी बात है ॥ २७ ॥

मा भवन्तोऽत्र तप्यन्तां सौहृदान्निधनेन मे ।
यदि वेदाः प्रमाणं वो जिता लोका मयाक्षयाः ॥ २८ ॥

'आपलोगोंका मुझपर स्वाभाविक स्नेह है, इसलिये मेरी मृत्युसे यहाँ आपलोगोंको जो दुःख और संताप हो रहा है, वह नहीं होना चाहिये । यदि आपकी दृष्टिमें वेद-शास्त्र प्रामाणिक हैं तो मैंने अक्षय लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लिया ॥ २८ ॥

मन्यमानः प्रभावं च कृष्णस्यामिततेजसः ।
तेन न च्यावितश्चाहं क्षत्रधर्मात् स्वनुष्ठितात् ॥ २९ ॥
स मया समनुप्राप्तो नास्मि शोच्यः कथंचन ।

'मैं अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभावको मानता हुआ भी कभी उनकी प्रेरणासे अच्छी तरह पालन किये हुए क्षत्रियधर्मसे विचलित नहीं हुआ । मैंने उस धर्मका फल प्राप्त किया है; अतः किसी प्रकार भी मैं शोकके योग्य नहीं हूँ ॥

कृतं भवद्भिः सदृशमनुरूपमिवात्मनः ॥ ३० ॥
यतितं विजये नित्यं दैवं तु दुरतिक्रमम् ।

'आपलोगोंने अपने स्वरूपके अनुरूप योग्य पराक्रम प्रकट किया और सदा मुझे विजय दिलानेकी ही चेष्टा की; तथापि दैवके विधानका उल्लङ्घन करना किसीके लिये भी सर्वथा कठिन है' ॥ ३०½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पव्याकुललोचनः ॥ ३१ ॥
तूष्णीं बभूव राजेन्द्र रुजासौ विह्वलो भृशम् ।

राजेन्द्र ! इतना कहते-कहते दुर्योधनकी आँखें आँसुओंसे भर आयीं और वह वेदनासे अत्यन्त व्याकुल होकर चुप हो गया—उससे कुछ बोला नहीं गया ॥ ३१½ ॥

तथा दृष्ट्वा तु राजानं बाष्पशोकसमन्वितम् ॥ ३२ ॥
द्रौणिः क्रोधेन जज्वाल यथा वह्निर्जगत्क्षये ।

राजा दुर्योधनको शोकके आँसू बहाते देख अश्वत्थामा प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठा ॥

स च क्रोधसमाविष्टः पाणौ पाणिं निपीड्य च॥ ३३ ॥
बाष्पविह्वलया वाचा राजानमिदमब्रवीत्।

रोषके आवेशमें भरकर उसने हाथपर हाथ दबाया और अश्रुगद्गद वाणीद्वारा उसने राजा दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ ३३½ ॥

पिता मे निहतः क्षुद्रैः सुनृशंसेन कर्मणा ॥ ३४ ॥
न तथा तेन तप्यामि यथा राजंस्त्वयाद्य वै।

'राजन्! नीच पाण्डवोंने अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्मके द्वारा मेरे पिताका वध किया था; परंतु उसके कारण भी मैं उतना संतप्त नहीं हूँ, जैसा कि आज तुम्हारे वधके कारण मुझे कष्ट हो रहा है ॥ ३४½ ॥

शृणु चेदं वचो मह्यं सत्येन वदतः प्रभो ॥ ३५ ॥
इष्टापूर्तेन दानेन धर्मेण सुकृतेन च।
अद्याहं सर्वपञ्चालान् वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥
सर्वोपायैर्हि नेष्यामि प्रेतराजनिवेशनम्।
अनुज्ञां तु महाराज भवान् मे दातुमर्हति ॥ ३७ ॥

'प्रभो! मैं सत्यकी शपथ खाकर जो कह रहा हूँ, मेरी इस बातको सुनो। मैं अपने इष्ट, आपूर्त, दान, धर्म तथा अन्य शुभ कर्मोंकी शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज श्रीकृष्णके देखते-देखते सम्पूर्ण पाञ्चालोंको सभी उपायोंद्वारा यमराजके लोकमें भेज दूँगा। महाराज! इसके लिये तुम मुझे आज्ञा दे दो' ॥ ३५–३७ ॥

इति श्रुत्वा तु वचनं द्रोणपुत्रस्य कौरवः।
मनसः प्रीतिजननं कृपं वचनमब्रवीत् ॥ ३८ ॥
आचार्य शीघ्रं कलशं जलपूर्णं समानय।

द्रोणपुत्रका यह मनको प्रसन्न करनेवाला वचन सुनकर कुरुराज दुर्योधनने कृपाचार्यसे कहा—'आचार्य! आप शीघ्र ही जलसे भरा हुआ कलश ले आइये' ॥ ३८½ ॥

स तद् वचनमाज्ञाय राज्ञो ब्राह्मणसत्तमः ॥ ३९ ॥
कलशं पूर्णमादाय राज्ञोऽन्तिकमुपागमत्।

राजाकी वह बात मानकर ब्राह्मणशिरोमणि कृपाचार्य जलसे भरा हुआ कलश ले उसके समीप आये ॥ ३९½ ॥

तमब्रवीन्महाराज पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ४० ॥
ममाज्ञया द्विजश्रेष्ठ द्रोणपुत्रोऽभिषिच्यताम्।
सैनापत्येन भद्रं ते मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ४१ ॥

महाराज! प्रजानाथ! तब आपके पुत्रने उनसे कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपका कल्याण हो। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो मेरी आज्ञासे द्रोणपुत्रका सेनापतिके पद-पर अभिषेक कीजिये ॥ ४०-४१ ॥

राज्ञो नियोगाद् योद्धव्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
वर्तता क्षत्रधर्मेण ह्येवं धर्मविदो विदुः ॥ ४२ ॥

'ब्राह्मणको विशेषतः राजाकी आज्ञासे क्षत्रिय-धर्मके अनुसार बर्ताव करते हुए युद्ध करना चाहिये—ऐसा धर्मज्ञ पुरुष मानते हैं' ॥ ४२ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कृपः शारद्वतस्तथा।
द्रौणिं राज्ञो नियोगेन सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ॥ ४३ ॥

राजाकी वह बात सुनकर शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने उसकी आज्ञाके अनुसार अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया ॥ ४३ ॥

सोऽभिषिक्तो महाराज परिष्वज्य नृपोत्तमम्।
प्रययौ सिंहनादेन दिशः सर्वा विनादयन् ॥ ४४ ॥

महाराज! अभिषेक हो जानेपर अश्वत्थामाने नृपश्रेष्ठ दुर्योधनको हृदयसे लगाया और अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए वहाँसे प्रस्थान किया ॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र शोणितेन परिप्लुतः।
तां निशां प्रतिपेदेऽथ सर्वभूतभयावहाम् ॥ ४५ ॥

राजेन्द्र! खूनमें डूबे हुए दुर्योधनने भी सम्पूर्ण भूतोंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाली वह रात वहीं व्यतीत की ॥

अपक्रम्य तु ते तूर्णं तस्मादायोधनान्नृप।
शोकसंविग्नमनसश्चिन्ताध्यानपराभवन् ॥ ४६ ॥

नरेश्वर! शोकसे व्याकुलचित्त हुए वे तीनों महारथी उस युद्धभूमिसे तुरंत ही दूर हट गये और चिन्ता एवं कर्तव्यके विचारमें निमग्न हो गये ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि अश्वत्थामसैनापत्याभिषेके पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषेकविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

॥ शल्यपर्व सम्पूर्णम् ॥

	अनुष्टुप्	बड़े श्लोक	बड़े श्लोकोंको अनुष्टुप् माननेपर	कुल
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	३५३१	(११५)	१५८=	३६८९=
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	४२	(५)	६॥=	४८॥=
शल्यपर्वकी कुल श्लोकसंख्या				३७३८



भीमसेन अश्वत्थामासे प्राप्त हुई मणि द्रौपदीको दे रहे हैं